भा० दि० जैनसंघग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्य द्वितीयो दलः

श्रीयतिवृषभाचार्यविरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्

श्रीभगवद्गुणधराचार्यप्रणीतम्

# कसायपाहुडं

तयोश्च

श्रीवीरसेनाचार्य विरचिता जयधवलाटीका

[ द्वितीयोऽधिकारः पयडिविहत्ती ]


सम्पादकौ–

पं० फूलचन्द्रः
सिद्धान्तशास्त्री
भू० पू० सह-सम्पादक-
धवला

पं० कैलाशचन्द्रः
सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
प्रधानाध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय
काशी



प्रकाशकः–
मन्त्री साहित्यविभाग
भा० दि० जैनसंघ, चौरासी, मथुरा

वि० सं० २००५ ] वीरनिर्वाणाब्द २४७४ [ ई० स० १९४८

मूल्यं रूप्यकैकादशकम्

# भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

ग्रन्थ-मालाका उद्देश्य—

प्राकृत, संस्कृत आदिमें निबद्ध दि० जैन सिद्धान्त,
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिका यथा सम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना

सञ्चालक—

*भा० दि० जैन संघ*

ग्रन्थाङ्क १–२

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक
भा० दि० जैन संघ,
चौरासी, मथुरा

मुद्रक, रामकृष्ण दास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, बनारस।

स्थापनाब्द ] प्रति १००० [ वी० नि० सं० २४६८

Sri Dig. Jain Sangha Granthmālā No. 1-II

# KASĀYA-PĀHUDAM

## II

## (PAYADI VIHATTI)

BY

## GUNABHADRĀCHĀRYA

WITH

## CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHĀCHĀRYA

AND

## THE JAYADHAVALĀ COMMENTARY OF VĪRASENĀCHĀRYA THERE-UPON

*EDITED BY*

Pandit Phulachandra Siddhantashastri,
*EX-JOINT EDITOR OF DHAVALA,*

Pandit Kailashachandra, Siddhantashastri,
*NYAYATIRTHA, SIDDHANTARATNA, PRADHANADHYAPAK, SYADVADA DIGAMBARA JAIN VIDYALAYA, BENARES.*

*PUBLISHED BY*

*The Secretary Publication Department,*

THE ALL-INDIA DIGAMBRA JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA,

VIRA-SAMVAT 2474] VIKRAMA S. 2005 [1948 A.C.

# SRI DIG. JAIN SANGHA GRANTHAMĀLĀ

Foundation year—] [—Vira Niravana Samvat 2468

*Aim of the Series:—*

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana, Sahitya, and other Works in Prakrta, Samskrta etc. Possibly with Hindi Commentary and Translation.

*DIRECTOR :—*

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1 VOL. II.

*To be had from :—*

THE MANAGER,
SRI DIG. JAIN SANGHA.
CHAURASI MATHURA,
U. P. (India)

*Printed by*—RAMA KRISHNA DAS,
AT THE HINDU UNIVERSITY PRESS, BENARES.

1000 Copies,

Price Rs. ~~Eleven~~ only.

## भा० दि० जैन संघ के साहित्य विभाग के सदस्यों की नामावली

### संरक्षक सदस्य

८१२५) साहू शान्ति प्रसादजी डालमिया नगर

### सहायक सदस्य

१००१) लाला श्याम लाल जी रईस फर्रुखाबाद

२००१) सेठ नानचन्द जी हीराचन्द जी गांधी, उस्मानाबाद

१००१) सेठ घनश्यामदास जी सरावगी, कालगढ़

[ धर्मपत्नी रा० ब० सेठ चुन्नीलाल जी के सुपुत्र स्व० निहालचन्द जी की स्मृतिमें ]

१००१) रा० ब० सेठ रतनलाल जी चांदमल जी, रांची

१०००) सकल दि० जैन पंचान, नागपुर

१०००) सकल दि० जैन पंचान, गया

१००१) राय साहब लाला उल्फतराय जी, देहली

१००१) लाला महावीर प्रसाद जी (फर्म महावीर प्रसाद एण्ड सन्स ) देहली

१००१) लाला जुगल किशोर जी ( फर्म धूमीमल धर्मदास ) देहली

१००१) लाला रघुवीर सिंह जी ( जैन वाच कम्पनी ) देहली

१०००) स्व० श्रीमती मनोहरीदेवी मातेश्वरी ला० वसन्त लाल फिरोजी लाल जी, जैन देहली

## प्रकाशककी ओरसे

आज चार वर्षके पश्चात् कसायपाहुड (जयधवला) का यह दूसरा भाग (पयडि विहत्ति) प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष भी हो रहा है और संकोच भी। पहला भाग प्रकाशित होते ही दूसरा भाग प्रेसमें छपनेको दे दिया गया था। किन्तु प्रेसमें एक नये मैनेजरके आजानेसे दो वर्ष तक कुछ भी काम नहीं हो सका। उनके चले जानेके बाद जब वर्तमान मैनेजरने कार्यभार सम्हाला तब कहीं दो वर्षमें यह ग्रन्थ छप कर तैयार हो सका।

इस बीचमें जयधवला कार्यालयमें भी बहुत सा परिवर्तन होगया। हमारे एक सहयोगी विद्वान न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमार जी के सहयोगसे तो हम पहले ही वंचित होचुके थे। बादको सिद्धान्त शास्त्री पं० फूलचन्द जीका सहयोग भी हमें नहीं मिल सका। फिर भी यह प्रसन्नताकी बात है कि इस भागका पूर्ण अनुवाद और विशेषार्थ उन्हींके लिखे हुए हैं और प्रारम्भके लगभग एक तिहाई फार्मोंका प्रूफ भी उन्होंने देखा है। मैंने तो केवल उनके साथ इस भागका आद्योपान्त वाचन किया है। और प्रूफ शोधन परिशिष्ट निर्माण तथा प्रस्तावना लेखनका कार्य किया है।

हमारे पास इस ग्रन्थराजके कई भाग तैयार होकर रखे हुए हैं, किन्तु उत्तम टिकाऊ कागजके दुष्प्राप्य होने तथा प्रेसकी अत्यन्त कठिनाईके कारण हम उन्हें जल्द प्रकाशित करनेमें असमर्थ हो रहे हैं, फिर भी प्रयत्न चालू है।

इस भागका सशोधन कार्य, अनुवाद वगैरह पहले भागके सम्पादकीय वक्तव्यमें बतलाये गये ढग पर ही किया गया है, टाईप भी पूर्ववत् हैं, अतः उनके सम्बन्धमें फिरसे कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्हें सब बातें जानना हो उन्हें पहले भागको देखना चाहिये।

इस भागके पृ० २९३ आदिमें जो भंगविचयानुगमका वर्णन करते हुए करण सूत्रोंके द्वारा भंग निकालनेकी विधि बतलाई है, उसको स्पष्ट करनेमें लखनऊ विश्वविद्यालयके गणितके प्रधान-प्रोफेसर डा० अवधेशनारायण सिंह ने विशेष सहायता प्रदान की है, अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

काशीमें गङ्गा तट पर स्थित स्व० बा० छेदीलाल जीके जिन मन्दिरके नीचेके भागमें जयधवला कार्यालय स्थित है, और यह सब स्व० बाबू सा० के सुपुत्र धर्मप्रेमी बाबू गणेसदास जी के सौजन्य और धर्म प्रेमका परिचायक है। अतः मैं बाबू सा० का हृदयसे आभारी हूँ।

स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके अकलक सरस्वती भवनको पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीने अपनी धर्ममाता स्व० चिरोंजा बाईकी स्मृतिमें एक निधि अर्पित की है जिसके ब्याजसे प्रतिवर्ष विविध विषयोंके ग्रन्थोंका सकलन होता रहता है। विद्यालयके व्यवस्थापकोंके सौजन्यसे उस ग्रन्थसग्रहका उपयोग जयधवलाके सम्पादन कार्यमें किया जा सका है। अतः पूज्य क्षुल्लक जी तथा विद्यालयके व्यवस्थापकोंका मैं आभारी हूँ।

सहारनपुरके स्व० लाला जम्बूप्रसाद जीके सुपुत्र रायसाहब ला० प्रद्युम्नकुमारजीने अपने जिन-मन्दिरजीकी श्री जयधवलाजीकी उस प्रति से मिलान करने देनेकी उदारता दिखलाई है जो उत्तर भारतकी आद्य प्रति है। अतः मैं लाला सा० का आभारी हूँ। जैन सिद्धान्त भवन आराके पुस्तकाध्यक्ष पं० नेमिचन्द जी ज्योतिषाचार्यके सौहार्दसे भवनसे सिद्धान्त ग्रन्थोंकी प्रतियाँ तथा अन्य आवश्यक पुस्तकें प्राप्त होती रहती हैं। अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस के मैनेजर बा० रामकृष्ण दासको तथा उनके कर्मचारियोंको भी मैं धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिनके प्रयत्नसे ही यह ग्रन्थ अपने पूर्व रूपमेंही छपकर प्रकाशित हो सका है।

जयधवला कार्यालय<br>
भदैनी, काशी<br>
श्रावण कृष्णा १<br>
वी० नि० सं० २४७४

कैलाशचन्द्र शास्त्री<br>
मंत्री साहित्य विभाग

प्रस्तावना

# INTRODUCTION.

Kasaya Pahuda deals with the Mohaniya Karman (Attachment in general) and its sub-divisions in their latent (satva) condition with especial reference to Anuyoga-dvaras, e.i. Existence (Sat), number, place, time, difference etc. Therefore the term Mūla Prakṛti (Main natural division of-Karman action) and Uttara Prakṛti (Subdivision of Karman) denote *here Mohaniya* and its subdivision respectively. This volume 'Payadi-Vihatti' describes the distribution of the Mohaniya in all possible details further deviding the same into the MūlaPrakṛti-Vibhakti (distribution of the Mohaniya) and the Uttara- Prakṛti-Vibhakti (distribution of the subdivision of the Mohaniya).

The Acarya goes deeper in his treatment of The Uttara-Prakrti-Vibhkti by creating two divisions namely Ekaika-Uttara-Prakrti-Vibhakti and Prakṛti-Sthana-Uttara-Prakrti-Vibhakti The former describes individually every subdivision of the Mohaniya keeping all aspects in veiw and the later brings out clearly the distribution of the sub-divisions of the Mohaniya in fifteen main places while in existence alone Thus the study of this volume is enough to enable one to procure the full psychological knowlege of the 'king of Karmans e.i. the Mohaniya.

The introduction of the previous volume (I) of the same will furnish with detailed information as regards the Text, Ćūrni-Vṛtti, Jaya-dhavala-commentary there upon, the life of the author and the commentators and other things referred to here.

# प्रस्तावना

इस संस्करणमें मुद्रित कसायपाहुड और उसकी चूर्णिसूत्र रूप वृत्ति तथा उन दोनोंकी टीका जयधवलाके सम्बन्धमें तथा उनके रचयिताओंके सम्बन्धमें प्रथम भागकी प्रस्तावनामें विस्तारसे विचार किया गया है। अतः यहां केवल इस भागके विषयका और उसमें आई हुई कुछ उल्लेखनीय बातोंका परिचय दिया जाता है। सबसे प्रथम उल्लेखनीय बातोका परिचय कराया जाता है।

## १ मतभेदोंका खुलासा

१. इस भागके प्रारम्भमें ही कसायपाहुडकी बाईसवीं गाथा आती है। प्रथम भागकी प्रस्तावना (पृ० १७ आदि) मे यह बतलाया है कि चूर्णिसूत्रकारने जो अधिकार निर्धारित किये हैं वे कसायपाहुडमें निर्दिष्ट अधिकारोंसे कुछ भिन्न हैं। सो इस बाईसवीं गाथाका व्याख्यान करते हुए श्री वीरसेन स्वामीने गुणधराचार्यके अभिप्रायानुसार अधिकार बतलाये हैं। और आगे (पृ० १७) में आचार्य यतिवृषभने उक्त गाथाका व्याख्यान चूर्णिसूत्रोंके द्वारा करते हुए अपने माने हुए अर्थाधिकारोंको दिखलाया है। इसीसे बाईसवीं गाथा इस भागमें दो बार आई है। यतिवृषभाचार्यने उस गाथासे ६ अर्थाधिकार सूचित किये हैं जब कि गुणधराचार्यके अभिप्रायानुसार उससे दो ही अर्थाधिकार सूचित होते हैं; क्योंकि गुणधराचार्यने प्रकृति विभक्ति, स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्तिको मिलाकर एक अर्थाधिकार लिया है और प्रदेशविभक्ति क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिकको मिलाकर दूसरा अधिकार लिया है। जब कि आचार्य यतिवृषभने इन छहोंको अलग-अलग अधिकार माना है। इसीसे श्री वीरसेन स्वामीने लिखा है कि अपने माने हुए अधिकारोंके अनुसार चूर्णिसूत्रोंका कथन करने पर भी आचार्य यतिवृषभ गुणधराचार्यके प्रतिकूल नहीं हैं; क्योंकि उन्होने दो अधिकारोंको ही ६ अधिकारोंमें विस्तृत कर दिया है। अतः उन्होंने उन्हीं विषयोंका कथन किया है जिनका समावेश उक्त दो अधिकारोंमे गुणधराचार्यने किया था

२. जैसे गुणधराचार्य और यतिवृषभाचार्यके अभिप्रायानुसार कसायपाहुडके अधिकारोंमें भेद है, वैसे ही यतिवृषभाचार्य और उच्चारणाचार्यमें भी अवान्तर अधिकारोंको लेकर भेद है। उच्चारणाचार्यने मूल प्रकृतिविभक्तिके सत्रह अधिकार कहे हैं जब कि यतिवृषभाचार्यने आठ ही अधिकार कहे हैं। इसीतरह उच्चारणाचार्यने एकैक उत्तर प्रकृतिविभक्तिके २४ अधिकार बतलाये हैं जब कि यतिवृषभाचार्यने ११ ही अधिकार बतलाये हैं। किन्तु इसमें भी परस्परमें प्रतिकूलता नहीं है, क्योंकि आचार्य यतिवृषभने संक्षेपसे कथन किया है जबकि उच्चारणाचार्यने विस्तारसे कथन किया है। अतः आचार्य यतिवृषभने अनेक अनुयोग द्वारोंका एकमें ही सग्रह कर लिया है और उच्चारणाचार्यने उन्हे अलग-अलग कहा है।

## २ चूर्णिसूत्रोंकी प्राचीनता

पृ० २१० पर एक चूर्णिसूत्र आया है—'एक्किस्से विहत्तिओ को होदि?' अर्थात् एक प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है? जय धवलामें इस पर प्रश्न किया है कि यह सूत्र क्यों कहा गया? तो उत्तर दिया है कि शास्त्रकी प्रामाणिकता बतलानेके लिये। फिर प्रश्न किया है कि ऐसा पूछनेसे प्रामाणिकता कैसे सिद्ध होती है? तो वीरसेन स्वामीने उसका यह उत्तर दिया है कि यह भगवान् महावीरसे गौतमस्वामीने प्रश्न किया था। उसका यहा निर्देश करनेसे चूर्णिसूत्रोंकी प्रामाणिकताका ज्ञान होता है तथा इससे आचार्य यतिवृषभने यह भी सूचित किया है कि यह उनकी अपनी उपज नहीं है किन्तु गौतम स्वामीने भगवान् महावीरसे जो प्रश्न किये थे और उन्हें उनका जो उत्तर प्राप्त हुआ था उसे ही उन्होंने निबद्ध किया है।

इससे प्रतीत होता है कि चूर्णिसूत्रोंका आधार अति प्राचीन है और भगवान् महावीरकी वाणीसे उनका निकट सम्बन्ध है।

## ३ 'मनुष्य' शब्दसे किसका ग्रहण ?

पृ० २११ पर चूर्णिसूत्रमें कहा है कि नियमसे क्षपक मनुष्य और मनुष्यिणी ही एक प्रकृतिक-स्थानका स्वामी होता है। श्री वीरसेन स्वामीने इसका अर्थ करते हुए कहा है कि 'मनुष्य' शब्दसे पुरुषवेद और नपुंसकवेदसे विशिष्ट मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये। यदि ऐसा अर्थ नहीं किया जायेगा तो नपुंसकवेद वाले मनुष्योंमें एक विभक्तिका अभाव हो जायेगा। इससे स्पष्ट है कि आगम ग्रन्थोंमें मनुष्य शब्दका उक्त अर्थ ही लिया गया है। यही वजह है जो गोम्मटसार जीवकाण्डमें गति मार्गणामें नपुंसकवेदी मनुष्योंकी संख्या अलगसे नहीं बताई है और न मनुष्यके भेदोंमें अलगसे उसका ग्रहण किया है। इससे भाववेदकी विवक्षा भी स्पष्ट हो जाती है।

## ४ कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मरता है या नहीं ?

पृ० २१५ पर चूर्णिसूत्रका विवेचन करते हुए यह शङ्का उठाई गई है कि कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टिके भी बाईस प्रकृतिकस्थान पाया जाता है और वह मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। अतः 'मनुष्य और मनुष्यनी ही बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी होते हैं' यह वचन घटित नहीं होता। इसका समाधान करते हुए वीरसेन स्वामीने लिखा है कि यतिवृषभाचार्यके दो उपदेश इस विषयमें हैं। अर्थात् उनके मतसे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरता भी है और नहीं भी मरता। यहां पर जो चूर्णिसूत्रमें मनुष्य और मनुष्यनीको ही बाईस प्रकृतिकस्थानका स्वामी बतलाया है सो दूसरे उपदेशके अनुसार बतलाया है। किन्तु उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिका मरण नहीं होता ऐसा नियम नहीं है। अतः उन्होंने चारों गतियोंमें बाईस प्रकृतिकस्थानका सत्त्व स्वीकार किया है।

## ५. उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना होती है या नहीं ?

पृ० ४१७ पर यह शंका की गई है कि 'जो उपशम सम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है उसके अल्पतर विभक्ति स्थान पाया जाता है। अतः उपशमसम्यग्दृष्टिके अल्पतर विभक्तिस्थानका काल भी बतलाना चाहिये'। इसका यह उत्तर दिया गया कि उपशम सम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती। इस पर पुनः यह प्रश्न किया गया कि 'इसमें क्या प्रमाण है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती'। तो उत्तर दिया गया कि 'चूंकि उच्चारणाचार्यने उपशमसम्यग्दृष्टिके एक अवस्थित पद ही बतलाया है, अल्पतर पद नहीं बतलाया। इसीसे सिद्ध है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती'। इसपर फिर शंका की गई कि 'उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना माननेवाले आचार्यके वचनके साथ उक्त कथनका विरोध आता है अतः इसे अप्रमाण क्यों न मान लिया जाय'? उत्तर दिया गया कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका कथन करने वाला वचन सूत्र वचन नहीं है, किन्तु व्याख्यान वचन है, सूत्रसे व्याख्यान काटा जा सकता है परन्तु व्याख्यानसे व्याख्यान नहीं काटा जा सकता। अतः उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न माननेवाला मत अप्रमाण नहीं है। फिर भी यहाँ दोनों ही मतोंको मान्य करना चाहिये, क्योंकि ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके आधार पर एक मतको प्रमाण और दूसरेको अप्रमाण ठहराया जा सके।

इस शंका समाधानके बाद वीरसेन स्वामीने लिखा है कि 'यहां पर यही पक्ष प्रधान रूपसे लेना चाहिये कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है क्योंकि परंपरासे यही उपदेश चला आता है।' ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्य यतिवृषभका यही मत है क्योंकि उन्होंने जो २४ प्रकृतिक विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है वह उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना माने विना नहीं बनता। अतः इस विषयमें भी आचार्य यतिवृषभ और उच्चारणाचार्यमें मतभेद है।

# विषयपरिचय

इस भागमें प्रकृतिविभक्तिका वर्णन है।

प्रारम्भमें ही आचार्य यतिवृषभने विभक्ति शब्दका निक्षेप करके उसके अनेक अर्थोंको बतलाया है। फिर लिखा[1] है कि यहां पर इन अनेक प्रकारकी विभक्तियोंमेंसे द्रव्यविभक्तिके कर्मविभक्ति और नोकर्मविभक्ति इन दो अवान्तर भेदोंमें से कर्मविभक्ति नामकी द्रव्यविभक्तिसे प्रयोजन है। कषाय प्राभृतमें उसीका वर्णन है।

इसके बाद कषायप्राभृतकी बाईसवी गाथाका व्याख्यान करते हुए आचार्य यतिवृषभने उससे ६ अधिकारोंका ग्रहण किया है और उनमेंसे सबसे प्रथम प्रकृतिविभक्ति नामक अर्थाधिकारका कथन करनेकी प्रतिज्ञा की है।

प्रकृतिविभक्तिके दो भेद किये हैं—मूल प्रकृतिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिविभक्ति। इस ग्रन्थमें केवल मोहनीय कर्म और उसकी उत्तर प्रकृतियोंका ही वर्णन है। अतः यहां मूल प्रकृतिसे मोहनीयकर्म और उत्तरप्रकृतिसे मोहनीयकर्मकी उत्तर प्रकृतिया ही ली गई हैं।

## मूलप्रकृतिविभक्ति

मूल प्रकृतिविभक्तिका वर्णन करनेके लिये आचार्य यतिवृषभने आठ अनुयोगद्वार रक्खे हैं—स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्प बहुत्व। किन्तु उच्चारणाचार्यने सतरह अनुयोगद्वारोंके द्वारा मूल प्रकृतिविभक्तिका वर्णन किया है। चूंकि चूर्णिसूत्र संक्षिप्त हैं और चूर्णिसूत्रकारने केवल अत्यन्त आवश्यक अनुयोगोंका ही सामान्य वर्णन किया है, अतः जयधवलाकारने सर्वत्र अनुयोगद्वारोंका वर्णन उच्चारणावृत्तिके अनुसार ही किया है। सतरह अनुयोगद्वारोंका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

**समुत्कीर्तना**—इसका अर्थ होता है-कथन करना। इसमें गुणस्थान और मार्गणाओंमें मोहनीयकर्मका अस्तित्व और नास्तित्व बतलाया गया है। ग्यारहवें गुणस्थान तक सभी जीवोंके मोहनीयकर्मकी सत्ता पाई जाती है और बारहवें गुणस्थानसे लेकर सभी जीव उससे रहित हैं। अतः जिन मार्गणाओंमें क्षीण कषाय आदि गुणस्थान नहीं होते, उनमें मोहनीयका अस्तित्व ही बतलाया है। और जिन मार्गणाओंमें दोनों अवस्थाएं संभव हैं उनमें अस्तित्व और नास्तित्व दोनो बतलाए हैं।

**सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव**—इसमें बतलाया है कि मोहनीयविभक्ति किसके सादि है, किसके अनादि है, किसके ध्रुव है, और किसके अध्रुव है?

**स्वामित्व**—इसमें मोहनीयकर्मके स्वामीका निर्देश किया है। जिसके मोहनीयकर्मकी सत्ता वर्तमान है वह उसका स्वामी है। और जो मोहनीयकर्मकी सत्ताको नष्ट कर चुका है वह उसका स्वामी नहीं है।

**काल**—इसमें बतलाया गया है कि जीवके मोहनीयकर्मकी सत्ता कितने काल तक रहती है और असत्ता कितने काल तक रहती है? किसीके मोहनीयकी सत्ता अनादिसे लेकर अनन्तकाल तक रहती है और किसीके अनादि सान्त होती है।

**अन्तर**—इसमें यह बतलाया गया है कि मोहनीयकर्मकी सत्ता एक बार नष्ट होकर पुनः कितने समयके बाद प्राप्त हो जाती है। किन्तु चूंकि मोहनीयका एक बार क्षय हो जानेके बाद पुनः बन्ध नहीं होता अतः मोहनीयका अन्तरकाल नहीं होता।

---

(१) पृ० १६।

**भंगविचयानुगम**—इसमें नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके अस्तित्व और नास्तित्वको लेकर भंगोंका विचार किया गया है।

**भागाभागानुगम**—इसमें यह बतलाया है कि सब जीवोंके कितने भाग जीव मोहनीयकर्मकी सत्ता-वाले हैं और कितने भाग जीव असत्ता वाले हैं।

**परिमाण**—इसमें मोहनीयकर्मकी सत्तावाले और असत्तावालोंका परिमाण बतलाया गया है।

**क्षेत्र**—इसमें मोहनीयकर्मकी सत्तावाले और असत्तावाले जीवोंका क्षेत्र बतलाया गया है कि वे कितने क्षेत्रमें रहते हैं।

**स्पर्शन**—इसमें उनका त्रिकाल विषयक क्षेत्र बतलाया गया है।

**काल**—इसमें नानाजीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके कालका कथन किया है। अर्थात् यह बतलाया है कि मोहनीयकर्मकी सत्तावाले और असत्तावाले जीव कब तक रहते हैं। चूंकि संसारमें दोनों ही प्रकारके जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः उनका काल सर्वदा बतलाया है। पहला कालका वर्णन एक जीव की अपेक्षासे है और यह नाना जीवोंकी अपेक्षासे है।

**अन्तर**—यह अन्तर भी नानाजीवोंकी अपेक्षासे है। चूंकि मोहनीयकर्मकी सत्ता और असत्तावाले जीव सदा पाये जाते हैं अतः सामान्यसे उनमें अन्तर नहीं है।

**भाव**—इसमें यह बतलाया है कि मोहनीयकर्मकी सत्तावालोंके पांच भावोंमें से कौन-कौन भाव होते हैं और असत्तावालोंके कौन भाव होता है। सत्तावालेके पारिणामिकके सिवा चार भाव होते हैं और असत्तावालेके केवल एक क्षायिक भाव ही होता है।

**अल्पबहुत्व**—इसमें मोहनीयकर्मकी सत्ता और असत्तावालोंमें कमती बढ़तीपन बतलाया गया है कि कौन थोड़े हैं कौन बहुत हैं?

यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि उक्त सभी अनुयोगद्वारोंमें गुणस्थान और मार्गणाओंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है। तथा वह मोहनीय कर्मकी सत्ता और असत्ता को लेकर ही किया गया है। न तो मोहनीयके सिवा दूसरे किसी कर्मका इसमें वर्णन है और न सत्ता-असत्ताके सिवा किसी दूसरी अवस्था का ही वर्णन है।

इस वर्णनके साथ मूल प्रकृति विभक्तिका वर्णन समाप्त हो जाता है जो ५९ पेजोंमें हैं।

## उत्तरप्रकृतिविभक्ति

उत्तर प्रकृतिविभक्तिके दो भेद हैं–एकैक उत्तर प्रकृतिविभक्ति और प्रकृतिस्थान उत्तर प्रकृति विभक्ति। एकैक उत्तर प्रकृतिविभक्तिमें मोहनीय कर्मकी अठाईस प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् निरूपण किया गया है। और प्रकृतिस्थान उत्तर प्रकृतिविभक्तिमें मोहनीय कर्मके अट्ठाईस प्रकृतिक, सत्ताईसप्रकृतिक, छब्बीसप्रकृतिक आदि १५ प्रकृतिक स्थानोंका कथन किया गया है।

एकैक उत्तर प्रकृतिकविभक्तिका कथन चौबीस अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षासे किया गया है। इनमें १७ अनुयोगद्वार तो मूल प्रकृतिविभक्तिवाले ही है। शेष हैं–सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति और सन्निकर्ष। मोहनीयकी समस्त प्रकृतियोंको सर्वविभक्ति और उससे कमको नोसर्वविभक्ति कहते हैं। गुणस्थान और मार्गणाओंमें कहां मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका सत्त्व है और कहां उनसे कम प्रकृतियोंका सत्त्व है इसका निरूपण इन दोनो अनुयोगद्वारोंमें किया गया है। सबसे उत्कृष्ट प्रकृतियोंको उत्कृष्टविभक्ति और उनसे कम को अनुत्कृष्ट विभक्ति कहते हैं। मोटे तौर पर सब

विभक्ति और नोसर्वविभक्तिमें तथा उत्कृष्ट विभक्ति और अनुत्कृष्ट विभक्तिमें कोई भेद प्रतीत नहीं होता, तथापि यथार्थमें दोनोंमें अन्तर है। सर्वविभक्तिमें तो पृथक् पृथक् सब प्रकृतियोंका कथन किया जाता है और उत्कृष्टविभक्तिमें समस्त प्रकृतियोंका सामूहिक रूपसे कथन किया जाता है। इसी तरह नोसर्वविभक्ति और अनुत्कृष्ट विभक्तिमें भी जानना चाहिये।

मोहनीयकी सबसे कम प्रकृतियोंका सत्त्व जघन्य विभक्ति है और उससे अधिकका सत्त्व अजघन्य-विभक्ति है।

एक प्रकृतिके अस्तित्वमें अन्य प्रकृतियोंके अस्तित्व और नास्तित्वका विचार सन्निकर्ष अनुयोग द्वारमें किया जाता है। जैसे, जो जीव मिथ्यात्वकी सत्तावाला है उसके सम्यक्त्व, सम्यक्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार कषायोंकी सत्ता होती भी है और नहीं भी होती। किन्तु शेष बारह कषाय और नव नोकषायोंकी सत्ता अवश्य होती है। जिसके सम्यक्त्व प्रकृतिकी सत्ता है उसके मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी ४ की सत्ता होती भी है और नहीं भी होती, किन्तु मोहनीयकी शेष प्रकृतियोंकी सत्ता अवश्य होती है। इसी तरह शेष प्रकृतियोंके बारेमें विचार इस अनुयोगद्वारमे किया गया है। शेष सतरह अनुयोगद्वारोंमें जिन बातोंका कथन किया है उसका निर्देश पहले किया ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि मूलप्रकृति विभक्तिमें मूल प्रकृति मोहनीय कर्मको लेकर विचार किया गया है और उत्तरप्रकृति विभक्तिमें मोहनीय कर्मकी २८ उत्तर प्रकृतियोंको लेकर विचार किया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि आचार्य यतिवृषभने अपने चूर्णिसूत्रोंमे उत्तरप्रकृतिविभक्तिमें अनुयोगद्वारोंका निर्देश तो किया है किन्तु उनका कथन नहीं किया। श्री वीरसेन स्वामीने उसके सब अनुयोग द्वारोंका निरूपण उच्चारणावृत्तिके आधारसे ही किया है।

प्रकृतिस्थानविभक्तिका वर्णन करते हुए आचार्य यतिवृषभने सबसे प्रथम मोहनीयके स्थानोंको गिनाया है। फिर प्रत्येक स्थानकी प्रकृतियोंको बतलाया है।

मोहनीयके सत्त्वस्थान १५ होते हैं-२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, और १ प्रकृतिक। पहले सत्त्वस्थानमें मोहनीयकी सब प्रकृतियां होती हैं। दूसरेमें सम्यक्त्व प्रकृति नहीं होती। तीसरेमें सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतियां नहीं होतीं। चौथेमें अनन्तानुबन्धी ४ कषाय नहीं होतीं। पांचवेंमें चौबीसमेंसे मिथ्यात्व भी चला जाता है। छठेमें तेईसमेंसे सम्यक्मिथ्यात्व भी चला जाता है। सातवेंमें बाईसमेंसे सम्यक्त्व प्रकृति भी चली जाती है। आठवेंमें इक्कीसमेंसे आठ कषायें चली जाती हैं। नौवेंमें १३ मेंसे नपुंसक वेद भी चला जाता है। दसवेंमें १२ मेंसे स्त्रीवेद भी चला जाता है। ग्यारहवेंमें छ नोकषाय भी चला जाती है। बारहवेंमें पुरुष वेद भी चला जाता है और केवल ४ सज्वलन कषाय रह जाती हैं। तेरहवेंमें सज्वलन क्रोध चला जाता है। चौदहवेंमें सज्वलन मान चला जाता है। और पन्द्रहवेंमें सज्वलन मायाके चले जानेसे केवल एक सज्वलन लोभ शेष रह जाता है। इन पन्द्रह स्थानोंका वर्णन गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें सतरह अनुयोगोंके द्वारा किया गया है। इनमेंसे आचार्य यतिवृषभने स्वामित्व, काल, अन्तर, भंगविचय, और अल्पबहुत्वका कथन ओघसे किया है। शेष कथन उच्चारणाचार्य की वृत्तिके अनुसार ही किया गया है।

## भुजकारविभक्ति

मोहनीयके उक्त सत्त्वस्थानोंका निरूपण करनेके लिये तीन विभाग और भी किये गये हैं। वे हैं-भुजकार, पदनिक्षेप और वृद्धि। भुजकार विभक्तिमें बतलाया गया है कि उक्त सत्त्वस्थान सर्वथा स्थायी नहीं हैं, अधिक प्रकृतियोंके सत्त्वसे कम प्रकृतियोंका सत्त्व हो सकता है और कम प्रकृतियोंके सत्त्वसे अधिक प्रकृतियोंका भी सत्त्व हो सकता है तथा ज्योंका त्यों भी रह सकता है। इस भुजकार विभक्तिका निरूपण भी

इसतरह अनुयोगोंके द्वारा किया गया है, जिनमेंसे काल अनुयोगका सामान्यसे कथन यतिवृषभ आचार्यने स्वयं किया है और शेष अनुयोगद्वारोंका कथन उच्चारणा वृत्तिके आधारसे किया गया है।

## पदनिक्षेप

पहले मोहनीयके २८, २७ आदि विभक्तिस्थान बतलाये हैं। उनमेंसे अमुक स्थानसे अमुक स्थान की प्राप्ति होने पर वह हानिरूप है या वृद्धिरूप है, इत्यादि बातोंका विचार पद निक्षेप नामके विभागमें किया है। जैसे एक जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला है। उसने सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त किया तो यह जघन्य हानि कही जायेगी। तथा एक जीव इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता वाला है। उसने क्षपकश्रेणी पर चढ़ कर आठ कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक सत्त्व स्थानको प्राप्त किया तो यह उत्कृष्ट हानि कही जायेगी। इसी तरह मोहनीयकी सत्ता वाले किसी जीवने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त किया तो यह जघन्य वृद्धि कहलायेगी। और चौबीस विभक्ति स्थानवाले किसी जीवने मिथ्यात्वमें जाकर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की तो यह उत्कृष्ट वृद्धि कहलायेगी। इत्यादि बातोंका विचार इस अधिकारमें किया गया है।

इस अधिकारके प्रारम्भमें केवल एक चूर्णिसूत्र लिखकर आचार्य यतिवृषभने प्रकृति विभक्तिको समाप्त कर दिया है। हां, उच्चारणाचार्यने समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इस तीन अनुयोगद्वारोंसे पदनिक्षेपका वर्णन किया है। उसीको लेकर स्वामी वीरसेनने कथन किया है।

## वृद्धिविभक्ति

मोहनीयके उक्त सत्त्व स्थानोंमेंसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको प्राप्त होते समय जो हानि, वृद्धि या अवस्थान होता है वह उसके संख्यातवें भाग है या संख्यातगुणा है इत्यादि विचार वृद्धिविभक्तिमें किया है। इस अधिकारका कथन तेरह अनुयोगद्वारोंसे किया गया है। वृद्धिविभक्तिके पूर्ण होनेके साथही प्रकृति विभक्ति समाप्त होजाती है

## अनुयोगोंकी उपयोगिता

तत्त्वार्थ सूत्रके पहले अध्यायमें वस्तुतत्त्वको जाननेके उपाय बतलाते हुए कहा है कि यों तो प्रमाण और नयसे वस्तुतत्त्वका ज्ञान होता है, किन्तु उसमें सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व भी उपयोगी हैं, इनके द्वारा वस्तुका पूरा साङ्गोपाङ्ग ज्ञान हो जाता है। जैसे, यदि हमें मोटरें खरीदना है तो उनके बारेमें हम निम्न बातें जानना चाहेंगे—आजकल बाजारमें मोटर हैं या नहीं? कितनीं हैं? कहां कहां हैं? हमेशा कहांसे मिल सकती हैं? कब तक मिल सकती हैं? यदि बिक चुकें तो फिर कितने दिन बाद मिल सकेंगी? किस किस रूप रंगकी हैं? किस किस्मकी ज्यादा हैं और किस किस्मकी कम? इन बातोंसे हमें मोटरोंके विषयमें जैसे पूरी जानकारी हो जाती है वैसे ही जैनसिद्धान्तमें जीव आदि तत्त्वोंकी जानकारी भी उक्त अनुयोगद्वारोंसे कराई गई है। चूंकि प्रकृत कषायप्राभृत ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय मोहनीय कर्मका सत्त्व है अतः इसमें उसका कथन विविध अनुयोगोंके द्वारा किया गया है। उनसे उसका सङ्गोपाङ्ग परिज्ञान हो जाता है और कोई भी बात छूट नहीं जाती।

किन्तु आजके समयमें यह प्रश्न होता है कि एक मोहनीय कर्मके इतने सांगोपाङ्ग ज्ञानकी क्या आवश्यकता है? मनुष्य जीवनमें उसका उपयोग क्या है?

जैन सिद्धान्तका नाम जानने वाले भी इतना तो जानते ही हैं कि जैन धर्म आत्मधर्म है। वह प्रत्येक आत्माके अभ्युत्थानका मार्ग बतलाता है। और आत्माके अभ्युत्थानका सबसे बड़ा बाधक मोहनीय कर्म है। अतः उस कर्मकी कौन कौन प्रकृति कब कहांपर कैसी हालतमें रहती है, आदि बातोंको जानना आवश्यक है।

किन्तु यह स्पष्ट है कि आत्माके अभ्युत्थानके लिये इतना सांगोपांग ज्ञान होना ही आवश्यक नहीं है परन्तु चित्तका एकाग्र होना आवश्यक है। और चित्तकी एकाग्रताके लिये करणानुयोगके ग्रन्थोंकी स्वाध्याय जितनी उपयोगी है उतनी अन्यग्रन्थोंकी नहीं, क्योंकि करणानुयोगका चिन्तन करते करते यदि मन अभ्यस्त हो जाता है तो उसमें कितना ही समय लगाने पर भी मन उचटता नहीं है और दुनियाबी वासनाओंमे जानेसे रुक जाता है। इसीसे विपाक विचय और संस्थान विचयको धर्मध्यानका अंग बतलाया है। अतः ज्ञानकी विशुद्धि, मनकी एकाग्रता और सद्विचारोंमें काल क्षेप करनेके लिये ऐसे ग्रन्थोंकी स्वाध्यायमें मन लगाना चाहिये।

हर्षका बात है कि उत्तर भारतके सहारनपुर खतौली आदि नगरोंमें आज भी ऐसे स्वाध्याय प्रेमी सद्गृहस्थ हैं, जो ऐसे ग्रन्थोंकी स्वाध्यायमें अपना काल क्षेप करते हैं। उनमें सहारनपुरके बा० नेमिचन्द्र जी वकील व बा० रतनचन्द जी मुख्तार, मुजफ्फर नगरके बा० मित्रसेन जी, खतौलीके लाला नानकचन्द्रजी तथा सलावाके लाला हुकुमचन्द्रजीका नाम उल्लेखनीय है। बा० मित्रसेनजीने जयधवलाके प्रथम भागकी स्वाध्याय करनेके बाद कुछ शंकायें जयधवला कार्यालयसे पूछी थीं जिनका समाधान उनके पास भेज दिया गया था। ला० नानकचन्दजीने तो स्वाध्याय करते समय मूलसे अनुवादका मिलान तो किया ही, साथ ही साथ खतौलीके श्रीजिन मन्दिरजीकी जयधवलाकी लिखित प्रतिसे भी मूलका मिलान करके हमारे पास पाठान्तरोंकी एक लम्बी तालिका भेजी। किन्तु उसमें कोई ऐसा पाठान्तर नहीं मिला जो शुद्ध हो और अर्थकी दृष्टिसे महत्त्व रखता हो। अधिकतर पाठान्तर लेखकोंके प्रमादके ही सूचक हैं, इसीसे उन्हें यहां नहीं दिया गया है। फिर भी उन्होंने मूलमें दो स्थानों पर छूटे हुए पाठोंकी ओर हमारा ध्यान दिलाया है उन्हें हम सधन्यवाद यहां देते हैं–

१—पृष्ठ ९८, पं० २ में 'णायर–खेट' आदिसे पहले 'गाम' पाठ और होना चाहिये।

२—पृष्ठ ११०, पं० ४ में 'कित्तण वा' से पहले 'सरूवाणुसरण' पाठ जोड़ लेना चाहिये।

३—पृ० ३९२, पं० ३ में 'णाणजीवेहि' के स्थान में 'णाणाजीवेहि' होना चाहिये।

## शून्योंका खुलासा

जयधवलाके प्रथम भागके अन्तमें अनुयोगद्वारोंके वर्णनमें मूलमें शून्य रखे हुए हैं। लाला नानकचन्द्रजीने इन शून्योंका अभिप्राय पूछा था। इस दूसरे भागमें तो चूंकि अनुयोगद्वारोंका ही वर्णन है, अतः मूलमें शून्योंकी भरमार है। इन शून्योंके रखनेका अभिप्राय यह है बार बार उसी शब्दको पूरा न लिखकर उसके आगे शून्य रख दिया गया है। इससे लिखनेमें लाघव हो जाता है और उसके संकेतसे पाठक छोड़ा गया पाठ भी हृदयंगम कर लेता है। जैसे 'कम्मइय०' से कार्मणकाय योगी लिया गया है, सो पूरा 'कम्मइय-कायजोगि' न लिखकर 'कम्मइय०' लिख दिया गया है। ऐसेही सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

अलमिति विस्तरेण

# शुद्धिपत्र

| पृ० | पं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १७* | ४ | विहत्ती | विहत्ती १ |
| २९ | ९ | योगिमतियो | योनिमतियो |
| ३० | २२ | जघन्य से अन्तर्मुहूर्त | जघन्य से खुद्दाभव ग्रहण, अन्तमुहूर्त, अन्तर्मुहूर्त |
| ४० | १० | उत्कृष्ट काल और | उत्कृष्ट काल |
| ४४ | १६ | कर्मका उत्कृष्ट | कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट |
| ,, | १७ | जघन्यकाल | जघन्य और उत्कृष्ट काल |
| ४६ | २९ | केवलियोंकी | केवलियो और सिद्धोंकी |
| ५९ | ८ | भागेषु | भागेसु |
| ७१ | ३० | लब्ध्यपर्याप्नक | लब्ध्यपर्याप्तक |
| ७२ | ७ | ,, | ,, |

| पृ० | पं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ९६ | ४ | खवयवस्स | खवयस्स |
| १३२ | ५ | णवसय- | णवुसय |
| १४० | ९ | [एवलोभ···· सिया अविह०।] | यह पाठ नहीं चाहिये |
| ,, | २७ | [इसी प्रकारलोभ कषायी······ नही भी है] | यह नही चाहिये |
| १५६ | ९ | जोवोके | जीवोंके |
| २१८ | २८ | स्यान | स्थान |
| २९८ | ४ | बारसदि | बारसादि |
| ,, | १३ | बारह | बारह आदि |
| ३०६ | १ | अकपंतो | अकपती |
| ३११ | २५ | ६७ | ६७२ |
| ३८९ | ८ | उदयट्टिद | उदयट्टिदं |
| ३९२ | १ | पढमादि | पढमादि |
| ,, | २९ | चातिके | जातिके |
| ४१० | ६ | खत्त भगो | खेत्त भंगो |
| ४१६ | २१ | देघ | देव |
| ४२५ | २४ | २८, २९ | २८, २७ |

* पृ० १८७ और १८ मे चूर्णिसूत्रोंके हिन्दी अर्थके आगे १, २, ३, ४, ५ और ६ का अंक छपनेसे रह गया है सो डाल लेना चाहिये।

# विषयसूची

## भुजगार अनियोगद्वारका कथन ३८४-४२४

कसायपाहुडस्स

# पयडिविहत्ती

विदिओ अत्थाहियारो

जेणिह कसायपाहुडमणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं ।
गाहाहि विवरियं तं गुणहरभडारयं वंदे ॥

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

# कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

# जयधवला

तत्थ

## पयडिविहत्ती णाम विदियो अत्थाहियारो
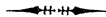
(४) पयदीए मोहणिज्जा विहत्ति तह ट्ठिदीए अणुभागे ।
उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ट्ठिदियं वा ॥२२॥

मोहनीयकर्मकी प्रकृति, स्थिति और अनुभाग विभक्ति तथा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्ति, झीणाझीण और स्थित्यन्तिकका कथन करना चाहिये ॥२२॥

§ १. संपहि एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चदे। तं जहा, मोहणिज्जपयडीए विहत्तिपरूवणा मोहणिज्जट्ठिदीए विहत्तिपरूवणा मोहणिज्जअणुभागे विहत्तिपरूवणा च कायव्वा त्ति एसो गाहाए पढमद्धस्स अत्थो। एदेहि तिहि वि अत्थेहि एक्को चेव अत्थाहियारो। 'उक्कस्समणुक्कस्सं' चेदि उत्ते पदेसविसयउक्कस्साणुक्कस्साणं गहणं कायव्वं; अण्णेसिमसंभवादो। पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग पदेसाणमुक्कस्साणुक्कस्साणं गहणं किण्ण कीरदे ? ण, तेसिं गाहाए पढमत्थे (-द्धे) परूविदत्तादो। एदेण पदेसविहत्ती सूइदा। 'झीणमझीणं' ति उत्ते पदेसविसयं चेव झीणाझीणं घेत्तव्वं; अण्णस्स असंभवादो। एदेण झीणाझीणं सूचिदं। 'ट्ठिदियं' ति वुत्ते जहण्णुक्कस्सट्ठिदिगयपदेसाणं गहणं। एदेण ट्ठिदियंतिओ सूइदो। एदे तिण्णि वि अत्थे घेत्तूण एक्को चेव अत्थाहियारो; पदेसपरूवणादु-

§ १. अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं। वह इसप्रकार है-मोहनीयकी प्रकृतिमें विभक्ति प्ररूपणा, मोहनीयकी स्थितिमें विभक्तिप्ररूपणा और मोहनीयके अनुभागमें विभक्तिप्ररूपणा करना चाहिये। इस प्रकार यह गाथाके पूर्वार्द्धका अर्थ है। इन तीनों अर्थोंकी अपेक्षा एक ही अर्थाधिकार है। गाथामें 'उक्कस्समणुक्कस्स' ऐसा कहा है, उससे प्रदेशविषयक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि, यहां प्रदेशविभक्तिके सिवा दूसरोंका उत्कृष्टानुत्कृष्ट सम्भव नहीं है।

**शंका**–यहाँ पर उत्कृष्टानुत्कृष्ट पदसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारोंके ही उत्कृष्टानुत्कृष्टका ग्रहण क्यों नहीं लिया है ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि प्रकृति, स्थिति और अनुभागका गाथाके पूर्वार्धमें ही कथन कर दिया है, इसलिये उत्कृष्टानुत्कृष्ट पदसे प्रदेशविषयक उत्कृष्टानुत्कृष्टका ही ग्रहण समझना चाहिये।

इस प्रकार गुणधर आचार्यने 'उक्कस्समणुक्कस्स' इस पदके द्वारा मोहनीयकर्मविषयक प्रदेशविभक्तिका सूचन किया है। गाथामें 'झीणमझीण' ऐसा कहनेसे प्रदेशविषयक झीणाझीणका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यहां प्रकृत्यादिविषयक झीणाझीणका ग्रहण संभव नहीं है। इस प्रकार गुणधर आचार्यने 'झीणमझीण' इस पदके द्वारा झीणाझीण अधिकारका सूचन किया है। गाथामें 'ट्ठिदियं' ऐसा कहनेसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिगत प्रदेशोंका ग्रहण किया है। इस पदके द्वारा गुणधर आचार्यने स्थित्यन्तिक अधिकारको सूचित किया है। इन तीनों अर्थोंको लेकर एक ही अर्थाधिकार होता है, क्योंकि, इन तीनोंके द्वारा प्रदेश-

(१) पढमत्थस्स अ०। (२) "एत्थ य तदमाए ट्ठिदीए ट्ठिदपदेसग्गमुक्कड्डणाए ओकड्डणाए च पाओग्गमप्पाओग्गं वा ण होइत्ति विसेसा समुप्पइत्तिआ। तदो तस्स तहाविहसत्तिविरहाविरहलक्खणत्तेण पत्तझीणाझीणववएसस्स ट्ठिदीओ अस्सिदूण परूवणं, सो अहियारो णादिण्णा।"– जयध० प्रे० का० प० ३१२०। (३) "ट्ठिदीओ गच्छइ त्ति ट्ठिदिय पदसग्गं ट्ठिदिपत्तयमिदि उत्तं होदि। तदो उक्कस्सट्ठिदिपत्तयादीणं सरूवविसेसजाणावणट्ठं पदेसविहत्तीए चूलियासरूवेण एसो अहियारो।"— जयध० प्रे० का० प० ३३१५।

**वारेण एयत्तुवलंभादो। एसो गुणहरभडारएण णिदिट्ठत्थो।**

विभक्तिका कथन किया गया है, इसलिये इस अपेक्षासे वे तीनों एक हैं। ऊपर यह जो कुछ कहा गया है वह गुणधरभट्टारक द्वारा बतलाया हुआ अर्थ है।

**विशेषार्थ**—गुणधर भट्टारकने कसायपाहुडकी १८० गाथाएं पन्द्रह अर्थाधिकारोंमें व्यवस्थित की हैं यह तो 'गाहासदे असीदे' इत्यादि दूसरी गाथासे ही जाना जाता है। तथा उन्होंने 'पेज्ज वा दोसं वा' 'पयडीए मोहणिज्जा' और 'कदि पयडीओ बंधदि' ये तीन गाथाएं प्रारम्भके पांच अर्थाधिकारोंमें मानी हैं यह कसायपाहुडकी 'पेज्जदोसविहत्ती' इत्यादि तीसरी गाथासे जाना जाता है। पर इस तीसरी गाथाके अनुसार वीरसेनस्वामी जो पांच अधिकारोंका विभाग कर आये हैं उससे इस पूर्वोक्त उल्लेखमें फरक पड़ता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि वीरसेनस्वामीने तीसरी गाथाके पूर्वार्धकी व्याख्या करते हुए जो तीन विकल्प संभव थे वे वहां बतला दिये और 'पयडीए मोहणिज्जा' इसकी व्याख्या करते हुए इससे जो चौथा विकल्प ध्वनित होता है उसका निर्देश यहां कर दिया है। गाथाके पूर्वार्धमें विभक्ति शब्द मुख्य है और शेष पद उसके विषयभावसे आये हैं, अतः इस पदसे वीरसेनस्वामीने यह अभिप्राय निकाला है कि गुणधरभट्टारकके मतसे प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्ति इन तीनोंका एक अधिकार हुआ। तथा गाथाके उत्तरार्धमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेश, झीणाझीण और स्थित्यन्तिक इन तीनोंके द्वारा एक प्रदेशविभक्तिका कथन किया गया है अतः इन तीनोंका एक अधिकार हुआ। इस प्रकार इस चौथे विकल्पके अनुसार १ पेज्जदोषविभक्ति, २ प्रकृति-स्थिति-अनुभागविभक्ति, ३ प्रदेश-झीणाझीण स्थित्यन्तिक, ४ बन्ध और ५ संक्रम ये पाँच अधिकार होते हैं।

उक्त चार विकल्पोंके अनुसार ५ अधिकारोंका सूचक कोष्टक नीचे दिया जाता है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| पेज्जदोषविभक्ति | पेज्जदोषविभक्ति (प्रकृति विभक्ति) | पेज्जदोषविभक्ति (प्रकृति विभक्ति) | पेज्जदोषविभक्ति |
| स्थितिविभक्ति (प्रकृतिविभक्ति) | स्थितिविभक्ति | स्थितिविभक्ति | प्रकृति, स्थिति और अनुभाग विभक्ति |
| अनुभागविभक्ति (प्रदेशवि० झीणाझीण और स्थित्यन्तिक) | अनुभाग विभक्ति (प्रदेशविभक्ति, झीणाझीण और स्थित्यन्तिक) | अनुभागविभक्ति | प्रदेशविभक्ति, झीणाझीण और स्थित्यन्तिक |
| बन्ध | बन्ध | प्रदेशविभक्ति झीणाझीण और स्थित्यन्तिक | बन्ध |
| संक्रम | संक्रम | बन्ध | संक्रम |

§ २. संपहि जइवसहाइरियउवइट्ठचुण्णिसुत्तमस्सिदूण विहत्तीए परूवणं कस्सामो–

*** 'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च त्ति' अणियोगद्दारे विहत्ती णिक्खिवियव्वा। णामविहत्ती ट्ठवणविहत्ती दव्वविहत्ती खेत्तविहत्ती कालविहत्ती गणणविहत्ती संठाणविहत्ती भावविहत्ती चेदि।**

§ ३. 'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च त्ति' एत्थ जो ट्ठविद 'इदि' सद्दो जेण पच्चयत्थेहिंतो एदं सद्दकलावं पल्लट्टावेदि तेणेसो सरूवपयत्थो (त्ति)। तत्थ जो विहत्तिसद्दो तस्स णिक्खेवो कीरदे अणवगयत्थपरूवणादुवारेण पयदत्थग्गहणट्ठं। के ते तस्स विहत्तिसद्दस्स अत्था? णामादिभावपज्जवसाणा। एतेष्वर्थेष्वेकस्मिन्नर्थे विभक्तिर्निक्षेप्तव्या

§ २. अब यतिवृषभ आचार्यके द्वारा कहे गये चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर विभक्तिका कथन करते हैं—

*** 'विहत्ती ट्ठिदि-अणुभागे च' इस वाक्यमें आये हुए विभक्ति शब्दका निक्षेप करना चाहिये। यथा–नामविभक्ति, स्थापनाविभक्ति, द्रव्यविभक्ति, क्षेत्रविभक्ति, कालविभक्ति, गणनाविभक्ति, संस्थानविभक्ति, और भावविभक्ति।**

§ ३. यद्यपि 'ज्ञान, अर्थ और शब्द ये समान नामवाले होते हैं' इस नियमके अनुसार 'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च' यह वाक्यसमुदाय तीनोंका वाचक हो सकता है फिर भी इस वाक्यमें जो 'इति' शब्द आया है उससे जाना जाता है कि प्रकृतमें यह शब्दसमुदाय प्रत्यय और अर्थका वाचक नहीं है किन्तु अपने स्वरूपमें प्रवृत्त है। तात्पर्य यह है कि यहां पर 'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च' इत्याकारक ज्ञान और इत्याकारक अर्थका ग्रहण न करके 'विहत्ति ट्ठिदि अणुभागे च' इन शब्दोंका ही ग्रहण करना चाहिये।

उस विभक्ति शब्दके अनेक अर्थ हैं। उनमेंसे अनवगत अर्थके कथन द्वारा प्रकृत अर्थका ज्ञान करानेके लिये उसका निक्षेप करते हैं।

**शंका**–उस विभक्ति शब्दके ये अनेक अर्थ कौन कौन हैं?

**समाधान**–ऊपर सूत्रमें जो नामसे लेकर भाव तक विभक्तिके भेद बतलाये हैं वे सब

(१) "णाम ठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावे य। एसो उ विभत्तीए णिक्खेवो छव्विहो।"–**सू० श्रु० १, अ० ५, उ० १।** 'णिक्खेवो विभत्तीए चउव्विहो दुविहो होइ दव्वम्मि। आगमनोआगमओ नोआगमओ अ सो तिविहो ॥५५३॥ जाणगसरीरभविए तव्वइरित्ते य सो भवे दुविहो। जीवाणमजीवाण य जीवविभत्ती तहिं दुविहा ॥५५४॥ सिद्धाणमसिद्धाण य अज्जीवाण तु होइ दुविहा उ। रूवीणमरूवीण य विभासियव्वा जहा सुत्ते ॥५५५॥ भावम्मि विभत्ती खलु नायव्वा छव्विहम्मि भावम्मि। अहिगारो एत्थ पुण दव्वविभत्तीए अज्झयणं ॥५५६॥ –**उत्त० पाई० ३६ अ०।** (२) "करोति एत्थ जो इदि सद्दो तस्स अट्ठ 'हेतावेव प्रकारादिव्यवच्छेदे विपर्यये। प्रादुर्भावे समाप्तौ च 'इति'शब्दः प्रकीर्तितः।' इति वचनात्। एतेष्वर्थेषु क्वायमिति शब्दः प्रवर्तते? स्वरूपावधारणे। ननु किं सिद्धं? कृतिरित्यस्य शब्दस्य योऽर्थः सोऽपि कृतिः। अर्थाभिधानप्रत्ययास्तुल्यनामधेया इति न्यायात्तस्य ग्रहणं सिद्धम्।"–**वेदना० ध० आ० प० ५५२। अष्टस० पृ० २५१।**

न्यस्तव्या इति यावत्।

§ ४. संपहि अट्ठण्हं विहत्तीणमत्थपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

*** णोआगमदो दव्वविहत्ती दुविहा, कम्मविहत्ती चेव णोकम्म-विहत्ती चेव।**

§ ५. णाम-ट्ठवणाविहत्तीणमत्थो वुच्चदे – सरूवपयत्थो (जो) विहत्तिसद्दो णाम-विहत्ती। सब्भावासब्भावट्ठवणाओ ट्ठवणविहत्ती। दव्वविहत्ती दुविहा आगम-णोआगम-विहत्तिभेएण। विहत्तिपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो आगमविहत्ती। णोआगमविहत्ती तिविहा, जाणुअसरीरविहत्ती भवियविहत्ती तव्वदिरित्तविहत्ती चेदि। विहत्तिपाहुडजा-णयस्स भविय-वट्टमाण-समुज्झादसरीरं जाणुअसरीरविहत्ती। भविस्सकाले विहत्तिपाहुड-जाणओ जीवो भवियविहत्ती। एदासिं विहत्तीणमत्थो जइवसहाइरिएण किण्ण परूविदो? सुगमत्तादो। णाणावरणादिअट्ठकम्मेसु मोहणीयं पयडिभेएण भिण्णत्तादो कम्मविहत्ती,

विभक्ति शब्दके अर्थ हैं।

उनमेंसे किसी एक अर्थमें विभक्ति शब्दका निक्षेप करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ४. अब आठों विभक्तियोंके अर्थका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** नोआगमकी अपेक्षा द्रव्यविभक्ति दो प्रकार की है कर्मनोआगमद्रव्यविभक्ति और नोकर्मनोआगमद्रव्यविभक्ति।**

§ ५. अब नामविभक्ति और स्थापनाविभक्तिका अर्थ कहते हैं—जो विभक्ति शब्द अपने स्वरूपमें प्रवृत्त है और बाह्यार्थकी अपेक्षा नहीं करता उसे नामविभक्ति कहते हैं। विभक्तिकी सद्भाव और असद्भावरूपसे स्थापना करना स्थापनाविभक्ति है। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यविभक्ति दो प्रकारकी है। जो विभक्तिविषयक शास्त्रको जानता है, परन्तु उसमें उपयोगरहित है उसे आगमद्रव्यविभक्ति कहते हैं। नोआगमद्रव्यविभक्ति तीन प्रकारकी है—ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यविभक्ति, भाविनोआगमद्रव्यविभक्ति और तद्व्य-तिरिक्तनोआगमद्रव्यविभक्ति। उनमेंसे विभक्तिविषयक शास्त्रको जाननेवाले जीवके भविष्यत् वर्तमान और अतीतकालीन शरीरको ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यविभक्ति कहते हैं। जो जीव आगामी कालमें विभक्तिविषयक शास्त्रको जानेगा उसे भाविनोआगमद्रव्यविभक्ति कहते हैं।

**शंका**—इन विभक्तियोंका अर्थ यतिवृषभ आचार्यने क्यों नहीं कहा?

**समाधान**—इनका अर्थ सुगम है, इसलिये नहीं कहा।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंमें जो मोहनीय कर्म है वह चूंकि प्रकृतिभेदकी अपेक्षा अन्य कर्मोंसे भिन्न है अतः यहां कर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यविभक्ति पदसे उसका ग्रहण किया

(१) जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणम्हि पयट्टो खेत्तसद्दो णामखेत्तं।"—ध० खे० पृ० ३। 'तत्थ णामंतरसद्दो बज्झत्थे मोत्तूण अप्पाणम्मि पयट्टो।'—ध० अं० पृ० १।

अट्ठकम्माणि वा कम्मविहत्ती, अवसेसदव्वाणि णोकम्मविहत्ती। 'चेव'सद्दो समुच्चयत्थे दट्ठव्वो।

*** कम्मविहत्ती थप्पा।**

§ ६. कुदो? बहुवण्णणिज्जत्तादो एदीए अहियारादो वा।

§ ७. संपहि णोकम्मविहत्तीपरूवणट्ठमुत्तरसुत्ताणि भणइ—

*** तुल्लपदेसियं दव्वं तुल्लपदेसियस्स दव्वस्स अविहत्ती।**

§ ८. तुल्यः समानः प्रदेशः प्रदेशा वा यस्य द्रव्यस्य तत्तुल्यप्रदेशं द्रव्यं। तदन्यस्य तुल्यप्रदेशस्य द्रव्यस्य अविभक्तिर्भवति। विभजनं विभक्तिः, न विभक्तिरविभक्तिः प्रदेशैः समानमिति यावत्।

*** वेमादपदेसियस्स विहत्ती।**

§ ९. मीयतेऽनयेति मात्रा संख्या। विसदृशी मात्रा येषां ते विमात्रा विप्रदेशाः यस्मिन् द्रव्ये तद्विमात्रप्रदेशं द्रव्यं। तस्य विमात्रप्रदेशस्य द्रव्यस्य पूर्वमर्पितद्रव्यं

है। अथवा ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंको कर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यविभक्ति कहते हैं। तथा शेष द्रव्य नोकर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यविभक्ति कहलाते हैं। यहां चूर्णिसूत्रके अन्तमें 'चेव' शब्द आया है उसे समुच्चयार्थक जानना चाहिये।

*** पहले तद्व्यतिरिक्तनोआगमके दो भेदोंमें जो कर्मविभक्ति नामका पहला भेद कह आये हैं उसका कथन स्थगित करते हैं।**

§ ६. **शंका**—यहां कर्मविभक्तिका कथन स्थगित क्यों किया है।

**समाधान**—क्योंकि आगे चलकर कर्मविभक्तिका बहुत वर्णन करना है, अथवा कषायप्राभृतमें उसीका अधिकार है अतः यहां उसका कथन स्थगित किया है।

§ ७. अब नोकर्मविभक्तिका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

*** तुल्य प्रदेशवाला एक द्रव्य तुल्य प्रदेशवाले दूसरे द्रव्यके साथ अविभक्ति है।**

§ ८. तुल्य और समान ये दोनों शब्द समानार्थवाची हैं। अतः यह अर्थ हुआ कि जिस द्रव्यके एक या अनेक प्रदेश समान होते हैं वह द्रव्य तुल्य प्रदेशवाला कहा जाता है। वह तुल्य प्रदेशवाला द्रव्य अन्य तुल्य प्रदेशवाले द्रव्यके साथ अविभक्ति अर्थात् समान है। विभाग करनेको विभक्ति कहते हैं और विभक्तिके अभावको अविभक्ति कहते हैं। यहां जिसका अर्थ प्रदेशोंकी अपेक्षा समान होता है।

*** विवक्षित द्रव्य उससे असमान प्रदेशवाले द्रव्यके साथ विभक्ति है।**

§ ९. जिसके द्वारा माप अर्थात् गणना की जाती है उसे मात्रा अर्थात् संख्या कहते हैं। तथा 'वि' का अर्थ विसदृश है। अतः यह अर्थ हुआ कि जिस द्रव्यमें विमात्र अर्थात् विसदृश संख्यावाले प्रदेश पाये जाते हैं उसे विमात्रप्रदेशवाला द्रव्य कहते हैं।

(१) "मादा णाम सरिसत्तं। विगदा मादा विमादा।"—ध० आ० पत्र ९०५।

विभक्तिरसमानं भवति प्रदेशापेक्षया न सत्त्वादिना; सर्वेषां तेन सादृश्योपलम्भात् ।

*** तदुभएण अवत्तव्वं ।**

§ १०. विहत्ति त्ति वा अविहत्ति त्ति वा समाणासमाणदव्वावेक्खाए तमप्पिय-दव्वं विहत्ति अविहत्ति त्ति वा अवत्तव्वं; दोहि धम्मेहि अक्कमेण जुत्तस्स दव्वस्स पहाण-भावेण वोत्तुमसक्किज्जमाणत्तादो ।

*** खेत्तविहत्ती तुल्लपदेसोगाढं तुल्लपदेसोगाढस्स अविहत्ती ।**

§ ११. खेत्तविहत्ती त्ति एत्थ 'वुच्चदे' इति एदीए किरियाए सह संबंधो कायव्वो; अण्णहा अत्थणिण्णयाभावादो । किं खेत्तं ? आगासं;

"खेत्तं खलु आगासं तव्विवरीयं च हवदि णोखेत्तं ॥१॥" इति वयणादो ।

§ १२. तुल्याः प्रदेशाः यस्य तत्तुल्यप्रदेशं । कः प्रदेशः ? निर्भाग आकाशा-वयवः । तुल्यप्रदेशं च तत् अवगाढं च तुल्यप्रदेशावगाढं । तमण्णस्स तुल्लपदेसो-

विवक्षित द्रव्य उस विसदृश प्रदेशवाले द्रव्यके साथ विभक्ति अर्थात् असमान है । यहां यह असमानता प्रदेशोंकी अपेक्षा जानना चाहिये, सत्त्वादिककी अपेक्षा नहीं, क्योंकि सत्त्वा-दिककी अपेक्षा सब द्रव्योंमें समानता पाई जाती है ।

*** विभक्ति द्रव्य और अविभक्ति द्रव्य इन दोनोंकी अपेक्षा अर्पित द्रव्य अवक्तव्य है ।**

§ १०. विभक्तिरूप और अविभक्तिरूप अर्थात् समान और असमान द्रव्यकी अपेक्षा वह अर्पित द्रव्य युगपत् विभक्ति और अविभक्तिकी विवक्षा होनेके कारण अवक्तव्य है, क्योंकि दोनों धर्मोंसे एक साथ संयुक्त हुए द्रव्यका प्रधान रूपसे कथन नहीं किया जा सकता है ।

*** अब क्षेत्रविभक्ति निक्षेपका कथन करते हैं । तुल्य प्रदेशवाला अवगाढ़ दूसरे तुल्य प्रदेशवाले अवगाढ़के साथ अविभक्ति है ।**

§ ११. सूत्रमें 'खेत्तविहत्ती' इस पदका 'वुच्चदे' इस क्रियाके साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि उसके बिना अर्थका निर्णय नहीं हो सकता है ।

**शंका**–क्षेत्र किसे कहते हैं ?

**समाधान**–आकाशको क्षेत्र कहते हैं, क्योंकि "क्षेत्र नियमसे आकाश है और आकाशसे विपरीत नो क्षेत्र है ॥ १ ॥" ऐसा आगम वचन है ।

§ १२. जिसके प्रदेश समान होते हैं वह तुल्य प्रदेशवाला कहलाता है ।

**शंका**–प्रदेश किसे कहते हैं ?

**समाधान**–जिसका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता, ऐसे आकाशके अवयवको प्रदेश कहते हैं ।

(१) ध० खे० पृ० ७ ।

गाढस्स अविहत्ती समाणं। वेमादपदेसोगाढस्स विहत्ती। तदुभएण अवत्तव्वं। एदे बे वि वियप्पा सुत्तेण ण उत्ता, कथमेत्थ उच्चंति? ण; देसामासियभावेण सुत्तेण चेव परूविदत्तादो।

*** कालविहत्ती तुल्लसमयं तुल्लसमयस्स अविहत्ती।**

§ १३. कालविहत्तिणिक्खेवस्स अत्थं परूवेमि त्ति जाणावणट्ठं कालविहत्तिणिद्देसो। तुल्याः समानाः समयाः तुल्यसमयाः, तेऽस्य सन्तीति तुल्यसमयिकं द्रव्यम्। तमण्णस्स तुल्लसमइयस्स दव्वस्स अविहत्ती समाण। कुदो? कालावेक्खाए। वेमादसमइयं विहत्ती, तदुभएण अवत्तव्वं।

*** गणणविहत्तीए एक्को एक्कस्स अविहत्ती।**

§ १४. एक्कस्स त्ति तइयाए छट्ठिणिद्देसो दट्ठव्वो। एक्को संखाविसेसो एक्केण संखाविसेसेण सह अविहत्ती सरिसो। वेमादगणणाए विहत्ती। तदुभएण अवत्तव्वं।

जो तुल्य प्रदेशवाला अवगाढ़ है वह तुल्य प्रदेशवाला अवगाढ़ कहलाता है। वह तुल्य प्रदेशवाले अवगाढ़के साथ अविभक्ति अर्थात् समान है। असमान प्रदेशवाले अवगाढ़के साथ विभक्ति है। तथा युगपत् दोनोंकी अपेक्षा अवक्तव्य है।

**शंका**–विभक्ति और अवक्तव्य ये दोनों विकल्प चूर्णिसूत्रमें नहीं कहे हैं फिर यहां किसलिये कहे हैं?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि उपर्युक्त दोनों विकल्प देशामर्षकभावसे सूत्रके द्वारा कहे गये हैं। अतः उनका कथन करनेमें कोई दोष नहीं है।

*** अब कालविभक्तिका अर्थ कहते हैं–तुल्य समयवाला द्रव्य तुल्य समयवाले द्रव्य की अपेक्षा अविभक्ति है।**

§ १३. 'अब काल विभक्ति निक्षेपका अर्थ कहते हैं' इस बातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'कालविहत्ती' पद दिया है। तुल्य अर्थात् समान समयोंको तुल्यसमय कहते हैं। वे तुल्य समय जिस द्रव्यके पाये जाते हैं वह द्रव्य तुल्यसमयवाला कहा जाता है। वह तुल्य समयवाला द्रव्य अन्य तुल्य समयवाले द्रव्यकी अपेक्षा अविभक्ति अर्थात् समान है, क्योंकि यहां कालकी अपेक्षा समानता विवक्षित है। तथा वह विवक्षित द्रव्य असमान समयवाले द्रव्यकी अपेक्षा विभक्ति है और समान तथा असमान दोनों समयोंकी एक साथ प्रधानरूपसे विवक्षा करनेकी अपेक्षा अवक्तव्य है।

*** गणनाविभक्तिकी अपेक्षा एक संख्या एक संख्याका अविभक्ति है।**

§ १४. 'एक्कस्स' यह षष्ठीविभक्तिरूप निर्देश तृतीया विभक्तिके अर्थमें समझना चाहिये। एक संख्याविशेष एक संख्याविशेषके साथ अविभक्ति अर्थात् समान है। तथा वह विसदृश संख्यावाली गणनाके साथ विभक्ति अर्थात् असमान है और सदृश तथा विसदृश दोनों प्रकारकी गणनाओंकी युगपत् विवक्षा होने पर अवक्तव्य है।

*** संठाणविहत्ती दुविहा संठाणदो च, संठाणवियप्पदो च ।**

**§ १५. तंस-चउरंस-वट्टादीणि संठाणाणि। तंस-चउरंस-वट्टाणं भेया संठाणवियप्पा। एवं दुविहा चेव संठाणविहत्ती होदि अण्णस्स असंभवादो ।**

*** संठाणदो वट्टं वट्टस्स अविहत्ती ।**

**§ १६. संठाणदो 'विहत्ती उच्चदि' त्ति पयसंबंधो कायव्वो; अण्णहा अत्थावगमणाणुववत्तीदो। अण्णदव्वट्ठियवट्टं पेक्खिदूण वट्टस्स अण्णदव्वट्ठियस्स अविहत्ती अभेदो। पुधभूददव्व-खेत्त-काल-भावेसु वट्टमाणाणं कथमभेदो ? ण, दव्व-खेत्त कालाणमसंठाणाणं भेदेण संठाणाणं भेदविरोहादो। किं च, पडिहासभेएण पडिहासमाणस्स भेओ, ण च एत्थ सो उ वट्टदे, तम्हा अभेयो इच्छेयव्वो। दोण्हं वट्टाणं सरिसत्तं चेव उवलब्भइ णेयत्तमिदि णासंकणिज्जं; समाणेयत्ताण भेदाभावादो। दव्वादिणा णिरुद्धाणं वट्टाणं समाणत्तं तेहि चेव अणिरुद्धाणमेयत्तमिदि सयललोयप्पसिद्धमेय। तम्हा वट्टस्स वट्टेण अविहत्ति त्ति इच्छेयव्वं ।**

*** संस्थान और संस्थानविकल्पके भेदसे संस्थानविभक्ति दो प्रकारकी है।**

§ १५. त्रिकोण, चतुष्कोण और गोल आदिकको संस्थान कहते हैं। तथा त्रिकोण, चतुष्कोण और गोल संस्थानोके भेदोंको संस्थानविकल्प कहते हैं। इसप्रकार संस्थानविभक्ति दो प्रकारकी ही होती है, क्योंकि, और कोई भेद संभव नहीं है।

*** संस्थानकी अपेक्षा विभक्तिका कथन करते हैं–एक गोल द्रव्य दूसरे गोल द्रव्यके साथ अविभक्ति है।**

§ १६. 'संठाणदो' इस पदके साथ 'विहत्ती उच्चदि' इतने पदका संबन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि उसके बिना अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है। अन्य द्रव्यमें स्थित गोलाईका अन्य द्रव्यमें स्थित गोलाईके साथ अविभक्ति अर्थात् अभेद है।

**शंका**–भिन्न द्रव्य, भिन्न क्षेत्र, भिन्न काल और भिन्न भावमें स्थित संस्थानोंका अभेद कैसे हो सकता है ?

**समाधान**–क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र और काल असंस्थानरूप हैं इसलिये इनके भेदसे संस्थानोंका भेद माननेमें विरोध आता है। दूसरे, प्रतिभासके भेदसे प्रतिभासमान पदार्थमें भेद माना जाता है परन्तु वह यहां पाया नहीं जाता है, इसलिये अभेद स्वीकार करना चाहिये।

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि गोल दो द्रव्योंमें समानता ही पाई जाती है, एकत्व नहीं, सो उसका ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, समानता और एकतामें कोई भेद नहीं है। द्रव्यादिककी अपेक्षासे जब गोलाइयां द्रव्यादिगत विवक्षित होती हैं तब उनमें समानता मानी जाती है और जब उनमें द्रव्यादिकी विवक्षा नहीं रहती तो वे एक कहलाती हैं। इसप्रकार यह बात सकललोकप्रसिद्ध है। इसलिये एक गोलाईकी दूसरी गोलाईके साथ अविभक्ति स्वीकार करना चाहिये।

*** वट्टसंठाणस्स तंसस्स वा चउरंसस्स वा आयदपरिमंडलस्स वा विहत्ती ।**

§ १७. कुदो ? सरिसत्ताभावादो । एवं तंस- [ चउरंसा- ] दीणं पि वत्तव्वं ।

*** वियप्पेण वट्टसंठाणाणि असंखेज्जा लोगा ।**

§ १८. एदेसिमसंखेज्जा[ज्ज]लोयत्तं आगमदो चेवावगम्मदे, ण जुत्तीदो; असंखे-

**विशेषार्थ**—यहां संस्थानके विषयमें दो शंकाएं उठाई गई हैं। पहली यह है कि संस्थान द्रव्य आदिकी तरह अलग तो पाये नहीं जाते । वे तो द्रव्यादिगत ही होते हैं और द्रव्यादि परस्पर भिन्न होते हैं। अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे भिन्न रहता है, एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्रसे भिन्न होता है, अतः इनके आश्रयसे रहनेवाले संस्थान एक कैसे हो सकते हैं ? वीरसेनस्वामीने इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि स्वयं द्रव्यादि संस्थानरूप नहीं हैं । जो द्रव्य इस समय त्रिकोण है वह कालान्तरमें गोल हो जाता है । इसी प्रकार अन्यके सम्बन्धमें भी जानना । अतः द्रव्यादिकसे संस्थानका कथंचित भेद सिद्ध हो जाता है । और जब संस्थान द्रव्यादिकसे भिन्न हैं तब द्रव्यादिकके भेदसे संस्थानमें भेद मानना युक्त नहीं । संस्थानोंमें यदि भेद होगा तो स्वगत भेदोंकी अपेक्षासे ही होगा अन्य द्रव्यादिकी अपेक्षासे नहीं । दूसरी शंका यह है कि पृथक् दो द्रव्योंमें जो समान दो गोलाइयां रहेंगी उन्हे समान कहना चाहिये एक नहीं । वीरसेनस्वामीने इस शंकाका जो समाधान किया उसका भाव यह है कि उन समान दो गोलाईयोंमें जो हमें पार्थक्य दिखाई देता है वह द्रव्यादिभेदके कारण दिखाई देता है। यदि हम द्रव्यादिकी विवक्षा न करें तो वे गोलाईयां एक हैं । हमने प्रातः एक गोलाई देखी और मध्यान्हमे भी उसे देखा । इसप्रकार कालभेदसे उसमें भेद हो जाता है । पर यदि कालभेदकी विवक्षा न करें तो वह एक है । एक आदमीने किसी सुन्दर प्रतिमाको देखकर शिल्पीसे उसी आकारकी दूसरी प्रतिमा बनवाई । प्रतिमाके बन जाने पर बनवानेवाला उसे देखकर कहता है 'वही है' इसमें कोई सन्देह नहीं । यद्यपि यहां पहली प्रतिमासे यह दूसरी प्रतिमा भिन्न है पर आकार भेद न होनेसे आकारकी अपेक्षा वे एक कही जाती हैं। इस प्रकार द्रव्यादिकी अपेक्षा न रहने पर संस्थानोंमें अभेद सिद्ध हो जाता है।

*** विवक्षित गोलाई त्रिकोण चतुष्कोण अथवा आयत परिमंडल संस्थानके साथ विभक्ति है ।**

§ १७. चूंकि गोलाईकी त्रिकोण आदि संस्थानोके साथ सदृशता नहीं पाई जाती है इसलिये गोलाई त्रिकोण आदिके समान नहीं है । इसी प्रकार त्रिकोण चतुष्कोण आदिका भी कथन करना चाहिये ।

*** उत्तरोत्तर भेदोंकी अपेक्षा गोल आकार असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।**

§ १८. गोल आकार असंख्यात लोकप्रमाण हैं, यह बात आगमसे ही जानी जाती है

(१) तस्स (त्रु०···४) ईण–स०; तस्स पयाईण–अ० ।

ज्जलोगमेत्तसंखाए वट्टमाणमदि-सुदणाणाणमणुवलंभादो।

*** एवं तंस-चउरंस-आयदपरिमंडलाणं।**

§ १९. जहा वट्टसंठाणस्स असंखेज्जलोगमेत्तवियप्पा परूविदा, तहा तंस-चउरंस-आयदपरिमण्डलाणं पि वियप्पा असंखेज्जा लोगमेत्ता त्ति वत्तव्वं।

*** सरिसवट्टं सरिसवट्टस्स अविहत्ती।**

§ २०. 'सरिसवट्टस्स' इत्ति उत्ते समाणवट्टम्सेत्ति भणिदं होदि। एसा छट्ठीविहत्ती तइयाए अत्थे दट्ठव्वा। तेण सरिसवट्टं सरिसवट्टेण सह अविहत्ती अभिण्णमिदि उत्तं होदि। सरिसवट्टमसरिसवट्टेण सह विहत्ती तदुभएण अवत्तव्वं।

*** एवं सव्वत्थ।**

§ २१. जहा वट्टस्स तिण्णि भंगा एकस्स परूविदा तहा सेसअसंखेज्जलोगमेत्तवट्ट-संठाणाणं पुध पुध तिविहा परूवणा कायव्वा। सेसतंस-चउरंस-आयदपरिमंडल-संठाणाणमसंखेज्जलोगमेत्ताणमेवं चेव परूवणा कायव्वा। एदं कत्तो उपलब्भदे ? 'एवं

युक्तिसे नहीं, क्योंकि असंख्यातलोक प्रमाण संख्यामें मतिज्ञान और श्रुतज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है।

*** इसी प्रकार त्रिकोण, चतुष्कोण और आयतपरिमण्डलके विषयमें भी जानना चाहिये।**

§ १९. जिस प्रकार गोल संस्थानके असंख्यात लोकप्रमाण विकल्प कहे हैं उसी प्रकार त्रिकोण, चतुष्कोण और आयतपरिमण्डल आकारोंके भी विकल्प असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं ऐसा कथन करना चाहिये।

*** सदृश गोल संस्थान दूसरे सदृश गोल संस्थानके साथ अविभक्ति है।**

§ २०. सूत्रमें आए हुए 'सरिसवट्टस्स' इस पदका अर्थ समान गोलाई होता है। 'सरिसवट्टस्स' पदमें जो षष्ठी विभक्ति आई है वह तृतीया विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये। इसलिये यह अर्थ हुआ कि समान गोल आकार दूसरे समान गोल आकारके साथ अविभक्ति अर्थात् अभिन्न है। तथा समान गोल आकार असमान गोल आकारके साथ विभक्ति है। तथा वह समान गोल आकार दूसरे समान और असमान गोल आकारोंकी एक साथ विवक्षा करनेकी अपेक्षा अवक्तव्य है।

*** इसी प्रकार सर्वत्र कथन करना चाहिये।**

§ २१. जिस प्रकार एक गोल आकारके तीन भंग कहे हैं उसी प्रकार शेष असंख्यात लोक प्रमाण गोल आकारोंका अलग अलग तीन भेदरूपसे कथन करना चाहिये। तथा इनसे अतिरिक्त जो असंख्यात लोकप्रमाण त्रिकोण चतुष्कोण और आयत परिमण्डल आकार हैं उनका भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये।

**शंका**–'शेष असंख्यात लोकप्रमाण त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत परिमण्डल संस्थानोंके

सव्वत्थ' इत्ति सुत्तणिद्देसादो। ण तं सेसवट्टसंठाणाणि चेव अस्सिदूण परूविदं अउत्त-सेससंठाणवियप्पे अस्सिदूण परूविदत्तादो।

*** जा सा भावविहत्ती सा दुविहा, आगमदो य णोआगमदो य।**

§ २२. पुव्वं णिद्दिट्ठभावविहत्तीसंभालणट्ठं 'जा सा भावविहत्ति' त्ति परूविदं। आगमो सुदणाणं, णोआगमो सुदणाणवदिरित्तभावो। एवं भावविहत्ती दुविहा चेव होदि।

*** आगमदो उवजुत्तो पाहुडजाणओ।**

§ २३. पाहुडजाणओ जीवो उवजुत्तो पाहुडउवजोगसहिओ आगमविहत्ती होदि।

*** णोआगमदो भावविहत्ती ओदइओ ओदइयस्स अविहत्ती।**

§ २४. ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ चेदि णोआगमभावो पंचविहो होदि; सव्वभावाणमेदेसु चेव पंचसु भावेसु पवेसादो। तत्थ ओदइओ

भी तीन भंग कहना चाहिये' यह अर्थ कहांसे उपलब्ध होता है?

**समाधान**–'एवं सव्वत्थ' इस निर्देशसे यह अर्थ उपलब्ध होता है। क्योंकि यह सूत्र केवल गोल आकारके शेष भेदोंकी अपेक्षा ही नहीं कहा है किन्तु संस्थानके अनुक्त समस्त विकल्पोंकी अपेक्षासे भी कहा है।

*** ऊपर जो भाव विभक्ति कही है वह दो प्रकारकी है–आगमभावविभक्ति और नोआगमभावविभक्ति।**

§ २२. पहले विभक्तिका निक्षेप करते समय जिस भावविभक्तिको कह आये हैं उसीका निर्देश करनेके लिये चूर्णिसूत्रमें 'जा सा भावविहत्ती' यह पद दिया है। आगमका अर्थ श्रुतज्ञान है और श्रुतज्ञानसे व्यतिरिक्त भावको नोआगम कहते हैं। इसप्रकार भावविभक्ति दो प्रकारकी ही होती है।

*** जो जीव विभक्तिविषयक शास्त्रको जानता है और उसमें उपयोगसहित है उसे आगमभावविभक्ति कहते हैं।**

§ २३. जो जीव विभक्तिका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रका ज्ञाता है और उसमें उपयुक्त है अर्थात् उसका उपयोग भी विभक्तिविषयक शास्त्रमें लगा हुआ है। वह जीव आगमभावविभक्ति कहलाता है।

*** नोआगमभावविभक्ति, यथा–एक औदयिक भाव दूसरे औदयिक भावके साथ अविभक्ति है।**

§ २४. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे नोआगमभाव पांच प्रकारका है, क्योंकि, समस्त भावोंका इन्हीं पांच भावोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। उनमेंसे एक औदयिकभाव दूसरे औदयिक भावके साथ अविभक्ति है, क्योंकि

(१) "भावविभक्तिस्तु जीवाजीवभावभेदात् द्विधा। तत्र जीवभावविभक्ति. औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभेदात् षट्प्रकारा। ×अजीवभावविभक्तिस्तु मूर्तानां वर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थानपरिणामः। अमूर्तानां गतिस्थित्यवगाहवर्तनादिक इति।" सू० श्रु० १ अ० ५ उ० १ टीका।

ओदइएण सह अविहत्ती; ओदइयभावेण भेदाभावादो ।

*** ओदइओ उवसमिएण भावेण विहत्ती ।**

§ २५. कुदो ? उदयजणिदेण भावेण सह उवसमजणिदभावस्स समाणत्तविरोहादो ।

*** तदुभएण अवत्तव्वं ।**

§ २६. ओदइओ भावो ओदइय-उवसमिय-भावेहि सण्णिकासिज्जमाणो अवत्तव्वो होदि, विहत्ति-अविहत्तिसद्दाणमक्कमेण भणणोवायाभावादो ।

*** एवं सेसेसु वि ।**

§ २७. जहा ओदइयस्स उवसमिएण भावेण सण्णिकासिज्जमाणस्स बे भंगा परूविदा तहा सेसेसु खइय-खओवसमिय-पारिणामियभावेसु वि सण्णिकासिज्जमाणस्स बे बे भंगा परूवेयव्वा । तं जहा, ओदइयो खओवसमियस्स विहत्ती तदुभएण अवत्तव्वो । ओदइओ खइयस्स विहत्ती तदुभएण अवत्तव्वं । ओदइओ पारिणामियस्स विहत्ती तदुभएण अवत्तव्वं ।

*** एवं सव्वत्थ ।**

इन दोनों भावोंमें औदयिकरूपसे कोई भेद नहीं पाया जाता है ।

*** औदयिकभाव औपशमिकभावके साथ विभक्ति है ।**

§ २५. **शंका**–औदयिक भाव औपशमिक भावके साथ विभक्ति क्यों है ?

**समाधान**–क्योंकि उदयजन्य भावके साथ उपशमजन्य भावकी समानता माननेमें विरोध आता है, इसलिये औदयिकभाव औपशमिक भावके साथ विभक्ति है ?

*** औदयिक और औपशमिक इन दोनोंकी एक साथ विवक्षा करनेसे औदयिक भाव अवक्तव्य है ।**

§ २६. औदयिक और औपशमिक भावोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ औदयिक भाव अवक्तव्य है, क्योंकि, विभक्ति और अविभक्ति इन दोनोंके एक साथ कथन करनेका कोई उपाय नहीं पाया जाता है ।

*** इसी प्रकार शेष भावोंमें भी जानना चाहिये ।**

§ २७. जिसप्रकार औपशमिक भावके सम्बन्धसे औदयिक भावके दो भंग कहे हैं उसीप्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकभावोंके सम्बन्धसे भी औदयिक भावके दो दो भंग कहना चाहिये । वे इसप्रकार हैं–औदयिकभाव क्षायोपशमिक भावके साथ विभक्ति है तथा औदयिक और क्षायोपशमिक इन दोनोंकी युगपद् विवक्षा होनेसे अवक्तव्य है। औदयिक भाव क्षायिक भावके साथ विभक्ति है और औदयिक तथा क्षायिक इन दोनोंकी युगपत् विवक्षाकी अपेक्षा अवक्तव्य है । औदयिक पारिणामिक भावके साथ विभक्ति है और औदयिक तथा पारिणामिक इन दोनों भावोंकी युगपत् विवक्षाकी अपेक्षा अवक्तव्य है ।

*** इसीप्रकार सर्वत्र जानना ।**

§ २८. जहा ओदइयस्स भावस्स सग-पर-संजोगेण तिण्णि भंगा परूविदा तहा उवसमिय-खओवसमिय-खइय-पारिणामियाणं भावाणं पुध पुध तिण्णि भंगा परूवेयव्वा ।

* २ ।

§ २९. जइवसहाइरिएण एसो दोण्हमंको किमट्ठमेत्थ ट्ठविदो ? सगहियट्ठिय-अत्थस्स जाणावणट्ठं । सो अत्थो अक्खरेहि किण्ण परूविदो ? वित्तिसुत्तस्स अत्थे भण्णमाणे णिण्णामो गंथो होदि त्ति भएण ण परूविदो । तं जहा, ण ताव तारिसो गंथो वित्तिसुत्तं सुत्तस्सेव विवरणाए संखित्तसद्दरयणाए संगहियसुत्तासेसत्थाए वित्तिसुत्तववएसादो । ण टीका; वित्तिसुत्तविवरणाए टीकाववएसादो । ण पंजिया; वित्तिसुत्तविसमपयभंजियाए पंजियववएसादो । ण पद्धई वि, सुत्तवित्तिविवरणाए पद्धईववएसादो । तदो णिण्णामत्तं गंथस्स मा होह(हि) दि त्ति अक्खरेहि ण कहिदो ।

§ ३०. को सो हिययट्ठियत्थो ? उच्चदे, दव्व-खेत्त-काल-भाव-संठाणविहत्तीसु जे

§ २८. जिसप्रकार औदयिक भावके स्व और परके संयोगसे तीन भंग कहे हैं उसीप्रकार औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक भावोंके भी अलग अलग तीन तीन भंग कहना चाहिये । अर्थात् प्रत्येकके तीन तीन भंग होते हैं ।

* २

§ २९. **शंका**–यतिवृषभाचार्यने यहां पर यह दोका अंक किसलिये रखा है ?

**समाधान**–अपने हृदयमें स्थित अर्थका ज्ञान करानेके लिये उन्होंने यहां दोका अंक रखा है ।

**शंका**–वह अर्थ अक्षरोंके द्वारा क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**–वृत्तिसूत्रके अर्थका कथन करने पर ग्रन्थ विना नामवाला हो जाता इस भयसे यतिवृषभ आचार्यने अपने हृदयमें स्थित अर्थका अक्षरों द्वारा कथन नहीं किया । इसका खुलासा इस प्रकार है–वृत्तिसूत्रके अर्थको कहनेवाला ग्रन्थ वृत्तिसूत्र तो हो नहीं सकता क्योंकि जो सूत्रका ही व्याख्यान करता है, किन्तु जिसकी शब्दरचना संक्षिप्त है और जिसमें सूत्रके समस्त अर्थको संग्रहीत कर लिया गया है, उसे वृत्तिसूत्र कहते हैं । उक्त ग्रन्थ टीका भी नहीं हो सकता है, क्योंकि वृत्तिसूत्रोंके विशद व्याख्यानको टीका कहते हैं । उक्त ग्रन्थ पंजिका भी नहीं हो सकता, क्योंकि वृत्तिसूत्रोंके विषम पदोंको स्पष्ट करनेवाले विवरणको पंजिका कहते हैं । तथा उक्त ग्रन्थ पद्धति भी नहीं है, क्योंकि सूत्र और वृत्ति इन दोनोंका जो विवरण है उसकी पद्धति संज्ञा है । अतः यह ग्रन्थ विना नामका न हो जाय, इसलिये यतिवृषभ आचार्यने अपने हृदयमें स्थित अर्थका अक्षरोंद्वारा कथन न करके दोका अंक रखकर उसका सूचनमात्र कर दिया है ।

§ ३०. **शंका**–वह हृदयमें स्थित अर्थ क्या है ।

**समाधान**–द्रव्यविभक्ति, क्षेत्रविभक्ति, कालविभक्ति, भावविभक्ति और संस्थानविभक्ति

**तिण्णि तिण्णि भंगा कहिदा तत्थ दोण्हं दोण्हं चेव भंगाणं गहणं कायव्वं, अविभत्तीए ण गहणं। कुदो ? विहत्तिणिक्खेवे कीरमाणे विहत्तिविरुद्धत्थस्स गहणाणुववत्तीदो। जदि एवं, तो अवत्तव्वभंगो वि ण घेत्तव्वो; तत्थ विहत्तीए अत्थाभावादो। ण; विहत्तीए विणा दुसंजोगाभावेण अवत्तव्वभावाणुववत्तीदो। विहत्ती-अविहत्तीणं संजोगो कथं विहत्ती होदि ? ण, कथंचि भेदो अत्थि त्ति अवत्तव्वस्स वि विहत्तिभावुवलंभादो।**

इनमेंसे प्रत्येकके जो तीन तीन भंग कहे हैं उनमेंसे दो दो भंगोंका ही ग्रहण करना चाहिये अविभक्तिका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि विभक्तिका निक्षेप करते समय विभक्तिसे विरुद्ध अविभक्तिका ग्रहण नहीं हो सकता है।

**शंका**–यदि ऐसा है तो अवक्तव्य भंगका भी ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, अवक्तव्य भंगमें भी विभक्तिका अर्थ नहीं पाया जाता है ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि, विभक्तिके विना विभक्ति और अविभक्ति इन दोनोंका संयोग नहीं होता और उसके न होनेसे अवक्तव्य भंग भी नहीं बनता। इससे प्रतीत होता है कि अवक्तव्यमें विभक्तिका अर्थ पाया जाता है, और इसलिये विभक्तिमें अवक्तव्य भंगका भी ग्रहण करना चाहिये।

**शंका**–विभक्ति और अविभक्तिका संयोगरूप अवक्तव्य भंग विभक्ति कैसे हो सकता है ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि, अवक्तव्यका विभक्तिसे कथंचित् भेद है, सर्वथा नहीं, इसलिये अवक्तव्यमें भी विभक्तिरूप धर्म पाया जाता है।

**विशेषार्थ**–विभक्तिका निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, गणना, संस्थान और भावकी अपेक्षा आठ प्रकारसे किया है। इनमेंसे द्रव्यविभक्तिके नोकर्मभेदके और क्षेत्र, काल, गणना, संस्थान और भाव इन छहोंमेंसे प्रत्येकके विभक्ति, अविभक्ति और अवक्तव्य ये तीन तीन भंग बताये हैं। तथा यह भी बताया है कि प्रकृतमें विभक्ति और अवक्तव्य इन दोका ही ग्रहण किया है। यहां अविभक्तिका ग्रहण क्यों नहीं हो सकता, इसका यह कारण बतलाया है कि यहां विभक्तिका प्रकरण है अतः अविभक्तिको यहां कोई अवकाश नहीं। पर अवक्तव्य विभक्तिसापेक्ष होनेसे उसका ग्रहण हो जाता है। यही सबब है कि आगे सभी अनुयोगद्वारोंमें जहां विभक्ति पाई जाती है, और जहां विभक्तिके साथ अविभक्ति पाई जाती है उनका ग्रहण किया है। पर जहां केवल अविभक्ति ही पाई जाती है ऐसे केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि मार्गणास्थानोंका विचार नहीं किया है। चूर्णिसूत्रकारने इस अभिप्रायका उल्लेख अक्षरोंद्वारा न करके '२' के अंकद्वारा किया है। इस पर वीरसेनस्वामीका कहना है कि यदि चूर्णिसूत्रकार इस अभिप्रायको अक्षरों द्वारा प्रकट करते तो वह मूल ग्रन्थपर चूर्णिसूत्र न होकर चूर्णिसूत्रके अर्थका स्पष्टीकरणमात्र होता, और इस प्रकार ग्रन्थ बिना नामका हो जाता। यही सबब है कि चूर्णिसूत्रकारने उक्त अभिप्राय अंक

**§ ३१. एदासु विहत्तीसु बहुवियप्पासु एदीए विहत्तीए पओजणं ति जाणावणट्ठं उत्तरसुत्तमागदं।**

*** जा सा दव्वविहत्तीए कम्मविहत्ती तीए पयदं।**

**§ ३२. 'जा सा' इदि वयणेण दव्वविहत्ती संभालिदा। सा दुविहा, कम्मविहत्ती णोकम्मविहत्ती चेदि। तत्थ दव्वविहत्ती वि जा कम्मविहत्ती तीए कम्मविहत्तीए पयदं।**

*** तत्थ सुत्तगाहा।**

**§ ३३. जइवसहाइरिओ अप्पणो भणिदपण्णारसअत्थाहियारेसु चुण्णिसुत्तं भणंतो सगसंकप्पियअत्थाहियारे गाहासुत्तम्मि संदंसणट्ठं 'तत्थ सुत्तगाहा उवदि' त्ति भणदि।**

द्वारा सूचित किया है। द्रव्य विभक्तिमें प्रदेश भेदसे द्रव्य भेद, क्षेत्र विभक्ति में क्षेत्रकी न्यूनाधिकतासे द्रव्यभेद, कालविभक्तिमें समयादिककी न्यूनाधिकतासे द्रव्यभेद, गणना विभक्तिमें संख्याभेद, संस्थानविभक्तिमें आकारभेद और भावविभक्तिमें औदयिक आदि भावभेद लिये गये हैं। अविभक्तिमें इन सबकी समानता ली गई है और एक साथ विभक्ति और अविभक्ति दोनोंकी अपेक्षा अवक्तव्यताका ग्रहण किया है। ये सब द्रव्यविभक्ति आदि कर्मविभक्तिके नो कर्म हैं अतः इनका यहां इसी रूपसे कथन किया है। कर्मविभक्तिका आगे विस्तारसे कथन किया ही है इसलिए यहां उसके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है। फिर भी प्रकृतमें कर्मविभक्तिसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोके एक भेदरूप मोहनीयकर्मका ग्रहण करना चाहिये। मोहनीय कर्मके साथ विभक्ति शब्दके जोड़नेकी सार्थकता इसीमें है। यद्यपि इस विषयमें आगे और भी अनेक समाधान पाये जाते हैं पर हमारी समझसे उनमें यह समाधान मुख्य है।

§ ३१. अब अनेक प्रकारकी इन विभक्तियोंमेंसे प्रकृतमें अमुक विभक्तिसे प्रयोजन है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं।

*** द्रव्यविभक्तिके दो भेदोंमें जो कर्मविभक्ति कह आये हैं प्रकृत कषायप्राभृतमें उससे प्रयोजन है।**

§ ३२. चूर्णिसूत्रमें आये हुए 'जा सा' इस वचनसे द्रव्यविभक्तिका निर्देश किया है। वह द्रव्यविभक्ति कर्मविभक्ति और नोकर्मविभक्तिके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे जो कर्मविभक्ति नामकी द्रव्यविभक्ति है प्रकृत कषायप्राभृतमें उससे प्रयोजन है।

*** अब इस विषयमें सूत्रगाथा देते हैं।**

§ ३३. अपने द्वारा स्वयं कहे गये पन्द्रह अर्थाधिकारोंमें चूर्णिसूत्रोंका कथन करते हुए यतिवृषभ आचार्य अपने द्वारा माने गये अर्थाधिकारोंको गाथासूत्रमें दिखानेके लिये 'यहां सूत्रगाथा देते हैं' इस प्रकार कहते हैं।

(४) पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति तह ट्ठिदीए अणुभागे।
उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ट्ठिदियं वा ॥२२॥

*** पदच्छेदो। तं जहा–'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति' त्ति एसा पयडिविहत्ती।**

§ ३४. एत्थ पदं चउव्विहं, अत्थपदं पमाणपदं मज्झिमपदं ववत्थापदं चेदि। तत्थ जेहि अक्खरेहि अत्थोवलद्धी होदि तमत्थपदं। वाक्यमर्थपदमित्यनर्थान्तरम्। अट्ठक्खरणिप्पण्णं पमाणपदं। सोलहसयचोत्तीसकोडि-तेयासीदिलक्ख-अट्ठहत्तरिसय-अट्ठासीदिअक्खरेहि मज्झिमपदं। जत्तिएण वक्कसमूहेण अहियारो समप्पदि तं ववत्थापदं सुवंतमिजंतं वा। एदेसु पदेसु कस्स पदस्स वोच्छेदो? ववत्थापदस्स अहियारसरूवस्स। 'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति' त्ति एत्थतण 'इदि' सद्दो एदस्स सरूवपयत्थ(-त्त-) यत्तं जाणावेदि तेण एसा पयडिविहत्ती पढमो अत्थाहियारो त्ति सिद्धो।

*** तह ट्ठिदी चेदि एसा ट्ठिदिविहत्ती २।**

§ ३५. ट्ठिदिविहत्ती णाम एसो विदियो अत्थाहियारो। सेसं सुगमं।

मोहनीय प्रकृतिविभक्ति, मोहनीय स्थितिविभक्ति, मोहनीय अनुभागविभक्ति, प्रदेशविषयक उत्कृष्टानुत्कृष्ट, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक ये छह अर्थाधिकार हैं।

* अब इस गाथाका पदच्छेद करते हैं। वह इस प्रकार है–'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति' इस पदसे प्रकृतिविभक्ति सूचित की है।

§ ३४. पद चार प्रकार है–अर्थपद, प्रमाणपद, मध्यमपद और व्यवस्थापद। उनमेंसे जितने अक्षरोंसे अर्थका ज्ञान होता है उसे अर्थपद कहते हैं। वाक्य और अर्थपद ये एकार्थवाची हैं। अर्थात् अर्थपदसे आशय वाक्यका है। आठ अक्षरोंसे निष्पन्न हुआ एक प्रमाणपद होता है। सोलहसौ चौंतीस करोड़ तेरासी लाख सात हजार आठसौ अठासी अक्षरोंका एक मध्यमपद होता है। जितने वाक्योंके समूहसे एक अधिकार समाप्त होता है उसे व्यवस्थापद कहते हैं। अथवा, सुबन्त और मिगन्त पदको व्यवस्थापद कहते हैं।

**शंका**–यहां इन पदोंमेंसे किस पदका पृथकरण किया है?

**समाधान**–अधिकारका सूचक जो 'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति' यह व्यवस्थापद है, उसका ही यहां पृथक्करण किया है।

'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति त्ति' इसमें आया हुआ 'इति' शब्द इस पदके स्वरूपका ज्ञान कराता है। अतः यह प्रकृतिविभक्ति नामका पहला अर्थाधिकार है यह सिद्ध होता है।

*** गाथामें आये हुए 'तह ट्ठिदी चेदि' इस पदसे स्थितिविभक्तिका सूचन होता है।**

§ ३५. यह स्थितिविभक्ति नामका दूसरा अर्थाधिकार है। शेष कथन सुगम है।

*** अणुभागे त्ति अणुभागविहत्ती ३ ।**

§ ३६. जेण गाहाए अणुभागेत्ति अवयवेण अणुभागो परूविदो तेण अणुभागविहत्ती णाम तदियो अत्थाहियारो ।

*** उक्कस्समणुक्कस्सं ति पदेसविहत्ती ४ ।**

§ ३७. 'उक्कस्समणुक्कस्सं' ति एदेण पदेण पदेसविहत्ती णाम चउत्थो अत्थाहियारो परूविदो ।

*** झीणमझीणं ति ५ ।**

§ ३८. झीणमझीणं ति एदेण गाहावयवेण [ झीणा- ] झीणं णाम पंचमो अत्थाहियारो सूइदो ।

*** ट्ठिदियं वा त्ति ६ ।**

§ ३९. एदेण वि ट्ठिदियंतिओ णाम छट्ठो अत्थाहियारो सूइदो । एवं जइवसहाइरियाहिप्पाएण एदीए गाहाए छ अत्थाहियारा सूइदा । गुणहरभडारयस्स अहिप्पाएण पुण दो चेव अत्थाहियारा परूविदा त्ति घेत्तव्वं ।

*** तत्थ पयडिविहत्तिं वण्णइस्सामो ।**

*** गाथामें आये हुए 'अणुभागे' पदसे अनुभागविभक्तिका सूचन होता है ।**

§ ३६. चूंकि गाथाके 'अणुभागे' इस पद द्वारा अनुभागका कथन किया है, इसलिये अनुभागविभक्ति नामका तीसरा अर्थाधिकार समझना चाहिये ।

*** 'उक्कस्समणुक्कस्सं' इस पदसे प्रदेशविभक्तिका सूचन होता है ।**

§ ३७. गाथामें आये हुए 'उक्कस्समणुक्कस्सं' इस पदसे प्रदेशविभक्ति नामके चौथे अर्थाधिकारका कथन किया है ।

*** झीणाझीण नामका पांचवां अर्थाधिकार है ।**

§ ३८. गाथाके 'झीणमझीणं' इस पदसे झीणाझीण नामका पांचवां अर्थाधिकार सूचित किया है ।

*** स्थित्यन्तिक नामका छठा अर्थाधिकार है ।**

§ ३९. गाथामें आये हुए 'ट्ठिदियं वा' इस पदसे स्थित्यन्तिक नामका छठा अर्थाधिकार सूचित किया है । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके अभिप्रायानुसार इस गाथाके द्वारा छह अर्थाधिकार सूचित किये गये हैं । किन्तु गुणधर भट्टारकके अभिप्रायानुसार इस गाथाके द्वारा दो ही अर्थाधिकार कहे गये हैं ऐसा समझना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—यतिवृषभ आचार्य भी कसायपाहुडके मूल अधिकार पन्द्रह ही मानते हैं । इसका विशेष खुलासा हमने प्रथम भागके पृष्ठ १९७ पर किया है ।

*** उन छह अधिकारोंमेंसे पहले प्रकृतिविभक्ति नामके अर्थाधिकारका वर्णन करते हैं ।**

§ ४०. **गाहासुत्तम्मि समुद्दिट्ठछसु अहियारेसु पयडिविहत्तिं भणिस्सामो। एदेण गुणहराइरियभणिदपण्णारसअत्थाहियारं मोत्तूण सगसंकप्पियअत्थाहियाराणां चुण्णिसुत्तं भणामि त्ति उत्तं होदि। ण च एवं भणंतो जइवसहो गुणहराइरियपडिकूलो; अत्थाहियाराणमणियमदरिसणदुवारेण गुणहराइरियमुहविणिग्गयअत्थाहियाराण चेव परूवयत्तादो।**

§ ४०. गाथासूत्रमें कहे गये छह अर्थाधिकारोंमेंसे पहले प्रकृतिविभक्ति नामक अर्थाधिकारका कथन करते हैं। इससे यतिवृषभ आचार्यने यह सूचित किया है कि मैं गुणधर आचार्यके द्वारा कहे गये पन्द्रह अर्थाधिकारोंको छोड़कर स्वयं अपने द्वारा माने गये अर्थाधिकारोंके अनुसार चूर्णिसूत्र कहता हूं। यदि कहा जाय कि अपने द्वारा माने गये अर्थाधिकारोंके अनुसार चूर्णिसूत्रोंका कथन करनेसे यतिवृषभ आचार्य गुणधर आचार्यके प्रतिकूल हैं सो ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि यतिवृषभ आचार्यने अर्थाधिकारोंका अनियम दिखलाते हुए गुणधर आचार्यके मुखसे निकले हुए अर्थाधिकारोंका ही प्रतिपादन किया है।

**विशेषार्थ**–'पयडीए मोहणिज्जा' इत्यादि गाथामें स्वयं गुणधर आचार्यने प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, प्रदेशविभक्ति, झीणाझीण और स्थित्यन्तिक इन छह अधिकारोंका निर्देश किया है। इससे इतना तो मालूम पड़ ही जाता है कि इन्हे इन छहोंका कथन इष्ट है पर उनके अभिप्रायानुसार उनका समावेश दो या तीन अधिकारोंमें हो जाता है। यद्यपि यतिवृषभ आचार्यने उक्त छहों अधिकारोंका स्वतन्त्ररूपसे कथन किया है, जिससे अधिकारोंकी संख्याका ही भंग हो जाता है फिर भी उनका ऐसा करना गुणधर आचार्यके कथनके प्रतिकूल नहीं है क्योंकि स्वयं गुणधर आचार्यने जिन विषयोंका संकेत किया है उन्हींका यतिवृषभ आचार्यने स्वतन्त्र अधिकारों द्वारा विस्तारसे कथन किया है। तात्पर्य यह है कि गुणधर आचार्यने 'पयडीए मोहणिज्जा' इत्यादि गाथामें प्रकृतिविभक्ति, स्थितिविभक्ति और अनुभागविभक्ति इन तीनोंको मिलाकर एक अधिकार सूचित किया है। तथा प्रदेशविभक्ति, झीणाझीण और स्थित्यन्तिक इन तीनोंको मिलाकर दूसरा अधिकार सूचित किया है, पर यतिवृषभ आचार्यने इन प्रकृतिविभक्ति आदिका कथन पृथक् पृथक् किया है जो उनके 'तत्थ पयडिविहत्ति वण्णइस्सामो' इत्यादि चूर्णिसूत्रोंसे जाना जाता है। इस प्रकार यद्यपि यतिवृषभ आचार्यने दो अधिकारोंको छह अधिकारोंमें बांट दिया है फिर भी उन्होंने उन्हीं विषयोंका कथन किया है जिनका समावेश उक्त दो अधिकारोंमें किया गया है। इस प्रकार यद्यपि अधिकारोंकी संख्याका भंग हो जाता है फिर भी उनका यह कथन गुणधर आचार्य द्वारा कहे गये विषयके प्रतिकूल नहीं है।

*** 'पयडिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिविहत्ती च उत्तरपयडिविहत्ती च।**

§ ४१. एत्थ 'च' सद्दो किमट्ठं कदो ? समुच्चयट्ठं । जदि एवं, तो एक्केणेव सरइ बिदिय 'च' सद्दो अवणेयव्वो फलाभावादो; ण, दव्व-पज्जवट्ठियणयट्ठियजीवाणमणुग्गहट्ठं मूलपयडिविहत्ती उत्तरपयडी च, उत्तरपयडिविभत्ती मूलपयडी च इदि भण्णदे[2] [ पुणरुत्तदोसाभावा ]दो। मूलपयडी णाम एक्का चेव पज्जवट्ठियणयावलंबणाए मूलपयडित्ताणुववत्तीदो। तदो तत्थ णत्थि विहत्तिववएसो; भेदेण विणा तदणुववत्तीदो त्ति ? सच्चमेदं जदि अट्ठण्हं कम्माणमेयत्तं विवक्खियं, किं तु मोहणीयपयडीए एयत्तमेत्थ विवक्खियं तेण मूलपयडीए विहत्तिभावो जुज्जदे। मोहणीयं चेव विवक्खियमिदि कुदो णव्वदे[3] ? [ पयडीए मोहणि ]ज्जा त्ति एदम्हादो महाहियारादो। ण च पयडीण-

*** प्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी है–मूलप्रकृतिविभक्ति और उत्तर प्रकृतिविभक्ति।**

§ ४१. **शंका**–चूर्णिसूत्रमें 'च' शब्द किस लिये दिया है ?

**समाधान**–समुच्चयरूप अर्थके प्रकट करनेके लिये 'च' शब्द दिया है।

**शंका**–यदि ऐसा है तो एक 'च' शब्दसे ही काम चल जाता है, अतः दूसरा 'च' शब्द अलग कर देना चाहिये, क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है ?

**समाधान**–द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयमें स्थित जीवोंके उपकारके लिये चूर्णिसूत्रमें दो 'च' शब्द दिये गये हैं। जिससे यह अर्थ निकलता है कि द्रव्यार्थिक नयमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा प्रकृतिविभक्तिके मूल प्रकृतिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिविभक्ति ये दो भेद हैं और पर्यायार्थिक नयमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा उत्तरप्रकृतिविभक्ति और मूलप्रकृतिविभक्ति ये दो भेद हैं अतः दो 'च' शब्द देनेमें पुनरुक्त दोष नहीं है।

**शंका**–मूल प्रकृति एक ही है, और पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर मूलप्रकृति बन नहीं सकती है। अतः उसके साथ विभक्ति शब्दका व्यवहार करना ठीक नहीं है, क्योंकि भेदके बिना विभक्ति शब्दका व्यवहार नहीं बन सकता ?

**समाधान**–यदि यहां मूलप्रकृति पदसे आठों कर्मोंकी एक रूपसे विवक्षा की गई होती तो यह कहना ठीक होता किन्तु यहां मूलप्रकृतिके एक भेद मोहनीयकी विवक्षा है अतः मूलप्रकृतिमें विभक्तिपना बन जाता है।

**शंका**–यहां मोहनीय कर्म ही विवक्षित है यह कैसे जाना ?

**समाधान**–'पयडीए मोहणिज्जा' इस महाधिकारसे जाना है कि यहां मोहनीय कर्म

(१) एगेणेव 'च' सद्देण समुच्चयट्ठावगमादो विदिय 'च' सद्दो अणत्थओ त्ति णावणेदु सक्किज्जदे; अप्पिदेगणय पडुच्च परूवणाए कीरमाणाए मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती च उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती चेदि एग 'च' सद्दुच्चारणं मोत्तूण विदियसद्दुच्चारणाए अभावेण पुणरुत्तदोसाभावादो। **–जयध० प्रे० का० प० ९१८** । (२)–दे (त्रु० ⋯ ८)–दो **–स०**।–दो सुगमत्तादो **–अ०** (३)–व्वदे (त्रु० ⋯ ७) ज्जा त्ति–**स०**।–व्वदे मोहणीए विवज्जा त्ति–**अ०**।

**मेगो चेव सहावो त्ति आसंकणिज्जं; सम्मत्त-चरित्त-विणासणसहावं मोहणिज्जं, णाण-पच्छायणसहावं णाणावरणिज्जं, दंसणविणासण-सहावं दंसणावरणिज्जं, सुह-दुक्खुप्पा-यणसहावं वेयणीयं, भवधारणसहावमाउअं, सरीर-गइ-जाइ-वण्णादिणिप्पायणसहावं णामकम्मं, उच्च-णीचगोत्तेसुप्पायणसहावं गोदं, विग्घकरणम्मि वावदमंतराइयं; एवमट्ठण्हं पि कम्माणं पयडिविहत्तिदंसणादो। विहत्तिसद्दो कथं कम्मदव्वम्मि वट्टदे ? ण, अहियरणम्मि उप्पाइयस्स विहत्तिसद्दस्स तत्थ वत्तणे विरोहाभावादो।**

ही विवक्षित है।

आठों प्रकृतियोंका एक ही स्वभाव है ऐसी भी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्व और चारित्रका विनाश करना मोहनीयका स्वभाव है, ज्ञानका आच्छादन करना ज्ञानावरणका स्वभाव है, दर्शनका विनाश करना दर्शनावरणका स्वभाव है, सुख और दुःखको उत्पन्न करना वेदनीयका स्वभाव है, मनुष्य आदि पर्यायमें रोक रखना आयु कर्मका स्वभाव है, शरीर, गति, जाति और वर्णादिकको उत्पन्न करना नामकर्मका स्वभाव है, ऊंच और नीच गोत्रमें उत्पन्न कराना गोत्रकर्मका स्वभाव है और विघ्न करनेमें व्यापार करना अन्तरायकर्मका स्वभाव है। इस प्रकार आठों कर्मोंमें स्वभावभेद देखा जाता है।

**शंका**–भाववाची विभक्ति शब्द द्रव्यवाची कर्मके अर्थमें कैसे रहता है ?

**समाधान**–अधिकरण साधनमें व्युत्पादित विभक्ति शब्द द्रव्यकर्ममें रहता है, ऐसा मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

**विशेषार्थ**–ऊपर यह शंका उठाई गई है कि विभक्ति शब्द द्रव्य कर्ममें कैसे रहता है। इस शंकाका यह आशय प्रतीत होता है कि 'विभजनं विभक्तिः' इस प्रकार निरुक्ति करनेसे वि उपसर्ग पूर्वक भज् धातुसे भावमें 'स्त्रियां क्तिन' इस सूत्रसे क्तिन् प्रत्यय करने पर विभक्ति शब्द बनता है। जिसका अर्थ विभाग करना होता है। पर प्रकृतमें द्रव्यकर्म मोहनीयके स्थानमें या उसके साथ विभक्ति शब्द आता है जो उपयुक्त नहीं है, क्योंकि मोहनीय द्रव्यकर्म शब्द द्रव्यवाची है अतः उसके स्थानमें या उसके साथ भाववाची विभक्ति शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस शंकाका वीरसेनस्वामीने इस प्रकार समाधान किया है कि प्रकृतमें जो विभक्ति शब्द आता है वह भावमें व्युत्पादित विभक्ति शब्द न होकर अधिकरणमें व्युत्पादित विभक्ति शब्द है। अतः द्रव्यकर्मके स्थानमें या विशेषणविशेष्यभावरूपसे द्रव्य कर्मके साथ विभक्ति शब्दके प्रयोग करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। जब 'कर्मण्यधिकरणे च' इस सूत्रसे 'स्त्रियां क्तिन्' इस सूत्रमें 'अधिकरणे' इस पदकी अनुवृत्ति कर लेते हैं तब अधिकरणमें भी विभक्ति शब्द बन जाता है। ऐसी हालतमें विभक्ति शब्दकी निरुक्ति 'विभज्यतेऽस्यामिति विभक्तिः' यह होगी। जिसका

(१)–हाव (ता० ····४) करणम्मि–स०, अ०।

*** मूलपयडिविहत्तीए इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि । तं जहा—सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुगेत्ति ।**

§ ४२. उच्चारणाइरिएहि मूलपयडिविहत्तीए सत्तारस अत्थाहियारा जइवसहाइरिएण अट्ठेव अत्थाहियारा परूविदा । कथमेदेसिं दोण्हं वक्खाणाणं ण विरोहो ? ण, पज्जवट्ठिय-दव्वट्ठियणयावलंबणाए विरोहाभावादो । कथमट्ठहि सेसाहियारा संगहिया ? वुच्चदे । तं जहा, समुक्कित्तणा ताव पुध ण वत्तव्वा, संतेण विणा अट्ठण्हमहियाराणमत्थित्तविरोहादो । सादिय-अणादिय-धुव-अद्धुवअत्थाहियारा वि पुध ण वत्तव्वा; कालंतरेहि चेव तदत्थावगमादो । परिमाणं पि ण वत्तव्वं; अप्पाबहुगेत्ति तत्थ तस्स अंतब्भावादो । भावाहियारो वि ण वत्तव्वो; अणुत्तसिद्धीदो, मोहोदयविरहियाणं जीवाणं मूलपयडिसंताणुववत्तीदो । खेत्त-पोसणाणि च ण वत्तव्वाणि; उवदेसेण विणा तदव-

अर्थ 'जिसमें विभाग किया जाता है उसे विभक्ति कहते हैं' यह होता है ।

*** मूलप्रकृतिविभक्तिके विषयमें आठ अनुयोगद्वार हैं । वे इस प्रकार हैं–एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व ।**

§ ४२. **शंका**–उच्चारणाचार्यने मूल प्रकृतिविभक्तिके विषयमें सत्रह अर्थाधिकार कहे हैं और यतिवृषभाचार्यने आठ ही अर्थाधिकार कहे हैं, इसलिये इन दोनों व्याख्यानोंमें विरोध क्यों नहीं आता ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर उक्त दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं आता है ।

**शंका**–आठ अधिकारोंके द्वारा शेष नौ अधिकारोंका संग्रह कैसे हो जाता है ?

**समाधान**–इस शंकाका समाधान इस प्रकार है–समुत्कीर्तना नामक अधिकारको तो पृथक् नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, सत्त्वके बिना आठ अधिकारोंका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चार अर्थाधिकार भी पृथक् नहीं कहने चाहिये, क्योंकि, काल और अन्तर अर्थाधिकारके द्वारा ही सादि आदि अधिकारोंके विषयका ज्ञान हो जाता है । परिमाण अधिकार भी पृथक् नहीं कहना चाहिये, क्योंकि परिमाण अधिकारका अल्पबहुत्व अधिकारमें अन्तर्भाव हो जाता है । भावाधिकार भी पृथक् नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, बिना कहे ही उसका अस्तित्व जाना जाता है, क्योंकि जो जीव मोहनीय कर्मके उदयसे रहित हैं उनके प्रायः मूल प्रकृति मोहनीयका सत्त्व नहीं पाया जाता है । क्षेत्र और स्पर्शन अधिकार भी नहीं कहने चाहिये, क्योंकि, उपदेशके बिना ही क्षेत्र और स्पर्शनका ज्ञान हो जाता है । अथवा अल्पबहुत्वके साधन करनेके लिये द्रव्यका

गमादो, अप्पाबहुगसाहणट्टं दव्व-परिमाणे भण्णमाणे तदवगमादो वा। तम्हा विरोहो णत्थि त्ति सिद्धं।

*** एदेसु अणिओगद्दारेसु परूविदेसु मूलपयडिविहत्ती समत्ता होदि।**

§ ४३. जइवसहाइरिएण एदेसिमत्थाहियाराणं ण विवरणं कदं; सुगमत्तादो।

§ ४४. संपहि मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्टमुच्चारणाइरियमुहविणिग्गयमूलपयडिविवरणं भणिस्सामो। तं जहा, समुक्कित्तणा सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवविहत्ती अद्धुवविहत्ती एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुगं चेदि।

§ ४५. समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयस्स अत्थि विहत्तिया अविहत्तिया च। एवं मणुस्स-मणुसपज्जत्त-मणुस्सिणी-[पंचिंदिय] पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-अवगदवेद-अकसाइ-आभिणिबोहिय०-सुद०-ओहि०-मणपज्जवणाणि-संजद-जहाक्खाद०-चक्खुदंसण-अचक्खुदंसण-ओहिदंसण-सुक्कलेस्सा-भवसिद्धिय-सम्मादिट्ठि-खइय०-सण्णि-आहारि-अणाहारएत्ति वत्तव्वं। णेरइयादि जाव

परिमाण कहने पर क्षेत्र और स्पर्शनका ज्ञान हो जाता है, इसलिये दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध हो जाता है।

* इन आठों अनुयोगद्वारोंका कथन कर चुकने पर मूलप्रकृतिविभक्ति नामका पहला अर्थाधिकार समाप्त हो जाता है॥

§ ४३. सुगम होनेसे यतिवृषभाचार्यने इन आठों अर्थाधिकारोंका विवरण नहीं किया है।

§ ४४. अब मन्दबुद्धिजनोंका उपकार करनेके लिये उच्चारणाचार्यके मुखसे निकले हुए मूलप्रकृतिके विवरणको कहते हैं। वह इसप्रकार है–समुत्कीर्तना, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व।

§ ४५. इनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयविभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव हैं। इसीप्रकार मनुष्य सामान्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय सामान्य, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, यथाख्यातसंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी, आहारक और अनाहारक

**असण्णि त्ति सेससव्वमग्गणासु मोहणीयस्स अत्थि विहत्तिया अविहत्तिया णत्थि। एवं समुकित्तणा समत्ता।**

**§ ४६ सादिय-अणादिय-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा। अणादिया धुवा अद्धुवा च। सादियपदं णत्थि; खविदमोहणीयसमुब्भवाभावादो। एवमचक्खु-दंसण-भवसिद्धिया०। णवरि भवसिद्धिया० अणादिया० (भवसिद्धियाणं) धुवपदं णत्थि। णिच्चणिगोदेसु मोहणीयस्स धुवत्तमत्थि त्ति णासंकणिज्जं; तेसिं पि मोहवि-**

जीवोंके कहना चाहिये। अर्थात् इन जीवोंके मोहनीय कर्म पाया जाता है और नहीं भी पाया जाता है। नरकगतिसे लेकर असंज्ञी तक शेष समस्त मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्ति वाले जीव हैं, मोहनीय विभक्तिसे रहित जीव नहीं हैं।

**विशेषार्थ**–समुत्कीर्तना शब्दका अर्थ उच्चारणा है। इसमें विवक्षित धर्मकी अपेक्षा सामान्य और विशेषरूपसे जीवोंका अस्तित्व और नास्तित्व या सामान्य और विशेषरूपसे जीवोंमें विवक्षित धर्मका अस्तित्व और नास्तित्व बतलाया जाता है। ऊपर मोहनीय कर्मकी अपेक्षा कथन किया है। सामान्यसे मोहनीय कर्मसे युक्त और उससे रहित जीव हैं यह निर्देश किया है, क्योंकि उपशान्तमोह गुणस्थान तक सभी जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं और क्षीणकषाय गुणस्थानसे लेकर सभी जीव उससे रहित होते हैं। तथा जिन मार्गणास्थानोंमें ये दोनों प्रकारकी अवस्थाएं संभव हैं उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है। ऐसी मार्गणाओंके नाम ऊपर ही गिना दिये हैं। और जिन नरकगति आदि मार्गणाओंमें क्षीणकषाय आदि गुणस्थान नहीं पाये जाते उनमें मोहनीयका अस्तित्व ही कहा है।

इस प्रकार समुत्कीर्तना प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ४६. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है? मोहनीय विभक्ति अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। मोहनीय कर्ममें ओघकी अपेक्षा सादि पद नहीं है क्योंकि जिसने मोहनीय कर्मका समूल नाश कर दिया है ऐसे क्षीणकषाय जीवके फिरसे मोहनीय कर्मकी उत्पत्ति नहीं होती है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके ध्रुवपद नहीं है। यदि कहा जाय कि जो भव्य जीव नित्यनिगोदिया हैं उनमें ध्रुवपद देखा जाता है सो ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनके भी मोहनीयके नाश करनेकी शक्ति पाई जाती है। यदि उनके मोहनीयके नाश करनेकी शक्ति न मानी जाय तो वे भव्य न होकर अभव्योंके समान हो जायंगे।

(१) 'धुवमद्धुवणाईय अट्ठण्ह मूलपगईण' मूलपगतीण सतकम्म तिविह–अणादियधुवअधुव। कह? धुवसतकम्मत्तादेवादी णत्थि तम्हा अणादिय, धुवाधुवा पुव्वुत्ता ॥१॥ कर्मप्र० सत्ता०, चूर्णि० पत्र २७।

**णाणमत्तिसंभवादो। असंभवे च ण ते भव्वा; अभव्वसमाणत्तादो। मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-असंजद-मिच्छादिट्ठी० मोहविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? सादि-अणादि-धुव-अद्धुवा। अभव्व०मोहविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? अणादिया, धुवा च। अपगतवेद० मोहविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? सादिया अद्धुवा च। मोहअविहत्ती सादिया धुवा च। एवमकसाय-सम्माइट्ठि-खइय०-अणाहारएत्ति वत्तव्वं। णवरि, अणाहा० अद्धुवपदं पि अत्थि। सेससव्वमग्गणाणं मोहविहत्ती जहासंभवं अविहत्ती च सादि-अद्धुवा।**

मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत और मिथ्यादृष्टि जीवोंके मोहनीयविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है ? उक्त मार्गणाओंमें मोहविभक्ति सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों रूप है। अभव्य जीवोंके मोहविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है ? अभव्य जीवोंके मोहविभक्ति अनादि और ध्रुव है।

अपगतवेदी जीवोंके मोहविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है ? अपगतवेदी जीवोंके मोहविभक्ति सादि और अध्रुव है। तथा अपगतवेदी जीवोंके मोह-अविभक्ति अर्थात् मोहनीय का अभाव सादि और ध्रुव है। इसी प्रकार अकषायी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अनाहारक जीवोंके मोहनीय अविभक्तिका अध्रुव पद भी है। शेष सभी मार्गणाओंमें मोहविभक्ति तथा यथासंभव मोह-अविभक्ति सादि और अध्रुव हैं।

**विशेषार्थ**—गोमट्टसार कर्मकाण्डमें जो 'सादी अबंधबंधे' इत्यादि गाथा आई है उसमें बन्धकी अपेक्षा सादित्व आदिका विचार किया है, सत्त्वकी अपेक्षा नहीं। फिर भी वहां सादि आदिके विषयमें बन्धकी अपेक्षा जो व्यवस्था दी है वह यहां सत्त्वकी अपेक्षासे जानना। इनमेंसे सामान्यकी अपेक्षा मोहनीय कर्ममें अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये तीन पद ही घटित होते हैं सादिपद नहीं। यही व्यवस्था अचक्षुदर्शनी जीवोंके जानना चाहिये। भव्योंके ध्रुव पदको छोड़कर मोहनीय कर्मके दो पद ही पाये जाते हैं। ये दोनों मार्गणाएं मोहनीयकी सत्त्वव्युच्छित्ति तक निरन्तर रहती हैं इसलिये इनमें सादिपद संभव नहीं। भव्योंके ध्रुवपद नहीं होनेका कारण स्पष्ट है। मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत और मिथ्यादृष्टि ये चार मार्गणाएं अनादि और सादि दोनों प्रकारकी हैं। जिन जीवोंने कभी भी मिथ्यात्व गुणस्थानको नहीं छोड़ा है और न छोड़नेकी संभावना है उनकी अपेक्षा अनादि हैं और शेष जीवोंकी अपेक्षा सादि हैं। तथा इन मार्गणाओंमें भव्य और अभव्य दोनों प्रकारके जीव पाये जाते है, अतः इनमें मोहनीयके सादि आदि चारों पद संभव हैं। अभव्य

(१) मोहविहत्ती–अ०।

एवं सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमो समत्तो ।

§ ४७. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहणीयविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स संतकम्मियस्स । अविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स णट्ठमोहसंतकम्मस्स । एवमप्पणो पदाणं णेदव्वं जाव अणाहारएत्ति । एवं सामित्तं समत्तं ।

जीवोंके अनादि और ध्रुव पद ही होता है यह स्पष्ट ही है । अपगतवेदी, अकषायी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, और अनाहारक आदि मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें मोहनीय कर्मका सद्भाव और मोहनीय कर्मका अभाव दोनों पाये जाते हैं । तथा ये मार्गणाएं सादि हैं, अतः इनमें मोहनीयके सद्भावकी अपेक्षा सादि और अध्रुव ये दो पद ही होते हैं। पर इन मार्गणाओंमें स्थित जिन जीवोंके मोहनीय कर्मका अभाव हो गया है उनके पुनः मोहनीय कर्म नहीं पाया जाता। अत: इन मार्गणाओंमें मोहनीय कर्मके अभावकी अपेक्षा सादि और ध्रुव ये दो पद होते हैं। यहां ध्रुवपद स्थायित्वकी अपेक्षासे कहा है । इतनी विशेषता है कि समुद्घातगत सयोगिकेवलियोंके अनाहारकत्व सादि और सान्त है, अतः अनाहारक जीवोंके मोहनीयकी अविभक्तिका अध्रुव पद भी होता है । इनसे अतिरिक्त शेष मार्गणाओंमें नरकगति आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें मोहविभक्ति ही है और यथाख्यातसंयत आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें मोहविभक्ति और मोह अविभक्ति दोनों हैं । इनमें पूर्वोक्त व्यवस्थाके अनुसार सादि आदि पद जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार सादि अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४७. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयविभक्ति किसके है ? जिसके मोहनीय कर्मका सत्त्व पाया जाता है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयविभक्ति है । मोहनीय-अविभक्ति किसके है ? जिसके मोहनीय कर्मके सत्त्वका नाश हो गया है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीय-अविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जहां दोनों या एक जितने पद संभव हों उनका कथन कर लेना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–गुणस्थानोंकी अपेक्षा मोहनीय कर्म ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है और आगे उसका असत्त्व है । अतः ओघसे मोहनीय विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले दोनों प्रकारके जीव बन जाते हैं । जब आदेशकी अपेक्षा विचार करते हैं तो वहां भी जिस मार्गणामें ग्यारहवेंसे नीचेके ही गुणस्थान संभव हैं वहां मोहविभक्ति ही होती है । और जिस मार्गणामें ग्यारहवेंसे आगेके गुणस्थान भी संभव हैं वहां मोहविभक्ति और मोह-अविभक्ति दोनों होती हैं ।

इस प्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४८. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? अणादिया अपज्जवसिदा, अणादियां सपज्जवसिदा। अविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? सादिया अपज्जवसिदा। एवमचक्खुदंसणाणं। णवरि अविहत्ती जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

§ ४९. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु मोहणीयविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण दस-वस्स-सहस्साणि; उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि। पढमाए विदियाए तदियाए चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण दस-वास-सहस्साणि एग-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि। उक्कस्सेण सग-सग-ट्ठिदि (दी)।

§ ४८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयविभक्तिका कितना काल है? अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है। मोह-अविभक्तिका कितना काल है? सादि-अनन्त काल है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी जीवोंके मोहविभक्ति और मोहअविभक्तिका काल कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके मोह अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ–अभव्य जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयका काल अनादि-अनन्त है। तथा इतर जीवोंके मोहनीयका काल अनादि-सान्त है। अचक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक सभी संसारी जीवोंके निरन्तर रहता है इसलिये अचक्षुदर्शनी जीवोंके मोहनीयका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त दोनों प्रकारका बन जाता है। मोह-अविभक्तिका काल सादि-अनन्त इसलिये है कि उसका आदि तो है, क्योंकि जब कोई जीव बारहवें गुणस्थानको प्राप्त होता है तभी उसका प्रारम्भ होता है। पर मोह-अविभक्तिका अन्त कभी नहीं होता, क्योंकि जिसने मोहनीयका पूरी तरहसे अभाव कर दिया है उसके पुनः मोहनीय कर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। पर अचक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक ही होता है और बारहवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है। अतः अचक्षुदर्शनी जीवोंके मोह-अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ४९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है? एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। तथा पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं पृथिवीमें रहनेवाले नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल सातों नरकोंमें क्रमसे दस हजार वर्ष, साधिक एक सागर, साधिक तीन सागर, साधिक सात सागर, साधिक दस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक बाईस सागर है। तथा उत्कृष्ट काल अपने अपने

(१)–विमवप–स०। (२)–सबासव–स०।

**§ ५०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। पंचिंदियतिरिक्ख-**

नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

**विशेषार्थ**–नरकमें मोहनीयकर्मका एक जीवकी अपेक्षा कहां कितने काल तक सत्त्व पाया जाता है इसका विचार किया गया है। सामान्यसे नरकमें एक जीवकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है, अतः सामान्यसे एक जीवकी अपेक्षा मोहनीयके सत्त्वका जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर होता है। पर प्रत्येक पृथिवीकी अपेक्षा विचार करने पर जहां जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति है वहां मोहनीयकर्मका सत्त्व भी एक जीवकी अपेक्षा उतने काल तक समझना चाहिये। अर्थात् इतने काल तक वह जीव विवक्षित नरकमें रहता है उसके बाद दूसरी गतिमें चला जाता है, इसलिये वहां उस जीवकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सत्त्व उतने कालतक ही कहा गया है। आगे जहां भी एक जीवकी अपेक्षा काल बतलाया है वहां भी यही अभिप्राय समझना चाहिये।

§ ५०. **तिर्यंचगतिमें** तिर्यंचोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंमें जितने समय हों उतना है।

**विशेषार्थ**–एक जीवके तिर्यंचगतिमें रहनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है जो अनन्त कालके बराबर होता है। जब कोई एक मनुष्य जीव लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचमें सबसे जघन्य आयु खुद्दाभवग्रहणको लेकर उत्पन्न होता है और आयुके समाप्त हो जाने पर पुनः मनुष्यगतिमें चला जाता है तब तिर्यंचगतिमें रहनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्राप्त होता है। तथा जब कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर तिर्यंचगतिमें ही निरन्तर परिभ्रमण करता रहता है तो उस जीवके तिर्यंचगतिमें रहनेका काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंसे अधिक नहीं होता है, इसके बाद वह नियमसे अन्य गतिमें चला जाता है, इसलिये एक जीवके तिर्यंच गतिमें निरन्तर रहने का उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्राप्त होता है। इसी विवक्षासे तिर्यंचगतिमें एक जीवकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्व क्रमसे खुद्दाभवग्रहण और असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनरूप कहा है। तिर्यंचगतिमें ऐसे भी अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने अभी तक दूसरी पर्याय प्राप्त नहीं की है और न आगे करेंगे। यद्यपि उनकी अपेक्षा तिर्यंचगतिमें मोहनीयका काल अनादि-अनन्त होता है। पर वह काल यहां विवक्षित नहीं है, क्योंकि काल प्ररूपणामें सादि-सान्त कालकी अपेक्षा विचार किया है।

**पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि**

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल क्रमशः खुद्दाभवग्रहण, अन्तर्मुहूर्त और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल प्रत्येकका पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है।

**विशेषार्थ**–पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकारके तिर्यंचोंका ग्रहण हो जाता है, अतएव उनकी अपेक्षा जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण कहा है। पर पर्याप्त जीवोंकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं है, अतः पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा उक्त तीनों प्रकारके जीवोंकी पर्यायको प्राप्त होकर प्रत्येकका तिर्यंचगतिमें रहनेका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अर्थात् पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जीव पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य काल तक रहता है, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तोंमें सेतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य काल तक रहता है और योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य काल तक रहता है। यथा-कोई एक जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और वहां संज्ञी स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमण करके अनन्तर इसीप्रकार असंज्ञी स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमण करके पश्चात् लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें उत्पन्न हुआ। वहां अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर पश्चात असंज्ञी पर्याप्त होकर वहां स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदके साथ क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमण करके पुनः संज्ञी स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटि और पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटि काल तक रह कर तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें रहकर देव हो जाता है। इस प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य काल प्राप्त हो जाता है। पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंमें काल कहते समय ऊपर बीचमें जो लब्ध्यपर्याप्त भवका ग्रहण कराया गया है उसे नहीं कराना चाहिये, क्योंकि, पर्याप्तकताके साथ लब्ध्यपर्याप्तकताका विरोध है। इसलिये संज्ञी और असंज्ञी जीवोंमें तीनों वेदोंके साथ जो दो दो बार उत्पन्न कराया है ऐसा न करके एक बार ही उत्पन्न कराना चाहिये और अन्तके वेदमें आठ पूर्वकोटिके स्थानमें सात पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमणका विधान करना चाहिये। इसप्रकार करनेसे पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य होता है। योनिमती पर्याप्त तिर्यंचोंमें असंज्ञीकी अपेक्षा आठ और संज्ञीकी अपेक्षा सात पूर्वकोटियोंका ही विधान करना चाहिये, क्योंकि, इनके स्त्रीवेदके अतिरिक्त दूसरा वेद नहीं पाया जाता है। इसप्रकार योनिमती पर्याप्त तिर्यंचोंमें परिभ्रमणका काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य प्राप्त होता

पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एवं मणुस-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्ताणं वत्तव्वं।

§ ५१. मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मोहविहत्तीए पंचिंदिय-तिरिक्खतिगभंगो। अविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पुव्व-कोडी देसूणा।

है। इसी अपेक्षासे उक्त तीनों प्रकारके जीवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है। यहां पृथक्त्वका अर्थ तीनसे ऊपर और नौसे नीचेकी संख्या न लेकर विपुल लेना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त और त्रस लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी मोहनीय कर्मका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–उक्त गतिके जीव लब्ध्यपर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा कमसे कम खुद्दाभवग्रहण काल तक विवक्षितपर्यायमें रहकर अन्य गतिको चले जाते हैं। तथा अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर अन्य गतिको चले जाते हैं। क्योंकि, विवक्षित पर्यायमें लगातार आगमोक्त संख्यात खुद्दाभवोंके ग्रहण करने पर भी उनके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता है। इसी अपेक्षासे यहां मोहनीयका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ५१. मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके मोहनीय विभक्तिका काल क्रमशः पंचेन्द्रिय सामान्य तिर्यंच, पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंच इन तीनोंके अनुसार कहे गये कालके समान जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य समझना चाहिये। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंके मोहनीय अविभक्तिका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि है।

**विशेषार्थ**–मनुष्यगतिके जीव संज्ञी ही होते हैं, इसलिये तिर्यंचोंमें असंज्ञियोंकी अपेक्षा जो पूर्वकोटियां कही हैं वे यहां नहीं कहना चाहिये, अतः उन्हें अलग कर देनेपर सामान्य मनुष्योंमें सैतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, पर्याप्त मनुष्योंमें तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और मनुष्यनियोंमें सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। तथा जघन्यकाल उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका खुद्दाभवग्रहण व अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर और उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमेंसे किसी एकमें उत्पन्न होकर तथा उक्त-

(१,–वे तस्स अ–आ०।

§ ५२. देवगइए देवेसु मोहविहत्तीए णेरइयभंगो। णवरि भवणवासियादि जाव सव्वट्टसिद्धि त्ति सग सग जहण्णुक्कस्स ट्ठिदी भणिदव्वा। तं जहा, भवणादि जाव सव्वट्ठेत्ति मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि दसवस्ससहस्साणि पलिदोवमस्स अट्ठमभागो, पलिदोवमं सादिरेयं, वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस वीस बावीस तेवीस चउवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगुणत्तीस तीस एक्कत्तीस बत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। उक्कस्सेण सागरोवमं सादि-

काल तक रहकर यदि अन्य गतिको चला जाय तो जघन्यकाल उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है। इसी अपेक्षासे उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीय कर्मका जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहण व अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयके असत्त्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि किसी एक क्षीणकषायी मनुष्यके सयोगी होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक रह, समुद्घातकर और योगनिरोधके साथ अयोगी होकर मोक्ष चले जानेमें जितना काल लगता है उस सबका योग भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है। तथा मोहनीय कर्मके अभावका उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि कहनेका कारण यह है कि किसी एक मनुष्यने गर्भसे लेकर आठ वर्षकी अवस्था होने पर संयमको प्राप्त किया और अन्तर्मुहूर्त प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें रहा। अनन्तर अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपरायमें एक एक अन्तर्मुहूर्त रहकर क्षीणमोह हो गया। इस प्रकार क्षीणमोह होनेतक छह अन्तर्मुहूर्त होते हैं। तो भी इनका योग एक अन्तर्मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक पूर्वकोटिमें से आठवर्ष अन्तर्मुहूर्त कम कर देनेपर मोहनीय कर्मके असत्त्वके साथ मनुष्य पर्यायमें रहनेका उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि प्राप्त हो जाता है।

§ ५२. देवगतिमें-देवोंमें मोहनीय विभक्तिका काल नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय कर्मका जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। वह इस प्रकार है-भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? भवनवासियोंमें दस हजार वर्ष, व्यंतरोंमें दस हजार वर्ष, ज्योतिषियोंमें पल्यके आठवें भाग प्रमाण, सौधर्म-ऐशान कल्पमें साधिक पल्य, सनत्कुमार-माहेन्द्रमें साधिक दो सागर, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें साधिक सात सागर, लान्तव-कापिष्ठमें साधिक दस सागर, शुक्र-महाशुक्रमें साधिक चौदह सागर, सतार-सहस्रारमें साधिक सोलह सागर, आनत-प्राणतमें साधिक अठारह सागर, आरण-अच्युतमें साधिक बीस सागर, नौ ग्रैवेयकोंमें क्रमसे साधिक बाईस, साधिक तेईस, साधिक चौबीस, साधिक पच्चीस, साधिक छब्बीस, साधिक सत्ताईस, साधिक अट्ठाईस, साधिक उनतीस और साधिक तीस सागर, नव अनुदिशोंमें साधिक इकतीस सागर और चार अनुत्तरोंमें साधिक बत्तीस सागर प्रमाण जघन्य काल

**रेयं पलिदोवमं सादिरेयं [पलिदोवमं सादिरेयं] बे सागरोवमाणि [सादिरेयाणि] सत्त-दस-चोद्दस-सोलस-अट्ठारस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि, वीस-बावीस-तेवीस-चउवीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगुणतीस तीस-एक्कतीस-बत्तीस-तेत्तीस-सागरोवमाणि। णवरि, सव्वट्ठे जहण्णुक्कस्सभेदो णत्थि।**

**§ ५३. इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचकाय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं खुद्दाबंधे जो आलावो सो कायव्वो।**

है। और उत्कृष्टकाल भवनत्रिकमें क्रमशः साधिक एक सागर, साधिक पल्य, साधिक पल्य, सोलह स्वर्गोंमें साधिक दो सागर, साधिक सात सागर, साधिक दस सागर, साधिक चौदह सागर, साधिक सोलह सागर, साधिक अठारह सागर, बीस सागर, बाईस सागर, नौ ग्रैवेयकोंमें क्रमसे तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागर, नौ अनुदिशोंमें बत्तीस सागर, और पांच अनुत्तरोंमें तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका भेद नहीं पाया जाता।

**विशेषार्थ**–यहां नारकियोंके कालके समान जो देवोंमें मोहनीय कर्मका काल कहा है वह सामान्यकी अपेक्षासे है, क्योंकि, दोनों गतियोंमें जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण होती है। विशेषकी अपेक्षा तो देवोंके जिस भेदमें जहां जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति हो वहां मोहनीय कर्म का उतना जघन्य और उत्कृष्टकाल समझना चाहिये जिसका कि ऊपर उल्लेख किया ही गया है।

§ ५३. **इन्द्रिय मार्गणाके** अनुवादसे सामान्य एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय और उनके बादर और सूक्ष्म तथा सभी बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त इनका खुद्दाबन्धमें जो काल बताया है वही इनमें मोहनीय विभक्तिका काल समझना चाहिये।

**विशेषार्थ**–खुद्दाबन्धमें सामान्य एकेन्द्रियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण बताया है। असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनोंके समयोंकी यदि गणना की जाय तो उसका प्रमाण अनन्त होता है। बादर एकेन्द्रियोंका जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है। यहां अंगुलके असंख्यातवें भागसे असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंके कालका ग्रहण किया है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष बतलाया है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण बतलाया है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तोंका जघन्यकाल

**५४. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज त-तस-तसपज्जत्ताणं मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुध-**

अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही बतलाया है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बतलाया है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त इन जीवोंका जघन्य काल क्रमशः खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष कहा है। द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। काय मार्गणाकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अप्कायिक और वायुकायिक जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। बादर पृथिवी, बादर जल, बादर अग्नि, बादर वायु और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर इनका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण कहा है। यहां कर्मस्थितिसे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण काल लेना चाहिये। बादर पृथिवी पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष कहा है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष, बादर जलकायिक पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष, बादर अग्निकायिक पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति तीन दिन, बादर वायुकायिक पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष प्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है। सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त और अपर्याप्तोंका काल जिस प्रकार ऊपर कह आये हैं उस प्रकार समझना चाहिये। इसप्रकार इन उपर्युक्त जीवोंका जो जघन्य और उत्कृष्ट काल है वही यहां मोहनीयका जघन्य और उत्कृष्ट काल है।

५४. पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त तथा त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? पंचेन्द्रिय और त्रसके जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त और त्रसपर्याप्त जीवके जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट काल पंचेन्द्रिय जीवके पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक हजार सागर, पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके सौ पृथक्त्व

**त्तेणब्भहियं, सागरोवमसदपुधत्तं, वेसागरोवमसदसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वेसागरोवमसहस्सं। अविहत्तियाणं मणुसभंगो।**

**§ ५५. पंचमण०-पंचवचि० विहत्ती अविहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।**

सागर, त्रसजीवके पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और त्रसपर्याप्त जीवके पूरे दो हजार सागर है। तथा मोहनीय कर्मसे रहित पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल मोहनीय कर्मसे रहित मनुष्योंके कालके समान जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**–कोई एक जीव यदि पंचेन्द्रियोंमें निरन्तर परिभ्रमण करे तो वह पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक हजार सागर कालतक ही पंचेन्द्रिय रहता है, अनन्तर उसकी पंचेन्द्रिय पर्याय छूट जाती है। इसीप्रकार पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवका भी अपने अपने उक्त उत्कृष्ट कालतक उस उस पर्यायमें निरन्तर अधिकसे अधिक परिभ्रमणका प्रमाण समझना चाहिये। इनका जघन्य काल स्पष्ट ही है। इन पंचेन्द्रियादिकोंमें मोहनीय कर्मका अभाव मनुष्यके ही होता है, अतः मनुष्यगतिमें जो मोहनीयके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल ऊपर कह आये हैं वही पचेन्द्रियादि चारोंकी अपेक्षासे भी समझना चाहिये।

§ ५५. पांचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीय विभक्ति और अविभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–कोई एक मोह विभक्ति वाला काययोगी जीव काययोगका काल पूरा हो जाने पर विवक्षित मनोयोगको प्राप्त हुआ। वहां वह एक समय तक रहा अनन्तर मर कर काययोगी हो गया। अथवा कोई एक मोहविभक्तिवाला काययोगी जीव काययोगका काल पूरा हो जाने पर विवक्षित मनोयोगको प्राप्त हुआ जो कि एक समय तक रहा। अनन्तर व्याघात हो जानेसे दूसरे समयमें पुनः उसके काययोग हो गया। इस प्रकार विवक्षित मनोयोगके साथ मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार वचन योगकी अपेक्षासे मोहविभक्तिके एक समय प्रमाण कालका कथन करना चाहिये। मोहअविभक्ति क्षीणमोहगुणस्थानसे होती है। और क्षीणमोह गुणस्थानमें पृथक्त्ववितर्कवीचार तथा एकत्ववितर्कअवीचार ये दोनों ध्यान सम्भव हैं। वीरसेन स्वामी कर्म अनुयोगद्वारमें ध्यानका कथन करते हुए लिखते हैं कि '(१)क्षीणकषायके कालमें सर्वत्र एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान ही होता है यह बात नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर वहां परिवर्तन द्वारा योगका एक समय प्रमाण कालका कथन नहीं बन सकता है। अतः

(१) –ण खीणकसायद्धाए सव्वत्थ एयत्तविदक्कावीचारज्झाणमेव जोगपरावत्तीए एगसमयपरूवणण्णहाणुववत्तीदो। बलेण तदद्धादीए पुधत्तविदक्कवीचारस्स वि संभवसिद्धीदो। ध० क० प० पृ० ८३९ उ०।

§ ५६. कायजोगी० विहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगसमओ। उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अविहत्ती० मणजोगिभंगो। एवमोरालिय०। णवरि विहत्ती उक्कस्सेण वावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि। ओरालियमिस्स० विहत्ती जह० खुद्दा० तिसमयाणं (-ऊणं) उक्क सेण अंतोमुहुत्तं। अविहत्ती केव० ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। वेउव्विय०-आहार०विहत्ती० मण०भंगो। वेउव्वियमिस्स०विहत्ती केव-चि० ? जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमाहारमिस्स०-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठी०। कम्मइय० विहत्ती जह० एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया। अविहत्ती केव०? जहण्णुक्क० तिण्णि समया।

इससे जाना जाता है कि क्षीणकषायके प्रारम्भमें पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान भी सम्भव है तथा अद्धापरिमाणका निर्देश करते समय तीनों योगोंके कालसे एकत्व वितर्क अविचार ध्यानका काल बहुत अधिक बतलाया है और एकत्ववितर्क अवीचार ध्यानके कालसे क्षीणकषायका काल बहुत अधिक बतलाया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि क्षीण-कषाय गुणस्थानमें उक्त दोनों ध्यान सम्भव हैं। अतः जो सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीव विवक्षित मनोयोग और वचनयोगके कालमें एक समय शेष रहने पर क्षीणकषायी होता है उसके विवक्षित मनोयोग और वचनयोगमें मोहअविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा सभी मनोयोगों और वचनयोगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनकी अपेक्षा मोहविभक्ति और मोहअविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ५६. काययोगियोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। तथा काययोगियोंके मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मनोयोगियोंके समान है। इसी प्रकार औदा-रिककाययोगियोंके भी समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगियोके मोहनीय विभक्तिका उत्कृष्ट काल देशोन बाईस हजार वर्ष है। औदारिक मिश्रकाययो-गियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। और मोहनीय अविभक्तिका कितना काल है ? मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। वैक्रियिक काययोगी और आहार-ककाययोगी जीवोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मनोयोगियोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्य-ग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवोंके जानना चाहिये। कार्मणकाययोगियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। और अविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारसे तीन समय काल है।

**§ ५७. वेदाणुवादेण इत्थिवेदपुरिसवेदविहत्ती केवचि० ? जह० एगसमओ अंतो-**

**विशेषार्थ**–क्षपक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानके कालमें एक समय शेष रहने पर जिसे काययोगकी प्राप्ति होती है उसकी अपेक्षा काययोगमें मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण होता है इस अपेक्षासे काययोगमें मोहविभक्तिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। मनोयोगमें मोह अविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पहले घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार काययोगमें मोह अविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त घटित करके जानना। इसी प्रकार औदारिक काययोगियोंके मोहविभक्ति और मोह अविभक्तिका काल जानना। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके मोह विभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष होता है क्योंकि औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है इससे अधिक नहीं। यहां कुछ कमसे मतलब पर्यायके प्रारम्भमें होनेवाले कार्मणकाययोग और औदारिक मिश्रकाययोगके कालसे है। इन दोनोंके सम्मिलित काल अन्तर्मुहूर्तको बाईस हजार वर्ष-मेंसे कम कर देने पर शेष समस्त कालमें औदारिककाययोग होता है। औदारिकमिश्र-काययोगमें मोहविभक्तिका जो जघन्य काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है इसका कारण यह है कि सबसे जघन्य क्षुद्रभवको ग्रहण करनेवाले लब्ध्यपर्याप्तकके औदारिक मिश्रका जघन्य काल होता है तथा उत्कृष्ट काल संख्यात हजार क्षुद्रभवोंमें परिभ्रमण करके जो पर्याप्तकमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो जाता है उसके होता है। तो भी इस कालका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है। औदारिकमिश्रकाययोगमें मोह अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय सयोगिकेवलीके कपाट समुद्घातकी अपेक्षा कहा है। वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय मरण और व्याघातकी अपेक्षा प्राप्त होता है तथा इनका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इन योगोंमें मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त मनोयोगके समान बन जाता है। वैक्रियिकमिश्र, आहारक मिश्र, उपशम सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्या-दृष्टिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है अतः यहां मोहविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। कार्मण काययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है अतः यहां मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा। तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घातके समय कार्मणकाययोग ही होता है जिसका काल तीन समय है। अतः इस अपेक्षासे कार्मणकाययोगमें मोह अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा।

**§ ५७. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवके मोहनीयविभक्तिका**

**मुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी। णवुंस०विहत्ती केव० ? जह० एगसमओ उक्क० अणंतकालं०। अवगदवेद० विहत्ती केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अविहत्ती० ओघभंगो।**

**§ ५८. कसायाणुवादेण कोहादिचउक्कविहत्ती केव० ? जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं।**

कितना काल है ? स्त्रीवेदीके जघन्य काल एक समय और पुरुषवेदीके जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंके उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। नपुंसकवेदियोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अपगतवेदियोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अपगतवेदियोंके मोहनीय अविभक्तिके कालका कथन ओघके समान है।

**विशेषार्थ**–जो पहले स्त्री वेदी या नपुंसकवेदी था वह उपशम श्रेणीसे उतरते समय सवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर पुरुष वेदके साथ देव हुआ, उसके उक्त दोनों वेदोंकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका काल एक समय पाया जाता है। जो पहले सवेदी था वह उपशमश्रेणी पर चढ़कर एक समयके लिये अपगतवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर पुरुषवेदी हो गया उसके मोहनीय विभक्तिका काल एक समय पाया जाता है। पुरुषवेदकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं हो सकता। वह इस प्रकार है–जो पहले पुरुषवेदी था वह उपशमश्रेणीसे उतरते समय पुरुषवेदी होकर इससे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक विश्राम करके जब पुनः उपशम श्रेणी पर आरोहण करके अवेदभावको प्राप्त होता है तब उसके पुरुषवेदके साथ मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। उत्कृष्टरूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदके साथ मोहनीय कर्मका काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण बतलाया है। यहां अपनी अपनी स्थितिसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदीकी केवल एक पर्याय प्रमाण स्थितिका ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु जितनी पर्यायोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अविच्छिन्न धारा चलती है तत्प्रमाण स्थिति लेना चाहिये। स्त्रीवेदका उत्कृष्ट काल पल्योपम शतपृथक्त्व है और पुरुषवेदका उत्कृष्ट काल सागरोपम शतपृथक्त्व है। अतः इन दोनों वेदोंके साथ मोहनीय विभक्तिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही समझना चाहिये। एकेन्द्रिय जीवोंकी प्रधानतासे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण कहा है, अतः नपुंसकवेदके साथ मोहनीय कर्मका काल भी तत्प्रमाण सिद्ध होता है। अपगतवेदियोंके मोहनीय विभक्ति अन्तर्मुहूर्तसे अधिक कालतक नहीं पायी जाती है यह स्पष्ट ही है।

§ ५८. **कषायमार्गणाके** अनुवादसे क्रोधादि चारों कषायवालोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल है। कषाय रहित जीवोंके अपगत वेदियोंके समान कथन करना चाहिये।

(१)–असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अ०।

**अकसाई० अवगदवेदभंगो। णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु विहत्तीए तिण्णि भंगा। जो सो सादि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टा। विहंग० विहत्ती केव० ? जह० एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। आभिणिबोहिय०-सुद०-ओहि० विहत्ती जह० अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। अविहत्ती० जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। मणपज्जव० विहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। अविहत्ती० जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।**

**विशेषार्थ**–क्रोधादि चारों कषायोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है इसमें दो मत पाये जाते हैं। एक मतके अनुसार क्रोधादि कषाय एक समय रहकर भी मरणादिकके निमित्तसे बदली जा सकती हैं। और दूसरे मतके अनुसार क्रोधादिका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं होता है। यहां दूसरी मान्यताका ही ग्रहण किया है। तदनुसार क्रोधादि चारोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

**ज्ञानमार्गणाके** अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिके कालकी अपेक्षा तीन विकल्प होते हैं–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। उनमेंसे जो सादि-सान्त विकल्प है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन होता है। विभंगज्ञानियोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल देशोन तेतीस सागर है। आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक छियासठ सागर है। तथा मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनःपर्ययज्ञानियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। तथा मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान अभव्य जीवोंके अनादि-अनन्त भव्य जीवोंके अनादि-सान्त और जिन्हें एक बार सम्यग्दर्शन हो कर पुनः मिथ्यात्वकी प्राप्ति हुई है उनके सादि-सान्त काल तक पाया जाता है। उनमेंसे यहां सादि-सान्त मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका काल बताया है। जो सम्यक्त्वी जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है उसके उक्त दोनों अज्ञानोंके साथ मोहनीय विभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक पाई जाती है। तथा जो सम्यक्त्वी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके मोहनीय विभक्ति उक्त दोनों अज्ञानोंके साथ कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक पाई जाती है। जो उपशम सम्यग्दृष्टि देव या नारकी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन-

§ ५६. संजमाणुवादेण संजद० विहत्ती० अविहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा। सामाइयछेदो० विहत्ती केव०? जह० एगसमओ उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। परिहारवि० विहत्ती केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं संजदासंजद०। सुहुमसांपराइय० विहत्ती केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

सम्यग्दृष्टि होकर द्वितीय समयमें मरकर जब तिर्यंच या मनुष्य हो जाता है, तब उसके विभंगज्ञानके साथ सासादन गुणस्थानमें मोहनीय विभक्ति एक समय तक देखी जाती है। विभंगज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होता है इसलिये अपर्याप्त अवस्थाके कालको कम कर देने पर सातवें नरकमें विभंगज्ञानके साथ मोहनीय विभक्ति देशोन तेतीस सागर काल तक प्राप्त होती है। मतिज्ञानादि तीनों ज्ञानोंके साथ मोहनीय विभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है यह तो स्पष्ट है पर उत्कृष्ट रूपसे साधिक छियासठ सागरोपम काल तक कैसे पाई जाती है इसका स्पष्टीकरण करते हैं–किसी एक देव या नारकी जीवने उपशम सम्यक्त्वसे वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया और वह उसके साथ वहां अन्तर्मुहूर्त रहा। अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटिकी आयु वाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः क्रमसे बीस सागर आयुवाले देवोंमें, पूर्व कोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें, बाईस सागर आयुवाले देवोंमें और पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः यहां क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिका प्रारंभ करके चौबीस सागर आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर और वहांसे आकर पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अल्पल्प आयुके शेष रहने पर क्षपकश्रेणीका आरोहण करके क्षीणकषायी हो गया। उसके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानके साथ साधिक छ्यासठ सागर काल तक मोहनीय विभक्ति पाई जाती है। यहां साधिकसे चार पूर्वकोटि कालका ग्रहण किया है। इन तीनों ज्ञानोंके साथ मोहनीय विभक्तिका अभाव अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है यह स्पष्ट ही है। कोई एक मनःपर्ययज्ञानी मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्तिके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालमें क्षीणकषायी हो जाय तो उसके मनःपर्ययज्ञानके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल तक मोहनीय विभक्ति पाई जाती है। पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने आठ वर्षकी वयमें ही संयमके साथ मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया है उसके देशोन पूर्वकोटि काल तक मनःपर्ययज्ञानके साथ मोहनीय विभक्ति पाई जाती है।

§ ५६. **संयममार्गणाके** अनुवादसे संयतोंके मोहनीय विभक्ति और मोहनीय अविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोनपूर्वकोटि है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयमको प्राप्त संयतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। परिहारविशुद्धि संयतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। इसीप्रकार

**अविहत्तीए मणुसभंगो । असंजद० मदिअण्णाणिभंगो ।**

**§ ६०. दंसणाणुवादेण चक्खुदंसण० विहत्तीए तसपज्जत्तभंगो। अविहत्तीए आभिणि० भंगो । ओहिदंसण० ओहिणाणिभंगो ।**

संयतासंयतोंका भी कथन करना चाहिये । सूक्ष्म सांपरायिक संयतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । यथाख्यात-शुद्धिसंयतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । यथाख्यात संयतोंके मोहनीय अविभक्तिके कालका कथन मनुष्योंके समान जानना चाहिये । असंयतोंके मत्यज्ञानियोंके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—संयम परिहारविशुद्धिसंयम और संयमासंयमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल और देशोनपूर्वकोटि है इससे कम नहीं, इसलिये इनमें मोहनीयका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोनपूर्वकोटि कहा है । इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिके कालमें देशोनका अर्थ अड़तीस वर्ष और देशसंयमके कालमें देशोनका अर्थ अन्तर्मुहूर्त पृथक्त्व करना चाहिये । सामायिक, छेदोपस्थापना और सूक्ष्मसांपरायका जघन्य काल एक समय मरणकी अपेक्षा कहा है । उसमें पहलेके दो संयमोंका एक समय काल उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवके दसवेंसे नौवेंमें आकर और एक समय ठहरकर मरनेवालेके होगा। और सूक्ष्म सांपरायका एक समय काल उपशमश्रेणी पर आरोहण करनेवालेके दसवेंमें एक समय ठहरकर मरनेवालेके तथा उपशमश्रेणीसे उतरनेवालेके ग्यारहवेंसे दसवेंमें आकर और एक समय ठहरकर मरनेवालेके होगा । सामायिक और छेदोपस्थापनाका उत्कृष्ट काल देशोनपूर्वकोटि स्पष्ट ही है । सूक्ष्म सांपराय संयमका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त दसवें गुणस्थानके कालकी अपेक्षासे कहा है । यथाख्यातसंयमका एक समय काल ग्यारहवें गुणस्थानमें एक समय रहकर मरनेवाले जीवके होता है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उपशान्तमोह गुणस्थानके कालकी अपेक्षा कहा है । इसप्रकार जहां जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल हो वहां मोहनीयकर्मका उतना काल समझना चाहिये । जिन संयतोंने मोहनीयकर्मका नाश कर दिया है, उनके मोहका अभाव जघन्यरूपसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, क्योंकि आयु कर्मके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर जो क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं वे मोहके बिना संसारमें अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रहते हैं । तथा पूर्वकोटिकी आयुवाले जिन संयतोंने आठ वर्षकी अवस्थामें केवल ज्ञान प्राप्त किया है उनके देशोन पूर्वकोटि कालतक मोहनीयका अभाव पाया जाता है ।

**§ ६०. दर्शनमार्गणाके** अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंके मोहनीयविभक्तिका काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान होता है । तथा अविभक्तिका काल आभिनिबोधिक ज्ञानीके समान है । अवधिदर्शनीके मोहनीय विभक्ति और मोहनीय अविभक्तिका काल अवधिज्ञानीके समान होता है।

§ ६१. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० विहत्ती० जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि। तेउ-पम्माणं विहत्ती केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। सुक्क० विहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। अविहत्ती० मणुसभंगो।

**विशेषार्थ**–त्रसपर्याप्तकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर कह आये हैं। उसीप्रकार चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। यह काल क्षयोपशमकी प्रधानतासे कहा है। उपयोगकी प्रधानतासे नहीं, क्योंकि उपयोगकी अपेक्षा चक्षुदर्शनका जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही होते हैं। बारहवें गुणस्थानका जो जघन्य और उत्कृष्ट काल है वह चक्षुदर्शनीके मोहनीयके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल समझना चाहिये। अवधिज्ञानीके मोहनीयकर्म और उसके अभावका काल ऊपर ही कह आये हैं उसीप्रकार अवधिदर्शनीके जानना चाहिये।

§ ६१. **लेश्यामार्गणाके** अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कृष्णलेश्यावाले जीवोंके साधिक तेतीस सागर, नीललेश्यावाले जीवोंके साधिक सत्रह सागर और कापोतलेश्यावाले जीवोंके साधिक सात सागर है। तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेजलेश्यावाले जीवोंके साधिक दो सागर और पद्मलेश्यावाले जीवोंके साधिक अठारह सागर है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंके मोहनीय अविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है।

**विशेषार्थ**–एक लेश्याका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, तथा उत्कृष्ट काल सातवे नरककी अपेक्षा कृष्ण लेश्याका साधिक तेतीस सागर, पांचवें नरककी अपेक्षा नीलका साधिक सत्रह सागर, तीसरे नरककी अपेक्षा कापोतका साधिक सात सागर, सौधर्म-ऐशानस्वर्गकी अपेक्षा पीतका साधिक दो सागर, सतार-सहस्रार स्वर्गकी अपेक्षा पद्मका साधिक अठारह सागर और शुक्ल लेश्याका सर्वार्थसिद्धिकी अपेक्षा साधिक तेतीस सागर है। यहां साधिकसे विवक्षित पर्यायके पूर्ववर्ती पर्यायका अन्तिम अन्तर्मुहूर्त और उत्तरवर्ती पर्यायका प्रथम अन्तर्मुहूर्त लिया है, क्योंकि उस समय भी वही लेश्या रहती है। इस प्रकार जिस लेश्याका जघन्य और उत्कृष्ट जितना काल हो उसके अनुसार मोहनीयकर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल समझना चाहिये। मोहका अभाव केवल शुक्ल लेश्यामें मनुष्योंके ही होता है अतः उसका कथन मनुष्योंमें मोहके अभावके कथनके समान करना चाहिये।

§ ६२. भवियाणुवादेण भवसिद्धि० विहत्ति० अणादिओ सपज्जवसिदो। अविहत्तीए मणुसभंगो। अभवसिद्धि० विहत्ती अणादिअपज्जवसिदा। सम्मत्ताणुवादेण सम्मादि० विहत्ती० आभिणि० भंगो। अविहत्ती० ओघभंगो। खइय० विहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि। अविहत्ती० ओघभंगो। वेदगसम्मादि० विहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि। सासण० विहत्ती० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवलियाओ। मिच्छादिट्ठी० मदिअण्णाणिभंगो।

§ ६२. भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्य जीवोंके मोहनीय विभक्ति अनादि-सान्त है। और इनके मोहनीय अविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है। तथा अभव्य जीवोंके मोहनीय विभक्ति अनादि अनन्त है। सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवादसे सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीय विभक्तिका काल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। तथा उनके मोहनीय अविभक्तिका काल ओघके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय अविभक्तिका काल ओघके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है? सासादन सम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है। मिथ्यादृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका काल मत्यज्ञानियोंके समान है।

**विशेषार्थ**–मतिज्ञानियोंके मोहनीयका काल ऊपर लिख आये हैं। सम्यग्दृष्टि सामान्यके मोहनीयके अभावका काल ओघप्ररूपणाके समान जानना चाहिये। कोई जीव क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही क्षीणमोह हो जाता है। और कोई क्षायिकसम्यग्दृष्टि आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कालके बाद क्षीणमोह होता है। अतः इस विवक्षासे क्षायिक सम्यग्दृष्टिके मोहनीय कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। सामान्य प्ररूपणामें मोहनीयके अभावका जो काल कहा है वही क्षायिक सम्यग्दृष्टिके मोहनीयके अभावका काल समझना चाहिये। वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। जो पहले कई बार सम्यग्दृष्टिसे मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टिसे सम्यग्दृष्टि हो चुका है ऐसा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके और वहां जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर पुनः मिथ्यात्वको जब प्राप्त हो जाता है तब उसके वेदकसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है। तथा उसका उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है। कोई एक उपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर मनुष्यपर्याय संबन्धी शेष भुज्यमान आयुसे रहित बीस सागरोपम आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे पुनः मनुष्य होकर मनुष्यायुसे न्यून बाईस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे पुनः मनुष्य होकर भुज्यमान मनुष्यायुसे तथा देवपर्यायके अनन्तर प्राप्त होनेवाली मनुष्यायुमेंसे क्षायिक

§ ६३. सण्णियाणुवादेण सण्णि० विहत्ती० जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। अविहत्ती० जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। असण्णि० एइंदियभंगो। आहार० विहत्ती० जह० खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। अविहत्ती० मणुसभंगो। अणाहारि०विहत्ती० कम्मइय० भंगो। अविहत्ती० ओघभंगो।

सम्यग्दर्शनके प्राप्त होने तकके कालसे न्यून चौबीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। मनुष्य पर्यायमें जब वेदकका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारंभ करके कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि हुआ। इस प्रकार कृतकृत्यवेदकके चरम समय तक वेदक सम्यग्दर्शनके छयासठ सागर पूरे हो जाते हैं। अतः इस विवक्षासे वेदकसम्यग्दृष्टिके मोहनीय कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली प्रमाण है। इस विवक्षासे सासादन सम्यग्दृष्टिके मोहनीयका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। मत्यज्ञान और मिथ्यात्वका समान काल देखकर मिथ्यादृष्टियोंके मोहनीय कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ६३. संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है। संज्ञी जीवोंके मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असंज्ञी जीवोंके मोहनीय विभक्तिका काल एकेन्द्रिय जीवोंके समान है।

**विशेषार्थ**–कोई एक असंज्ञी जीव संज्ञी अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होकर पुनः असंज्ञी हो जावे तो उसके संज्ञी होनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण पाया जाता है। तथा कोई एक असंज्ञीजीव संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर और वहां सौ पृथक्त्व सागर काल तक परिभ्रमण करके असंज्ञी हो जावे तो उसके संज्ञी होनेका उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर पाया जाता है। इस विवक्षासे संज्ञी जीवके मोहनीय कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। क्षीणमोहका जो जघन्य और उत्कृष्ट काल है वही संज्ञी जीवोके मोहनीयके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। असंज्ञियोंमे एकेन्द्रियोंका काल मुख्य है, इसलिये असंज्ञियोंमें मोहनीय कर्मका काल एकेन्द्रियोंमें मोहनीय कर्मके कालके समान बताया है।

**आहार मार्गणाके** अनुवादसे आहारक जीवोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है। और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आहारी जीवके मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मनुष्योंके समान है। अनाहारियोंके मोहनीय विभक्तिका काल कार्मणकाययोगियोंके समान है। तथा मोहनीय अविभक्तिका काल ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीय अविभक्तिका जघन्य काल तीन समय है।

णवरि, जह० तिण्णि समया ।

एवं कालो समत्तो ।

§ ६४. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । ओघेण विहत्तीणं णत्थि अंतरं । एवं जाव अणाहारएत्ति अप्पप्पणो पदाणं चिंतिऊण वत्तव्वं ।

एवमंतरं समत्तं ।

§ ६५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण विहत्ती अविहत्ती० णियमा अत्थि । एवं मणुस्स-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-तिण्णिमण०-तिण्णिवचि०-कायजोगि-ओरा-

**विशेषार्थ**–एक पर्यायमें आहारकका सबसे जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभव-ग्रहणप्रमाण है । तथा उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो कि असंख्या-तासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रमाण होता है । इस विवक्षासे आहारक जीवके मोहनीय कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है । मनुष्योंमें मोहनीय कर्मके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल ऊपर कह आये हैं वही आहारकोंके मोहनीयके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । विशेष बात यह है कि यहां चौदहवें गुणस्थानका काल घटाकर कथन करना चाहिये; क्योंकि चौदहवें गुणस्थानमें जीव अनाहारक होता है । ऊपर कार्मणकाययोगमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट काल तीन समय कह आये हैं वही अनाहारकोंके मोहनीय कर्मका जघन्य काल जानना चाहिये । अनाहारकके मोहनीयके अभावका जो जघन्य काल तीन समय बतलाया है वह प्रतर और लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षासे कहा है । तथा अनाहारकके मोहनीय अविभक्तिका उत्कृष्ट काल सादि-अनन्त होगा क्योंकि सिद्ध होनेपर भी जीव अनाहारक ही रहता है ।

इसप्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ६४. **अन्तरानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार गति मार्गणासे लेकर अनाहारक मार्गणातक अपने अपने पदोंका चिन्तवन करके व्याख्यान करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–मोहनीयका क्षय होकर पुनः उसकी प्राप्ति नहीं होती अतः ओघ और आदेशसे मोहविभक्तिका अन्तर काल नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ ।

§ ६५. नाना जीवोंकी अपेक्षा **भंगविचयानुगमसे** निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे **ओघकी** अपेक्षा विचार करने पर मोहनीय विभक्ति और मोहनीय-अविभक्ति नियमसे है। इसीप्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन मनोयोगी

लिय०-संजद०-सुक्क०-भवसिद्धिय०-सम्मादि०-[खइयसम्माइट्ठि-] आहारि०-अणाहारएत्ति वत्तव्वं ।

§ ६६. मणुसअपज्ज० सिया विहत्तिओ सिया विहत्तिया। एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-सुहुम०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति वत्तव्वं । बे-मण०- बेवचि० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा । एवमोरालियमिस्स०-[कम्मइय०]-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-चक्खु०- अचक्खु०- ओहिदंसण०- सण्णि-

और ये ही तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, संयत, शुक्ल लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, आहारक और अनाहारकके कहना चाहिये । अर्थात् उक्त मार्गणा वाले जीव नियमसे मोहनीय कर्मसे युक्त भी होते हैं और मोहनीय कर्मसे रहित भी होते हैं ।

**विशेषार्थ**–ग्यारहवें गुणस्थान तक सभी जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं और क्षीण-कषायसे लेकर सभी जीव मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं । उपर्युक्त मार्गणाओंमें ग्यारहवेंसे नीचेके और ऊपरके गुणस्थान संभव है अतः उनमें सामान्य प्ररूपणाके अनुसार मोहनीय कर्मसे युक्त और मोहनीय कर्मसे रहित जीव बन जाते हैं ।

§ ६६. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें कदाचित् एक जीव मोहनीय विभक्तिवाला है और कदाचित् अनेक जीव मोहनीयविभक्तिवाले हैं। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक-काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि, और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–ऊपर जितनी मार्गणाएं कही हैं वे सब सान्तर हैं । अर्थात् उक्त मार्गणा-वाले जीव कभी होते और कभी नहीं होते । जब इन मार्गणाओंमें जीव होते हैं तो कभी एक जीव होता है और कभी अनेक जीव होते हैं । इसी अपेक्षासे उक्त मार्गणाओंमें मोहनीय कर्मसे युक्त एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग कहे हैं ।

असत्य और उभय इन दो मनोयोगी और इन्हीं दो वचन योगी जीवोंमें कदाचित् सभी जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुत जीव मोहनीय विभक्तिवाले और एक जीव मोहनीय अविभक्तिवाला है । कदाचित् बहुत जीव मोहनीय विभक्तिवाले और बहुत जीव मोहनीय अविभक्तिवाले हैं । इस प्रकार तीन भंग होते हैं । इसीप्रकार औदारिक-मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, चक्षु-दर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगको छोड़कर ऊपर जितनी

(१)–दि (त्रु०...६) आ–स०, दिट्ठि० सासण० आ–अ०, आ० । (२)–स्स (त्रु०...४) आ–स० ।–स्स० वेउव्वियमिस्स० आ–अ०, आ० ।

**त्ति वत्तव्वं। अवगदवेद० सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा। एवमकसायि-जहाक्खाद०। सेससव्वमग्गणासु विहत्तिया णियमा अत्थि।**

**णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो।**

मार्गणाएँ गिना आये हैं वे बारहवें गुणस्थान तक होती हैं। तथा बारहवां गुणस्थान सान्तर है। कभी इस गुणस्थानमें एक भी जीव नहीं होता तथा कभी अनेक जीव होते हैं और कभी एक जीव होता है। जब इस गुणस्थानवाला एक भी जीव नहीं होता तब उक्त मार्गणाओंमें कदाचित् सभी जीव मोहनीयविभक्तिवाले हैं यह पहला भंग बन जाता है। जब बारहवे गुणस्थानमें एक जीव होता है तब उक्त मार्गणाओंमें कदाचित् अनेक जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीय अविभक्तिवाला है यह दूसरा भंग बन जाता है। तथा जब बारहवे गुणस्थानमें अनेक जीव होते हैं तब उक्त मार्गणाओंमें कदाचित् अनेक जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं और अनेक जीव मोहनीय अविभक्तिवाले है यह तीसरा भंग बन जाता है। पर औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें मोहनीय अविभक्तिका कथन करते समय सयोगिकेवली गुणस्थानकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। यद्यपि सयोगकेवली गुणस्थानमें सर्वदा बहुत जीव रहते है। पर औदारिक-मिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग सयोगिकेवलियोंके समुद्घात अवस्थामें ही होता है। और सयोगिकेवली जीव सर्वदा समुद्घात नहीं करते। तथा सयोगकेवली जीव जब समु-द्घात करते हैं तो कदाचित् एक जीव समुद्घात करता है और कदाचित् अनेक जीव समुद्घात करते हैं। अतः इस अपेक्षासे औदारिकमिश्रकाययोगी और कर्मणकाययोगी जीवोंके भी उक्त प्रकारसे तीन भंग हो जाते हैं।

**अपगतवेदी** जीवोंमें कदाचित् सभी जीव मोहनीय अविभक्तिवाले हैं। कदाचित् अनेक जीव मोहनीय अविभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीय विभक्तिवाला है। कदा-चित् अनेक जीव मोहनीय अविभक्तिवाले और अनेक जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं, इस प्रकार तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार कषायरहित जीवोंके और यथाख्यातसयतोंके भी कथन करना चाहिये। शेष सभी मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं।

**विशेषार्थ**–अपगतवेदी जीव नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे होते हैं। उनमें क्षपकश्रेणीके दसवें गुणस्थान तकके जीव और उपशमश्रेणीके जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं। अतः जब मोहनीय कर्मसे युक्त अवेदी जीव नहीं पाया जाता है तब मुख्यतः सयोग केवलियोंकी अपेक्षा सभी अवगतवेदी जीव मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं, यह पहला भंग बन जाता है। जब नौवेंके अवेद भागसे लेकर दसवें गुणस्थान तक कोई एक ही जीव मोहनीय कर्मसे युक्त पाया जाता है तब 'कदाचित् अनेक अपगतगतवेदी जीव

§ ६७. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य[1]। [ तत्थ ] ओघेण विहत्ति० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो। अणंता भागा। अविहत्ति० सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो। एवं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-अचक्खुदं०-भवसिद्धि०-आहार-अणाहारएत्ति वत्तव्वं।

§ ६८. मणुसगदीए मणुस्सेसु विहत्ति० सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? असं-खेज्जा भागा। अविहत्तिया सव्वजीवाणं केव०भागो ? असंखेज्जदिभागो। एवं पंचिं-दिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-

मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं और एक जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होता है यह दूसरा भंग बन जाता है। तथा जब नौवेंके अवेद भागसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थानतक बहुतसे जीव मोहनीय कर्मसे युक्त पाये जाते हैं तब बहुतसे अपगतवेदी जीव मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं और बहुतसे जीव मोहनीय कर्मसे सहित भी होते हैं यह तीसरा भंग बन जाता है। इसी प्रकार कषायरहित जीवोंके और यथाख्यात संयतोंके उक्त तीन भंग होते हैं। पर यहां 'एक जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होता है या बहुतसे जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं' ये विकल्प उपशान्तमोह गुणस्थानकी अपेक्षा ही कहना चाहिये। इस प्रकार ऊपर जिन मार्गणा विशेषोंमें मोहनीय कर्मसे युक्त होने और न होनेका कथन कर आये हैं उन मार्गणास्थानोंको छोड़कर शेष जितने भी मार्गणाओके अवान्तर भेद हैं उनमें जीव मोहनीय कर्मसे युक्त ही होते हैं।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय नामका अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ६७. **भागाभागानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। इसीप्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, आहारक और अनाहारक जीवोंके भी कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**—ऊपर जितनी भी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनका प्रमाण अनन्त होते हुए भी उनमेंसे बहुभाग प्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और अनन्तवे भागप्रमाण जीव मोह नीय कर्मसे रहित हैं, अतएव उक्त मार्गणाओंकी प्ररूपणा ओघके समान कही गई है।

§ ६८. **मनुष्यगतिमें** मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव समस्त मनुष्योंके कितने भाग-प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सब मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त

(१)-य (पृ०...६) ओ-स०। य तत्थ जीवाणमो-अ०, आ०।

**चक्खुदंसण-ओहिदंसण-सुक्कले०-सण्णि त्ति वत्तव्वं। मणुपज्जत्त-मणुसिणीसु विहत्ति० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? संखेज्जा भागा। अविहत्ति० केवडिओ भागो? संखेज्जदिभागो। एवं मणपज्जव०-संजदाणं वत्तव्वं। जहाक्खादेसु विहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? संखेज्जदिभागो। अविहत्तिया संखेज्जा भागा।**

**§ ६६. अवगदवेद० विहत्ति० सव्वजी० केव०? अणंतिमभागो। अविहत्ति०**

---

त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यक और संज्ञी जीवोंके भी कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–मनुष्यगतिमें मनुष्य जीव असंख्यात हैं। उनमेंसे बहुभाग मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और असंख्यातैक भागप्रमाण क्षीणमोही जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं। मनुष्योंके अतिरिक्त ऊपर और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसीप्रकार व्यवस्था जानना चाहिये। क्योंकि, उनमेंसे प्रत्येक मार्गणाका प्रमाण असंख्यात होते हुए भी असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और असंख्यात एक भागप्रमाण क्षीणमोही जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं।

मनुष्यपर्याप्त और योनिमती मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव मनुष्य पर्याप्त और योनिमती मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी और संयतोंका भी कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–पर्याप्तमनुष्य, योनिमतीमनुष्य, मनःपर्ययज्ञानी और संयत इन चारों राशियोंका प्रमाण संख्यात होते हुए भी इनमें मोहनीय कर्मसे युक्त जीव बहुत होते हैं और मोहनीय कर्मसे रहित जीव अल्प होते हैं। इसीलिये इन चारों स्थानोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव संख्यातवे भागप्रमाण कहे हैं।

**यथाख्यात संयतोंमें** मोहनीय विभक्तिवाले जीव सब यथाख्यातसंयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं।

**विशेषार्थ**–यथाख्यात संयम ग्यारहवें गुणस्थानसे चौदहवें गुणस्थान तक होता है। उसमें मोहनीय कर्मसे युक्त जीव ग्यारहवें गुणस्थानवाले ही होते हैं, शेष मोहनीयसे रहित है जो कि ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंसे संख्यातगुणे हैं। इसीलिये ऊपर यह कहा है कि संख्यातवें भागप्रमाण मोहनीय विभक्तिवाले और संख्यात बहुभागप्रमाण मोहनीय अविभक्तिवाले यथाख्यातसंयत जीव होते हैं।

§ ६६. **अपगतवेदियोंमें** मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्व अपगतवेदी जीवोंके कितने भागप्रमाण है? अनन्त एक भागप्रमाण है। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण

**मव्वजी० केव० ? अणंता भागा। एवं अकसाय-सम्मादिट्ठि-खइय० वत्तव्वं। सेसाणं मग्गणाणं णत्थि भागाभागो एगपदत्तादो।**

**एवं भागाभागो समत्तो।**

**§ ७०. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह-पयडीए विहत्तिया अविहत्तिया च केवडिया ? अणंता। एवमणाहारीणं वत्तव्वं।**

**§ ७१. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु मोह०विहत्ति० केवडि० ? असंखेज्जा। एवं**

हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। इसीप्रकार अकषायिक, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके कथन करना चाहिये। ये ऊपर जितनी भी मार्गणाएँ कह आये हैं उनसे अतिरिक्त शेष मार्गणाओंमें भागाभाग नहीं होता है, क्योंकि, उनमें एक स्थान पाया जाता है।

**विशेषार्थ**–अपगतवेदियोंमें नौवें गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर सभी गुणस्थानवर्ती और गुणस्थानातीत जीवोंका ग्रहण कर लिया है। अतः उनमें मोहनीय विभक्तिवाले अनन्तवें भागप्रमाण और मोहनीय अविभक्तिवाले अनन्त बहुभागप्रमाण जीव कहे हैं। यही व्यवस्था अकषायिक, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। विशेष बात यह है कि कषायरहित जीव ग्यारहवें गुणस्थानसे और सम्यग्दृष्टि तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थानसे होते है। अतः इनका भागाभाग कहते समय उस उस गुणस्थानसे लेकर भागाभाग करना चाहिये। प्रारंभसे लेकर यहां जिन मार्गणास्थानोंका भागाभाग कहा गया है उन्हें छोड़कर शेष सभी मार्गणास्थानोंमें एक स्थान ही पाया जाता है, अतः वहां भागाभाग नहीं बन सकता है।

इसप्रकार भागाभाग अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ७०. **परिमाणानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकार है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमें **ओघकी** अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसीप्रकार अनाहारक जीवोंके भी कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–बारहवें गुणस्थानके पहले जितने भी संसारी जीव हैं वे सब मोहनीय कर्मसे युक्त हैं। और बारहवें गुणस्थानसे लेकर सभी जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं। इन दोनों राशियोंका प्रमाण अनन्त है, अतः ऊपर मोहनीय विभक्तिवाले जीव और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव अनन्त कहे गये हैं। अनाहारकोंमें विग्रहगतिको प्राप्त हुए जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं और प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातगत सयोग केवली, अयोगकेवली तथा सिद्ध जीव मोहनीयसे रहित होते हैं। ये दोनों ही अनाहारक राशियां अनन्त हैं, इसलिये ऊपर मोहनीय कर्मसे युक्त और मोहनीय कर्मसे रहित अनाहारक जीवोंका कथन ओघप्ररूपणाके समान कहा है।

§ ७१. **आदेशसे नरकगतिमें** नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असं-

सत्तसु पुढवीसु। सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्स अपज्जत्त-देव० भवणादि जाव अवरा-इदंताणं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पुढवि०-आउ०-[ तेउ० ] वाउ०-बादरपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरआउ०-पज्जत्तअपज्जत्त-बादरतेउ०-पज्जत्त-अपज्जत्त-बादरवाउका०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुम पुढवी०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुमआउ०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुमतेउ०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुमवाउ०- पज्जत्तअपज्जत्त-बादरवणप्फदि-पत्तेय०-पज्जत्तअपज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्टिद०- पज्जत्तअपज्जत्त-वेउव्विय०-वेउव्विय-मिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठीणं वत्तव्वं।

§ ७२. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु विहत्ति० केवडि०? अणंता। एवं सव्वएइंदिय०-वणप्फदि०-बादर० पज्जत्त अपज्ज०-सुहुम० पज्जत्त अपज्जत्त-णिगोद० बादर० पज्जत्त

ख्यात हैं। इसीप्रकार सातों पृथिवियोमें कथन करना चाहिये। तथा सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, संयतासंयत, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–सामान्यसे नारकी असंख्यात होते हैं और प्रत्येक नरकके नारकी भी असंख्यात ही होते हैं। तथा वे सब मोहनीय कर्मसे युक्त ही होते हैं। इसीलिये ऊपर मोहनीय कर्मसे युक्त सामान्य और विशेष नारकियोंका प्रमाण असख्यात कहा है। अनन्तर जो मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें भी प्रत्येकका प्रमाण असंख्यात है और वे सब मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं, अतः उनका कथन नारकियोंके समान कहा है।

§ ७२. **तिर्यंचगतिमें** तिर्यंचोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इसीप्रकार सभी एकेन्द्रिय जीव, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सामान्यनिगोद

अपज्जत्त-सुहुम०पज्जत अपज्जत्त-णवुंसयवेद-चत्तारि कसाय-मदि-सुद अण्णाणि-असंजद०-तिण्णिलेस्सा-अभवसिद्धिय-मिच्छाइट्ठि-असण्णित्ति वत्तव्वं ।

§ ७३. मणुसगईए मणुस्सेसु विहत्ति० केवडि० ? असंखेज्जा । अविहत्ति०संखेज्जा । एवं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-आभिणि०-सुद-ओहि०-चक्खुदंसण-ओहिदंसण-सुक्कले० सण्णि त्ति वत्तव्वं। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु विहत्ति० अविहत्ति० केवडि० ? संखेज्जा । एवं मणपज्जव०-संजदा० वत्तव्वं ।

§ ७४. सव्वट्ठदेवेसु विहत्ति० केवडि० ? संखेज्जा । एवमाहार०-आहारमिस्स०-सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहारविसुद्धि-सुहुमसांपराइयसंजदाणं वत्तव्वं ।

बादरनिगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, नपुंसकवेदी, क्रोध, मान, माया और लोभ कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–तिर्यंचोंका प्रमाण अनन्त होते हुए भी वे सबके सब मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं। इसीप्रकार ऊपर और जितने मार्गणास्थान गिनाये हैं वे सब अनन्तराशि प्रमाण हैं और मोहनीय कर्मसे युक्त हैं । अतः उनका कथन तिर्यंचोंके समान कहा है ।

§ ७३. **मनुष्यगतिमें** मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसीप्रकार पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले और संज्ञी जीवोंको कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–सामान्य मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात है उनमें असंख्यातें जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और संख्यात क्षीणमोहनीय जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं । ऊपर जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमेंसे प्रत्येकमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये ।

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिणियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी और संयतोंके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिणी, मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंका प्रमाण संख्यात है । इसमें संख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और संख्यात एक भाग-प्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं ।

§ ७४. सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, और सूक्ष्मसांपराय संयतोंके कथन करना चाहिये ।

**§ ७५. कायजो० विहत्ति० केत्तिया ? अणंता। अविहत्ति० संखेज्जा। एव-मोरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारएत्ति वत्तव्वं।**

**§ ७६. अवगदवेद० विहत्ति० केत्ति० ? संखेज्जा। अविहत्तिया केत्तिया ? अणंता। एवमकसा० वत्तव्वं। सम्मादिट्ठी० विहत्ति० केत्ति० ? असंखेज्जा। अविहत्ति०**

**विशेषार्थ**–जिस प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव संख्यात होते हुए भी वे सब मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं। उसीप्रकार ऊपर कहे गये शेष मार्गणास्थानोंमें भी जानना चाहिये।

§ **७५. काययोगियोंमें** मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। इसीप्रकार औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिये।

**विशेपार्थ**–काययोगियोंका प्रमाण अनन्त है। तथा उनमें मोहनीयकर्मसे युक्त और मोहनीय कर्मसे रहित दोनो प्रकारके जीव पाये जाते हैं। जो बारहवे और तेरहवे गुण-स्थानवर्ती जीव हैं वे मोहनीय कर्मसे रहित हैं, अतः उनका प्रमाण संख्यात है और शेष ग्यारह गुणस्थानवर्ती जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं, अतः उनका प्रमाण अनन्त है। औदा-रिककाययोगियोंका कथन भी इसीप्रकार समझना चाहिये। कार्मणकाययोगियोंमें पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थानमें विग्रहगतिको प्राप्त मोहनीय कर्मसे युक्त जीव लेना चाहिये। प्रत्येक समयमें अनन्त जीव विग्रहगतिको प्राप्त होते हैं, इस नियमके अनुसार उनका प्रमाण अनन्त होता है। कार्मणकाययोगियोंमें प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त सयोगकेवली मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं। वे संख्यात ही हैं। औदारिकमिश्रकाययो-गियोंमें नवीन शरीर धारण करनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त संचित हुए पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थानके तिर्यंच और मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये। वे अनन्त हैं और मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं। तथा कपाटसमुद्घातको प्राप्त औदारिक मिश्रकाययोगी मोहनीय कर्मसे रहित जानना चाहिये। इनका प्रमाण संख्यात ही है। अचक्षुदर्शनियोंमें प्रारंभसे लेकर ग्यारह गुणस्थान तकके जीव मोहनीय कर्मसे युक्त और बारहवें गुणस्थानके जीव मोहनीय कर्मसे रहित जानना चाहिये। भव्य और आहारकोंमें भी ग्यारह गुणस्थानके जीव मोहनीय कर्मसे युक्त और शेष मोहनीय कर्मसे रहित जानना चाहिये। इतना विशेष है कि मोहनीय कर्मसे रहित आहारकोंमें बारहवें और तेरहवे गुणस्थानके ही जीव होते हैं चौदहवेके नहीं।

§ ७६. **अपगतवेदी** जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसीप्रकार कषायरहित जीवोंके कथन करना चाहिये। **सम्यग्दृष्टियोंमें** मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके भी इसीप्रकार

**केत्तिया ? अणंता । एवं खइयसम्माइट्ठीणं वत्तव्वं ।**

**एवं परिमाणं समत्तं ।**

§ ७७. **खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह-विहत्ति० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । मोहअविहत्ति० केव० खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा । एवं कायजोगि-भवसिद्धिय-अणाहारित्ति ।**

कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–मोहनीय कर्मसे युक्त अपगतवेदी जीव नौवें गुणस्थानके अवेदभागसे ग्यारहवें गुणस्थान तक और मोहनीय कर्मसे युक्त कषायरहित जीव उपशान्तमोह गुणस्थानमें ही पाये जाते हैं । अतएव इन दोनोंका प्रमाण संख्यात कहा है । तथा शेष सभी ऊपरके गुणस्थानवर्ती और सिद्ध जीव अपगतवेदी और अकषायी होते हुए मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं अतः इन दोनोंका प्रमाण अनन्त कहा है । संसारस्थ सम्यग्दृष्टियों और क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण असंख्यात है, किन्तु उसमें सिद्धोंका प्रमाण मिलाकर अनन्त कहा है । इन दोनोंमें मोहनीय कर्मसे युक्त जीवोंका ग्रहण करते समय चौथे गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तकके जीव ही लेना चाहिये । अतः सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय कर्मसे युक्त जीव असंख्यात होते हैं । तथा मोहनीय कर्मसे रहित जीव अनन्त होते हैं ।

इसप्रकार परिमाणानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ७७. **क्षेत्रानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे **ओघकी** अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें, लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमें और सर्व लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार काययोगी, भव्य और अनाहारी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–वर्तमान निवासस्थानको क्षेत्र कहते हैं । वह जीवोंकी स्वस्थान, समुद्घात और उपपादरूप अवस्थाओंके भेदसे तीन प्रकारका होता है । स्वस्थानके स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इस प्रकार दो भेद हैं । समुद्घात भी वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवलिके भेदसे सात प्रकारका है । यहां जीवोंकी उत्तरभेदरूप इन दस अवस्थाओंमें प्रत्येक पदकी अपेक्षा क्षेत्रका विचार न करके सामान्य-रीतिसे विचार किया गया है । अतः जिस स्थानमें जिस पदकी अपेक्षा उत्कृष्ट क्षेत्रकी संभावना है उसका ही सामान्य प्ररूपणामें ग्रहण कर लिया गया है । मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंके क्षेत्रका कथन करते समय मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्रधानता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान निवास स्थान सर्वलोक है । सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त मोह तकके

**§ ७८. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु मोहविहत्ति० केव० खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस अपज्जत्त-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-बादरपुढवि० पज्जत्त-बादरआउ० पज्जत्त-बादरतेउ० पज्जत्त-बादरवणप्फदि० पत्तेय० पज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्ज०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-सामाइय-छेदो०-परिहा०-सुहुम०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छेत्ति वत्तव्वं।**

मोहनीय विभक्ति वाले जीवोंकी प्रधानता नहीं है, क्योंकि उनका वर्तमान निवास स्थान लोकका असंख्यातवां भाग है। मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके क्षेत्रका प्ररूपण करते समय ऊपर तीन प्रकारका क्षेत्र कहा है। उनमें लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र क्षीणमोह, समुद्घातरहित केवली या दंड और कपाट समुद्घातको प्राप्त केवली, अयोगकेवली और सिद्ध जीवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि, इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण क्षेत्रमें है। लोकका असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्र प्रतरसमुद्घातकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि, प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीने, जगश्रेणीप्रमाण जगप्रतरोंमेंसे ९ ३ ३ १ ० [illegible] योजन प्रमाण जगप्रतरोंको घटा देने पर जो लोकका बहुभाग प्रमाण क्षेत्र रहता है उसे वर्तमान कालमें स्पर्श किया है। तथा सर्वलोक क्षेत्र लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त केवलीके वर्तमान निवासकी अपेक्षासे कहा है। तथा जिन स्थानोंकी प्रधानतासे ओघक्षेत्रका कथन किया है वे स्थान काययोगी, भव्य और अनाहारी जीवोंके भी पाये जाते हैं, अतः इनका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान कहा है।

§ ७८. **आदेशनिर्देशकी** अपेक्षा **नरकगतिमें** नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवे भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार सभी प्रथमादि सातों नरकोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक-पर्याप्त, बादर तैजस्कायिकपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, बादरनिगोद-प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाकयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायसंयत, संयतासंयत, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके लोकके असंख्यातवे भाग क्षेत्रका कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ऊपर कहे गये मार्गणास्थानोंमें संभव पदोंके दिखलानेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है–

§ ७६. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मोहविहत्ति० केवडि खेत्ते ? सव्वलोए। एवं

| मार्गणास्थान | स्व. स्व. | वि.स्व. | वेद० | कषा. | वैक्रि. | तै० | आ. | मा. | उप. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सभी नारकी, पचेन्द्रिय ति, पं० पर्याप्त ति०, पं० योनिमती ति०, सभी देव, उपशम स०, सासादन, स्त्रीवेदी, | " | " | " | " | " | | × | " | " |
| पुरुषवेदी, वेदकसम्यग्दृष्टि, पीत लेश्यावाले, पद्मले० | " | " | " | " | " | " | " | " | " |
| वैक्रियिककाययोग, विभंगज्ञा० | " | " | " | " | " | | × | " | × |
| विकलत्रय सा० और पर्याप्त | " | " | " | " | | | | " | " |
| विकलत्र० ल०, पंचे० ति० ल०, मनु० ल०, पंचे० ल०, बा० पृ० प०, बा० ज० प०, प्र० वन० प०, सप्र० प्र० व० प०, त्रस ल०, | " | | " | " | | × | × | " | " |
| सामायिक, छेदो० | " | " | " | " | " | " | " | " | |
| संयतासंयत, परिहा० | " | " | " | " | " | × | × | " | × |
| सम्यग्मिथ्यादृष्टि | " | " | " | " | " | × | × | × | × |
| आहारककाययोग | " | " | | × | × | × | " | " | × |
| आहारकमिश्र | " | × | × | × | × | × | × | × | × |
| सूक्ष्मसांपराय | " | | × | × | × | × | × | " | × |

इसप्रकार उक्त मार्गणाओंमें कोष्ठकके अनुसार जो पद बताये हैं, उन सब पदोंकी अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र सामान्य लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण ही होता है अधिक नहीं।

§ ७६. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व-

**सव्वएइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढवि०अपज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ० अपज्ज०-तेउ०-बादर तेउ०-बादरतेउ० अपज्ज०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ०-अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०पज्ज०-सुहुमपुढवि०अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ०-पज्ज०-सुहुमआउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुम तेउ०पज्ज०-सुहुमतेउ०अपज्ज०-सुहुम-वाउ०-सुहुमवाउ०पज्ज०-सुहुमवाउ०अपज्ज०-वणप्फदि०-बादरवणप्फदि०-बादरवण-प्फदि० पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-सुहुमवणप्फदि० पज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-बादर णिगोद०-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-णउंस०-चत्तारिकसाय०-मदिसुदअण्णाणि-असंजद०-तिलेस्सा०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति वत्तव्वं ।**

लोकमें रहते हैं। इसीप्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, बादरनिगोद, बादरनिगोद पर्याप्त, बादरनिगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, नपुंसकवेदी, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके सर्वलोक क्षेत्र होता है।

**विशेषार्थ**–इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें कहां कितने पद हैं इसका ज्ञान करानेके लिये पहले नीचे कोष्टक दिया जाता है–

| मार्गणा | स्व.स्व. | वि.स्व. | वे. | क. | वैक्रि. | तै. | आहा. | मा. | उ. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क्रोध, मान, माया व लोभ | ” | ” | ” | ” | ” | ” | ” | ” | ” |
| सामान्य तिर्यंच, नपुंसक, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि व असंज्ञी | ” | ” | ” | ” | ” | . | | ” | ” |

| एकेन्द्रिय, तेजकायिक व वायुकायिक | ,, | × | ,, | ,, | ,, | × | × | ,, | ,, |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बादर एकेन्द्रिय, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर तेज कायिक पर्याप्त | ,, | × | ,, | ,, | ,, | × | × | ,, | ,, |
| एकेन्द्रिय सूक्ष्म, सूक्ष्म वायु, सूक्ष्म तेज व इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पृथिवी, जल, वनस्पति और निगोद तथा इनके सूक्ष्म और पर्याप्त अपर्याप्त | ,, | × | ,, | ,, | × | × | × | ,, | ,, |
| बादर एकेन्द्रिय, बादर तेज, बादर वायु ये तीनों अपर्याप्त, बादर पृथिवी, बादर जल, बादर वनस्पति, बादर निगोद और इनके पर्याप्त अपर्याप्त | ,, | × | ,, | ,, | × | × | × | ,, | ,, |

कोष्ठक नम्बर एक के चारों कषायवाले विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक, तैजस और आहारक समुद्घातको छोड़कर शेष पांच पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि इन पांच पदोंमें रहनेवालोंका प्रमाण अनन्त है और वे सर्व लोकमें पाये जाते हैं। नम्बर दोके सामान्य तिर्यंच आदि जीव विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातको छोड़कर शेष पांच पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं। इसका कारण पहलेके समान जानना चाहिये। नम्बर तीनके जीव वैक्रियिक समुद्घातको छोड़कर शेष पांच पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं। इनमेंसे तेजकायिक और वायुकायिक जीवोंका प्रमाण असंख्यात लोक है इसलिये एकेन्द्रियोंके समान इनके भी सर्व लोकमें पाये जानेमें कोई आपत्ति नहीं है। नम्बर चारके बादर एकेन्द्रिय आदि और नम्बर छहके बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि जीव केवल मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा सर्व लोकमें पाये जाते हैं। क्योंकि, ये जीवराशियां बादर होनेसे सब जगह रह तो नहीं सकती हैं फिर भी ये जब सूक्ष्म जीवोंमें जाकर उत्पन्न होनेके पहले मारणान्तिक समुद्घात करते हैं तब इनका वर्तमान क्षेत्र सर्व लोक पाया जाता है। तथा लोकके किसी भी भागसे सूक्ष्म जीव आकर जब इन बादरोंमें उत्पन्न

§ ८०. मणुसगईए मणुसेसु मणुसपज्ज०-मणुसिणि० मोह०विहत्ति०केव०खेत्ते०? लोग० असंखे० भागे। अविहत्ती० ओघभंगो। एवं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज०-अवगदवेद०-अकसा०-संजद-जहाक्खाद०-सुक्क०-सम्मादि०-खइयसम्मादिट्ठि

होते हैं तब भी इनका सर्व लोक क्षेत्र पाया जाता है। इस प्रकार इनका मारणान्तिक समुद्धात और उपपाद पद की अपेक्षा सर्व लोकमें वर्तमान निवास बन जाता है। नम्बर पांचके एकेन्द्रिय सूक्ष्म आदि जीव अपने पांचों पदोंसे सर्वलोकमें रहते हैं। इस कोष्ठकके अनुसार सभी जीवोंका जिन पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र नहीं पाया जाता है, वह प्रकृतमें उपयोगी नहीं है इसलिये नहीं लिखा है। विशेष जिज्ञासुओंको उसे क्षेत्रानुयोग द्वारसे जान लेना चाहिये।

§८०. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मोहनीयविभक्तिवाले मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंका कथन ओघके समान है। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, अपगतवेदी, अकषायी, संयत, यथाख्यातसंयत, शुक्ल लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**—इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें स्थित जीवोंमें किनके कितने पद होते हैं, इसका ज्ञान करानेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है—

| | स्व. | वि. स्व. | वे. | क. | वै. | तै. | आ. | के. | मा. | उ. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक स. | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| संयत | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | |
| मनुष्यनी | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | × | × | ,, | ,, | ,, |
| अकषायी, अपगतवेदी, यथाख्यात संयत | ,, | ,, | × | × | × | × | × | ,, | ,, | × |

मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले ये सभी जीव केवलि समुद्घातके प्रतर और लोक पूरणरूप अवस्थाओंको छोड़कर शेष संभव सभी पदोंके द्वारा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। तथा उक्त सभी जीव प्रतरसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहते हैं।

मोहनीय विभक्तिवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके

त्ति वत्तव्वं। बादरवाउ० पज्ज० विहत्ति० केव० ? लोग० संखेज्जदिभागे। वट्ट-माणकाले मारणंतिय-उववादपदेहि वि णत्थि सव्वलोगो, लोगस्स संखेज्जदिभागे चेव मारणंतियं मेल्लमाण उप्पज्जमाणजीवाणं चेव पहाणभावुवलंभादो। पंचमण०-पंचवचि०-मोह० विहत्ति० अविहत्ति० केव० खेत्ते ? लोगस्स असंखे० भागे। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणप०-चक्खु०-ओहि०-सण्णित्ति वत्तव्वं। ओरालिय० विहत्ति० केव० खेत्ते० ? सव्वलोगे। अविहत्ति० मणजोगिभंगो। एवमोरालियमिस्स० अचक्खु० आहार-एति वत्तव्वं। कम्मइय० विहत्ति० केव० खेत्ते ? सव्वलो०। अविहत्ति० केव० खेत्ते ? असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। एवं खेत्तं समत्तं।

संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इनका मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा भी वर्तमानकालमें सर्व लोकक्षेत्र नहीं है, क्योंकि इनमें लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें ही मारणान्तिक समुद्घात और उपपादवाले जीवोंकी ही प्रधानता देखी जाती है।

**विशेषार्थ**–बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव वर्तमान कालमें स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपादकी अपेक्षा लोकके संख्यातवे भागप्रमाण क्षेत्रमें ही रहते हैं, क्योंकि पांच राजु लम्बे और एक राजु प्रतररूप क्षेत्रमें ही इनका आवास पाया जाता है, जो कि लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण ही होता है। यद्यपि वायुकायिक जीव उक्त क्षेत्रके बाहर भी मारणान्तिक समुद्घात करते हैं और उक्त क्षेत्रसे बाहरके अन्य जीव भी इनमें उत्पन्न होते हैं पर उनका प्रमाण स्वल्प है। अतः इतने मात्रसे इनका क्षेत्र लोकका संख्यात बहुभाग या सर्वलोक नहीं बन सकता है। तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधि-दर्शनी और संज्ञीजीवोंके कहना चाहिये। औदारिककाययोगियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं। अविभक्तिवालोंमें मनोयोगियोंके समान भंग है। इसीप्रकार औदारिक मिश्रकाययोगी, अचक्षुदर्शनी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये। कार्मणकाययोगियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व-लोकमें रहते हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक क्षेत्रमें रहते हैं।

**विशेषार्थ**–पहले ऊपर कहे गये मार्गणास्थानोंमें संभव पदोंके दिखलानेके लिये कोष्ठक दिया जाता है–

**§ ८१. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० विहत्तिएहि केव० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। अविहत्तिएहि केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असं० भागो, असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा। एवं कायजोगि-भवसिद्धिय-अणाहारि त्ति वत्तव्वं।**

| मार्गणा | स्व. | वि. | वे. | क. | वै. | तै. | आ. | मा. | के. | उप. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पांचों मनोयोगी पांचों वचनयोगी और मनःपर्ययज्ञानी | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | × | × |
| मति श्रुत, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, चक्षुद०, अचक्षुद० संज्ञी | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | × | ,, |
| औदारिक काययोगी, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | × | ,, | ,, | × |
| औदारिकमिश्रका० | ,, | × | ,, | ,, | | × | × | ,, | ,, | ,, |
| आहारकका० | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| कार्मणकाययोगी | ,, | × | ,, | ,, | × | | | × | ,, | ,, |

इन मनोयोगी आदि मार्गणाओंमें क्षेत्रका कथन ऊपर किया ही है अतः जहां स्वस्थान आदि जिस पदकी अपेक्षा विभक्तिवाले या संभव अविभक्तिवाले जीवोंके जितना क्षेत्र संभव हो उसे घटित कर लेना चाहिये। कथनमें और कोई विशेषता न होनेसे यहां नहीं लिखा है। यहां कार्मणकाययोगमें पांच पद बतलाये हैं। पर तत्त्वतः यहां केवल समुद्घात और उपपाद ये दो पद ही संभव हैं। शेष तीन पद अपेक्षा विशेषसे कहे गये हैं।

इस प्रकार क्षेत्रप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ८१. **स्पर्शनानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघनिर्देशकी** अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है। मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है। इसीप्रकार काययोगी, भव्य और अनाहारकोंके स्पर्शनका कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–स्पर्शनमें त्रिकालविषयक क्षेत्रका ग्रहण किया है। पर भविष्यकालीन क्षेत्र और अतीतकालीन क्षेत्रमें कोई अन्तर नहीं है दोनों समान हैं, अतएव इन दोनोंमेंसे एक अतीतकालीन क्षेत्रके कह देनेसे दूसरेका ग्रहण अपने आप हो जाता है, अतः उसे

§ ८२. आदेसेण णिरयगईए णेरइयेसु विहत्ति० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असं० भागो, छ चोद्दस भागा वा देसूणा। पढमाए पुढवीए खेत्तभंगो। बिदियादि जाव सत्तमित्ति विहत्ति० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असं० भागो एक बे तिण्णि चत्तारि पंच

प्रायः पृथक् नहीं कहा है। किन्तु अतीतमें ही गर्भित कर लिया है। इसीप्रकार जहां एक ही स्थानमें दो स्पर्शन क्षेत्र कहे गये हैं उनमेंसे पहला प्रायः वर्तमानकालकी अपेक्षा और दूसरा अतीतकालकी अपेक्षा कहा गया है। यद्यपि ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मोंसे युक्त जीवोंके केवलिसमुद्घातको छोड़कर शेष सभी पद पाये जाते हैं, पर यहां मिथ्यात्व गुणस्थानकी प्रधानतासे स्पर्शन कहा गया है, क्योंकि, मोहनीय कर्मसे युक्त मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमें पाये जाते हैं, इसलिये इन जीवोंने अपनेमें संभव पदोंसे वर्तमान और अतीत दोनों कालोंकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है। मोहनीय कर्मसे रहित जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और केवलि समुद्घात ये तीन पद पाये जाते हैं। इनमेंसे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थानको प्राप्त हुए तथा दण्ड और कपाट समुद्घात गत मोहनीय कर्मसे रहित जीवोंने वर्तमान और अतीत दोनों कालोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। प्रतर समुद्घात गत उक्त जीवोंने दोनों कालोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा लोकपूरण समुद्घातगत उक्त जीवोंने दोनों कालोंकी अपेक्षा सर्वलोकका स्पर्श किया है। सामान्य काययोगी और भव्य जीवोंके स्पर्शनके कथनमें उक्त कथनसे कोई विशेषता नहीं है। अनाहारकोंके कथनमें थोड़ी विशेषता है। जो इसप्रकार है–मोहनीय कर्मसे युक्त अनाहारक जीव विग्रहगतिमें ही पाये जाते हैं, अतएव इनके स्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपाद ये चार पद होते हैं। इन चारों ही पदोंसे उक्त जीवोंने दोनों कालोंकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है। मोहनीय कर्मसे रहित अनाहारक जीव प्रतर और लोकपूरण समुद्घात गत सयोगी और अयोगी जिन होते हैं। इनमेंसे अयोगी जिन दोनों कालोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करते हैं। प्रतर और लोकपूरणकी अपेक्षा स्पर्शन ऊपर ही कहा जा चुका है।

§ ८२. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और देशोन छ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान कहना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीय कर्मसे युक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र और दूसरी पृथिवीकी अपेक्षा देशोन एक बटे चौदह राजु, तीसरी पृथिवीकी अपेक्षा देशोन दो बटे चौदह राजु, चौथी पृथिवीकी अपेक्षा देशोन तीन बटे चौदह राजु, पांचवीं पृथिवीकी अपेक्षा देशोन चार बटे चौदह राजु, छठी पृथिवीकी अपेक्षा देशोन पांच बटे चौदह राजु और सातवीं पृथिवीकी अपेक्षा देशोन

**छ चोद्दस भागा वा देसूणा ।**

छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।

**विशेषार्थ**–सामान्य नारकियोंका वर्तमानकालीन स्पर्शन कहते समय पहले नरकके नारकियोंका प्रमाण प्रधान है, क्योंकि, यहां छह नरकोंके नारकियोंसे असंख्यातगुणे नारकी पाये जाते हैं । यद्यपि सातवें नरकके नारकियोंकी अवगाहना पहले नरकके नारकियोंकी अवगाहनासे बहुत बड़ी है फिर भी उसकी यहां विवक्षा नहीं की गई है, क्योंकि, क्षेत्र लाते समय सातवें नरकके नारकियोंकी संख्याको उनकी अवगाहनासे गुणित करने पर जो क्षेत्र उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा पहले नरकके नारकियोंकी संख्याको उनकी अवगाहनासे गुणित करने पर अधिक क्षेत्र होता है । नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनका कथन करने पर इन स्थानोंको प्राप्त नारकियोंकी जितनी राशियां हों उन्हें प्रमाण घनांगुलके संख्यातवें भाग-मात्र अवगाहनासे गुणित कर देने पर विवक्षित पदकी अपेक्षा अपने अपने क्षेत्रका प्रमाण आ जाता है, जिसे लोकसे भाजित करने पर लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शन होता है। इतना विशेष हैं कि वेदना और कषायसमुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लाते समय मूल अवगाह-नाको नौगुणी और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लाते समय मूल अवगाहनाको संख्या-तगुणी कर लेना चाहिये । तथा इन स्थानोको प्राप्त जीवोंकी संख्या भी मूल राशिके संख्यातवें भाग प्रमाण होती है । अर्थात् जहां जितनी राशि हो उसके संख्यातवें भाग प्रमाण जीव विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात करते हैं अधिक नहीं । मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लाते समय भी पहले नरकके नारकियोंकी संख्याकी अपेक्षा ही उसे लाना चाहिये, क्योंकि, यहां मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव शेष छहों नरकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा अधिक हैं । पर उनके विग्रहकी अपेक्षा क्षेत्रकी लम्बाई राजुके असंख्यातवे भाग मात्र ही पाई जाती है । मार-णान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंकी राशि ऋजुगति और विग्रहगतिकी अपेक्षा दो प्रकारकी होती है । उनमेंसे यहां विग्रहकी अपेक्षा मारणान्तिक समुद्घात करनेवाली राशि ही विव-क्षित है, क्योंकि, इसके क्षेत्रकी लम्बाई ऋजुगतिकी अपेक्षा मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवके क्षेत्रकी लम्बाईकी अपेक्षा बहुत अधिक पाई जाती है । एक समयमें जितने जीव विग्रहगतिसे अन्य पर्यायमें जाते हैं उनके असंख्यातवें बहुभागप्रमाण जीव मारणान्तिक समुद्घात करते हैं । इसलिये इस राशिको आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमण-कालसे गुणित कर देने पर मारणान्तिक समुद्घात करने वाली जीवराशिका प्रमाण आ जाता है । पुनः इसे राजुके असंख्यातवें भागप्रमाण लम्बे और अपनी अवगाहनासे नौगुणे प्रतररूप क्षेत्रसे गुणित कर देने पर मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनका प्रमाण आ

§ ८३. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु खेत्तभंगो । एवं णवगेवेज्जादि जाव सव्वट्ठ०-सव्व एइंदि०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपु०अप०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ-अपज्ज०-तेउ०-बाद०तेउ०-बादरतेउ०अप०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ० अप०-सुहुमपुढवि०-सुहु०पुढविपज्ज०-सु० पु०अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुम आउपज्ज०-सु० आउ अपज्ज०-सु० तेउ०-सु० तेउ० पज्ज०-सुहु० तेउ० अपज्ज-सुहुमवाउ०-सु०

जाता है । जो लोकसे भाजित करने पर लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है । उपपादकी अपेक्षा स्पर्शन लाते समय दूसरी पृथिवीकी अपेक्षासे लाना चाहिये । एक समयमें उपपादको प्राप्त होनेवाले जीवोंके प्रमाणको एक राजु लम्बे और तिर्यंचोंकी अवगाहनासे नौगुणे प्रतर रूप क्षेत्रसे गुणित कर देने पर उपपादकी अपेक्षा स्पर्शन आ जाता है, जो लोकसे भाजित करने पर उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है । यह जो ऊपर भिन्न-भिन्न नरकोंकी प्रधानतासे स्पर्शन कहा गया है इसमें शेष नारकियोंके स्पर्शनके मिला देने पर भी वह लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण ही होता है । इसी प्रकार अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिक पदोंको प्राप्त सामान्य नारकियोंका स्पर्शन क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए सामान्य नारकियोंका स्पर्शन देशोन छह बटे चौदह राजु प्रमाण है, क्योंकि, मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा अतीतकालमें देशोन तीन हजार योजन कम आनुपूर्वीके योग्य मध्यलोकसे लेकर सातवें नरक तकके सभी क्षेत्रका स्पर्शन किया है । विशेषरूपसे विचार करने पर पहले नरकके स्पर्शन और क्षेत्रमें कोई अन्तर नहीं है । अर्थात् पहले नरकका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण जानना चाहिये । द्वितीयादि नरकोंमें मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्शनका कथन करते समय मध्यलोकसे उस उस नरक भूमि तक जितने राजु हों, देशोन उतना स्पर्शन कहना चाहिये । शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है ।

§८३. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान जानना चाहिये । नौ ग्रैवेयकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंका स्पर्शन भी इसीप्रकार अर्थात् क्षेत्रके समान जानना चाहिये । तथा सर्व एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त,

**वाउ०पज्ज०-सु० वाउ० अपज्ज०-वण०-बादरवण०-बाद० वणप्फदि पज्ज०-बाद० वण० अपज्ज०-सुहु० वण०-सुहु० वण० पज्जत्तापज्ज-णिगोद०-बादरणिगो०-बादरणिगोद पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगो०-सु० णि० पज्ज० अपज्ज०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-णवुंसय०-चत्तारि-कसाय-मदिअण्णाण सुदअण्णाण-मणपज्जव०-सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहारविसुद्धि-सुहुमसांपराइय-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा०-अभवसिद्धि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि० आहारि त्ति वत्तव्वं ।**

सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्म सांपरायसंयत, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंके स्पर्शनका कथन क्षेत्रके समान करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें स्पर्शन सामान्यसे अपने अपने क्षेत्रके समान जानना चाहिये । तिर्यंचोंमें क्षेत्र सर्वलोक है स्पर्शन भी इतना ही है । नौ ग्रैवेयकोंसे लेकर सर्वार्थ सिद्धितकके देवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण है स्पर्शन भी इतना ही है । सर्व एकेन्द्रियोंका क्षेत्र सर्वलोक है, स्पर्शन भी इतना ही है । ऊपर कहे गये पृथिवीकायिक जीवोंसे लेकर सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याप्त जीवों तकका क्षेत्र सर्वलोक है, स्पर्शन भी इतना है । औदारिक काययोगी और औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है स्पर्शन भी इतना ही है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, स्पर्शन भी इतना ही है । आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण है, स्पर्शन भी इतना ही है । कार्मणकाययोगी, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र सर्वलोक है, स्पर्शन भी इतना ही है । मनःपर्ययज्ञानीसे लेकर सूक्ष्मसांपरायसंयत जीवों तकका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, स्पर्शन भी इतना ही है । असंयत, से लेकर आहारी पर्यन्त जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है स्पर्शन भी इतना ही है । इन उपर्युक्त सभी मार्गणास्थानोंमें विशेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनमें क्षेत्रसे जहां जो विशेषता हो वह स्पर्शन अनुयोगद्वारसे जान लेना चाहिये ।

**§ ८४. सव्वपंचिंदियतिरिक्ख० विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । एवं मणुसअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त–बादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ०पज्जत्त-बादरतेउ०पज्ज०–बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्ज०–बादरणिगोदपडिट्ठिदपज्जत्ताणं वत्तव्वं । बादरवाउ०पज्जत्त० विहत्ति० लोगस्स संखेज्जदि भागो, सव्व-लोगो वा । मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं विहत्ति० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । अविहत्ति० ओघभंगो ।**

§ ८४. सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र और सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके स्पर्शनका कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–पंचेन्द्रियतिर्यंच, पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंच और लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंचोंने वर्तमानमें अपने अपने संभव पदोंके द्वारा लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इन्हीं चारों प्रकारके तिर्यंचोंने अतीत कालमें मारणांतिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, इन दोनों पदोंकी अपेक्षा इनका त्रसनालीके बाहर भी सर्वत्र सद्भाव देखा जाता है । तथा अतीत कालमें शेष पदोंके द्वारा उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंने लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है जिसका 'सव्वलोगो वा' में आये हुए 'वा' पदसे समुच्चय कर लेना चाहिये । लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंसे लेकर बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर तकके जीवोंके स्पर्शनमें इन उपर्युक्त तिर्यंचोंके स्पर्शनसे कोई विशेषता नहीं है, इसलिये तिर्यंचोंके स्पर्शनके समान ऊपर कहे गये शेष मार्गणास्थानोंमें भी स्पर्शन समझना चाहिये ।

बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने वर्तमानमें लोकका संख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र और सर्वलोक स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ**–बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका वर्तमान क्षेत्र का विचार क्षेत्रप्ररूपणामें किया है अत: वहांसे जानना। तथा अतीत कालमें उक्त जीवोंने मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालकी अपेक्षा इनका सर्वलोकमें गमन और लोकके किसी भी भागसे आकर अन्य जीवोंका इनमें उत्पन्न होना संभव है। तथा अतीत कालमें शेष पदोंके द्वारा इन जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका ही स्पर्श किया है जिसका 'सव्वलोगो वा' में आये हुए 'वा' पदसे समुच्चय कर लेना चाहिये।

सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिणियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन

§ ८५. देवगईए देवेसु विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं। लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा। एवं सोहम्मीसाण देवाणं वत्तव्वं। भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियाणं केव० खेत्तं पोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठ अट्ठ

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके स्पर्शनके समान है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका स्पर्शन ओघके समान है।

**विशेषार्थ**–पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सर्वलोक कह आये हैं वही मोहनीय कर्मसे युक्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंका समझना चाहिये। तथा मोहनीय कर्मसे रहित उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण और सर्वलोक जानना चाहिये।

§ ८५. देवगतिमें देवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, देशोन आठ बटे चौदह राजु और देशोन नौ बटे चौदह राजु क्षेत्र स्पर्श किया है। सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंका स्पर्शन इसी प्रकार कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–देवोंने वर्तमान कालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थानपदकी अपेक्षा अतीतकालमें भी लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अतीतकालमें विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंकी अपेक्षा देशोन आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, नीचे तीसरी पृथिवी तक और ऊपर अच्युत कल्प तक देवोंका विहार देखा जाता है। यहां देशोनसे तीसरी पृथिवीके अन्तिम एक हजार योजन मोटे क्षेत्रका और देवोंके द्वारा अगम्य प्रदेशका ग्रहण किया है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा देशोन नौ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। क्योंकि, मारणान्तिक समुद्घातमें देवोंका मध्य लोकसे नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु इस प्रकार नौ राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श देखा जाता है। उपपाद पदकी अपेक्षा देशोन छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। यद्यपि मध्य लोकसे नीचे अब्बहुलभाग तक और ऊपर अच्युत कल्पसे आगे सातवीं राजुमें भी देवोंका उपपाद देखा जाता है, फिर भी वह सब मिलाकर देशोन छह बटे चौदह राजुसे अधिक क्षेत्र नहीं होता है, क्योंकि, सर्वत्र देवोंका उत्पाद आनुपूर्वीगत प्रदेशोंके अनुसार ही होता है। सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंका स्पर्शन उपपादको छोड़कर बाकी सब सामान्य देवोंके स्पर्शनके समान ही है।

मोहनीय विभक्तिवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह राजु, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है।

**णव चोद्दसभागा वा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारा त्ति विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा । आणद-पाणद-आरण-अच्चुद० विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छ चोद्दस भागा वा देसूणा ।**

**विशेषार्थ**—उक्त तीनों प्रकारके देवोंने वर्तमान कालमें संभव सभी पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीत कालमें स्वस्थानस्वस्थान और उपपाद पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंकी अपेक्षा अपने आप देशोन साढ़े तीन बटे चौदह राजु और पर प्रयोगसे देशोन आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया हैं। भवनत्रिक देव स्वयं विहार करते हुए ऊपर सौधर्म-ऐशानकल्प तक और नीचे तीसरे नरक तक जाते हैं। तथा यदि कोई ऊपरका देव लेजाये तो ऊपर अच्युत कल्पतक जासकते हैं। इसप्रकार स्वप्रयोगसे देशोन साढे तीन बटे चोदह राजु और परप्रयोगसे देशोन आठ बटे चौदह राजु क्षेत्र हो जाता है। समुद्घातकी अपेक्षा देशोन नौ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां नौ राजुसे ऊपर सात राजु और नीचे दो राजु क्षेत्र लेना चाहिये।

सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके मोहनीय विभक्तिवाले देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग और देशोन आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ**—सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंने वर्तमान कालमें लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा देशोन आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, इनका नीचे तीसरे नरक तक और ऊपर अच्युत कल्प तक आना जाना देखा जाता है। उपपाद पदकी अपेक्षा सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने देशोन तीन बटे चौदह राजु, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवोंने देशोन साढ़े तीन बटे चौदह राजु, लान्तव कापिष्ठ-कल्पवासी देवोंने देशोन चार बटे चौदह राजु, शुक्र-महाशुक्र कल्पवासी देवोंने देशोन साढ़े चार बटे चौदह राजु और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंने देशोन पांच बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है।

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी मोहनीय विभक्तिवाले देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग और देशोन छ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है।

§ ८६. **पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ चोद्दस भागा वा देसूणा, सव्वलोगो वा। अविहत्ति० केव०? ओघभंगो। एवं पंचमण०-पंचवचि०-चक्खुदंसण०-सण्णि त्ति वत्तव्वं। णवरि, अविहत्ति० खेत्तभंगो।**

**विशेषार्थ**—उक्त कल्पवासी देवोंने वर्तमान कालमें संभव सभी पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। तथा अतीत कालमें स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा देशोन छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि इन आनतादि देवोंका चित्रा पृथिवीके ऊपरके तलसे नीचे गमन नहीं पाया जाता है। उपपादकी अपेक्षा आनत-प्राणत कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े पांच बटे चौदह राजु और आरण-अच्युतकल्पवासी देवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, मध्यलोकसे आनत-प्राणत कल्प साढ़े पांच राजु और आरण-अच्युत कल्प छह राजु है।

§ ८६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वलोक क्षेत्र स्पर्श किया है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? ओघके समान स्पर्श है। इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन पांचों मनोयोगी आदि जीवोंके मोहनीय अविभक्तिकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्तकोंमें मोह विभक्तिवाले-जीवोंने वर्तमानमें संभव सभी पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अतीत कालमें स्वस्थानस्वस्थान, तैजस समुद्घात और आहारकसमुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हुए उक्त जीव सर्वलोकमें पाये जाते हैं। तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमेंसे पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव पहले समयमें समस्त लोकमें पाये जाते हैं। मोह अविभक्तिवाले उक्त जीवोंका वर्तमानकालीन और अतीतकालीन स्पर्श ओघके समान है। अतः ओघप्ररूपणामें जो खुलासा किया है वह यहां समझ लेना चाहिये। विशेष बात यह है कि ओघप्ररूपणामें मोह अविभक्तिवाले जीवोंमें सिद्धोंका

**§ ८७. इत्थि०-पुरिस०-विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा, सव्वलोगो वा। एवं विहंगणाणीणं वत्तव्वं। अवगद० विहत्ति० खेत्तभंगो। अविहत्ति० ओघभंगो। एवमकसाइ०-संजद०-जहाक्खाद० वत्तव्वं।**

भी ग्रहण किया है। पर यहां उनका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, वे समस्त कर्मोंसे रहित होते हैं, अतः उनमें पंचेन्द्रिय आदि व्यवहार नहीं होता। मोहनीय विभक्तिवाले चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंका सभी पदोंकी अपेक्षा वर्तमानकालीन और अतीतकालीन स्पर्श पंचेन्द्रियादिके समान है। किन्तु पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता, अतः इनका शेष पदोंकी अपेक्षा दोनों प्रकारका स्पर्श पंचेन्द्रियादिके समान ही है। पर पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, संज्ञी और चक्षुदर्शनी जीवोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, केवलिसमुद्घातमें मनोयोग और वचनयोग नहीं होता। तथा केवली संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकारके व्यपदेशसे रहित हैं। तथा चक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक ही होता है। अतः इनके लोकका असंख्यात बहुभाग और समस्त लोक स्पर्श नहीं बन सकता।

§ ८७. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवे भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार विभंग ज्ञानियोंके जान लेना चाहिये। अपगतवेदियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है, तथा मोहनीय अविभक्तिवाले अपगतवेदी जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। इसी प्रकार अकषायी, संयत और यथाख्यात संयत जीवोंमें मोहनीयविभक्ति और मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–मोहनीय विभक्तिवाले स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंने वर्तमानकालमें संभव सभी पदोंकी अपेक्षा और अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवोंके तैजस और आहारकसमुद्घात नहीं होता है। तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है और मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। विभंग ज्ञानियोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात ये छह पद होते हैं। स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंके इन छह पदोंकी अपेक्षा जिस प्रकार वर्तमान और अतीत कालीन स्पर्श कहा है उसी प्रकार विभंग ज्ञानियोंके जानना चाहिये।

§ ८८. **आभिणिबोहिय०-सुद०-ओहि० विहत्ति० केव० खेत्तं० पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ चोद्दस भागा वा देसूणा। अविहत्ति० खेत्तभंगो। एवमोहिदंसणीणं वत्तव्वं। संजदासंजद० विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छ चोद्दस भागा वा देसूणा। तेउलेस्सा० सोहम्मभंगो। पम्मलेस्सा० सहस्सारभंगो।**

अपगतवेदियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव ग्यारहवें गुणस्थान तक होते हैं जिनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श संभव पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका दोनों प्रकारका स्पर्श ओघके समान है, अतः ओघप्ररूपणाके समय जो खुलासा कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं। अकषायी आदि जीवोंका मोहनीयविभक्ति और मोहनीय अविभक्तिकी अपेक्षा वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श अपगतवेदियोंके समान है। पदोंकी अपेक्षा जो विशेषता हो उसे यथायोग्य जान लेना चाहिये।

§ ८८. **मतिज्ञानी,** श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी जीवोंके स्पर्शन कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–इनके केवलि समुद्घातको छोड़कर शेष नौ पद होते हैं। उनमेंसे मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंके मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण है। शेष सभी पदोंकी अपेक्षा वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्शन तथा मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण ही है। मोहनीय विभक्ति और मोहनीय अविभक्तिकी अपेक्षा इसमें कोई विशेषता नहीं है। पर मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंके एक स्वस्थानस्वस्थान पद ही होता है, शेष नहीं।

**संयतासंयतमें** मोहनीय विभक्तिवाले जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

**विशेषार्थ**–अतीतकालमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा संयतासंयतोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। क्योंकि, संयतासंयत तिर्यंच और मनुष्य जीव अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाये जाते हैं। शेष सभी प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

**पीतलेश्यामें** सौधर्मके समान पद्मलेश्यामें सहस्रारके समान और शुक्लेश्यामें संयतासंयतोंके समान स्पर्शन है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके शुक्लेश्यामें ओघके

सुक्कलेस्सा० विहत्ति० संजदासंजदभंगो। अविहत्ति० ओघभंगो। सम्मादिट्ठि-खइय० विहत्ति० आभिणिबोहियभंगो। अविहत्ति० ओघभंगो। वेदय० विहत्ति० आभिणिबोहियभंगो। एवमुवसम०-सम्मामि० वत्तव्वं। सासण० विहत्ति० केव० खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।

एवं पोसणं समत्तं

§ ८६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहविहत्तिया अविहत्तिया च केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा। एवं मणुस्स-मणुस्सपज्जत्त-मणुसिणी-पंचिंदिय-पंचि० पज्जत्त-तस-तसपज्ज०-तिण्णि मण०-तिण्णि वचि० कायजोगि०-ओरालिय०-संजद-सुक्कले०-भवसिद्धि०-सम्मादिट्टि-खइय०-आहारि अणाहारए त्ति वत्तव्वं। मणुस्सअपज्ज० विहत्ति० केव० कालादो होंति? जह० खुद्दाभवग्गहणं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो। दोमण०-दोवचि०-

समान स्पर्शन है। मोहनीय विभक्तिवाले सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके मतिज्ञानियोंके समान स्पर्शन है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके ओघके समान स्पर्शन है। मोहनीय विभक्तिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके मतिज्ञानियोंके समान स्पर्शन है। तथा इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्पर्शन जानना चाहिये। मोहनीय विभक्तिवाले सासादन सम्यग्दृष्टियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवे भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

इस प्रकार स्पर्शनानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ८६. **कालानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघकी** अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है? सर्वकाल है। इसीप्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिणी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन मनोयोगी और ये ही तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, संयत, शुक्लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–यहां मोहनीयविभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका नाना जीवोकी अपेक्षा काल बतलाया है। सामान्यसे तो उक्त दोनों प्रकारके जीव सर्वदा हैं ही। पर ऊपर जितनी मार्गणाएं बतलाई हैं उनमें भी दोनों प्रकारके नाना जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इसीलिये इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है।

**लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें** मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण है। इसका यह

**विहत्ति० सव्वद्धा। अविहत्ति० जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ओरालिय-मिस्स० विहत्ति० सव्वद्धा। अविहत्ति० जहण्णेण एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। एवं कम्मइय०। णवरि, अविहत्ति० जह० तिण्णि समया। वेउव्वियमि० विहत्ति० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। आहार० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं सुहुमसांपराइय०। आहारमि० जहण्णुक्क० अंतोमु०।**

तात्पर्य है कि लब्धपर्याप्तकमनुष्य कमसे कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण कालतक और अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक निरन्तर अवश्य पाये जाते हैं इसके बाद उनका अन्तर हो जाता है। अतः इसी अपेक्षासे लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उक्त काल कहा है।

असत्य और उभय मनोयोगी तथा असत्य और उभय बचनयोगी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगियोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल तीन समय है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। आहारक काययोगी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके जानना चाहिये। आहारक-मिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–नाना जीवोंकी अपेक्षा असत्य और उभय ये दोनों मनोयोग और ये ही दोनो वचनयोग सर्वदा पाये जाते हैं। अतः इनकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं यह कहा है। तथा बारहवें गुणस्थानकी अपेक्षा उक्त योगोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले भी जीव पाये जाते हैं। अतः जिन जीवोंके उक्त दोनों मनोयोगों और वचनयोगोंके कालमें एक समय शेष रहने पर बारहवां गुणस्थान प्राप्त हुआ है उनके उक्त योगोंकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय बन जाता है। तथा उक्त योगोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उसकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। यहां यह शंका होती है कि बारहवे गुणस्थानमें योगपरावर्तन नहीं होता, अतः यहां उक्त दोनों मनोयोग और वचन योगोंका जघन्यकाल एक समय नहीं कहना चाहिये। उसका यह समाधान है कि यहां एक योगसे योगान्तर नहीं होता, यह ठीक है

§६०. अवगद० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अविहत्ति० सव्वद्धा। एवमकसाय०–जहाक्खाद० वत्तव्वं। आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण०-सण्णि० विहत्ति० सव्वद्धा। अविहत्ति० जहण्णुक्क० अंतोमु०। उवसम०–सम्मामि० वेउव्वियमिस्सभंगो। सासण० विहत्ति० जह० एगसमओ

फिर भी मनोयोग और वचनयोगकी अपेक्षा अपने अवान्तर भेदोंमें परावर्तन होनेमें कोई बाधा नहीं है। इसका यह तात्पर्य है कि मनोयोगसे वचनयोग या काययोग नहीं होता। इसी प्रकार अन्य योगोंकी अपेक्षा भी जान लेना चाहिये। पर मनोयोग या वचनयोगका एक अवान्तर भेद होकर उसके स्थानमें दूसरा अवान्तर भेद आ सकता है। नाना जीवोंकी अपेक्षा औदारिकमिश्र काययोग और कार्मणकाययोग सर्वदा पाये जाते हैं तथा इनमें मोह नीय विभक्तिवाले जीव भी सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिये इनकी अपेक्षा मोहनीय विभक्ति वाले जीवोंका काल सर्वदा कहा है। पर मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके औदारिकमिश्र काययोग और कार्मणकाययोग सर्वदा नहीं होते। जब केवली केवलिसमुद्घात करते हैं तब उनके कपाट समुद्घातके समय औदारिकमिश्रकाययोग और लोकपूरणसमुद्घातके समय कार्मणकाययोग होता है। अब यदि नाना जीव एक साथ केवलिसमुद्घात करते हैं तो इन दोनों योगोंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल क्रमसे एक समय और तीन समय पाया जाता है और यदि लगातार नाना जीव केवलिसमुद्घात करते हैं तो इन दोनों योगोंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्टकाल संख्यात समय पाया जाता है, क्योंकि अधिकसे अधिक संख्यात समय तक ही नाना जीव लगातार केवलिसमुद्घात करते हैं। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी आदिका काल भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

§६०. अपगतवेदियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले अपगतवेदी जीव सर्वदा होते हैं। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–उपशमश्रेणिकी अपेक्षा अपगतवेदियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा बारहवें गुणस्थानसे लेकर आगेके सभी मोहनीय अविभक्तिवाले जीव अपगतवेदी होते हैं, इस अपेक्षासे इनका सर्वकाल कहा है।

**मतिज्ञानी**, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं। तथा उक्त मार्गणाओंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि मोहनीय विभक्तिवालोंका काल वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और

**उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। णिरय० तिरिक्खगइ-आदिसेसाणं मग्गणाणं मोह-विहत्तियाणं कालो सव्वद्धा।**

**एवं कालो समत्तो।**

**§ ९१. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण विहत्ति० अविहत्ति० णत्थि अंतरं, णिरंतरं। एव मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्ज०-तिण्णिमण०-तिण्णिवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-संजद-सुक्क०-भव-सिद्धिय०-सम्मादि०-खइय०-आहारि-अणाहारए त्ति वत्तव्वं।**

**§ ९२. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु विहत्ति० णत्थि अंतरं। एवं सव्वणेरइय०**

उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा नरकगति और तिर्यंचगति आदि शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं।

**विशेषार्थ**—मतिज्ञान आदि मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्ति-वाले दोनों प्रकारके जीव होते हैं। उनमेंसे मोहनीय विभक्तिवाले जीव तो सर्वदा पाये जाते हैं पर मोहनीय अविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक पाये जाते हैं, क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा भी बारहवे गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्त-र्मुहूर्त ही है। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके कालके समान है। नानाजीवोंकी अपेक्षा सासादन सम्यग्दृष्टियोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अतः सासादनकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उक्त काल कहा है। ऊपर जिन मार्गणाओंका कथन कर आये उनसे अतिरिक्त नरकगति आदि प्रायः सभी मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले ही जीव होते हैं। तथा वे मार्गणाएं सर्वदा होती हैं अतः उनमें रहनेवाले मोहनीयविभक्तिवाले जीवका काल भी सर्वदा कहा है।

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ९१. **अन्तरानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघकी** अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर-काल नहीं है, क्योंकि वे सर्वदा पाये जाते हैं। इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यिणी ये तीन प्रकारके मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनु-भय ये तीन मनोयोगी और ये ही तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, संयत, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, आहारक और अनाहारक जीवोंके कथन करना चाहिये। अर्थात् इन मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अवि-भक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये अन्तरकाल नहीं है।

§ ९२. **आदेशकी** अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका अन्तर-

**सव्वतिरि०–सव्वदेव०–सव्व-एइंदिय०–सव्वविगलिंदिय – पंचिंदियअपज्जत्त–तस–अपज्ज०-पंचकाय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय०-तिण्णि अण्णाणि-सामाइय० छेदोव०–परिहार०–संजदासंजद–असंजद–पंचलेस्सा०–अभवसिद्धि०–वेदगसम्माइट्ठि मिच्छाइट्ठि असण्णित्ति वत्तव्वं। मणुसअपज्ज० अंतरं जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं सासण०–सम्मामिच्छाइट्ठीणं वत्तव्वं। दोमण०-दोवचि० विहत्ति० णत्थि अंतरं, णिरंतरं। अविहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। एवमाभिणि०–सुद०–चक्खुदं०–अचक्खुदं०–सण्णीणं वत्तव्वं।**

**§ ६३. ओरालियमिस्स० विहत्ति० णत्थि अंतरं, णिरंतरं। अविहत्ति० जह०**

काल नहीं है। इसी प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यंच, सभी देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, तीन अज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें जीव निरन्तर पाये जाते हैं और वे मोहयुक्त ही हैं, अतः इनमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका कहना चाहिये। अर्थात् इन तीनों मार्गणाओंका नानाजीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इन मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका भी उक्त अन्तरकाल कहा है।

असत्य और उभय इन दो मनोयोगी और इन्हीं दो वचनयोगियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि वे निरन्तर पाये जाते हैं। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इसी प्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं वे बारहवें गुणस्थान तक पाई जाती हैं। और बारहवां गुणस्थान सान्तर है। उसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, अतः इन मार्गणाओंमें भी मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। तथा इन मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट है।

§ ६३. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं

**एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवं कम्मइय० ओहिणाण-मणपज्जव०-ओहिदंसण० वत्तव्वं। वेउव्वियमिस्स० विहत्ति० जह० एगसमओ उक्क० बारस मुहुत्ताणि। आहार०-आहारमिस्स० विहत्ति० जह० एगसमओ उक्क० वासपुधत्तं। अवगद० विहत्ति० जह० एगसमओ उक्क० छम्मासा। अविहत्ति० णत्थि अंतरं।**

है, वे निरन्तर पाये जाते हैं। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय-ज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–उपर्युक्तमार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी अपेक्षा, अवधिज्ञान और अवधिदर्शनका असंयतादि चार गुणस्थानोंकी अपेक्षा तथा मनःपर्ययज्ञानका प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है। अतः उक्त मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा हैं। तथा औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोगमें मोहनीय अविभक्ति-वाले जीवोंका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है उसका कारण यह है कि मोहनीय विभक्तिसे रहित तेरहवे गुणस्थानवाले जीवोंके कपाट-समुद्घातके समय औदारिकमिश्रकाययोग और प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातके समय कार्मण-काययोग होता है। और इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथ-क्त्व कहा है, अतः इन दोनों योगोंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोका भी उक्त अन्तर प्राप्त होता है। तथा अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और मनःपर्ययज्ञानके साथ चारों क्षपकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इन चारों क्षपकोंमें क्षीणकषाय गुणस्थान भी सम्मिलित है, अतः अवधिज्ञान आदि उक्त तीन मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका भी उक्त अन्तर प्राप्त होता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी मोहनीय-विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसका यह तात्पर्य है कि इन मार्गणाओंका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल है वही यहां इन इन मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल होता है।

अपगतवेदियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है।

**विशेषार्थ**–चार क्षपक गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बताया है, अतः इस अपेक्षासे अपगतवेदियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका उक्त अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। अपगतवेदियोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर-

§ ९४. अकसाय० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । अविहत्ति० णत्थि अंतरं । एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं । सुहुमसांप० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । उवसम० विह० जह० एगसमओ, उक्कस्सेण चउवीस अहोरत्ताणि ।

एवमंतरं समत्तं

§ ९५. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण विहत्ति०

काल नहीं कहनेका कारण यह है कि सयोगकेवली और सिद्ध जीव सर्वदा पाये जाते हैं जो कि अपगतवेदी होते हुए मोहनीयविभक्तिसे रहित हैं ।

§ ९४. अकषायियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । उपशमसम्यग्दृष्टि मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिन रात है ।

**विशेषार्थ**–अकषायीजीवोंके ग्यारहवें गुणस्थानमें ही मोहनीयकी सत्ता पाई जाती है और उसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः अकषायी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । तथा अकषायियोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालके नहीं कहनेका कारण यह है कि सयोगकेवली और सिद्ध जीव सर्वदा पाये जाते हैं । मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले यथाख्यातसंयतोंका अन्तर काल भी इसी प्रकार कहना चाहिये । विशेष बात यह है कि मोहनीय अविभक्तिवाले यथाख्यात-संयतोंके अन्तर कालका अभाव सयोग केवलियोंकी अपेक्षासे कहना चाहिये । सूक्ष्म सांपरायिक संयतोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना स्पष्ट ही है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है । अतः मोहनीय विभक्तिकी अपेक्षा उपशम सम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल भी इतना ही कहा है । यद्यपि जीवट्ठाणके अन्तरानुयोगद्वारमें असंयत उपशमसम्यग्दृष्टियोंका और खुद्दाबंधमें सामान्य उपशम सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन रात बताया है और यहां उपशम सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है, इसलिये जीवट्ठाण और खुद्दाबन्धके उक्त कथनसे इस कथनमें विरोध आता हुआ प्रतीत होता है पर इसे विरोध न मानकर मान्यताभेद मानना चाहिये, इसलिये कोई दोष नहीं है ।

इसप्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

९५. § भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

**को भावो ? ओदइओ उवसामिओ खइओ खओवसमिओ वा। अविहत्ति० को भावो ? खइओ भावो। एवं जाव अणाहारए त्ति।**

**§ ९६. अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा अविहत्तिया, विहत्तिया अणंतगुणा। एवं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि०-अणाहारए त्ति वत्तव्वं। मणुसगईए मणुस्सेसु सव्वत्थोवा अविह० विहत्ति० असंखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि० आभिणि०-सुद०-ओहिणाण-चक्खुदंसण-ओहिदं०**

उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंके कौनसा भाव है ? औदायिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके तीन तीन भेद हैं–औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। तथा मिथ्यात्व मिथ्यात्व कर्मके उदयसे होता है। अतः इनमेंसे जहां जो भेद संभव हो उसकी अपेक्षा वहां वह भाव समझ लेना चाहिये। अन्यत्र सासादनसम्यग्दृष्टिके पारिणामिक और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके क्षायोपशमिक भाव बताया है पर यहां उस विवक्षाभेदकी अपेक्षा नहीं की है ऐसा प्रतीत होता है। अतः सासादनमें अनन्तानुबन्धी आदिके उदयकी अपेक्षा और सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें मिश्र आदि प्रकृतिके उदयकी अपेक्षा औदयिक भाव जानना चाहिये। इसी प्रकार जिस मार्गणास्थानमें उपर्युक्त भावोंमेंसे जो भाव संभव हो उसका कथन कर लेना चाहिये।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ ९६. **अल्पबहुत्वानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। मोहनीय विभक्तिवाले जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, आहारक और अनाहारक जीवोंके कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–यद्यपि मोहनीयकी अविभक्तिवाले अनाहारक जीवोंमें अयोगकेवली और सिद्धोंका भी ग्रहण हो जाता है तो भी मोहनीय विभक्तिवाले अनाहारक जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। शेष कथन सुगम है।

**मनुष्यगतिमें** मनुष्योंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। मोहनीय विभक्तिवाले जीव इनसे असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके कथन करना चाहिये।

सुक्कले० सण्णि त्ति वत्तव्वं। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा अविहत्ति० विहत्ति० संखेज्जगुणा। एवं मणपज्जव०-संजदाणं वत्तव्वं। अवगदवे० सव्वत्थोवा विहत्ति० अविहत्ति० अणंतगुणा। एवमकसाय-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीणं णेदव्वं। जहाक्खाद० सव्वत्थोवा विहत्ति०, अविहत्ति० संखेज्जगुणा। सेसासु मग्गणासु णत्थि अप्पाबहुगं एगपदत्तादो।

एवं मूलपयडिविहत्ती समत्ता।

विशेषार्थ–ये जितनी मार्गणाये ऊपर कही है उनमें प्रत्येकका प्रमाण असंख्यात है पर इनमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीव संख्यात ही होते हैं अतः इन मार्गणाओंमें मोहनीय अविभक्तिवालोंसे मोहनीय विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे कहे हैं।

मनुष्य पर्याप्त और योनिमती मनुष्योंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। मोहनीय विभक्तिवाले जीव इनसे संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंके कहना चाहिये। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। मोहनीय अविभक्तिवाले जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार अकषायी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ–अपगतवेदी आदि जीवोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंसे बारहवें गुणस्थानसे लेकर सिद्धों तक सबका ग्रहण किया है। इसलिए उक्त मार्गणाओंमें मोहनीय-विभक्तिवाले जीवोंसे मोहनीय अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे प्राप्त होते हैं।

यथाख्यातसंयतोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। मोहनीय अविभक्ति-वाले जीव इनसे संख्यातगुणे हैं। इन उपर्युक्त मार्गणाओंको छोड़कर शेष मार्गणाओंमे अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि वहां पर दोनोंमेंसे एक पद ही पाया जाता है।

इस प्रकार मूलप्रकृतिविभक्ति समाप्त हुई।

* तदो उत्तरपयडिविहत्ती दुविहा, एगेगउत्तरपयडिविहत्ती चेव पयडिट्ठाण उत्तरपयडिविहत्ती चेव ।

§ ६७. अट्ठावीस मोहपयडीणं जत्थ पुध पुध परूवणा कीरदि सा एगेगउत्तरपयडिविहत्ती णाम । जत्थ अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसादिपयडिसंतट्ठाणाणं परूवणा कीरदि सा पयडिट्ठाण-उत्तरपयडिविहत्ती णाम । एवमुत्तरपयडिविहत्ती दुविहा चेव होदि अण्णिस्से असंभवादो ।

* तत्थ एगेग-उत्तरपयडिविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि । तं जहा एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो सण्णियासो, अप्पाबहुए त्ति ।

§ ६८. एवमेत्थ एक्कारस अणियोगद्दाराणि भवंति। संपहि समुक्कित्तणा सव्वविहत्ती णोसव्वविहत्ती उक्कस्सविहत्ती अणुक्कस्सविहत्ती जहण्णविहत्ती अजहण्णविहत्ती सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवविहत्ती अद्धुवविहत्ती, एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं सण्णियासो, णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागाणुगमो परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुगं चेदि एवं चउवीस अणिओगद्दाराणि एगेगउत्तरपयडिविहत्तीए

* उत्तरप्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी है, एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति और प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति ।

§ ६७. जिसमें मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंका अलग अलग कथन किया जाता है उसे एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं । तथा जिसमें मोहनीय कर्मके अट्ठाईसप्रकृतिक, सत्ताईस प्रकृतिक और छब्बीस प्रकृतिक आदि सत्त्वस्थानोंका कथन किया जाता है उसे प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं। इसप्रकार उत्तरप्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी ही होती है, क्योंकि इनके अतिरिक्त और किसी तीसरी विभक्तिका पाया जाना संभव नहीं है ।

* उन दोनों भेदोंमेंसे एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्तिके ये ग्यारह अनुयोगद्वार हैं । वे इसप्रकार हैं-एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, और अन्तर, तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, सन्निकर्ष और अल्पबहुत्व ।

§ ६८. इसप्रकार एकैकप्रकृतिविभक्तिके ये ग्यारह अनुयोगद्वार होते हैं ।

शंका-उच्चारणाचार्यने एकैकप्रकृतिविभक्तिके समुत्कीर्तना, सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति तथा एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, और सन्निकर्ष तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभागानुगम, परिमाण, क्षेत्र,

उच्चारणाइरिएहि परूविदाणि। जइवसहाइरिएण पुण एक्कारस चेव परूविदाणि, दोण्हं वक्खाणाणमेदेसिं कथं ण विरोहो ? णत्थि विरोहो, दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणए अवलंबिय पयट्टाणं विरोहाभावादो। जइवसहाइरियो जेण संगहणओ तेण तस्स अहिप्पाएण एक्कारस अणिओगद्दाराणि होंति।

§ ६६. कमणियोगद्दारं कम्मि संगहियं ? वुच्चदे, समुक्कित्तणा ताव पुध ण वत्तव्वा सामित्तादिअणियोगद्दारेहि चेव एगेगपयडीणमत्थित्तसिद्धीदो अवगयत्थपरूवणाए फलाभावादो। सव्वविहत्ती णोसव्वविहत्ती उक्कस्सविहत्ती अणुक्कस्सविहत्ती जहण्णविहत्ती अजहण्णविहत्तीओ च ण वत्तव्वाओ, सामित्त-सण्णियासादिअणिओगद्दारेसु भण्णमाणेसु अवगयपयडिसंखस्स सिस्सस्स उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णपयडिसंखाविसयपडिबोहुप्पत्तीदो। सादि-अणादि-धुव-अद्धुवअहियारा वि ण वत्तव्वा कालंतरेसु परूविज्ज-

स्पर्शन, काल, अन्तर, भावानुगम और अल्पबहुत्व इसप्रकार ये चौवीस अनुयोगद्वार कहे हैं, पर यतिवृषभ आचार्यने ग्यारह ही अनुयोगद्वार कहे हैं, अतः इन दोनो व्याख्यानोका परस्परमें विरोध क्यों नहीं है ?

**समाधान**–यद्यपि यतिवृषभ आचार्यने ग्यारह और उच्चारणाचार्यने चौबीस अनुयोगद्वार कहे हैं तो भी इनमें परस्परमें विरोध नहीं है, क्योंकि, यतिवृषभ आचार्यका कथन द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है और उच्चारणाचार्यका कथन पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है, अतः उक्त दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है। चूँकि यतिवृषभ आचार्यने संग्रहनयका आश्रय लिया है इसलिये उनके अभिप्रायानुसार ग्यारह अनुयोगद्वार होते हैं।

§ ६६. अब किस अनुयोगद्वारका किस अनुयोगद्वारमें संग्रह किया है इसका कथन करते हैं–यद्यपि समुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंका अस्तित्व बतलाया जाता है तो भी उसे अलग नहीं कहना चाहिये, क्योंकि स्वामित्व आदि अनुयोगोंके कथनके द्वारा ही प्रत्येक प्रकृतिका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। अतः जाने हुए अर्थका कथन करनेमें कोई फल नहीं है। तथा सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, और अजघन्यविभक्तिका भी अलगसे कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि, स्वामित्व, सन्निकर्ष आदि अनुयोगद्वारोंके कथनसे जिस शिष्यने प्रकृतियोंकी संख्याका ज्ञान कर लिया है उसे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, तथा जघन्य और अजघन्य प्रकृतियोंकी संख्याका ज्ञान हो ही जाता है। तथा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अधिकारोंका भी पृथक् कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि काल अनुयोगद्वार और अन्तर अनुयोगद्वारके कथन करने पर उनका ज्ञान हो जाता

(१)–संखवि–स०, अ०, आ०।

भाणेसु तदवगमुप्पत्तीदो। भागाभागो ण वत्तव्वो; अवगयअप्पाबहुग[स्स] संख-विसयपडिबोहुप्पत्तीदो। भावो वि ण वत्तव्वो; उवदेसेण विणा वि मोहोदएण मोहपय-डिविहत्तीए संभवो होदि त्ति अवगमुप्पत्तीदो। एवं संगहियसेसतेरसअत्थाहियारत्तादो एक्कारसअणिओगद्दारपरूवणा चउवीसअणियोगद्दारपरूवणाए सह ण विरुज्झदे।

*** एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु तदो एगेग-उत्तरपयडिविहत्ती समत्ता।**

§ १००. संपहि एत्थ उं[च्चारणाइरियवक्खा]णं जडजणाणुग्गहट्ठं परूविदमिह वण्णइस्सामो; संपहि मेहाविजणाभावादो। तं जहा, तत्थ इमाणि चउवीस अणुओ-गद्दाराणि णादव्वाणि भवंति–समुक्कित्तणा सव्वविहत्ती णोसव्वविहत्ती उक्कस्सविहत्ती अणुक्कस्सविहत्ती जहण्णविहत्ती अजहण्णविहत्ती सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुव-विहत्ती अद्धुवविहत्ती एगजीवेणं [सामित्तं कालो अंतरं सण्णियासो] णाणाजीवेहि भंग-विचओ भागाभागाणुगमो परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुगं चेदि।

है। तथा भागाभाग अनुयोगद्वारका भी पृथक् कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि जिसे अल्पबहुत्वका ज्ञान हो गया है उसे भागाभागका ज्ञान हो ही जाता है। उसी प्रकार भाव अनुयोगद्वारका भी पृथक् कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि, मोहके उदयसे मोहप्रकृति-विभक्ति होती है यह बात उपदेशके बिना भी जानी जाती है। इस प्रकार शेष तेरह अनुयोगद्वार ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें ही संग्रहीत हो जाते हैं, अतः ग्यारह अनुयोगद्वारोंका कथन चौबीस अनुयोगद्वारोंके कथनके साथ विरोधको नहीं प्राप्त होता।

*** इन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके कथन करने पर एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति नामक अनुयोगद्वार समाप्त हो जाता है।**

§ १००. अब मन्दबुद्धिजनों पर अनुग्रह करनेके लिये उच्चारणाचार्यके द्वारा किये गये व्याख्यानको यहां कहते हैं, क्योंकि, इस कालमें बुद्धिमान मनुष्य नहीं पाये जाते हैं। वह इस प्रकार है–उस एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्तिके कथनमें ये चौबीस अनुयोगद्वार जानने चाहिये। समुत्कीर्तना, सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति तथा एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, और नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावा

(१) ग····(त्रु० ७) हुप्प–स०। –गसखविसयपडिबोहुप्प–अ०, आ०। (२) उ··(त्रु० ११) ण–स०। उत्तरपयडिविहत्तीणं–अ०, आ०। (३)–ण····(त्रु० १४) णाणाजी–स०। –णसमुक्कित्तणा सव्वविहत्ती णाणाजी–अ०, आ०,।

§ १०१. समुक्कित्तणा दुविहा ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिकोहमाणमायालोह-अपच्चक्खाणावरणकोहमाणमायालोह-पच्चक्खाणावरणकोहमाणमायालोह-संजलणकोहमाणमायालोह-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेद-हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछा त्ति एदासिमट्ठावीसण्हं मोहपयडीणमत्थि विहत्तिया च अविहत्तिया च। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-आभिणिबोहिय०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसणं-[सुक्कलेस्सिय-भवसिद्धिय-सम्मादिट्ठि-सण्णि]-आहारि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं।

§१०२. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्क० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, सेसाणं पयडीणं अत्थि विहत्ति०। एवं

नुगम और अल्पबहुत्वानुगम।

§ १०१. ओघसमुत्कीर्तना और आदेशसमुत्कीर्तना इस प्रकार समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार दो प्रकारका है। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ; स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा मोहकी इन अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्य पर्याप्त और मनुष्यिणी ये तीन प्रकारके मनुष्य तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, सामान्य काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—मार्गणास्थानोंकी विवक्षा न करके सामान्यसे जीवोंके मोहनीयकी सभी प्रकृतियोंका पाया जाना और नहीं पाया जाना संभव है अतः इस प्ररूपणाको ओघप्ररूपणा कहा है। तथा ओघप्ररूपणाके अनन्तर मनुष्यत्रिकसे लेकर अनाहारक जीवों तक जो मार्गणास्थान बतलाये हैं उनके भी मोहकी समस्त प्रकृतियोंका सद्भाव और अभाव संभव है। अतः उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है।

§ १०२. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। तथा इन सात प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष इक्कीस प्रकृतियोंके विभक्तिवाले ही जीव हैं। इसी प्रकार

(१) ण०····(त्रु०) आहा-स०। ण आहा-अ०, आ०।

**पढमपुढवि०–तिरिक्ख–पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पज्ज०–देव–सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्ठदेव०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-परिहार०-संजदासंजदे–[ असंजद-पंचले-स्सिया]त्ति। विदियप्पहुडि जाव सत्तमेत्ति एवं चेव। णवरि मिच्छत्तस्स अविहत्तिया णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-भवण०-वाणवेंतर-जोदिसिया त्ति वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, सेसाणं अत्थि विहत्ति०। एवं मणुसअपज्ज०–सव्वएइंदिय–सव्वविगलिंदिय–पज्जत्त–अपज्ज०**

पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत और कृष्णादि पांच लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ऊपर सामान्य नारकी आदि जितने मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें कमसे कम इक्कीस और अधिकसे अधिक अट्ठाईस प्रकृतियोकी सत्तावाले जीव होते हैं।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक छह पृथिवियोंके नारकियोंके इसी प्रकार कथन करना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव नहीं होते हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**–इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन छह प्रकृतियोका अभाव हो सकता है पर एक जीवके छह प्रकृतियोंका अभाव नहीं होता। जिसने सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके उक्त दो प्रकृतियोंका अभाव होता है। तथा जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अभाव होता है। क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्तिकालमे ही उक्त छह प्रकृतियोंका एकसाथ अभाव पाया जाता है। पर इन मार्गणाओंमें क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं, और न क्षायिकसम्यग्दृष्टि ही इनमें उत्पन्न होता है अतः इनमें उक्त छह प्रकृतियोंका अभाव नाना जीवोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें अधिकसे अधिक अट्ठाईस और कमसे कम चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जातीहै।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। तथा इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही जीव हैं। इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सभी एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त, अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त, अपर्याप्त, पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक पांचों

(१) असजदप्पहुडि····(पृ० १९) ति एवं।–स०।

पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-बादर-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-तस०-[अपज्जत्त-मदि-सुदअण्णाणि-विभंग०-मिच्छाइट्ठि-असण्णि] त्ति वत्तव्वं। आहार०-आहारमिस्स० पढमपुढविभंगो। इत्थिवेदएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-णवुंसयवेद० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०। चत्तारिसंजलण-छण्णोकसाय-पुरिसित्थिवेदाणं अत्थि विहत्ति०। पुरिसवेदएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-अट्ठणोकसाय० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, पुरिस० चदुसंजलण० अत्थि विहत्ति०। णवुंसे० [मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय]-इत्थि० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, चत्तारिसंजलण-दोवेद-छण्णोकसाय० अत्थि विहत्ति०। अवगदवेद० चदुवीसण्णं अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०। अणंता-

स्थावरकाय और उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस लब्धपर्याप्तक, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें सादि मिथ्यादृष्टि होते हुए जिन जीवोंने सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उनके इन दो प्रकृतियोंका अभाव होता है तथा जिन जीवोंने इन दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना नहीं की है उनके इनका सत्त्व होता है। इस प्रकार उपर्युक्त मार्गणाओंमें छब्बीस और अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके प्रकृतियोंका सत्त्व पहली पृथिवीके समान कहना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार पहले नरकमें दर्शनमोहनीयकी तीन और अनन्तानुबन्धीकी चार इन सात प्रकृतियोंका सत्त्व है और नहीं भी है, तथा शेष इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्व ही है उसी प्रकार उक्त दोनों काययोगी जीवोंके जानना चाहिये।

**स्त्रीवेदी** जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलन चारके बिना शेष बारह कषाय और नपुंसक वेद इन सोलह प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। तथा चार संज्वलन, छह नोकषाय, पुरुषवेद और स्त्रीवेद इन बारह प्रकृतियोंके विभक्तिवाले ही हैं। पुरुषवेदियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलन चारके बिना शेष बारह कषाय और पुरुषवेदके बिना आठ नो कषाय इन तेईस प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। तथा पुरुषवेद और चार संज्वलन इन पांच प्रकृतियोंके विभक्तिवाले ही जीव हैं। नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलनके बिना बारह कषाय और स्त्रीवेद इन सोलह प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। तथा चार संज्वलन, पुरुष और नपुंसक ये दो वेद और हास्यादि छह नो कषाय इन बारह प्रकृतियोंके नियमसे विभक्तिवाले जीव हैं। अपगतवेदियोंमें चौबीस प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं। पर

(१) तस०····(त्रु० १९) त्ति-स०। (२) णवुंस०····(त्रु० १४) इत्थि०-स०।

**णुबंधिचउक्कस्स विहत्तिया णियमा अत्थि [ णत्थि ] । एवमकसायि० जहाक्खाद० ।**

**§ १०३. कसायाणुवादेण कोधकसाईणं पुरिसभंगो । णवरि पुरिस० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं माणकसाईणं । णवरि कोह० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं मायाकसाईणं [णवरि माण०] अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं लोभकसायी० । णवरि माय० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं सामाइय-छेदो० वत्तव्वं ।**

अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव नियमसे नहीं हैं । अपगतवेदियोंके समान अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवके स्त्रीवेदकी उदयव्युच्छित्तिके पहले चार संज्वलन, हास्यादि छह नोकषाय, पुरुषवेद और स्त्रीवेद इन बारह प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सोलह प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है, अतः स्त्रीवेदीके उक्त बारह प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है तथा शेषका सत्त्व है और नहीं है । इसी प्रकार नपुंसकवेदीके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदके स्थानमें नपुंसकवेदका सत्त्व कहना चाहिये । पुरुषवेदीके पुरुषवेदका उदय रहते हुए चार संज्वलन और पुरुषवेदका क्षय नहीं होता । शेषका हो जाता है । अतः पुरुष वेदीके उक्त पांच प्रकृतियोंको छोड़कर शेष तेईस प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है पर उक्त पांच प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है । द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके साथ उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होकर जो जीव अपगतवेदी हो जाता है उसके चार अनन्तानुबन्धीको छोड़ कर शेष चौबीस प्रकृतियोका सत्त्व पाया जाता है, अतः अपगतवेदी जीवके अनन्तानुबन्धी चारको छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है । पर चार अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नियमसे नहीं है । अकषायी और यथाख्यातसंयतोंके अपगतवेदियोंके समान जानना चाहिये ।

§ १०३. **कषायानुवादकी** अपेक्षा क्रोध कषायवाले जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि ये पुरुषवेदकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार मानकषायवाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानकषायवाले जीव क्रोध कषायकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार मायाकषायवाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि माया कषायवाले जीव मानकषायकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार लोभकषायवाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लोभकषायवाले जीव मायाकषायकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवके अवेदभागमें क्रमसे क्रोध, मान और मायाका और सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानमें लोभका क्षय होता है अतः क्रोधवेदकके पुरुषवेदका, मानवेदकके

( १ )–ईणं···· (त्रु० ५) अत्थि–स० ।

§ १०४. सुहुम० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-सम्मामि०-एक्कारसकसाय०-णवणोकसाय० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०। लोभ० अत्थि विहत्ति०, अणंताणुबंधिचउक्कविहत्तिया णियमा णत्थि। अभवसिद्धि० छव्वीसपयडीणं अत्थि विहत्ति०। खइय० एक्कवीस० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०। वेदग० [मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-] अणंताणुबंधिचउक्क० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, सम्मत्त०-बारसकसाय-णवणोकसाय० अत्थि विहत्ति०। उवसमसम्माइट्ठीसु अणंताणुबंधिचउक्कस्स अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, सेसचउवीसण्हं पयडीणं अत्थि विहत्ति०। एवं सम्मामि०। सासण० सव्वासिं पयडीणं विहत्ती णियमा अत्थि।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

क्रोधका, मायावेदकके मानका और लोभवेदकके मायाका सत्त्व है भी नहीं भी है। शेष कथन पुरुषवेदीके समान जानना चाहिये। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम नौवें गुणस्थान तक होते हैं, अतः इनके लोभकषायवाले जीवोंके समान लोभकषायको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है, पर लोभकषायका सत्त्व नियमसे है।

§ १०४. सूक्ष्म सांपरायिक संयतोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषाय इन तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं। लोभकी नियमसे विभक्तिवाले हैं और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी नियमसे अविभक्ति वाले हैं।

**विशेषार्थ**–सूक्ष्मसांपराय संयम दसवें गुणस्थानमें होता है। इसलिये यहां अनन्तानुबन्धी चारका सत्त्व तो है ही नहीं। शेष चौबीस प्रकृतियोंमेंसे तेईस प्रकृतियोंका क्षपक श्रेणीवालेके अभाव होता है और उपशमश्रेणीवालेके उनका सत्त्व पाया जाता है। पर इसके सूक्ष्म लोभका सत्त्व नियमसे है।

अभव्य जीवोंमें सभी जीव मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन छह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं। तथा सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषाय इन बाईस प्रकृतियोंकी नियमसे विभक्तिवाले हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चारकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं। तथा शेष चौबीस प्रकृतियोंकी नियमसे विभक्तिवाले हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें नियमसे सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव हैं।

(१)–मा अत्थि–स०, आ०। (२) वेदग०····(तृ० ११) अणं०–स०।

**§ १०५. सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वाओ पयडीओ सव्वविहत्ती। तदूणं णोसव्वविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारएत्ति।**

**§ १०६. उक्कस्सविहत्ति-अणुक्कस्सविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वुक्कस्साओ पयडीओ उक्कस्सविहत्ती। तदूणमणुक्कस्सविहत्ती। उक्कस्सविहत्ती ण वत्तव्वा; सव्वविहत्तीए विसेसाभावादो। अत्थि विसेसो**

**विशेषार्थ**—अभव्य जीवोंके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंका सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन सात प्रकृतियोंको छोड़कर शेष इकीस प्रकृतियोका सत्त्व है और नहीं भी है। पर उक्त सात प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे नहीं है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जिसने चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है तथा जिसने क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करते समय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर दिया है, उसके उक्त छह प्रकृतियोंको छोड़कर शेष बाईस प्रकृतियोंका सत्त्व होता है। पर जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके सभी प्रकृतियोका सत्त्व होता है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासे प्राप्त होता है और प्रथमोपशमसम्यक्त्व दर्शनमोहनीयके उपशमसे प्राप्त होता है। अतः उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अनन्तानुबन्धी चारका सत्त्व है भी और नहीं भी है। पर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है। जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव मिश्रगुणस्थानमें भी जाता है, अतः इसके भी चार अनन्तानुबन्धीका सत्त्व है भी और नहीं भी है। पर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है। सासादनगुणस्थान अनन्तानुबन्धी चारमेंसे किसी एकके उदयसे होता है, अतः यहां सभी प्रकृतियोंका सत्त्व है।

इस प्रकार समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ १०५. सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी प्रकृतियोंको सर्वविभक्ति और इससे कमको नोसर्वविभक्ति कहते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १०६. उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है– ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट प्रकृतियोंको उत्कृष्टविभक्ति और इनसे कमको अनुत्कृष्टविभक्ति कहते हैं।

**शंका**—उत्कृष्टविभक्तिका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि सर्वविभक्तिसे इसमें कोई भेद नहीं है?

**पादेक्कं सव्वपयडीपरूवणा सव्वविहत्ती, पयडीणं सव्वासिं समूहस्स पयडीहिंतो कथंचि पुधभूदस्स परूवणा उक्कस्सविहत्ती, तदो ण पुणरुत्तदोसो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारएत्ति।**

**§ १०७. जहण्णविहत्ति-अजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वजहण्णपयडीओ जहण्णविहत्ती, तदुवरि अजहण्णविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारएत्ति।**

**§ १०८. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसाय-विहत्ति० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा? अणादिया धुवा अद्धुवा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० किं सादिया४? सादि-अद्धुवा। अणादि-धुवं णत्थि।**

**समाधान**–इन दोनोंमें परस्पर भेद है, क्योंकि अलग अलग सर्वप्रकृतियोंकी प्ररूपणाको सर्वविभक्ति कहते हैं और प्रकृतियोंसे कथंचित् भिन्नभूत समस्त प्रकृतियोंके समूहकी प्ररूपणाको उत्कृष्टविभक्ति कहते हैं, अतः सर्वविभक्ति और उत्कृष्टविभक्तिका पृथक् पृथक् कथन करने पर पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

गतिमार्गणासे लेकर अनाहारकमार्गणा तक उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्तिका कथन इसी प्रकार करना चाहिये।

§ १०७. जघन्यविभक्ति और अजघन्यविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे जघन्य प्रकृतियां जघन्यविभक्ति है और इसके ऊपर अजघन्यविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १०८. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय और नौ नोकषाय ये विभक्तियां क्या सादि हैं, क्या अनादि हैं, क्या ध्रुव हैं, क्या अध्रुव हैं? अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं। सत्त्व व्युच्छित्ति होने तक निरन्तर रहती हैं, इसलिये अनादि हैं। तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव हैं। इन प्रकृतियोंमें सादिभेद नहीं होता है, क्योंकि सत्त्व व्युच्छित्तिके बाद इनका पुनः सत्त्व नहीं होता।

सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व विभक्तियां क्या सादि हैं, क्या अनादि हैं, क्या ध्रुव हैं, क्या अध्रुव हैं? सादि और अध्रुव हैं। इनमें अनादि और ध्रुवपद नहीं है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व होनेके अनन्तर ही इन दो विभक्तियोंका सत्त्व होता है, अतः ये सादि और अध्रुव हैं।

§ १०६. अणंताणुबंधिचउक्क० किं सादिया४ ? सादि-अणादि-धुव-अद्धुव० । एवमचक्खुदंसण०-भवसिद्धि० । णवरि भव० धुवं णत्थि । अभवियसमाणेसु भविएसु वि ण धुवमत्थि विणासणसत्तिसब्भावादो । अभवसिद्धि० सव्वपयडि० किं सादि०४? अणादि० धुव० । सेसासु मग्गणासु सव्वपयडी० सादि० अद्धुव०; तथावट्ठिदजीवाभावादो । णवरि मदि०-सुद०-असंजदमिच्छाइट्ठीसु छब्बीसपयडीणं विहत्ति० सादि० अणादि० धुवा० अद्धुवा वा, सम्म०-सम्मामिच्छत्त० सादि०अद्धुवा । एवं सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमो समत्तो ।

§ १०६. अनन्तानुबन्धी चतुष्क क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्क सादि है, अनादि है, ध्रुव है और अध्रुव है। विसंयोजनाके पहले अनादि है। विसंयोजनाके अनन्तर पुनः सत्त्व होनेसे सादि है । अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव है ।

इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्यजीवोंके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके ध्रुवपद नहीं है । तथा अभव्योंके समान जो भव्य हैं उनके भी ध्रुवपद नहीं है, क्योंकि उनके विभक्तियोंके विनाश करनेकी शक्ति पाई जाती है ।

**विशेषार्थ**–अचक्षुदर्शन बारहवे गुणस्थान तक निरन्तर रहता है और वह भव्य और अभव्य दोनोंके पाया जाता है । अतः इनके ओघप्ररूपणाके समान विवक्षित प्रकृतियोंके यथासंभव पद बन जाते हैं । भव्य जीवोंके भी ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है, पर इनके ध्रुवपद नहीं होता है; क्योंकि यह पद अभव्योंकी अपेक्षा कहा है ।

अभव्य जीवोंमें सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सभी प्रकृतियां क्या सादि हैं, क्या अनादि हैं, क्या ध्रुव हैं, क्या अध्रुव हैं ? अनादि और ध्रुव हैं । अभव्योंके इन छब्बीस प्रकृतियोंका सत्त्व अनादि कालसे है अतः वे अनादि हैं और अनन्त काल तक रहेगा इसलिये वे ध्रुव हैं ।

इन उपर्युक्त मार्गणाओंको छोड़कर शेष मार्गणाओंमें सभी प्रकृतियां सादि और अध्रुव हैं, क्योंकि उनमें जीव सदा अवस्थित नहीं रहता । इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत और मिथ्यादृष्टि इन चार मार्गणाओंमें छब्बीस प्रकृतियां सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं । तथा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व सादि और अध्रुव हैं ।

**विशेषार्थ**–भव्य जीवोंके सम्यग्दर्शन होनेके पहले तक मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ये तीन मार्गणाएं तथा संयम होनेके पहले तक असंयम मार्गणा निरन्तर पाई जाती हैं । तथा ये चारों मार्गणाएँ अभव्यके भी होती हैं । अतः इन मार्गणाओंमें उक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों पद बन जाते

§ ११०. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्त० विहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। अविहत्ती कस्स ? सम्मादिट्ठिस्स खविदमिच्छत्तस्स। सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ती कस्स ? अण्ण० मिच्छादिट्ठिस्स सम्मादिट्ठिस्स वा। अविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छादि० सम्मादिट्ठिस्स वा उव्वेल्लिद-खविदसम्मत्तसम्मामिच्छत्तस्स। अणंताणुबंधिचउक्कस्स विहत्ती कस्स ? अण्ण० मिच्छादि० सम्मादिट्ठिस्स वा अविसंजोयिदअणंताणुबंधिचउक्कस्स। अविहत्ती कस्स ? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स विसंजोयिद-अणंताणुबंधिचउक्कस्स। बारस-कसाय-णवणोकसायविहत्ती कस्स ? सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। अविहत्ती कस्स ? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स णिस्संतकम्मियस्स। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०

हैं। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा सादि और अध्रुव पद स्पष्ट है। तथा शेष मार्गणाएँ सादि हैं, अतः उनकी अपेक्षा सादि और अध्रुव पद ही होते हैं।

इस प्रकार सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगम समाप्त हुए।

§ ११०. **स्वामित्वानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे **ओघकी** अपेक्षा मिथ्यात्वविभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वविभक्ति है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवके और जिस सम्यग्दृष्टि जीवने मिथ्यात्वका क्षय नहीं किया है उसके मिथ्यात्व विभक्ति होती है। मिथ्यात्व अविभक्ति किसके है ? जिसने मिथ्यात्व विभक्तिका क्षय कर दिया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व अविभक्ति है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वविभक्ति किसके है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके है। सम्यक्त्वअविभक्ति और सम्यग्मिथ्यात्वअविभक्ति किसके है ? जिसने सम्यक्त्वविभक्ति और सम्यग्मिथ्यात्वविभक्तिकी उद्वेलना कर दी है ऐसे किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके या जिसने सम्यक्त्वविभक्ति और सम्यग्मिथ्यात्वविभक्तिका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वअविभक्ति और सम्यग्मिथ्यात्वअविभक्ति है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कविभक्ति किसके है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके या जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी-चतुष्कविभक्ति है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कअविभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्क अविभक्ति है। (अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके जो सम्यग्दृष्टि जीव तीसरे गुण स्थानमें आ जाता है उसके भी अनन्तानुबन्धी की अविभक्ति रहती है। किन्तु यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की है।) बारह कषाय और नौ नोकषाय विभक्ति किसके है ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके है। बारह कषाय और नौ नोकषायअविभक्ति किसके हैं ? जिसने बारह कषाय और नौ नोकषायोंका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके है।

**पज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्कलेस्सिय-भवसिद्धिय-सण्णि-आहारि त्ति ।**

**§ १११. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं ओघभंगो । बारसकसाय-णवणोकसायविहत्ती कस्स ? अण्णद० । एवं पढमाए पुढवीए तिरिक्खगइ-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०ति०पज्ज०-देवा-सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जेत्ति वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-असंजद-पंचलेस्सिया त्ति वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि मिच्छत्त-अविहत्ती णत्थि । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया त्ति वत्तव्वं ।**

इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। अर्थात् उपर्युक्त मनुष्यत्रिक आदि मार्गणाओंमें प्रारंभके बारह गुणस्थान संभव हैं, अतः इनमें ओघके समान प्ररूपणा बन जाती है।

§ १११. **आदेशकी** अपेक्षा **नरकगतिमें** नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कथन ओघके समान है। तथा बारह कषाय और नौ नोकषायविभक्ति किसके है ? किसी भी नारकीके है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्यतिर्यँच, पंचेन्द्रियतिर्यँच, पंचेन्द्रियतिर्यँच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, असंयत और कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—इन मार्गणास्थानवाले जीवोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है, अतः इनके तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धीका सत्त्व है भी और नहीं भी है। पर इनमेंसे किसीके भी क्षपकश्रेणी संभव नहीं है, अतः उक्त सात प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष इक्कीस प्रकृतियोंका इनके सत्त्व ही है।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्व अविभक्ति नहीं है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यँचयोनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन छह प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सभी प्रकृतियोंका सत्त्व है। पर उक्त छह प्रकृतियोंमेंसे जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है उसके उक्त दो प्रकृतियोंका असत्त्व होता है और शेषके सत्त्व होता है। तथा जिस सम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका असत्त्व होता है और शेषके सत्त्व होता है।

§ ११२. **पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सम्मत्त० सम्मामि० विहत्ती अविहत्ती च कस्स ? अण्णदरस्स । सेसाणं पयडीणं विहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स । एवं मणुस्स-अपज्जत्त-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्ज०-पंचकाय०-बादर सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-मदि-सुदअण्णाणि-विभंग०-मिच्छाइट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तविहत्ती कस्स ? अण्ण० । अविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स खविददंसणमोहणीयस्स । एवमणंताणुबंधिचउक्कस्स । णवरि अविहत्ती कस्स, अण्णदरस्स विसंयोजिदाणंताणुबंधिचउक्कस्स । सेसाणं पयडीणं विहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स । एवमाहार०-आहारमिस्स०-परिहार० संजदासंजदा त्ति ।**

§ ११२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति तथा अविभक्ति किसके है ? किसी भी जीवके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति होती है । तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी जीवके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति है । इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, त्रसलब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय, तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–उक्त मार्गणावाले जीवोंके छब्बीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है । तथा जिसने सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की है उसके उक्त दो प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है, शेषके है ।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति किसके है ? किसी भी देवके मिथ्यात्व आदिकी विभक्ति है । इन प्रकृतियोंकी अविभक्ति किसके है ? जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी देवके इनकी अविभक्ति है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विषयमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है ऐसे किसी भी देवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्ति है । इन सात प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी देवके शेष इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्ति है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं । अतः जिनके चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और तीन दर्शनमोहनीयका क्षय हो गया है उनके इन प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है, शेषके है । पर इन मार्गणाओंमें इनके अतिरिक्त शेष इक्कीस

§ ११३. ओरालियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त अणंताणुबंधिचउक्क० ओघभंगो। बारसकसाय-णवणोकसायविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। अविहत्ती कस्स ? अण्णद० सजोगिकेवलिस्स। एवं कम्मइय० अणाहारि त्ति वत्तव्वं। णवरि, बारसकसाय-णवणोक० अविहत्तीए [ पदर ] लोगपूरणगदो सजोगी अजोगी च सामिणो।

§ ११४. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्क० ओघभंगो। अट्ठक०-णवुंसयविहत्ती कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। अविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स। चत्तारिसंजलण०-दोवेद०-छण्णोक० विहत्ती

प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है।

§ ११३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा कथन ओघके समान है। तथा बारह कषाय और नौ नोकषायविभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि औदारिक मिश्रकाययोगीके बारह कषाय और नौ नोकषाय की विभक्ति है। बारह कषाय और नौ नोकषायकी अविभक्ति किसके है ? किसी भी सयोगकेवली औदारिकमिश्रकाययोगी जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायकी अविभक्ति है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषाय की अविभक्तिके स्वामी प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त सयोगकेवली जीव हैं। तथा अनाहारकोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायकी अविभक्तिके स्वामी प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त सयोगकेवली और अयोगकेवली हैं।

**विशेषार्थ**–औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग पहले, दूसरे चौथे और तेरहवें गुणस्थानमें होता है। तथा अनाहारक अवस्था पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमें और चौदहवें गुणस्थानमें होती है। तथा मोहनीयका सत्त्व बारहवे गुणस्थानसे नहीं है, क्योंकि दसवेंके अन्तमें उसका समूल नाश हो जाता है, अतः उक्त मार्गणाओंमें संभव तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानकी अपेक्षा इक्कीस मोहप्रकृतियोंका असत्त्व कहा है। तथा शेषके इनका सत्त्व कहा है। शेष सात प्रकृतियोंकी अपेक्षा सत्त्वासत्त्व जिस प्रकार ओघमें कहा है उसी प्रकार वहां भी जान लेना चाहिये।

§ ११४. स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कथन ओघके समान है। तथा आठ कषाय और नपुंसक वेदकी विभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके आठ कषाय और नपुंसक वेदकी विभक्ति है। आठ कषाय और नपुंसकवेदकी अविभक्ति किसके है ? किसी भी क्षपक स्त्रीवेदी जीवके आठ कषाय और नपुंसकवेदकी अविभक्ति है। तथा चार संज्वलन, दो वेद और छह

**कस्स ? अण्ण० सम्मादि० मिच्छादि० वा । पुरिसवेदएसु इत्थिवेदभंगो । णवरि इत्थिवेद-छण्णोक० अविहत्ती कस्स ? खवयस्स । णवुंस० इत्थिवेदभंगो । णवरि णवुंसयवेदस्स अविहत्तिया णत्थि । इत्थिवेद० पुरिसवेदभंगो । अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त०-सम्मामि०-अट्ठक०-दोवेदविहत्ती कस्स० ? अण्ण० उवसामयस्स । अविहत्ती कस्स ? अण्ण० खवयस्स । णवरि दंसणतियअविहत्ती उवसामगस्स वि । चत्तारि-संजलण-पुरिस-छण्णोकसाय० विहत्ती कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स वा खवयस्स वा । अविहत्ती कस्स ? अण्णद० खवयस्स ।**

नोकषायकी विभक्ति किसके हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीवके है। पुरुषवेदियोंमें स्त्रीवेदियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदियोंमें स्त्रीवेद और छह नोकषायकी अविभक्ति किसके है ? क्षपक पुरुषवेदी जीवके है। नपुंसकवेदियोंमें स्त्रीवेदियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके नपुंसकवेदकी अविभक्ति नहीं है। तथा स्त्रीवेदका कथन पुरुषवेदके समान है। **अपगतवेदियोंमें** मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और दो वेदोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी उपशामक जीवके इन प्रकृतियोंकी विभक्ति है। तथा उक्त प्रकृतियोंकी अविभक्ति किसके है ? किसी एक क्षपक जीवके उक्त प्रकृतियोंकी अविभक्ति है। इतनी विशेषता है कि तीन दर्शनमोहनीयकी अविभक्ति उपशामकके भी है। तथा चार संज्वलन, पुरुषवेद और छह नोकषायोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी उपशामक या क्षपक अपगतवेदी जीवके इन प्रकृतियोंकी विभक्ति है। तथा इनकी अविभक्ति किसके है ? किसी एक क्षपक जीवके इनकी अविभक्ति है।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदियोंके चार संज्वलन, छह नोकषाय, पुरुषवेद और स्त्रीवेद इन बारह प्रकृतियोंका नियमसे सत्त्व है। तथा शेष सोलह प्रकृतियोंका किन्हींके सत्त्व है और किन्हींके नही। पुरुषवेदियोंके चार संज्वलन और पुरुषवेदका सत्त्व नियमसे है। शेषका सत्त्व किन्हींके है और किन्हींके नहीं। नपुसकवेदियोंके स्त्रीवेदियोंके समान जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेदके सत्त्वके स्थानमें नपुंसकवेदका सत्त्व कहना चाहिये। इन तीनों वेदवाले जीवोंके जिन प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है उन्हें छोड़कर शेष प्रकृतियोंका सत्त्व किसके है और किसके नहीं, इसका स्पष्टीकरण ऊपर किया ही है, तथा अपगतवेदियोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व नियमसे नहीं है, अतः ऊपर इनका उल्लेख नहीं किया है। तथा इनके अतिरिक्त शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है। उपशामक अपगतवेदीके तीन दर्शनमोहनीयको छोड़कर शेष इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है। तथा तीन दर्शनमोहनीयका सत्त्व है भी और नहीं भी है। जो क्षायिक सम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणी पर चढ़ा है उसके नहीं है।

**§ ११५. कोधक० पुरिसभंगो। णवरि पुरिस० अविहत्ती अत्थि। एवं माणकसाय०, णवरि कोध० अविहत्ती अत्थि। एवं मायाकसाय०, णवरि माण० अविहत्ती अत्थि। एवं लोभकसाय०, णवरि माय० अविहत्ती अत्थि। अकसाय० चउवीसपयडीणं विहत्ती कस्स? अण्ण० उवसामयस्स। अविहत्ती कस्स? अण्ण० खवयवस्स। एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं।**

तथा जो उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणी पर चढ़ा है उसके है। तथा जो जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी हुए हैं उनके मध्यकी आठ कषाय नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका सत्त्व नियमसे नहीं है। शेष ग्यारह प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है। जिस अपगतवेदीने इनका क्षय कर दिया है उसके इनका सत्त्व नहीं है और जिसने क्षय नहीं किया है उसके इनका सत्त्व है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए क्षपक जीवके छह नोकषायोंका क्षय सवेदभागमें ही हो जाता है।

§ ११५. क्रोधकषायवाले जीवके पुरुषवेदी जीवके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके पुरुषवेदकी अविभक्ति भी है। इसी प्रकार मानकषायवाले जीवके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके क्रोधकषायकी अविभक्ति भी है। इसी प्रकार मायाकषायवाले जीवके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके मानकषायकी अविभक्ति भी है। इसी प्रकार लोभकषायवाले जीवके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके मायाकषायकी अविभक्ति भी है। कषायरहित जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके हैं? किसी भी उपशामक जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना शेष चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्ति है। चौबीस प्रकृतियोंकी अविभक्ति किसके हैं? किसी भी एक क्षपक जीवके चौबीस प्रकृतियोंकी अविभक्ति है। इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–पुरुषवेदी जीवकी अपेक्षा क्रोधादिकषायवाले जीवोंके जो विशेषता होती है वह ऊपर बतलाई ही है। कषाय रहित अवस्था उपशमश्रेणीके ग्यारहवें गुणस्थानमें और क्षपकश्रेणीके बारहवें गुणस्थानसे होती है। ग्यारहवे गुणस्थानमें चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है। इसलिये कषायरहित उपशामकके चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व कहा है। इतनी विशेषता है कि यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी पर चढ़ता है तो उसके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होता है। तथा बारहवे गुणस्थानमें मोहनीयकी एक भी प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, अतः कषायरहित क्षपक जीवके सभी प्रकृतियोंका असत्त्व कहा है। यथाख्यातसंयम भी ग्यारहवें गुणस्थानसे होता है, अतः इसका कथन भी कषाय रहित जीवोंके समान ही है।

§ ११६. आभिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधि-चउक्क० विहत्ती कस्स ? अण्ण० अक्खीणदंसणमोहणीयस्स। अविहत्ती कस्स ? अण्ण० खीणदंसणमोहस्स। सेसाणं पयडीणं ओघभंगो। णवरि विहत्ती अण्ण०। एवं मण-पज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-ओहिदंसण-सम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्वं। णवरि सामाइय०-[छेदो०] लोभ० अविहत्ती णत्थि। सुहुमसांपराइयसंजदेसु मिच्छत्त०-सम्मत्त०-सम्मामि०-एक्कारसक०-णवणोक० विहत्ती कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स। अविहत्ती कस्स० ? अण्ण० खवयस्स। णवरि दंसणतियस्स अविहत्ती अत्थि उवसामगस्स वि। लोभ० विहत्ती कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स वा खवयस्स वा। अभवसिद्धि० छव्वीसण्हं पयडीणं विहत्ती कस्स ? अण्ण०।

§ ११७. खइयसम्माइट्ठीसु बारसक०-णवणोक० विहत्ती कस्स ? अण्ण० अक्ख-

§ ११६. मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यत्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति किसके है ? जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके है। अविभक्ति किसके है ? जिसने उनका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके है। तथा इनके शेष प्रकृतियोंका कथन ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि शेष इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्ति किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवके लोभकषायकी अविभक्ति नहीं है।

सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलन लोभके बिना ग्यारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्ति किसके है ? किसी भी उपशामकके है। अविभक्ति किसके है ? किसी भी क्षपकके है। इतनी विशेषता है कि तीन दर्शनमोहनीयकी अविभक्ति उपशामकके भी है। लोभकी विभक्ति किसके है ? किसी एक उपशामक या क्षपक सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवके लोभकी विभक्ति है।

**विशेषार्थ**—क्षपक सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवके एक सूक्ष्म लोभका ही सत्त्व है शेष सबका असत्त्व है। तथा उपशामक सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना चौबीस प्रकृतियोंका और क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक सूक्ष्मसांपरायिक जीवके अनन्तानुबन्धी चार और तीन दर्शनमोहनीयके बिना इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्व होता है।

अभव्य जीवोंमें छब्बीस प्रकतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी अभव्यके है।

§ ११७. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्ति किसके है ? जिसने इन इक्कीस प्रकृतियोंका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी क्षायिकसम्यग्दृष्टिके बारह

**वयस्स। अविहत्ती कस्स? अण्ण० खवयस्स। वेदगसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्त-सम्मामि० विहत्ती कस्स? अण्णदरस्स। अविहत्ती कस्स? दंसणमोहक्खवयस्स। अणंताणुबंधि-चउक० विहत्ती कस्स? अण्ण०अविसंजोजिदअणंताणुबंधिचउकस्स। अविहत्ती कस्स? अण्ण० विसंजोइदअणंताणु०चउक्कस्स। सेसाणं पयडीणं विहत्ती कस्स? अण्ण०। उवसमसम्मादिट्ठीसु अणंताणु०चउक० विहत्ती कस्स? अण्ण० अविसंजोयिदस्स। अविहत्ती कस्स? विसंजोयिदअणंताणुबंधिचउकस्स। सेसाणं पयडीणं विहत्ती कस्स? अण्ण०। सासणसम्मादिट्ठीसु सव्वपयडीणं विहत्ती कस्स? अण्ण०। सम्मामि० अणंताणु०चउक०विहत्ती अविहत्ती च कस्स? अण्ण०। सेसाणं पयडीणं विहत्ती कस्स? अण्णदरस्स।**

**एवं सामित्तं समत्तं।**

---

कषाय और नौ नोकषायकी विभक्ति है। अविभक्ति किसके है? जिसने इनका क्षय कर दिया है उसके इनकी अविभक्ति है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति किसके है? किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टिके है। अविभक्ति किसके है? जिसने दर्शनमोहनीयकी मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय कर दिया है उसके अविभक्ति है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति किसके है? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है ऐसे किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति है। अविभक्ति किसके है? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके अविभक्ति है। शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है? किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके है। उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति किसके है? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है उस उपशमसम्यग्दृष्टिके विभक्ति है। अविभक्ति किसके है? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है उस उपशमसम्यग्दृष्टिके अविभक्ति है। शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है? किसी भी उपशम सम्यग्दृष्टिके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है? किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके सभी प्रकृतियोंकी विभक्ति है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्ति किसके है? किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके है। शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है? किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति है।

**विशेषार्थ**–सभी अभव्योंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़ कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंका ही सत्त्व होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टिके तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं होता। शेष इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता। वेदकसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चतुष्क, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वको

§ ११८. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसायविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? अणादिया अपज्ज-वसिदा, अणादिया सपज्जवसिदा। सम्मत्त०-सम्मामि०विहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० बे छावट्ठिसागरोवमाणि तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेहि सादिरेयाणि। अणंताणु०चउक्कविहत्ती केवचिरं का० ? अणादि० अपज्जवसिदा अणादि०सपज्जवसिदा, सादि० सपज्जवसिदा वा। जा सा सादिसपज्जवसिदा तिस्से इमो णिद्देसो–जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवमचक्खु०-भवसिद्धि०। णवरि भवसि० अपज्जवसिदं णत्थि।

छोड़ कर शेष बाईस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे होता है। शेष छह प्रकृतियोंका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे होता है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे होता है। अनन्तानुबन्धी चारका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका ही सत्त्व होता है।

इस प्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ११८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है। सम्यक्प्रकृति और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है। उनमेंसे जो सादि-सान्त अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति है आगे उसका निर्देश करते हैं–अनन्तानुबन्धीचतुष्कविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके अनन्तकाल नहीं है।

**विशेषार्थ**–बारह कषाय, नौ नोकषाय और मिथ्यात्वका अनादि-अनन्त काल अभव्योंके होता है और भव्योंके अनादि-सान्त काल होता है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्-मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियां नियमसे सादि-सान्त हैं, इसमें भी इन दोनोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जिसके पहले इन दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है ऐसा जो उपशम सम्यग्दृष्टि अति लघु अन्तर्मुहूर्तकाल तक उपशमसम्यक्त्वके साथ रहा, अनन्तर वेदकसम्य-

ग्दृष्टि होकर जिसने क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके इन दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व-काल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है। तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर है। जो इस प्रकार है–कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त करके मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया और इसके बाद वह पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहां उसे उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलनामें सबसे अधिक काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग लगता है। पर अपने अपने उद्वेलना कालमें जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब उस जीवने उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिका प्रारम्भ किया और जब उद्वेलनाका उपान्त्य समय प्राप्त हुआ तभी मिथ्यात्वका अभाव होकर उपसमसम्यक्त्व प्राप्त हो गया और इस प्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी धारा न टूट कर इनका नवीन सत्त्व प्राप्त हो गया। अनन्तर छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। और वहां उक्त दोनों प्रकृतियोंके उद्वेलना काल पल्योपमके असंख्यातवें भागके अन्तिम समयमें पुनः उपशम सम्यत्वको प्राप्त कर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी धारा न टूटते हुए नवीन सत्ता प्राप्त कर ली। अनन्तर छयासठ सागर कालतक सम्य-क्त्वके साथ रहकर अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वह जीव पल्योपमके असंख्यातवे भाग कालके द्वारा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करके क्रमसे उनका अभाव कर देता है। इस प्रकार उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर प्राप्त हो जाता है। अनन्तानुबन्धी चारका अनादि-अनन्त काल अभव्योंके होता है। तथा जिस भव्यने सम्यक्त्व प्राप्त करके सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके अनादि-सान्त काल होता है। तथा विसंयोजनाके बाद जिसके पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त हो जाती है उसके अनन्तानुबन्धीका सादि-सान्त काल होता है। इस सादि-सान्त कालका जघन्य प्रमाण अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट प्रमाण कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले किसी जीवके उसकी पुनः सत्ता होने पर जो अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसकी पुनः विसंयोजना कर देता है उसके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होता है। और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला जो जीव मिथ्यात्वमें जाकर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक मिथ्यात्वके साथ ही रहता है उसके अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध-पुद्गल परिवर्तन प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शनका अभाव बारहवें गुणस्थानमें होता है उसके पहले वह सदा रहता है और उसका सद्भाव भव्य और अभव्य दोनोंके है, अतः इसके सभी प्रकृतियोंका काल ओघके समान बन जाता है। भव्य मार्गणा भी चौदहवें गुण-स्थानकी प्राप्ति होने तक निरन्तर पाई जाती है, इसलिए वह अनादि तो है पर अनन्त नहीं, अतः इसके अनन्त विकल्पको छोड़कर काल संबन्धी शेष सब प्ररूपणा ओघके समान बन जाती है।

§ ११६. आदेसेण णिरयगदीए णेरयियेसु मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसाय० विहत्ती केव० ? जह० दस वाससहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं सम्मत्त सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं । णवरि जह० एगसमओ। पढमादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव वत्तव्वं। णवरि बावीसण्हं पयडीणमप्पप्पणो जहण्णुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा। छण्णं पयडीणं जह० एगसमओ, उक्क० सग-सग-उक्कस्सट्ठिदी होदि। णवरि सत्तमाए पुढवीए अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमुहुत्तं। कुदो, अंतोमुहुत्तेण विणा संजुत्तविदियसमए चेव मरणाभावादो।

§ ११६. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषाय विभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यत्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भी काल समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनका जघन्य काल एक समय है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष बाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहते समय प्रथमादि नरकोंमें जहां जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति हो वहां उतना जघन्य और उत्कृष्ट काल कहना चाहिये। किन्तु छह प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय है तथा उत्कृष्ट काल प्रथमादि नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, अनन्तानुबन्धीका पुनः संयोजन होनेपर अन्तर्मुहूर्त काल हुए बिना दूसरे समयमें ही मरण नहीं होता है।

**विशेषार्थ**—सामान्यसे नरककी जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है और सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चार इनको छोड़कर शेष बाईस प्रकृतियोंका किसी भी नारकी के अभाव नहीं होता है, अतः इन बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा। तथा विशेषकी अपेक्षा जिस नरक की जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति है उतना कहा। शेष उपर्युक्त छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल तो पूर्वोक्त ही है। परन्तु जघन्य कालमें कुछ विशेषता है जो निम्न-प्रकार है—सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाले किसी जीवके उद्वेलनाके कालमें एक समय शेष रहते हुए प्रथमादि नरकमें उत्पन्न होने पर उक्त दोनों प्रकृतियोंका सामान्य और विशेष दोनों प्रकारसे जघन्य काल एक समय बन जाता है तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहां एक समय तक अनन्तानुबन्धीके साथ रहकर दूसरे समयमें मरकर यदि अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है तो उसके नरकगतिकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीका जघन्य

§१२०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु बावीसण्हं पयडीणं विहत्ती केव० का० होदि? जह० खुद्दाभवग्गहणं। अणंताणु०चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क०दोण्हं पि अणंतकालो, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। सम्मत्त०-सम्मामि० जह० एगसमओ उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०ति०पज्ज-पंचिं०ति०जोणिणीसु बावीसण्हं पयडीणं विहत्ती केव० का० होदि? जह० खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं। सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० सव्वासिं पयडीणं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्व (ब्भ) हियाणि। एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं।

काल एक समय बन जाता है। परन्तु सातवे नरकमें ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त काल हुए बिना मरता नहीं अत: वहां अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त कहा है।

§१२०. तिर्यंचगतिका कथन करते समय तिर्यंचोंमें बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल कितना है? जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण है। और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय है। तथा पूर्वोक्त बाईस और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन दोनोंका उत्कृष्ट अनन्त काल है। जो अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तीन पल्योपम है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें बाईस प्रकृतियोंका काल कितना है? जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। तथा सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय है और सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है।

जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिके मोहकी अट्ठाईस प्रकृतियोंका काल बतलाया है उसी प्रकार मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, और मनुष्यनीके भी उक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंका काल समझना चाहिये।

**विशेषार्थ**–तिर्यंचोंके पांच भेद हैं। उनमेंसे लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंको छोड़कर शेष चार प्रकारके तिर्यंचोंकी अपेक्षा यहां पर अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्वकाल कहा है। सामान्यसे तिर्यंच गतिमें रहनेका जघन्यकाल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागके जितने समय हों उतने पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, इसलिये जिन प्रकृतियोंका तिर्यंचगतिमें कभी भी अभाव नहीं होता ऐसी बाईस प्रकृतियोंका तिर्यंचगति सामान्यकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमसे खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चारका उत्कृष्ट सत्त्वकाल भी असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण हो जाता है, क्योंकि इतने काल तक जीव तिर्यंचगतिमें मिथ्यात्वके साथ रह सकता है और मिथ्यात्वमें अनन्तानुबन्धीका अभाव नहीं होता। परन्तु अनन्तानुबन्धीके जघन्य सत्त्वकाल और सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य और उत्कृष्ट

§ १२१. पंचिंदियतिरि०अपज्ज० छव्वीसं पयडीणं विहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जह० खुद्दाभवग्गहणं । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० एगसमओ । उक्क० सव्वासिं

सत्त्वकालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है--उक्त छहों प्रकृतियोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय जिस प्रकार नरकगतिमें घटित कर आये हैं उसी प्रकार यहां तिर्यंचगतिमें भी घटित कर लेना चाहिये । तथा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक तीन पल्य है । क्योंकि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि तिर्यंच दान या दानकी अनुमोदनाके माहात्म्यसे उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होकर और वहां पर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेके पहले ही सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है उसके साधिक तीन पल्य काल तक उक्त दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है । यहां साधिकसे पूर्वकोटि पृथक्त्व लेना चाहिये । विशेषकी अपेक्षा पंचेन्द्रियतिर्यंचका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है । तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और योनिमती तिर्यंचका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमसे सेंतालीस और पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है, अतः जिन प्रकृतियोंका तिर्यंचगतिमें कभी भी अभाव नहीं होता उन बाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्वोक्त जहां जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल संभव है उतना कहा है । तथा सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका उत्कृष्ट काल जहां जितना उत्कृष्ट काल है उतना ही है, क्योंकि पूर्वोक्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि पर्यायोंके साथ मिथ्यात्व गुणस्थानमें रह सकता है और मिथ्यात्व गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीका अभाव नहीं है, अतः अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल पूर्वोक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोमेंसे जिसका जितना उत्कृष्ट काल है उतना बन जाता है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल पूर्वोक्त ही है, क्योंकि कहीं इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेके पूर्व ही सम्यक्त्व उत्पन्न करके उनकी सत्त्वस्थिति बढ़ा कर और कहीं वेदकसम्यक्त्वके साथ रह कर जिस तिर्यंचका जितना उत्कृष्ट काल कहा है उतने काल तक इन दोनों प्रकृतियोंकी धारा न टूटते हुए सत्ता पाई जा सकती है । तथा पूर्वोक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंके इन छहों प्रकृतियोंका जघन्य सत्त्व काल एक समय है जिसका उल्लेख नरक गतिमें इनका जघन्य काल कहते समय कर आये हैं, अतः उसीप्रकार यहां समझ लेना चाहिये । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिके समान है इसका यह अभिप्राय है कि पूर्वकोटिपृथक्त्वकी गणनाको छोड़कर शेष कालनिर्देश दोनोंका समान है । परन्तु पूर्वकोटिपृथक्त्वसे सामान्य मनुष्योंके सेंतालीस, पर्याप्त मनुष्योंके तेईस और मनुष्यनियोंके सात पूर्वकोटि लेना चाहिये ।

§ १२१. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तोंके छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका

**पयडीणमंतोमुहुत्तं । एवं मणुसअपज्ज० वत्तव्वं ।**

**§ १२२. देवाणं णारगभंगो । भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति बावीसं पयडीणं जहण्णुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । छण्णं पयडीणं जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी वत्तव्वा । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोक० जह० जहण्णट्ठिदी वत्तव्वा । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० जह० एगसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी ।**

जघन्य काल एक समय है। तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके भी कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–लब्ध्यपर्याप्तक जीव कदलीघातसे खुद्दाभवग्रहण तक जीवित रह कर मर जाते हैं, अतः उनकी जघन्य आयु खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्त है और इसीलिये सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य सत्त्वकालको छोड़कर शेष सभी प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे खुद्दाभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा उद्वेलनाके कालमें एक समय शेष रहने पर अविवक्षित गतिका जीव विवक्षित पर्यायमें जब उत्पन्न होता है तब उसके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय बन जाता है।

§ १२२. देवगतिमें सामान्य देवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका सत्त्वकाल सामान्य नारकियोंके समान कहना चाहिये। विशेषकी अपेक्षा भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक प्रत्येक स्थानमें बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। तथा नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक प्रत्येक स्थानमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्यकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये। और सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल सर्वत्र अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धीके जघन्य कालको छोड़कर शेष कथनमें कोई विशेषता नहीं है। नरकगतिका कथन करते समय जिसप्रकार उसका खुलासा कर आये हैं उसी प्रकार यहां की विशेष स्थितिको ध्यानमें रखकर उसका खुलासा कर लेना चाहिये। परन्तु अनुदिशसे आगेके देवोंके एक सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ही होता है, इसलिये इनके सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धीके जघन्य कालमें विशेषता आ जाती है। जिसके सम्यक्प्रकृतिकी क्षपणामें एक समय शेष है ऐसा

§ १२३. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तविहत्ती० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखे०भागो। सेसाणं पयडीणं जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालोअसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। एवं बादरेइंदियाणं। णवरि छब्बीसंपयडीणमुक्कस्सविहत्तीकालो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ। बादरेइंदियपज्ज० सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ती० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सेसाणं छब्बीसपयडीणमेवं चेव, णवरि जहण्णविहत्तिकालो अंतोमुहुत्तं। बादरेइंदियअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि० जह० एगसमओ, सेसछब्बीसपयडीणं जह० खुद्दा०। सव्वपयडीणं विहत्तिकालो उक्क० अंतोमुहुत्तं। सुहुमेइंदिएसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ती० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेसपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सुहुमेइंदियपज्ज० सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। सेसपयडीणं विहत्ति० जहण्णुक्कस्सेण अंतो-

कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य जब नौ अनुदिश आदिमें उत्पन्न होता है तब उसके सम्यक् प्रकृतिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है। तथा कोई वेदकसम्यग्दृष्टि अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ और वहां उसने अनन्तानुबन्धीकी अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर विसंयोजना कर दी तो उसके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है।

§ १२३. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग है। जिसका प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके शेष छब्बीस प्रकृतियोंका काल भी सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके कालके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जघन्य काल एक समय न होकर अन्तर्मुहूर्त है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण है। तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। तथा शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त

**मुहुत्तं। सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। सेसाणं पयडीणं जह० खुद्दा०, उक्क० अंतोमु०।**

**§ १२४. विगलिंदिएसु सम्मत्तसम्मामिच्छत्तविहत्ति० जह० एगसमओ, सेसाणं पयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०। सव्वेसिं पयडीणं विहत्ति० उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। एवं विगलिंदियपज्जत्ताणं। णवरि, छब्बीसं पयडीणं विहत्ति० जह०**

है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–यहां एकेन्द्रियोंमें और उनके भेद प्रभेदोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां एकेन्द्रियोंके पाई भी जाती हैं और नहीं भी पाई जाती हैं। जिनके इनका उद्वेलना काल पूरा नहीं हुआ है उनके पाई जाती हैं और जिनके उद्वेलना काल पूरा हो गया है उनके नहीं पाई जाती हैं। अतः इनके जघन्य और उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंकी जिस पर्यायमें लगातार जघन्य और उत्कृष्टरूपसे जितने काल तक एक जीवके रहनेका नियम है उतना है, जो ऊपर बतलाया ही है। तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल जो एक समय कहा है उसका कारण यह है कि जिसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रह गया है ऐसा कोई जीव जब मरकर विवक्षित एकेन्द्रियमें उत्पन्न होता है तब उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा जिन एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक है उनके इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवे भाग होता है। क्योंकि इतने कालके भीतर इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना हो जाती है। और जिन एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागके भीतर है उनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल भी उतना ही होता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेके पहले ही वह पर्याय बदल जाती है।

§ १२४. विकलेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है। तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके उक्त प्रकृतियोंका काल जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण न होकर अन्तर्मुहूर्त है। विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान विकलेन्द्रिय अपर्याप्त-

अंतोमुहुत्तं। एवं विगलिंदियअपजत्ताणं, णवरि छब्बीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, अट्ठावीसपयडीणं विहत्ति० उक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ १२५. पंचिंदिय-पंचिं०पजत्तएसु छब्बीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं। सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० बे छावट्ठिसागरोवमाणि तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादिरेयाणि।

......कोंके उक्त प्रकृतियोंका काल जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त न होकर खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है। और अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–द्वीन्द्रियकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष त्रीन्द्रियकी उनचास दिनरात और चतुरिन्द्रियकी छह महीना है। अब यदि कोई अन्य इन्द्रियवाला जीव विकलत्रयमें उत्पन्न होकर निरन्तर इसी विकलत्रय पर्यायमें उत्पन्न होता रहे और मरता रहे तो संख्यात हजार वर्ष तक वह विकलत्रय पर्यायमें रह सकता है। इसी अपेक्षासे ऊपर सामान्य और पर्याप्त विकलत्रयोंके सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष कहा है। तथा जघन्य काल कहते समय सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय और छब्बीस प्रकृतियोंका सामान्य विकलत्रयोंके खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और पर्याप्त विकलत्रयोंके अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर अन्य इन्द्रियवाला जीव यदि विवक्षित विकलत्रयमें उत्पन्न हुआ तो उसके दोनों प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा सामान्य विकलत्रयका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण है और पर्याप्त विकलत्रयका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इन दोनोंके शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल क्रमसे खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त घटित हो जाता है। लब्ध्यपर्याप्तक विकलत्रयका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। रही सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य कालकी बात सो ऊपर जिसप्रकार सामान्य और पर्याप्त विकलत्रयके इनके जघन्य काल एक समयका खुलासा किया है उसी प्रकार इनके भी उक्त दोनों प्रकृतियोंके जघन्य कालका खुलासा कर लेना चाहिये।

§ १२५. पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल क्रमसे खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंके छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक हजार सागर और सौ सागर पृथक्त्व है। तथा दोनोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर है।

गरोवमाणि तीहि पलिदोवमस्स असंखे०भागेहि सादिरेयाणि । पुव्वं परूविदछव्वीसपयडीसु अणंताणुबंधिचउक्कस्स विहत्तीए जहण्णकालो एगसमओ त्ति किण्ण परूविदो ? ण, चउवीससंतकम्मिअ-उवसमसम्मादिट्ठिस्स एयसमयं सासणगुणेण परिणदस्स विदियसमए चेव कालं कादूण एइंदिएसु उप्पादासंभवादो। कुदो एदं णव्वदे? परमगुरूवएसादो। तदो अंतोमुहुत्तसंजुत्तस्सेव तत्थुप्पादो त्ति घेत्तव्वं। अथवा सव्वत्थ उप्पज्जमाणसासणस्स एगसमओ वत्तव्वो। पंचिंदियअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। छव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

**शंका**–ऊपर जो छब्बीस प्रकृतियां कहीं हैं उनमेंसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य काल एक समय क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव है वह एक समय तक सासादन गुणस्थानके साथ रहकर और दूसरे समयमें ही मर कर एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होता है, इसलिये पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय नहीं कहा।

**शंका**–यह किस प्रमाणसे जाना जाता है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव एक समय सासादन गुणस्थानमें रह कर और दूसरे समयमें मर कर एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होता है ?

**समाधान**–परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है।

अतः चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जब अनन्तानुबन्धी चतुष्कके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रह लेता है तभी वह मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकता है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये। अथवा जिन आचार्योंके मतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियादि सभी पर्यायोंमें उत्पन्न होता है उनके मतसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त-जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक समय जघन्य काल कहना चाहिये।

विशेषकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंचका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंच तथा योनिमतीतिर्यंचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–सामान्य पंचेन्द्रियका पंचेन्द्रिय पर्यायमें रहनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक हजार सागर है। पंचेन्द्रियपर्याप्त-जीवका पंचेन्द्रियपर्याप्त पर्यायमें निरन्तर रहनेका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल

§ १२६. चत्तारिकाएसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेसछव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। चत्तारिबादरकाएसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० विहत्तीए चत्तारिकायभंगो। सेसछव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० कम्मट्ठिदी। चत्तारि-बादरकायपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगसमओ, सेसछव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं। सव्वासिमुक्कस्सकालो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। चत्ता-

सौ सागर पृथक्त्व है। तथा लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियका लब्ध्यपर्याप्त पर्यायमें निरन्तर रहनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिये इन जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उन उन जीवोंकी उस उस पर्यायमें निरन्तर रहनेकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। यहां यह शंका उठाई गई है कि सामान्य और पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय भी संभव है फिर उसे यहां क्यों नहीं कहा। इस शंकाका समाधान वीरसेन स्वामीने दो प्रकारसे किया है। पहले तो यह बतलाया है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है ऐसा उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानमें एक समय रहकर और दूसरे समयमें मरकर एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होता है, इसलिये अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय नहीं बनता है। तथा दूसरे उत्तर द्वारा आचार्यान्तरके अभिप्रायसे अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय स्वीकार कर लिया है जो ऊपर दिखाया ही है। तथा उक्त तीनों प्रकारके जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा होता है। और पंचेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके उक्त दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल जो तीन पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर बताया है इसका खुलासा पृष्ठ १०० पर कर आये हैं। और लब्ध्यपर्याप्तकका उस पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उनके उक्त दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ १२६. पृथिवीकाय आदि चार कायोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवे भाग है तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। बादर पृथिवीकाय आदि चार बादरकायोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका काल पृथिवीकाय आदि चार कायोंके समान है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। बादरपृथिवीकायिकपर्याप्त आदि चार बादरकायपर्याप्त जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। और सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल

**रिबादरकायअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, सेसाणं पयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, सव्वासिमुक्क० अंतोमुहुत्तं। चत्तारिसुहुमकायिएसु सम्मत्त-सम्मामि०विह० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेसछव्वीसंपयडीणं विह० जह० खुद्दा०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सव्वसुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणमेवं चेव वत्तव्वं। णवरि पज्जत्तएसु छव्वीसंपयडीणंजह०अंतोमुहुत्तं। अट्ठावीसपयडीणं उक्क०अंतोमुहुत्तं। वणप्फदि-**

संख्यात हजार वर्ष है। बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त आदि चार बादरकाय अपर्याप्तजीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है। तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म-पृथिवीकाय आदि चार सूक्ष्मकाय जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यातलोकप्रमाण है। सभी सूक्ष्म-पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल सूक्ष्मकायिक जीवोंके समान ही कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उक्त चारप्रकारके सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल और अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**—ऊपर पृथिवीकायिक आदि चार तथा उनके भेद-प्रभेदोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल बताया है। सर्वत्र सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय है यह तो स्पष्ट है। तथा जहां विवक्षितकायका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे अधिक है वहां सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग होता है और जहां विवक्षित कायका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम है वहां उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल कम होता है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका काल कहते समय जिस कायका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल हो उतना उन प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये जो ऊपर बताया ही है। ऊपर बादर पृथिवीकाय आदिके छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल जो कर्म स्थिति-प्रमाण बताया है सो इससे मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरका ग्रहण करना चाहिये। परिकर्ममें कर्मस्थितिसे भवस्थिति ली गई है इसलिये यहां कितने ही आचार्य कर्मस्थितिसे बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालका ग्रहण करते हैं पर उनका ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि सामान्य बादर जीवका जो भवस्थितिकाल कहा है वही बादर पृथिवीकायिक आदिका नहीं हो सकता। तथा सूत्रग्रन्थोंमें सामान्य बादर जीवकी भवस्थिति असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और असर्पिणीप्रमाण कही है और बादर पृथिवीकायिक आदिकी भवस्थिति कर्म-स्थितिप्रमाण कही है। इसप्रकार इन दोनोंकी भवस्थिति जब भिन्न भिन्न दो प्रकारसे कही

काइएसु सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सेसछब्बीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, उक्कस्स० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। बादरवणप्फदिकाइयाणं बादरएइंदियभंगो। तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो। सुहुमवणप्फदीणं सुहुमेइंदियभंगो। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं बादरपुढविभंगो। तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढविपज्जत्तापज्जत्तभंगो। णिगोदजीवेसु सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सेसपयडीणं विह० जह० खुद्दाभवग्गहणं। उक्क० अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टा। बादरणिगोदजीवेसु सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगस०, उक्क० पलिदो०

है तो एकमें दूसरी स्थितिके उपचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं रहता। अतः यहां कर्मस्थितिसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका ही ग्रहण करना चाहिये।

वनस्पतिकायिक जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। बादर वनस्पतिकायिकोंके सभी प्रकृतियोंका काल बादर एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। तथा बादरवनस्पतिकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल बादर एकेन्द्रियपर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान जानना चाहिये। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान होता है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल बादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान होता है। तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवोंके समान होता है।

**विशेषार्थ**–एक जीव वनस्पतिकायमें कमसे कम खुद्दाभवग्रहण कालतक और अधिकसे अधिक असंख्यातपुद्गल परिवर्तन कालतक रहता है। इसलिये छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। परन्तु सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा उनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग ही प्राप्त होता है, क्योंकि मिथ्यात्वके साथ इससे अधिक कालतक इन प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं रहता है। ऊपर कहे गये शेष बादर वनस्पतिकायिक आदिके सभी प्रकृतियोंका काल बादर एकेन्द्रिय आदिके समान जान लेना चाहिये।

निगोदजीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अढ़ाई पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। बादर निगोद जीवोंमें सम्यक्-

**असंखे० भागो । सेसपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा०, उक्क० कम्मट्ठिदी । बादरणिगोदजीवपज्जत्ताणं बादरएइंदियपज्जत्तभंगो । बादरणिगोदजीवअपज्जत्ताणं बादरएइंदिय अपज्जत्तभंगो । सुहुमणिगोदाणं सुहुमपुढविभंगो ।**

§ १२७. **तसकायियेसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० बेछावट्ठिसागरोवमाणि तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादिरेयाणि । सेसछव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । एवं तसकायियपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि छव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० बेसागरोवमसहस्साणि । तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ।**

प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । बादर निगोद पर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है । बादर निगोद अपर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है । तथा सूक्ष्म निगोद जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवोंके समान है ।

**विशेषार्थ**—निगोद जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल ढाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग उद्वेलना की अपेक्षा कहा है जिसका स्पष्टीकरण ऊपर कर आये हैं । बादर निगोद जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल यहां पर अलगसे बताया है पर बादर पृथिवीकायिकके कालसे उसमें कोई विशेषता नहीं है, अतः बादर पृथिवीकायिकके कालका जिसप्रकार पहले खुलासा कर आये हैं उसीप्रकार यहां समझ लेना चाहिये । इसीप्रकार बादर निगोद पर्याप्त आदिके सभी प्रकृतियोंका काल बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त आदिके समान जान लेना चाहिये ।

§ १२७. त्रसकायिक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर है । तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर है । इसीप्रकार त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है । त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ।

§ १२८. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स० अट्ठावीसंपयडीणं विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। णवरि वेउव्वियमिस्स० छव्वीसंपयडीणं जह० अंतोमुहुत्तं। कायजोगीसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेसछव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। कथमेत्थ एगसमयमेत्तजहण्णकालोवलंभो चे ? ण; विहत्तिगचरिमसमए कायजोगेण परिणदम्मि तदुवलद्धीदो। ओरालिय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसकसाय-णवणोकसायविहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि। ओरालियमिस्स० अट्ठावीसपयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्क० अंतोमुहुत्तं। णवरि सम्मत्त-सम्मामि०

**विशेषार्थ**—त्रसकायिक जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है, अतः इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही है। तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर उद्वेलनाके कालके भीतर पुनः पुनः सम्यक्त्वकी प्राप्तिकी अपेक्षा है जिसका खुलासा पहले कर आये हैं। पर्याप्त त्रसकायिकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है, इसलिये इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ १२८. योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य काययोगी जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

**शंका**—यहां सामान्य काययोगी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय कैसे प्राप्त होता है ?

**समाधान**—उक्त छब्बीस प्रकृतियोंके क्षय होनेके अन्तिम समयमें काययोगसे परिणत होने पर छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है।

औदारिककाययोगी जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल तीन समय कम

**विहत्ति० जह० एगसमओ। आहार० अट्ठावीसपयडीणं विह० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। आहारमि० अट्ठावीसपय० विहत्ती० जहण्णुक्क० अंतोमु०। कम्मइय० अट्ठावीसप० विहत्ती० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि समया।**

क्षुद्राभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय है। आहारककाययोगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा कार्मण काययोगी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

**विशेषार्थ**–पांचों मनोयोग, पांचों वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोग इन सबका जघन्य काल एक समय और औदारिककाययोगको छोड़कर शेष सभीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। उक्त योगोंका जघन्य काल एक समय योगपरावृत्ति, गुण परावृत्ति, मरण और व्याघातकी अपेक्षा बताया है। पर यहां योगपरावृत्ति और गुण-परावृत्तिकी अपेक्षा एक समय सम्बन्धी प्ररूपणासे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि इनकी अपेक्षा योगोंकी एक समय सम्बन्धी प्ररूपणा आश्रयभेद पर अवलम्बित है, वास्तवमें वहां प्रत्येक योग अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रहता है। अब रही मरण और व्याघातकी बात सो पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगका जघन्य काल एक समय मरण और व्याघात दोनों प्रकारसे बन जाता है पर औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोगका जघन्य काल एक समय केवल मरणकी अपेक्षा और आहारककाययोगका जघन्य काल मरण और अद्धाक्षयकी अपेक्षा प्राप्त होता है। औदारिकमिश्रका कपाट समुद्घातकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, पर उसकी यहां विवक्षा नहीं है, क्योंकि केवली जिनके मोहकी अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः यहा औदारिकमिश्रका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाय-योगका जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसप्रकार योगोंके इन कालोंकी अपेक्षा मोहकी सभी प्रकृतियोंका काल यहां कहा है। इतनी विशेषता है कि औदा-रिकमिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगवाले जीवके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्-मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है। सामान्य काययोगमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जो एक समय सम्बन्धी प्ररूपणा की है वह उन प्रकृतियोंके क्षय होनेके अंतिम समयमें काययोगके प्राप्त होनेकी अपेक्षासे की है। यद्यपि उस जीवके काययोग अन्तर्मु-

§ १२६. वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु अणंताणुबंधिचउक्क० विह० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० पणवण्ण-पलिदो० सादिरेयाणि। सेसबावीसंपयडीणं विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। पुरिसवेदएसु सम्मत्त-सम्मामि० विह० जह० एगसमओ, उक्क० वेछावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। सेसछब्बीसपयडीणं विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। णवरि अणंताणु० जह० एगसमओ। णवुंसयवेदेसु सम्मत्त०-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसंसागरोवमाणि सादिरेयाणि। सेसाणं पयडीणं विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अवगदवेदएसु चउवीसंपयडीणं विहत्ति० केव०? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमकसाय-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० वत्तव्वं।

हूर्त काल तक रहता है पर जहां जहां इन छब्बीस प्रकृतियोंका क्षय होता है वहां वहां क्षय होनेके अन्तिम समयमें मनोयोग या वचनयोगसे काययोगके प्राप्त होने पर काययोगके सद्भावमें उन प्रकृतियोंका सत्त्व एक समय तक ही दिखाई देता है इसलिये सामान्य काययोगमें एक समय सम्बन्धी प्ररूपणा बन जाती है।

§ १२६. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तथा शेष बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व है। पुरुषवेदियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व है। इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय है। नपुंकवेदियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। तथा अपगतवेदियोंमें चौबीस प्रकृतियोंका काल कितना है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यात संयत जीवोंके चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक स्त्रीवेदी जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हुआ और दूसरे समयमें मर कर अन्य वेदवाला हो गया उसके अनन्तानुबंधीका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। स्त्री वेदके साथ एक जीव निरन्तर सौ पल्यपृ-

थक्त्वकाल तक रहता है, अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व कहा है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा कैसे घटित होता है इसका उल्लेख पहले कर आये हैं। कोई एक सम्यक्प्रकृतिकी और कोई एक सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव पचपन पल्यकी आयु लेकर स्त्रीवेदी हुआ और वहां उक्त दोनो प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेके अन्तिम समयमें वे वेदक सम्यग्दृष्टि हो गये और अन्त समयतक सम्यग्दृष्टि बने रहे। अनन्तर वहांसे सम्यग्दर्शनके साथ मर कर पुरुषवेदी हुए इस प्रकार उन स्त्रीवेदी जीवोंके उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल साधिकपचपन पल्य प्राप्त होता है। जो स्त्रीवेदी जीव उपशम-श्रेणी पर चढ़ कर अवेदी हुआ और लौट कर पुनः एक समय तक स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मर कर पुरुषवेदी हो गया उसके शेष बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। स्त्रीवेदीके इन्हीं बाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल जो सौ पल्यपृथक्त्व कहा है वह स्त्रीवेदीके साथ निरन्तर रहनेके कालकी अपेक्षासे कहा है। पुरुषवेदियोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा प्राप्त होता है। जो पुरुषवेदी जीव छयासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा पुनः मिथ्यात्वमें आकर द्वितीय वार क्रमसे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर उसके साथ छयासठ सागर काल तक रहा उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर प्राप्त होता है। जिसप्रकार स्त्रीवेदी जीवोंके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय घटित कर आये हैं उसीप्रकार पुरुषवेदी जीवोंके जानना चाहिये। पुरुषवेदके साथ निरन्तर रहनेका काल सौ सागर पृथक्त्व है अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्क और शेष बाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व कहा है। जो पुरुषवेदी उपशम-श्रेणीसे उतर कर तत्काल पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़ कर अपगतवेदी हो जाता है उसके पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इस अपेक्षासे पुरुषवेदीके शेष बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्रीवेदी जीवोंके समान नपुंसकवेदी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये। जो सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला सातवें नरकमें उत्पन्न होनेसे पूर्व नपुंसकवेदी रहा और वहां उत्पन्न होने पर आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्तोंको छोड़कर सम्यग्दृष्टि रहा उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है। तथा नपुंसकवेदके साथ निरन्तर रहनेका काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है अतः शेष छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन कहा है। अवगतवेद आदि शेष मार्गणाओंमें चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय मरणकी अपेक्षा और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उस उस मार्गणास्थानके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा कहा है।

§ १३०. कसायाणुवादेण चत्तारिकसाय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० विह० मणभंगो । सेसाणं पयडीणं विहत्ति० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ १३१. णाणाणुवादेण मदि-सुद-अण्णाणि० मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-विहत्ति० तिण्णि भंगा। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवं मिच्छादिट्ठिस्स वत्तव्वं । विभंगणाणीसु सम्मत्त०-सम्मामि० मदि-अण्णाणिभंगो । णवरि जह० एयसमओ । सेसाणं पयडीणं विह० जह० एग-

§ १३०. कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों कषायवाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीका काल मनोयोगियोंके समान है। तथा शेष इक्कीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**–कषायोंके परिवर्तनकी अपेक्षा मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोका जघन्य काल एक समय बन जाता है, क्योंकि जिस समय इन सात प्रकृतियोंका अभाव होता है उसके पहले समयमें एक कषायका काल पूरा होकर यदि अन्तिम समयमें दूसरी कषाय आ जाती है तो उस कषायके सद्भावमें ये प्रकृतियां एक ही समय दिखाई देती हैं। या मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छह प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति संभव है, अतः जिस समय ये छह प्रकृतियां पुनः सत्त्वको प्राप्त होती हैं वह यदि किसी कषायके उदयका अन्तिम समय हो तो उस कषायमें वे छहों प्रकृतियां एक समय दिखाई देती हैं। इस प्रकार इन सात प्रकृतियोंका चारों कषायोंमें जघन्य काल एक समय बन जाता है। पर इस प्रकार शेष इक्कीस प्रकृतियोंका क्षय क्षपकश्रेणीमें होता है और क्षपकश्रेणी पर जीव जिस कषायके उदयके साथ चढ़ता है अन्त तक उसी कषायका उदय बना रहता है। इसलिए चारों कषायोंमें शेष इक्कीस प्रकृतियोंका काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रत्येक कषायके कालकी अपेक्षा जानना चाहिये, क्योंकि सामान्य रूपसे किसी भी कषायका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं है।

§ १३१. ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायके तीन भंग होते हैं। उनमेंसे जो सादिसान्त भंग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। इसीप्रकार मिथ्यादृष्टिके सभी प्रकृतियोका काल कहना चाहिये। विभंग ज्ञानियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका काल मत्यज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय है। तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम

**समओ, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि ।**

§ १३२. **आभिणि०-सुद०-ओहि०-अणंताणु०चउक्क०विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठिसागरो० देसूणाणि । सेसाणं पयडीणं एवं चेव । णवरि उक्क० छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवमोहिदंसण-सम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्वं । मणपज्ज०-**

तेतीस सागर है ।

**विशेषार्थ**—अभव्य मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानीके सम्यग्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंका काल अनादि-अनन्त है। जिस भव्यने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है उसके उक्त छब्बीस प्रकृतियोंका काल अनादि सान्त है। तथा इस जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाने पर इन छब्बीस प्रकृतियोंका काल सादि-सान्त हो जाता है। उनमेंसे यहां सादि-सान्तकी अपेक्षा काल कहा जा रहा है। जो सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वमें रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हो जाता है उसके उक्त छब्बीस प्रकृतियोंका तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा जो अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल शेष रहने पर उसके प्रारम्भमें सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, और छह आवली शेष रहने पर सासादनमें और वहांसे मिथ्यात्वमें जाकर परिभ्रमण करता है। पुनः अन्तिम भवमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्व प्राप्त कर मोक्ष जाता है, उसके उक्त छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है। किन्तु सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग ही होता है इससे अधिक नहीं, क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भाग कालके द्वारा उद्वेलना होकर इनका अभाव हो जाता है, पुनः सम्यक्त्वके विना इनका सत्त्व नहीं होता। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें विभंगज्ञानके प्राप्त होने पर विभंगज्ञानियोंके उक्त दोनों प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय होता है। तथा जो सम्यग्दृष्टि सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर एक समय विभंगज्ञानके साथ रहता है और द्वितीय समयमें मरकर अन्य गतिको चला जाता है, उसके सभी प्रकृतियोंका विभंगज्ञानकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। विभंगज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिये छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा। और उत्कृष्ट उद्वेलना कालकी अपेक्षा शेष दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान पल्योपमका असंख्यातवां भाग कहा।

§ १३२. **मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी** और अवधिज्ञानी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंका काल भी इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ

**संजद० अट्ठावीसंपयडीणं विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं परिहार०-संजदासंजद० वत्तव्वं। सामाइयच्छेदो० चउवीसण्ह पयडीणं विहत्ति०** सागर है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टिके सभी प्रकृतियोंका काल कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–मतिज्ञानी आदि जीवोंके सभी प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है यह तो स्पष्ट है, क्योंकि कोई भी सम्यग्दृष्टि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर क्षपकश्रेणी पर चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है, या मिथ्यात्वमें जा सकता है। पर उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर होता है, क्योंकि मतिज्ञानी आदि जीवोंके अनन्तानुबन्धीका अधिक से अधिक काल तक सत्त्व वेदक सम्यक्त्वके साथ ही प्राप्त होता है और वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कृतकृत्य वेदकके कालको मिलाने पर ही पूरा छयासठ सागर होता है। अब यदि इसमेंसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके क्षपण कालको कम कर दिया जाय और वेदकसम्यक्त्वके प्रारंभमें हुए उपशमसम्यक्त्वके कालको मिला दिया जाय तो यह काल छयासठ सागरसे कम होता है। अतः अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर कहा है। और इस कालमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपण होने तकके कालको क्रमशः मिला देने पर मिथ्यात्व आदि प्रत्येकका काल क्रमशः साधिक छयासठ सागर हो जाता है। तथा शेष इक्कीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर प्राप्त होता है, क्योंकि संसार अवस्थामें सामान्य सम्यक्त्वका काल चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर है। इसमेंसे चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके बादके अन्तर्मुहूर्त कालको कम कर देने पर उक्त काल प्राप्त हो जाता है।

मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है। इसीप्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–इन सब मार्गणावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है यह तो स्पष्ट है। तथा उक्त सभी मार्गणावालोंका उत्कृष्ट काल सामान्यरूपसे यद्यपि देशोनपूर्वकोटि है पर देशोनसे कहां कितना काल लेना चाहिये इसमें विशेषता है। मनःपर्ययज्ञानी और संयतके देशोनसे आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये। परिहारविशुद्धि संयतके देशोनसे अड़तीस वर्ष लेना चाहिये। कुछ आचार्योंके मतसे बाईस या सोलह वर्ष लेना चाहिये। क्योंकि उनके मतसे बाईस या सोलह वर्षमें परिहारविशुद्धि संयम प्राप्त हो जाता है। तथा संयतासंयतके देशोनसे तीन अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये। इसप्रकार जिस मार्गणाका जितना उत्कृष्ट काल है उतना वहां अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल है।

**जह० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। अणंताणु०चउक्क०विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। असंजदेसु मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोक० विह० मदिअण्णाणिभंगो। सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० केव० ? जह० एगसमओ, अंतोमुहुत्तं। उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि। चक्खुदंसणी० तसपज्जत्तभंगो।**

सामायिक और छेदोपस्थापना संयतके चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है।

**विशेषार्थ**–जो जीव उपशमश्रेणीसे उतरकर दसवें गुणस्थानसे नौवें गुणस्थानमें आकर और वहां सामायिक संयम या छेदोपस्थापना संयमके साथ एक समय तक रहकर दूसरे समयमें मर जाता है उस सामायिक या छेदोपस्थापना संयत जीवके चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयतके जघन्य कालकी अपेक्षा है। तथा इसीप्रकार सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल भी सामायिक और छेदोपस्थापना संयतके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा देशोन पूर्वकोटि जानना चाहिये। यहां देशोनसे आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये।

असंयतोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायका काल मत्यज्ञानियोंके उक्त प्रकृतियोंके कहे गये कालके समान है। तथा असंयतोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका काल कितना है ? जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है। तथा चक्षुदर्शनी जीवोंके सब प्रकृतियोंका काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान होता है।

**विशेषार्थ**–असंयतोमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायके कालके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन भङ्ग होते हैं। उनमेंसे प्रकृतमें सादि-सान्त काल विवक्षित है। जो संयत जीव अन्तर्मुहूर्त कालतक असंयत रह कर पुनः संयत हो जाता है उस असंयतके उक्त प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा जो अर्द्धपुद्गल परिवर्तनके आदि समयमें संयमको प्राप्त हुआ है अनन्तर उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवली शेष रहने पर सासादन सम्यग्दृष्टि हो गया है और इसके बाद मिथ्यादृष्टि हो गया हैं। वह जब अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर संयत होता है तब असंयतके कालका प्रमाण कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्राप्त हो जाता है। असंयतके उक्त छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल भी यही है, क्योंकि इतने काल तक उक्त प्रकृतियोंका बराबर सत्त्व पाया जाता है। जो संयत जीव कृतकृत्यवेदकके कालमें एक समय शेष रहने पर मर कर अन्य गतिमें जाकर असंयत हो जाता है। उस असंयत सम्यग्दृष्टिके सम्यक्प्रकृतिका जघन्य काल एक समय होता है। सम्यग्मिथ्या-

§ १३३. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउलेस्सासु मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय० विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि। सम्मत्त०-सम्मामि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० मिच्छत्तभंगो। तेउ-पम्म-लेस्सासु मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय० विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० बे अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं वत्तव्वं। णवरि विह० जह० एगसमओ। सुक्कलेस्साए मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसकसाय-णवणोक० विह० केव०? जह० अंतोमु० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसंसागरोवमाणि सादिरेयाणि।

§ १३४. अभवसिद्धिय० छव्वीसण्हं पयडीणं विह० केव०? अणादिया अपज्जवसिदा।

त्वकी सत्तावाला जो संयत जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक असंयत रह कर पुनः संयत हो जाता है, उस असंयतके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। कोई एक वेदक सम्यग्दृष्टि संयत जीव मर कर तेतीस सागरकी आयुवाला देव हुआ और वहांसे मर कर मनुष्य पर्यायमें आठ साल तक असंयत रहा उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है।

§ १३३. **लेश्या मार्गणाके** अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कृष्ण लेश्यामें साधिक तेतीस सागर, नील लेश्यामें साधिक सत्रह सागर और कापोत लेश्यामें साधिक सात सागर है। तथा उक्त तीन लेश्याओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट कालके समान है। पीत और पद्म लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पीतलेश्यामें साधिक दो सागर और पद्मलेश्यामें साधिक अठारह सागर है। उक्त दोनों लेश्याओंमें इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका काल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनका जघन्य काल एक समय है। शुक्लेश्यामें मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका काल कितना है? मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और शेषका जघन्य काल एक समय है। तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

**विशेषार्थ**—उक्त छहों लेश्याओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य कालको छोड़कर शेष समस्त प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी लेश्याके जघन्य और उत्कृष्ट कालके समान जानना चाहिये। छहों लेश्याओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल जो एक समय कहा है वह उक्त दो प्रकृतियोंकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर उस उस लेश्याके प्राप्त होनेसे बन जाता है।

§ १३४. **अभव्योंके** छब्बीस प्रकृतियोंका काल कितना है? अनादि-अनन्त है। **क्षायिक-**

**खइयसम्मादिट्ठीसु एक्कवीसपय० विह० जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि। वेदयसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विहत्ति० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठि-सागरोवमाणि देसूणाणि। सम्मत्त-बारसकसाय-णवणोकसायविहत्ति० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि। उवसमसम्मादिट्ठीसु अट्ठावीसंपयडीणं विहत्ति० केव० ? जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं सम्मामिच्छत्ते वत्तव्वं। सासणे अट्ठावीसपय० विह० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवलियाओ। सण्णि० पुरिसवेदभंगो। णवरि, मिच्छत्तादीणं जह० खुद्दाभवग्गहणं। असण्णि० एइंदियभंगो। आहारि० मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोक० विह० केव०**

सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन छ्यासठ सागर है। सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तर्मुहूर्त हैं। सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें सभी प्रकृतियोंका काल उपशमसम्यग्दृष्टियोंके समान कहना चाहिये। सासादनमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है।

**विशेषार्थ**—जिस सम्यक्त्वका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल है उस सम्यक्त्वमें संभव सभी प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उतना जानना चाहिये। केवल वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा प्रकृतियोंके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। यद्यपि वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर बताया है पर इसमें कृतकृत्य वेदकका काल भी सम्मिलित है, अतः वेदकसम्यक्त्वके कालमेंसे कृतकृत्य वेदकके कालको कम कर देने पर वेदकसम्यक्त्वका जो शेष काल रहता है वह सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल है। इसमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वके क्षपणकालको कम कर देने पर जो काल शेष रहता है वह मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल है। इसमेंसे मिथ्यात्वके क्षपणकालको कम कर देने पर जो काल शेष रहता है वह अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल है। सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायका वेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा जो पूरा छयासठ सागर काल बतलाया है वह सुगम है, क्योंकि कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टिके भी इन प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है और कृतकृत्यवेदकके कालसहित वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है।

संज्ञी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल पुरुषवेदीके कहे गये सभी प्रकृतियोंके कालके समान है। इतनी विशेषता है कि संज्ञी जीवोंके मिथ्यात्व आदिक बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है। असंज्ञी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल एकेन्द्रियोंके कहे

**जह० खुद्दा० तिसमयूणं, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो। सम्मत्त-सम्मामि० ओघभंगो। णवरि, जह० एगसमओ। अणंताणु०चउक्कविह० मिच्छत्तभंगो। णवरि, जह० एगसमओ। अणाहारि० कम्मइय०भंगो।**

**एवं कालो समत्तो।**

§ **१३५. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसायाणं णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं विह० जह० एगसमओ, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० जह०**

गये सभी प्रकृतियोंके कालके समान है। **आहारक** जीवोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायका काल कितना है? जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग है। तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका काल ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि जघन्य काल एक समय है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि जघन्य काल एक समय है। अनाहारक जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल कार्मणकाययोगीके कहे गये सभी प्रकृतियोंके कालके समान है।

**विशेषार्थ**—संज्ञी जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है, अतः इनके मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि बारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य काल पुरुषवेदियोंके समान अन्तर्मुहूर्त न होकर खुद्दाभवग्रहणप्रमाण कहा है। इनका शेष कथन पुरुषवेदियोंके समान है। उससे इनमें कोई विशेषता नहीं। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रिय भी आ जाते हैं। और उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंका सबसे अधिक है, अतः असंज्ञियोंके सभी प्रकृतियोंका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा है। आहारक जीवोंका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसी अपेक्षासे इनके मिथ्यात्वादि बाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उतना ही कहा है। तथा इनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा है। तथा अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार ऊपर घटित कर आये हैं उसी प्रकार आहारकके भी घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

इसप्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ **१३५. अन्तरानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल देशोन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर है। इसीप्रकार अच-

**अंतोमुहुत्तं, उक्क० बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि। एवमचक्खु०-भवसिद्धि० वत्तव्वं।**

**§ १३६. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु बावीसंपयडीणं णत्थि अंतरं, छण्हं पयडीणं जह० एगसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसंसागरोवमाणि देसूणाणि। पढमादि जाव सत्तमि त्ति सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं जह० एगसमओ अंतोमुहुत्तं**

क्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—सामान्यसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका अभाव हो जाने पर पुन: इनकी उत्पत्ति नहीं होती है। जो उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख है उसके उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके उपान्त्य समयमें यदि सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना हो जाय अनन्तर एक समय मिथ्यात्वके साथ रहकर द्वितीय समयमें उपशम सम्यक्त्व प्राप्त हो तो उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय अन्तरकाल प्राप्त होता है। उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल जो देशोन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन बताया है सो यहां देशोन पदसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल लेना चाहिये, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वके अनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर इतने कालके द्वारा इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होकर अभाव होता है। जो उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके पुन: उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है उसके अनन्तानुबन्धीका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। जिस जीवने उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है पुन: उपशमसम्यक्त्वके अनन्तर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है, और अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागर वेदकसम्यक्त्वका काल व्यतीत होनेपर मिश्रगुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर पुन: वेदकसम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है तथा इस दूसरी बार प्राप्त हुए वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागरके व्यतीत होनेपर मिथ्यात्वमें जाकर अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त कर लिया है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर होता है। इसप्रकार ऊपर ओघकी अपेक्षा जो अन्तरकाल कहा है अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके उक्त प्रकृतियोंका अन्तरकाल उतना ही जानना चाहिये।

**§ १३६. आदेशनिर्देशकी** अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। तथा शेष छह प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा छहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक

उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। मिच्छत्त०-बारसकसाय-णवणोक० णत्थि अंतरं।

§ १३७. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोघभंगो। अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० अंतरं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी० मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसाय० विहत्ति० केव०? णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि०-विहत्ति० अंतरं केव०? जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेण-

समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा छहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपने अपने नरककी स्थितिप्रमाण है। तथा सातों नरकोंमें बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है।

**विशेषार्थ**—सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तरकाल जिस प्रकार सामान्यसे घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां सर्वत्र जान लेना चाहिये। जिसके सम्यक्प्रकृति या सम्यक्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष है ऐसा जीव विवक्षित किसी एक नरकमें अपने नरककी उत्कृष्ट आयु लेकर उत्पन्न हुआ और वहां उसने दूसरे समयमें सम्यक्प्रकृति या सम्यग्मिथ्यात्वका अभाव कर दिया अनन्तर जीवन भर वह जीव मिथ्यात्वके साथ रहा किन्तु जीवनके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर उसने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली उसके उस उस नरककी अपेक्षा उक्त दोनों प्रकृतियोंका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है। अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी इसीप्रकार घटित करना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि प्रारंभमें पर्याप्त अवस्थाके होनेपर सम्यक्त्व उत्पन्न कराके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करा लेना चाहिये, तब जाकर अनन्तानुबन्धीका अन्तरकाल प्रारंभ होता है और जीवन भर वेदकसम्यक्त्वके साथ रखकर मरणके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये। सातवें नरकमें मरनेसे अन्तर्मुहूर्त पहले मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये। सातवें नरकमें जो उत्कृष्ट अन्तरकाल है वही सामान्यसे नारकियोंके उक्त छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। शेष बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता, यह सुगम है।

§ १३७. **तिर्यंचगतिमें** तिर्यंचोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य है। तथा शेष बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायका अंतरकाल कितना है? इन बाईस प्रकृतियोंका अंतरकाल नहीं है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तर-

**ब्भहियाणि। अणंताणुबंधिचउक्क० तिरिक्खोघभंगो। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु वत्तव्वं। पंचिंदियतिरि०अपज्ज० सव्वपयडीणं णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज० अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठेत्ति सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तस०-अपज्ज०-सव्वपंचकाय-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-अवगदवेद-अकसाय०-मदिसुदअण्णाण-विभंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहि-**

काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल तिर्यंचसामान्यके समान है। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके अन्तर काल कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ऊपर बताये गये सभी मार्गणास्थानोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व का जघन्य अन्तरकाल एक समय जिसप्रकार ओघ प्ररूपणामें घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां भी उस उस मार्गणामें जान लेना चाहिये। सामान्यतिर्यंचोंके उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल जो ओघके समान कहा है उसका इतना ही मतलब है कि ओघकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंके अन्तरकालमें जिसप्रकार पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे न्यून अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनका ग्रहण किया है उसीप्रकार यहां भी ग्रहण करना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि यहां अर्धपुद्गलपरिवर्तनके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर सम्यक्त्व न ग्रहण कराकर उपान्त्य भवमें तिर्यंचपर्यायमें उत्पन्न कराकर उस पर्यायके अन्तमें सम्यक्त्व ग्रहण करावे। और इसप्रकार प्रारंभमें उद्वेलनासंबन्धी पल्योपमके असंख्यातवेंभाग कालको और अन्तमें दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कालको अर्धपुद्गलपरिवर्तनमेंसे घटा देने पर जो काल शेष रहता है वह उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। पंचेन्द्रियादि तीन प्रकारके तिर्यंच और मनुष्यपर्याप्त तथा मनुष्यनियोंका जो पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम आदि उत्कृष्ट काल कहा है उसमें अन्तर्मुहूर्त कालके घटा देने पर शेष काल उस उस मार्गणामें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल जान लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धीका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल सुगम है इसलिये यहां नहीं लिखा है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सभी प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, सभी प्रकारके पांचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत,

**दंसण-अभव्व०-सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि० असण्णि०-अणाहारएत्ति वत्तव्वं ।**

§ **१३८. देवेसु सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० अंतरं केव० ? जह०एगसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क०एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं । भवणवासि० जाव उवरिमगेवज्जेत्ति एवं चेव वत्तव्वं । णवरि, अप्पप्पणो ट्ठिदीओ णादव्वाओ । पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० अंतरं जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणंताणुबंधिचउक्क०**

परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्म सांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–जिस मार्गणामें मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनों अवस्थाएँ हो सकती हैं उसी मार्गणामें ही सम्यक्प्रकृति आदि छह प्रकृतियोंका अन्तरकाल पाया जाता है शेष मार्गणाओंमें नहीं । ये ऊपर जो मार्गणाएँ गिनाई हैं ये ऐसी मार्गणाएँ हैं कि इनमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनों अवस्थाएँ नहीं हो सकती हैं, अतः इनके उक्त छह प्रकृतियोंका अन्तरकाल घटित नहीं होता है । शेष बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल कहीं भी नहीं है ।

§ १३८. **देवोंमें** सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल कितना है ? देवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त तथा उक्त सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । शेष बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है । भवनवासियोंसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके प्रत्येक स्थानके देवोंमें इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अपनी अपनी स्थिति जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–देवोंमें सर्वत्र सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त जिस प्रकार ऊपर घटित करके लिख आये हैं उसीप्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये । तथा उत्कृष्ट अन्तर नारकियोंके समान घटा लेना चाहिये । विशेषता इतनी है कि यहां अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरका कथन करना चाहिये । यहां जो उक्त छहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा है वह नवग्रैवेयकों की अपेक्षा कहा है । क्योंकि आगेके देव नियमसे सम्यग्दृष्टि ही होते हैं ।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट

विहत्ति० ओघभंगो। सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं।

§ १३६. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-वेउव्विय० चत्तारिकसाय० सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं।

§ १४०. वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० जह० एगसमओ अंतो, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा पणवण्णपलिदो० देसूणाणि। सेसाणं पय० णत्थि अंतरं। पुरिसवेदेसु सम्मत्त सम्मामि० विहत्ति० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० ओघ-

स्थितिप्रमाण है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है।

**विशेषार्थ**–सामान्य पंचेन्द्रिय आदिकी पहले जो उत्कृष्ट कायस्थिति बतला आये हैं उसमेंसे कुछ कम कर देने पर सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल हो जाता है। कुछ कमका प्रमाण जैसा ऊपर घटित करके लिख आये हैं उसीप्रकार यहां पर घटित करके जान लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ १३६. **योगमार्गणाके** अनुवादसे पांचों मनोयोगी पांचों वचनयोगी, काययोगी औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें तथा चारों कषायवाले जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोका अन्तरकाल नहीं है।

**विशेषार्थ**–जिसको सम्यक्प्रकृति या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना किये एक समय या अन्तर्मुहूर्त हुआ है ऐसे किसी उपर्युक्त योगवाले मिथ्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिके साथ पुनः जब सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व हो जाता है तब उक्त योगवाले या किसी कषायवाले जीवके उक्त दोनों प्रकृतियोका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा शेष प्रकृतियोंका यहां अन्तरकाल संभव नहीं है।

§ १४०. **वेदमार्गणाके** अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। और सम्यक्त्व तथा सम्यक्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण और अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचपन पल्य है। तथा शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेदियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ पृथक्त्व सागर है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका

भंगो। सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं। णवुंसयवेदेसु सम्मत्त-सम्मामि० ओघभंगो। अणंताणुबंधिचउक्क० सत्तमपुढविभंगो। सेसाणं पय० णत्थि अंतरं। एवमसंजद० वत्तव्वं। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो।

§ १४१. लेस्साणुवादेण छ-लेस्सासु सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० अंतरं जह० एगसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीस सत्तारस सत्त एक्कत्तीस सागरो-

अन्तरकाल नहीं है। नपुंसकवेदी जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सातवीं पृथिवीके समान है। शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। असंयतोंके नपुंसकवेदियोंके समान अन्तरकाल कहना चाहिये। तथा चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान अन्तरकाल कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल लिख आये हैं उसी प्रकार तीनों वेदवालोंके घटित कर लेना चाहिये। स्त्रीवेदीकी उत्कृष्टकायस्थिति सौ पल्य पृथक्त्व है। तथा इतने काल तक वह मिथ्यात्व गुणस्थानमें भी रह सकता है अत: इसमेंसे उद्वेलनाकालके कम कर देने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। पर इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदका काल प्रारम्भ होते समय मिथ्यात्वमें लेजाना चाहिये और स्त्रीवेदका काल समाप्त होनेके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति कराना चाहिये। कोई एक जीव पचपन पल्यकी आयुवाली देवी हुआ और वहां पर्याप्त होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी पुन: भवके अन्तमें मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ। उसके अनन्तानुबन्धीका कुछ कम पचपन पल्य उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। पुरुषवेदी जीवकी कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्व है अत: वहां उस अपेक्षासे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये। तथा पुरुषवेदीके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जिसप्रकार ओघमें घटित करके लिख आये हैं उसीप्रकार यहां जानना। तथा सातवीं पृथिवीमें नारकीके जिस प्रकार अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट अन्तरकाल लिख आए हैं उसीप्रकार नपुंसकवेदीके जानना और इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान घटित कर लेना, क्योंकि कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल तक एक जीव नपुंसक रह सकता है।

§ १४१. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे छहों लेश्याओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उक्त सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कृष्णलेश्यामें कुछ कम तेतीस सागर, नीललेश्यामें कुछ कम सत्रह सागर, कपोतलेश्यामें कुछ कम सात सागर, शुक्ललेश्यामें कुछ कम इकतीस सागर, पीतलेश्यामें साधिक दो सागर और पद्मलेश्यामें साधिक

वमाणि देसूणाणि, बे अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि । सेसपयडीणं णत्थि अंतरं । सण्णि० पुरिसवेदभंगो । आहारि० सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० अंतरं जह० एग समओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो । अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० ओघभंगो ।

एवमंतरं समत्तं ।

§ १४२. सण्णियासो दुविहो ओघो आदेसो चेदि । तत्थ ओघेण मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ । बारसकसाय-णवणोक० णियमा विहत्तिओ । सम्मत्तस्स जो विहत्तिओ

अठारह सागर है । शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

**विशेषार्थ**–सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अन्तर एक समय तथा अनन्तानुबन्धीके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तका कथन जिस प्रकार पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये । तथा छहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन अशुभ लेश्याओंमें नरकगतिकी अपेक्षा और तीन शुभ लेश्याओंमें देवगतिकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि इतने दीर्घकाल तक एक लेश्या वहां ही रहती है ।

**संज्ञी मार्गणामें** सम्यक्प्रकृति आदि छह प्रकृतियोंका अन्तरकाल पुरुषवेदके समान है । आहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**–संज्ञीजीवोंमें सम्यक्प्रकृति आदि छह प्रकृतियोंका अधिकसे अधिक अन्तरकाल पुरुषवेदियोंके ही पाया जाता है, अतः संज्ञीमार्गणामें पुरुषवेदके समान अन्तरकाल कहा । आहारक जीवका सर्वदा आहारक रहते हुए निरन्तर उत्पन्न होनेका काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, तथा इतने काल तक आहारकजीव निरन्तर मिथ्यात्वमें भी रह सकता है इसलिये इसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा सामान्यसे अनंतानुबंधी चतुष्कका जो उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वह आहारकजीवके बन जाता है इसलिये इसके अनंतानुबंधी चतुष्कका उत्कृष्ट अंतरकाल ओघके समान कहा । उक्त छहों प्रकृतियोंके जघन्य अन्तरकालका कथन सुगम है ।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४२. **सन्निकर्ष अनुयोगद्वार** ओघ और आदेशके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जो जीव मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । परन्तु उसके बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्ति नियमसे है । जो जीव सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला

सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्काणं सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। सेसाणं पयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं सम्मामि०। णवरि, सम्मत्तस्स दो भंगा।

§ १४३. अणंताणुबंधिकोधस्स जो विहत्तिओ, सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सिया० विहत्ति०, सिया अविहत्ति०। सेसाणं णियमा विहत्तिओ। एवमणंताणुबंधिमाण-माया-लोहाणं। अपच्चक्खाणावरणकोहस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्क० सिया विहत्ति०, सिया अविहत्ति०। सेसाणं पय० णियमा विहत्ति०। एवं सत्तकसाय०। कोहसंजलणाए विहत्तिओ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारस-कसाय-णवणोकसायाणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ। तिण्हं संजलणाणं णियमा विहत्तिओ। माणसंजलणाए जो विहत्तिओ सो माया-लोभसंजलणाणं णियमा विहत्तिओ। सेसाणं सिया विहत्ति०, सिया अविहत्ति०। मायासंजलण० जो विहत्ति० लोभसंज० णियमा विहत्तिओ। सेसाणं पयडीणं सिया विहत्ति० सिया अवि-

है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। परन्तु इसके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति नियमसे है। सम्यक्प्रतिके समान सम्यग्मिथ्यात्वका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवालेके सम्यक्प्रकृतिके दो भंग होते हैं अर्थात् वह कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है और कदाचित् नहीं है।

§ १४३. जो जीव अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। तथा उसके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति नियमसे है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये। जो जीव अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। परन्तु उसके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति नियमसे है। इसीप्रकार शेष सात कषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये।

जो जीव क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। परन्तु वह संज्वलनमान आदि शेष तीन प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो जीव मानसंज्वलनकी विभक्तिवाला है वह माया और लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है। परन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। जो जीव मायासंज्वलनकी विभक्तिवाला है वह लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है। परन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। जो जीव लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाला है वह अपनेसे

**हत्तिओ। लोभसंज० जो विहत्तिओ सो सव्वे० हेट्ठिमाणं पय० सिया विहत्ति०, सिया अविहत्ति०। इत्थिवेदस्स जो विहत्ति० सो छण्णोकसाय-पुरिस०-चदुसंजलणाणं णियमा विहत्तिओ। सेमाणं पयडीणं सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। णवुंसय-वेदस्स जो विहत्तिओ सो छण्णोक०-पुरिस-चदुसंजलणाणं णियमा विहत्तिओ, सेमाणं पदाणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ। पुरिसवेदस्स जो विहत्तिओ सो चदु-संजलणाणं णियमा विहत्तिओ। सेसाणं पय० सिया विहत्ति० सिया अविहत्ति०। हस्सस्स जो विहत्तिओ सो पंचणोकसायाणं पुरिस०-चदुसंजलणाणं णियमा विहत्तिओ। सेसाणं पयडीणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ। एवं पंचणोकसायाणं। एवं मणुसतियस्स। णवरि, मणुसिणीसु णवंसयवेदस्स जो विहत्तिओ सो इत्थिवेदस्स णियमा विहत्तिओ। पुरिसवेदस्स छण्णोकसायभंगो। पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-लोभकसायी-चक्खु०-अचक्खु० सुक्कले०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारीणमोघभंगो।**

पहलेकी सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। जो जीव स्त्रीवेदकी विभक्तिवाला है वह छह नोकषाय, पुरुषवेद और चारसंज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है। परन्तु शेष सोलह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। जो जीव नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है वह छह नोकषाय, पुरुषवेद और चार संज्वलनकषायकी विभक्तिवाला नियमसे है। तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है, कदाचित् नहीं है। जो जीव पुरुषवेदकी विभक्तिवाला है वह चार संज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है। परन्तु वह शेष तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। जो जीव हास्य नोकषायकी विभक्तिवाला है वह पांच नोकषाय, पुरुषवेद और चार संज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है। परन्तु शेष प्रकृतियोकी विभक्तिवाला वह कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। इसीप्रकार पांच नोकषायोंकी अपेक्षा कहना चाहिये। यह जो ऊपर ओघप्ररूपणा की है इसीप्रकार समान्य और पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनीके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें जो नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है वह स्त्रीवेदकी विभक्तिवाला नियमसे है। पुरुषवेदका छह नोकषायके समान कथन करना चाहिये। तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके सन्निकर्षका कथन ओघके समान है।

**विशेषार्थ**—मिथ्यात्वगुणस्थानमें जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं की उसके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है। तथा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करनेपर सत्ताईस और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेपर छब्बीस प्रकृतियां सत्तामें रहती हैं। उपशम-

§ १४४. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ तस्स सव्वपयडीणमोघभंगो। एवं सम्मत्तस्स। सम्मामिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसाय० णियमा विहत्तिओ। सम्मत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ। अणंताणुबंधिचउक्कस्स ओघभंगो। अपच्चक्खाण-कोधस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं सिया

श्रेणीसे उतरे हुए द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीवके चौथसे सातवें तक अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना चौबीस प्रकृतियां सत्तामें हैं। तथा जिस वेदकसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है उसके भी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता है। तथा क्षायिक सम्यक्त्वके सन्मुख हुए वेदगसम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेपर चौबीसकी, मिथ्यात्वकी क्षपणा करनेपर तेईसकी, सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा करनेपर बाईसकी और सम्यक्त्वकी क्षपणा करनेपर इक्कीसकी सत्ता होती है। अनन्तर क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए पुरुषवेदी जीवके क्रमसे अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान आवरण आठ, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय, पुरुषवेद, संजलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया और संज्वलनलोभकी क्षपणा करनेपर १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, और १ प्रकृतियोंकी सत्ता होती है। इतनी विशेषता है कि जो स्त्रीवेदके साथ क्षपकश्रेणी चढ़ता है वह पुरुषवेद और छह नोकषायोंका एक साथ क्षय करता है, अतः उसके पांच प्रकृतिक स्थान नहीं होता। इस प्रकार इन नियमोंको ध्यानमें रख कर ओघ और आदेशसे कहे गये सन्निकर्षका विचार करना चाहिये। इससे यह जानने में देरी न लगेगी कि किन प्रकृतियोंके रहते हुए किन प्रकृतियोंकी सत्ता है ही और किन प्रकृतियोंकी सत्ता है भी और नहीं भी है। उदाहरणार्थ लोभ संज्वलनकी विभक्तिवालेके शेष सत्ताईस प्रकृतियां होंगी और नहीं भी होंगी, क्योंकि लोभसंज्वलनका सत्त्वक्षय सबके अन्तमें होता है। पर मानसंज्वलनकी विभक्तिवालेके लोभसंज्वलन अवश्य होगा, क्योंकि मानसंज्वलनका सत्त्वक्षय लोभसंज्वलनके पहले हो जाता है। इसीप्रकार सर्वत्र जानना।

§ १४४. **आदेशनिर्देशकी** अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें जो जीव मिथ्यात्वकी विभक्ति वाला है उसके सब प्रकृतियोंका कथन ओघके समान है। इसी प्रकार सम्यक्प्रकृतिकी अपेक्षा ओघके समान कथन करना चाहिये। जो जीव सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्ति वाला नियमसे है। किन्तु सम्यक् प्रकृति और अनन्तानुबन्धीकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा ओघके समान कथन है। जो नारकी अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्ति वाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विभक्ति वाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष बीस प्रकृतियोंकी विभक्ति वाला नियमसे

**विहत्तिओ, सिया अविहत्ति० । सेसाणं पय० णियमा विहत्तिओ । एवमेकारस-कसाय-णवणोकसायाणं । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खगई-पंचिंदियतिरिक्ख पंचिं० तिरि०-पज्ज०-देव०-सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जदेव०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-असंजद०-तिण्णि लेस्सा-अणाहारि त्ति वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्काणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ । सेसाणं पयडीणं णियमा विहत्तिओ । एवं बारसकसाय-णवणोक-**

है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान शेष ग्यारह कषाय और नो कषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवी, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, औदारिक-मिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्या-वाले और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें मिथ्यात्व विभक्तिवालेके अनन्तानुबन्धी चतुष्क सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये छह प्रकृतियां होती भी हैं और नहीं भी होती हैं। विसंयोजकके अनन्तानुबन्धी चतुष्क नहीं होतीं तथा जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके उक्त दो प्रकृतियां नहीं होती । किन्तु इसके शेष सभी प्रकृतियोंकी सत्ता है । जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है उसके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह प्रकृतियां होती हैं और नहीं भी होती हैं । जो कृतकृत्यवेदक-सम्यग्दृष्टि नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त छहका सत्त्व नहीं होता । तथा जिस वेदक सम्यग्दृष्टिने चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके उक्त चारका सत्त्व नहीं होता शेषके छहोंका सत्त्व होता है । किन्तु इसके शेषका सत्त्व नियमसे होता है । सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति वाले जीवके अनन्तानुबन्धी चार और सम्यक्त्व ये पांच प्रकृतियां हैं भी और नहीं भी हैं । जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धी चार नहीं हैं । तथा जिसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर दी है उसके सम्यक्त्व नहीं है शेषके ये पांचों प्रकृतियां हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा ओघ कथनसे कोई विशेपता नहीं है । तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदिकी विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चार ये सात प्रकृतियां होती भी हैं और नहीं भी होती हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टिके नहीं होती, शेषके यथा संभव विकल्प जानना । ऊपर जो प्रथम नरकके नारकी आदि अन्य मार्गणाएं गिनाई हैं वहां भी इसी प्रकार समझना ।

दूसरे से लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक स्थानके नारकी जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्ति वाला है वह सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति वाला है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसी

साय० । णवरि मिच्छत्तस्स णियमा विहत्तिओ । जो सम्मत्तस्स विहत्तिओ सो अणंताणुबंधिचउक्कस्स सिया विहत्ति० सिया अविहत्ति० । सेसाणं पयडीणं णियमा विह० । सम्मामि० जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-अणंताणु० चउक्क० सिया विह० सिया अविह० । सेसाणं पयडीणं णियमा विहत्तिओ । अणंताणुबंधिकोध० जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह० । सेसाणं पयडीणं णियमा विहत्तिओ । एवं तिण्हं कसायाणं । एवं पंचिं० तिरि० जोणिणी०-भवण०-वाणवेंतर०-जोदिसि० वत्तव्वं । पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह० । सेसाणं पय० णियमा अविहत्तिओ (विहत्तिओ)। एवं सोलसक०-णवणोक० । णवरि मिच्छत्तस्स णियमा विहत्तिओ । जो सम्मत्तस्स विहत्तिओ सो सव्व० पय० णियमा विहत्तिओ । जो सम्मामि० विहत्तिओ सो सम्मत्त० सिया विह० सिया अविह० । सेसाणं पय० णियमा विह० । एवं मणुसअपज्जत्त-सव्व

प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यह जीव मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला नियमसे है । जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है; किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके समान अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये। इसीप्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना और अनन्तानुबन्धी चार की विसंयोजना संभव है। अतः ऊपर प्रकृतियोंके सत्त्व और असत्त्व सम्बन्धी सभी विकल्प इसी अपेक्षासे कहे हैं जो उपर्युक्त प्रकारसे घटित कर लेना चाहिये ।

**पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक** जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसीप्रकार सोलहकषाय और नौ नोकषायकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसके मिथ्यात्वकी विभक्ति नियमसे है । जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्ति वाला है वह नियमसे सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है भी और

एइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-सव्वपंचकाय-तसअपज्ज०-मदि-सुदअण्णाणि-विभंग-मिच्छादि०-असण्णीणं वत्तव्वं।

§ १४५. अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणे त्ति जो मिच्छत्तस्स विहत्तिओ अणंताणु०चउक्क० सिया विह०, सिया अविह०। सेसाणं पय० णियमा विह०। एवं सम्मामिच्छत्तस्स। सम्मत्तस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविहत्तिओ। सेसाणं णियमा विह०। अणंताणु०कोध० जो विहत्तिओ सो सव्वपय० णियमा विह०। एवं तिण्णं कसायाणं। अपच्चक्खाणकोध० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०। सेसाणं पय० णियमा विहत्तिओ। एवमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं।

§ १४६. वेउव्विय० जो मिच्छत्तस्स विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०

नहीं भी है, किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सभी प्रकारके पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवों के कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना संभव है। अतः ऊपर जितने विकल्प कहे हैं वे इस अपेक्षासे घटित कर लेना चाहिये।

§ १४५. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक प्रत्येक स्थानमें जो जीव मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षासे कथन करना चाहिये। जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके समान अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–नौ अनुदिशसे लेकर ऊपर सभी जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। अतः यहां २८, २४, २२ और २१ ये चार विभक्तिस्थान संभव हैं। इसी अपेक्षासे ऊपरके सभी विकल्प घटित कर लेना चाहिये।

§ १४६. वैक्रियिककाययोगियोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति,

चउक्क० सिया विहत्ति० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ। सम्मामि० जो विह० सो सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं पञ्च० णियमा विह०। सम्मत्तस्स जो विहत्तिओ सो अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं पय० णियमा विहत्तिओ। अणंताणु०कोध० जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं पय० णियमा विहत्तिओ। एवं तिण्णि कसाय०। अपच्चक्खाण-कोध० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं पय० णियमा विह०। एवमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं। आहार०-आहारमिस्स० मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ, सो अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०;

सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है, किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके समान अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी अपेक्षा जिस प्रकार सन्निकर्षके विकल्प कहे हैं, उसीप्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्षके विकल्पोंका कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–वैक्रियिककाययोगमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव होते हैं। किन्तु कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि नहीं होते, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर देव या नारकियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके अपर्याप्त अवस्थामें ही सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय होकर क्षायिक सम्यग्दर्शन हो जाता है। अतः वैक्रियिककाययोगवाले जीव २८, २७, २६, २४ और २१ प्रकृतिक स्थान वाले होते हैं, अतः इसी अपेक्षासे ऊपरके सभी विकल्प घटित कर लेना चाहिये।

आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष

सेसाणं णियमा विह०। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं। अणंताणु०कोध० जो विहत्तिओ सो सव्वपय० णियमा विह०। एवं तिण्हं कसायाणं। अपच०कोध० जो विह० सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं पय० णियमा विह०। एवमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं।

§ १४७. वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसकसायाणमोघभंगो। कोधसंजलणस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसकसाय-णवुंस० सिया विहत्ति० सिया अविहत्ति०; तिण्णि संजलण-अट्ठणोकसाय० णियमा विह०। एवं तिण्हं संजलण०-अट्ठणोकसायाणं। णवुंसयवेदस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसकसाय० सिया विह० सिया अविह०; चत्तारिसंजलण-अट्ठणोकसाय० णियमा विहत्तिओ। एवं णवुंस०, णवरि इत्थिवेद० णवुंसभंगो।

प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके समान अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति वाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**—आहारक काययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये दोनों योग प्रमत्तसंयतके होते हैं। पर ऐसा जीव क्षायिकसम्यग्दर्शनका प्रस्थापक नहीं होता, अतः इसके २८, २४ और २१ ये तीन विभक्तिस्थान होते हैं। इसी अपेक्षासे ऊपरके सभी विकल्प घटित कर लेना चाहिये।

§ १४७. **वेदमार्गणाके** अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी अपेक्षा कथन ओघके समान है। जो क्रोध संज्वलनकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि बारहकषाय और नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष तीन संज्वलन कषाय और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार तीन संज्वलन और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। जो नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह चारो संज्वलन और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। नपुंसकवेदी जीवोंके स्त्रीवेदी जीवोंके समान कथन करना चाहिये। इतनी

पुरिसवेदएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसकसाय०-णवणोकसाय० ओघभंगो। चदुसंजलण० ओघं। णवरि, पुरिसवेद०-चदुसंजलण० णियमा अत्थि।

§ १४८. अगदवेदएसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो तेवीसण्हं पयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं। अपच्च०कोध० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह०; एक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं णियमा विह०। एवं सत्त-कसायाणं। कोधसंजलणस्स जो विहत्तिओ सो तिण्हं संजलणाणं णियमा विहत्तिओ: सेसाणं पयडीणं सिया विह० सिया अविह०। माणसंजलण० जो विहत्तिओ सो दोण्हं संजलणाणं णियमा विहत्तिओ; सेसाणं पय० सिया विह० सिया अविह०। मायासंजल० जो विहत्ति० सो लोभसंजलण० णियमा विह०; सेसाणं पयडीणं सिया विह० सिया अविह०। लोभसंजल० जो विहत्तिओ सो तेवीसण्हं पय० सिया विह० सिया अविह०। णत्थि ( इत्थि ) वेदस्स जो विहत्तिओ

विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवके नपुंसकवेदकी अपेक्षा सन्निकर्षका जैसा कथन किया है उसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवके स्त्रीवेदकी अपेक्षा सन्निकर्षका कथन करना चाहिये। पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन ओघके समान है। चार संज्वलन कषायोंका भी कथन ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें पुरुषवेद और चार संज्वलन कषायोंकी विभक्ति नियमसे है।

§ १४८. अपगतवेदी जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़कर शेष तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान अप्रत्याख्यानावरण मान आदि सात कषायोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये। जो क्रोध संज्वलनकी विभक्तिवाला है वह मान आदि तीन संज्वलनोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। जो मान संज्वलनकी विभक्तिवाला है वह माया आदि दो संज्वलनोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। जो माया संज्वलनकी विभक्तिवाला है वह लोभ संज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। जो लोभ संज्वलनकी विभक्तिवाला है वह तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। जो स्त्रीवेदकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति

सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० [ अट्ठकसा०-णवुंस० ] सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ। एवं णवुंस०। पुरिसवेदस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्ठक०-अट्ठणोक० सिया विह० अविह०; चत्तारिसंजलण० णियमा विह०। हस्स० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्ठकसाय-दोवेद० सिया विह० सिया अविह०; चत्तारिसंजल०-पुरिस०-पंचणोकसाय० णियमा विहत्तिओ। एवं रदीए। एवमरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं।

§ १४६. कसायाणुवादेण कोधकसाईसु पुरिसभंगो। णवरि, पुरिसवेदस्स सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। एवं माणक०, णवरि कोधक० सिया विह० सिया अविह०। एवं माय०, णवरि माण० सिया विह० सिया अविह० [ एवं लोभ०। णवरि माय० सिया विह० सिया अविह०। ] अकसाईसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं। अपच्च०कोध० जो विहत्तिओ

सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय और नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षा कथन करना चाहिये। जो पुरुषवेदकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु चार संज्वलनोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो हास्यकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय, और स्त्री तथा नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है किन्तु चार संज्वलन, पुरुषवेद और रति आदि पाच नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार रतिकी अपेक्षा तथा अरति, शोक, भय और जुगुप्सा की अपेक्षा कथन करना चाहिये।

§१४६. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी जीवोंके पुरुषवेदी जीवोंके समान कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायी जीव पुरुषवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। इसीप्रकार मानकषायी जीवोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मानकषायी जीव क्रोधकषायकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंके समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मायाकषायी जीव मानकषायकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीव मायाकषायकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। अकषायी जीवों में जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह नियमसे अनन्तानुबन्धीके सिवा सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। इसी प्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जानना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है

सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह०, एक्कारसक०-णवणोक० णियमा विहत्तिओ। एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं। एवं जहाक्खादसंजदाणं।

§ १५०. आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जवणाणेसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो अणंताणु०-चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ। सम्मत्तस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; बारसकसाय-णवणोकसाय० णियमा विहत्तिओ। सम्मामिच्छत्त० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० णियमा विहत्तिओ। अणंताणु०को० जो विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं तिण्हं कसायाणं। बारसक०-णवणोकसाय० ओघभंगो। एवं संजद०-सामाइय-च्छेदो०-ओहिदंस-सम्मादिट्ठीणं वत्तव्वं।

§ १५१. परिहार०संजदेसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो अणंताणु० सिया विह०

वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। अकषायी जीवों के समान यथाख्यातसंयतोंके भी जानना चाहिये।

§ १५०. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन ओघके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

§१५१. परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और

सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ। सम्मत्त० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विह०। सम्मामि० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त०-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विह०। अणंताणु० कोध० जो विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं तिण्हं कसायाणं। अपच्च०कोध० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; एक्कारस कसाय-णवणोकसाय० णियमा विह०। एवमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं। एवं संजदासंजदाणं। सुहुमसांपराय० मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्ति०। एवं सम्मामिच्छत्ताणं। अपच्च०कोध० जो विह० सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विह०। एवं दसक०-णवणोकसायाणं। लोभसंज० जो विहत्तिओ सो सेसाणं सिया विह० सिया अविह०।

अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है; किन्तु शेष प्रकृतियोकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। इसीप्रकार संयतासंयतोंके कथन करना चाहिये। सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्कके सिवाय शेष सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यत्वकी अपेक्षा जानना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार लोभसंज्वलनको छोड़कर अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दस कषाय और नौ कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। जो लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाला है वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है।

**विशेषार्थ**—सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंके २४, २१ और १ ये तीन विभक्तिस्थान होते हैं। यहांभी अनन्तानुबन्धी चारको छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार किया गया है। ऊपरके सभी विकल्प इसी अपेक्षासे घटित कर लेना चाहिये।

किण्ह-णील० वेउव्वियकायजोगिभंगो। अभवसिद्धि० मिच्छत्त० जो विहत्तिओ सो पणुवीसंपयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं पणुवीसपयडीणं।

§ १५२. खइयसम्मादिट्ठीसु अपच्च० कोध० जो विहत्तिओ सो वीसण्हं पयडीणं णियमा विह०। एवं सत्तक०। सेसाणमोघभंगो। वेदगसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ। सम्मत्त० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विह०। एवं बारसक०-णवणोकसाय०। सम्मामि० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०। सेसाणं णियमा विह०। अणंताणु० कोध० जो विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विह०। एवं तिण्हं कसायाणं। उवसमसम्माइट्ठीसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त बारसकसाय-णवणोकसाय०। अणंताणु०कोध० जो विहत्तिओ

कृष्ण और नीललेश्यावालोंके वैक्रियिककाययोगी जीवोंके समान समझना चाहिये। अभव्य जीवोंमे जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष पच्चीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसी प्रकार पच्चीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा जानना चाहिये।

§ १५२. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमे जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि सात कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा कथन ओघके समान है। वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है। किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति, सम्यकग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा जानना

सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं तिण्हं कसायाणं। सासणसम्माइट्ठीसु जो मिच्छत्तस्स विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ। एवं सव्वासिं पयडीणं। सम्मामिच्छादिट्ठीसु मिच्छत्त० जो विहत्तिओ सो अणंताणु०चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेमाणं णियमा विह०। एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसक०-णवणोकसाय०। अणंताणु० कोध० जो विह० सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-पण्णारसक०-णवणोक० णियमा विहत्तिओ। एवं तिण्हं कसायाणं।

एवं सण्णियासो समत्तो।

§ १५३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण ओदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठावीसंपयडीणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि। एवं मणुस-तियस्स पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्जत्त-तिण्णिमण०-तिण्णि वचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-संजदा (मंजद)-सुक्कले०-भवसिद्धि०-सम्मादिट्ठि०-आहारए त्ति वत्तव्वं।

चाहिये। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा भी जानना चाहिये। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है। इसीप्रकार सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवालाभी है और नहीं भी है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसी प्रकार सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये।

इसप्रकार सन्निकर्ष अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ १५३. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसीप्रकार सामान्य और पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यिणी इन तीन प्रकारके मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन मनोयोगी, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, संयत, शुक्लेश्यावाले भव्य, सम्यग्दृष्टि और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ–यहां ऐसी मार्गणाओंका ही ग्रहण किया है जिनमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्तिवाले नाना जीव संभव हैं।

§ १५४. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्काणं अत्थि णियमा विहत्तिया च अविहत्तिया च; सेसाणं पयडीणं अत्थि विहत्तिया चेव। एवं पढमाए पुढवीए तिरिक्ख०-पंचिं०तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्जत्त-देवा-सोहम्मीसाण जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति वेउव्विय०-परिहार०-संजदासंजद-असंजद-पंचलेस्सेत्ति वत्तव्वं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणु०-चउक्काणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि; सेसाणं पय० विहत्तिया णियमा अत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसि० वत्तव्वं। पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि; सेसाणं विहत्तिया णियमा अत्थि। एवं सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-सव्वपंचकाय-मदि-सुदअण्णाणि-विहंग०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं।

§ १५४. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्-मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही जीव हैं। इसीप्रकार पहली पृथ्वीमें और सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म-ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, और कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले जीवोंके कथन करना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही हैं। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**—सामान्य नारकियोंसे लेकर पद्मलेश्यावाले जीवों तक सभी जीव इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तो नियमसे हैं। पर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले भी नाना जीव होते हैं। तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें सभी जीव बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तो नियमसे हैं। पर सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले भी नाना जीव होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति-वाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही हैं। इसीप्रकार सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, सब प्रकारके पांचों स्थावरकाय, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कथन करना चाहिये।

§ १५५. मणुस्स-अपज्ज० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि तो छव्वीसं पयडीणं णियमा विहत्तिया, अविहत्तिया णत्थि। सम्मत्तस्स अट्ठ भंगा ८। तं जहा, सिया विहत्तिओ १, सिया अविहत्तिओ २, सिया विहत्तिया ३, सिया अविहत्तिया ४, सिया विहत्तिओ च सिया अविहत्तिओ च ५, सिया विहत्तिओ च सिया अविहत्तिया च ६, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च ७, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ८। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं। वेमण०-वेवचि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि। बारसक०-णवणोकसाय० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-

**विशेषार्थ**–ये ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें २६ प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तो सभी जीव हैं पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले भी नाना जीव होते हैं।

§ १५५. **लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य** कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। यदि होते हैं तो नियमसे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वसे अतिरिक्त शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले होते हैं। उक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले नहीं होते हैं। तथा सम्यक्प्रकृतिकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। वे इसप्रकार हैं–कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव होता है १। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाला एक जीव होता है २। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ३। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ४। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव और अविभक्तिवाला एक जीव होता है ५। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव और अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ६। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले अनेक जीव और अविभक्तिवाला एक जीव होता है ७। कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्ति और अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ८। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी आठ भंग कहना चाहिये।

**असत्य और उभय** इन दो मनोयोगी और इन्हीं दो वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। तथा बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले कदाचित् सभी जीव हैं १। कदाचित् अनेक जीव बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ३। इसप्रकार तीन भंग होते हैं। *इसीप्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी*, चक्षुदर्शनी, अचक्षु-

चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण-सण्णि त्ति वत्तव्वं ।

§ १५६. ओरालियमिस्स० जोगीसु मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि । एवं कम्मइय० वत्तव्वं । णवरि, सम्मत्त-सम्मामि० विहत्तिया भयणिज्जा । वेउव्वियमिस्स०जोगीसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं अट्ठ भंगा । तं जहा, सिया विहत्तिओ १, सिया अविहत्तिओ २, सिया विहत्तिया ३, सिया अविहत्तिया ४, सिया विहत्तिओ च अविहत्तिओ च ५, सिया विहत्तिओ च अविहत्तिया च ६, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च ७, सिया विहत्तिया च अवि-

दर्शनी, अवधिदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें क्षीणकषाय गुणस्थान भी होता है और क्षीणकषायमें कदाचित् एक भी जीव नहीं रहता । यदि होते हैं तो कदाचित् एक और कदाचित् नाना जीव होते हैं। इसी अपेक्षासे ऊपर तीन भंग घटित करना चाहिये। शेष कथन सरल है।

§ १५६. **औदारिकमिश्रकाययोगी** जीवोंमें कदाचित् मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले सब जीव हैं। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है । कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं । इस प्रकार उक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले अनेक जीव नियमसे हैं । इसीप्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव भजनीय हैं।

**विशेषार्थ**–ऊपर मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंके जो तीन भंग कहे हैं वे केवलीके कपाट समुद्घातपदकी अपेक्षासे कहे हैं, क्योंकि कदाचित् एक भी जीव केवलिसमुद्घात नहीं करता, कदाचित् अनेक जीव और कदाचित् एक जीव केवलिसमुद्घात करते हैं अतः उक्त तीन भंग बन जाते हैं। कार्मणकाययोगियोंमें ये तीन भंग प्रतर और लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा घटित करना चाहिये । शेष कथन सरल है ।

**वैक्रियिकमिश्रकाययोगी** जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। वे इसप्रकार हैं–कदाचित् एक जीव उक्त प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है १ । कदाचित् एक जीव अविभक्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले हैं ३ । कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ४ । कदाचित् एक जीव विभक्तिवाला है और एक जीव अविभक्तिवाला है ५ । कदाचित् एक जीव विभक्तिवाला और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ६ । कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले

हत्तिया चेदि ८। बारसकसाय-णवणोकसायाणं सिया विहत्तिओ सिया विहत्तिया। एवमाहार०-आहारमिस्स०जोगीणं।

§ १५७. वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि। अट्ठकसाय-णवुंसयवेदाणं सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा। चत्तारिसंजलण-अट्ठणोकसायाणं णियमा अत्थि विहत्तिया, अविहत्तिया णत्थि। एवं णवुंस०, णवरि इत्थिवेदे णवुंस०भंगो। पुरिसवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि। अट्ठक०-अट्ठणोकसाय० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा। चत्तारिसंजलण-पुरिसवेदाणं विहत्तिया णियमा अत्थि। अवगदवेदेसु चउवीसण्हं पयडीणं सिया सव्वे जीवा

और एक जीव अविभक्तिवाला है ७। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ८। तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कदाचित् एक जीव विभक्तिवाला है और कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले हैं। इसीप्रकार आहारक काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके कथन करना चाहिये।

§ १५७. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और नपुंसकवेदकी अपेक्षा कदाचित सभी जीव विभक्तिवाले हैं। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं। इस प्रकार तीन भंग होते हैं। चार संज्वलन और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा सभी स्त्रीवेदी जीव नियमसे विभक्तिवाले हैं, अविभक्तिवाले नहीं हैं। नपुंसकवेदी जीवोंके इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदके स्थानमें नपुंसकवेद कहना चाहिये। पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्ति जीव नियमसे हैं। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा कदाचित् सभी पुरुषवेदी जीव विभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक पुरुषवेदी जीव विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं ३। इसप्रकार तीन भंग होते हैं। चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अपेक्षा सभी पुरुषवेदी नियमसे विभक्तिवाले हैं। अपगतवेदियोंमें कदाचित् सभी अपगतवेदी जीव चौबीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले और एक जीव विभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव

अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा।

§ १५८. कसायाणुवादेण कोधस्स पुरिसभंगो। णवरि, पुरिस० वेमणभंगो। एवं माणक०। णवरि कोध० वेमणभंगो। एवं मायक०। णवरि माण० वेमणभंगो। एवं लोभ०। णवरि माया० वेमणभंगो। एवं सामाइयच्छेदो०। अकसाय० अवगदवेद-भंगो। एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं। सुहुमसांपराय० एक्कारसक०-णवणोकसाय-मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं अट्ठभंगा। तं जहा, सिया अविहत्तिओ, सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिया, सिया विहत्तिया, सिया अविहत्तिओ च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिओ च विहत्तिया च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया चेदि। लोभसंजलण० सिया विहत्तिओ, सिया विहत्तिया।

अविभक्तिवाले और अनेक जीव विभक्तिवाले हैं ३। इसप्रकार तीन भंग होते हैं।

§ १५८. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी जीवोंके भंग पुरुषवेदी जीवोंके समान होते हैं। इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायीके पुरुषवेदकी अपेक्षा असत्य और उभय मनोयोगीके समान तीन भंग होते हैं। इसीप्रकार मानकषायी जीवोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मानकषायीके क्रोधकी अपेक्षा असत्य और उभय मनोयोगीके समान तीन भंग होते हैं। इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मायाकषायी जीवोंके मानकषायकी अपेक्षा असत्य और उभय मनोयोगीके समान तीन भंग होते हैं। इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीवोंके मायाकषायकी अपेक्षा असत्य और उभय मनोयोगीके समान तीन भंग होते हैं। इसीप्रकार सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके कथन करना चाहिये। अकषायिक जीवोंके अपगतवेदियोंके समान कथन करना चाहिये। तथा इसीप्रकार यथाख्यात संयत जीवोंके कहना चाहिये।

सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि ग्यारह कषाय, नौ नोकषाय, मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। वे इसप्रकार हैं–कदाचित् एक जीव अविभक्तिवाला है १। कदाचित् एक जीव विभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ३। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले हैं ४। कदाचित् एक जीव अविभक्तिवाला और एक जीव विभक्तिवाला है ५। कदाचित् एक जीव अविभक्तिवाला और अनेक जीव विभक्तिवाले हैं ६। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले और एक जीव विभक्तिवाला है ७। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले और अनेक जीव विभक्तिवाले हैं ८। लोभसंज्वलनकी अपेक्षा कदाचित् एक जीव विभक्तिवाला है और कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले हैं।

§ १५९. अभवसिद्धिय० सव्वपयडीओ णियमा अत्थि। खइयसम्माइट्ठीसु एक्कवीसपयडीणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि। वेदगसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्त-सम्मामि० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा। अणंताणु०चउक्कस्स विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि। सम्मत्त-बारसक०-णवणोकसाय० विहत्तिया णियमा अत्थि। उवसमसम्माइट्ठीसु अणंताणुबंधिचउक्कस्स विह० अविह० अट्ठ भंगा। सेसाणं पयडीणं सिया विहत्तिओ, सिया विहत्तिया। एवं सम्मामि०। सासणेसु सव्वपयडीणं सिया विहत्तिओ सिया विहत्तिया। अणाहारएसु ओघभंगो। णवरि, सम्मत्त-सम्मामि० विह० भयणिज्जा।

एवं णाणाजीवेहि भंग-विचओ समत्तो।

**विशेषार्थ**—सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें कदाचित् एक जीव क्षपक ही होता है। कदाचित् एक जीव उपशमक ही होता है। कदाचित् अनेक जीव क्षपक ही होते हैं। कदाचित् अनेक जीव उपशमक ही होते हैं। कदाचित् एक जीव क्षपक और एक जीव उपशमक होता है। कदाचित् एक जीव क्षपक और अनेक जीव उपशमक होते हैं। कदाचित् अनेक जीव क्षपक और एक जीव उपशमक होता है तथा कदाचित् अनेक जीव क्षपक और अनेक जीव उपशमक होते हैं। इसी अपेक्षासे ऊपर २३ प्रकृतियोंकी अपेक्षा आठ भंग कहे हैं। पर वहा दोनों श्रेणीवालोंके लोभसंज्वलनका सत्त्व ही पाया जाता है। अतः इसकी अपेक्षा उपर्युक्त दो ही भंग होते हैं।

§ १५९. अभव्योंके सभी प्रकृतियां नियमसे हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें कदाचित सभी जीव जीव मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ३। इसप्रकार तीन भंग होते हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। किन्तु सभी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाले हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीवोंकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा कदाचित् एक और कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले हैं। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कदाचित् एक जीव और कदाचित् अनेक जीव होते हैं। अनाहारक जीवोंमें ओघके समान समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव भजनीय हैं।

§ १६०. **भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण छब्वीसं पयडीणं विहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंता भागा। अविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। एवं सम्मत्त-सम्मामि० वत्तव्वं। णवरि, विवरीयं कायव्वं। एवं कायजोगि-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं।**

**विशेषार्थ**–अभव्यों और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें कदाचित् दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक एक भी जीव नहीं पाया जाता, और कदाचित् एक जीव तथा कदाचित् अनेक जीव पाये जाते हैं। इसी दृष्टिसे ऊपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंके तीन भग कहे हैं। उपशमसम्यक्त्व सान्तर मार्गणा है। इसमें कदाचित् एक जीव और कदाचित् अनेक जीव प्रथमोपशम या द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होते हैं। अतः इनके परस्पर संयोगसे आठ भंग हो जाते हैं। मिश्रगुणस्थान भी सान्तर मार्गणा है। इसमें अनन्तानुबन्धीकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले कदाचित् एक और अनेक जीव प्रवेश करते हैं। अतः यहां भी परस्परके संयोगसे आठ भंग हो जाते हैं। शेष कथन सुगम है।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ १६०. **भागाभागानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघनिर्देशकी** अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। अविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहां प्रमाणको बदल देना चाहिये। अर्थात् इन दोनों प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भाग हैं और अविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं। इसीप्रकार काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–क्षीणकषाय गुणस्थानवाले आदि जीव ही छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले हैं। शेष सब संसारी जीव छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले होते हैं जो अनन्त बहुभाग हैं। इसी विवक्षासे ऊपर छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंका भागाभाग कहा है। पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव थोड़े हैं क्योंकि जिन्होंने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है ऐसे जीवोंके ही इन दो प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है जिनका प्रमाण इनकी अविभक्तिवाले जीवोंसे स्वल्प है। अतः यहां अविभक्तिवालोंका प्रमाण अनन्तबहुभाग और विभक्तिवालोंका प्रमाण अनन्त एकभाग कहा है। ऊपर जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं वहां भी इसीप्रकार समझना।

**§ १६१. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० विहत्तिया सव्वेजीवा० केव० ? असंखेज्जा भागा। अविहत्ति० सव्वजीव० केव० भागो ? असंखेज्जदिभागो। सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० सव्वजीवा० केवडिओ भागो? असंखेज्जदिभागो। अविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखेज्जा भागा। सेसाणं पयडीणं णत्थि भागाभागो। एवं पढमाए पुढवीए। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचितिरि० पज्ज०-देवा-सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव महस्सारेत्ति-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-तेउ०-पम्म० वत्तव्वं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव वत्तव्वं। णवरि, मिच्छत्त-भागाभागो णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-भवण०-वाण०-जोदिसि०वत्तव्वं।**

**§ १६२. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०**

§ १६१. **आदेशकी** अपेक्षा **नरकगतिमें** नरकियोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकी जीव सब नरकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले नारकी जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले नारकी जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। उक्त सात प्रकृतियोंके सिवाय शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा नारकियोंमें भागाभाग नहीं है। इसीप्रकार पहली पृथिवी, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वहां मिथ्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—नरकमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव असंख्यात होते हुए भी बहुभाग हैं और इनकी अविभक्तिवाले जीव एक भाग हैं। पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले एक भाग और अविभक्तिवाले बहुभाग हैं। इसी बातको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त भागाभाग कहा है। तथा पहली पृथिवीसे लेकर पद्मलेश्यावाले जीवोंके इसीप्रकार भागाभाग संभव है। अतः इनके भागाभागको सामान्य नारकियोंके भागाभागके समान कहा। किन्तु दूसरी पृथिवीसे लेकर और जितनी मार्गणाएँ ऊपर गिनाई हैं उनमें मिथ्यात्वका अभाव नहीं होता। अतः इसके भागाभागको छोड़कर शेष कथन सामान्य नारकियोंके समान जाननेका निर्देश किया है।

§ १६२. **तिर्यंचगतिमें** तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-

**विह० अविह० ओघभंगो। सेसाणं णत्थि भागाभागो। एवमसंजद०-तिण्णिलेस्साणं वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णेरइयभंगो। सेसाणं णत्थि भागाभागो। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-चत्तारिकायबादर०सुहुम०-पज्जत्तापज्जत्त०-विहंग० वत्तव्वं।**

**§ १६३. मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोकसाय० विहत्तिया सव्वजीवा० केवडिओ भागो? असंखेज्जा भागा। अविहत्ति० सव्वजीवा० केव० भागो? असंखेज्जदिभागो। सम्मत्त-सम्मामि० विह० सव्वजी० केव०? असंखेज्जदिभागो। अविह० सव्वजी० केव०? असंखेज्जा भागा। एवं पंचिंदिय-पंचिंदि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-चक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क०-सण्णि त्ति**

नुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले तिर्यंचोंका भागाभाग ओघके समान है। तिर्यंचोंमें शेष इक्कीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसीप्रकार असंयत और कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग नारकियोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, पृथिवी कायिक आदि चार स्थावर काय तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक बादर और सूक्ष्मके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा विभंगज्ञानी जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–सामान्य तिर्यंचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः वहां मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघके समान भागाभाग बन जाता है। शेष इक्कीस प्रकृतियाँ इनके सर्वदा पाई जाती हैं। ऊपर जो असंयत आदि चार मार्गणाएँ गिनाई हैं वहा भी इसीप्रकार समझना। तथा पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त आदि जितनी मार्गणाएँ ऊपर बतलाई हैं उनमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं तथा इनका प्रमाण असंख्यात है अतः इनका भागाभाग सामान्य नारकियोंके समान कहा है।

§ १६३. **मनुष्यगतिमें** मनुष्योंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले मनुष्य सभी मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले मनुष्य सभी मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले मनुष्य सभी मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवे भागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले मनुष्य सभी मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता

वत्तव्वं। णवरि, आभिणि०-सुद०-ओहिणाणि-ओहिदंसणीसु सम्म०-सम्मामि० मिच्छ-त्तभंगो। सुक्कलेस्सि० दंसणतिय-अणंताणु० विह० संखेज्जा भागा। अवि० संखेज्ज-दिभागो। मणुसपज्ज०-मणुसिणीणमेवं चेव। णवरि संखेज्जं कायव्वं। एवं मणपज्जव०-संजद०-सामाइयच्छेदो० वत्तव्वं। णवरि, सामाइयच्छेदो० लोभ० भागाभागो णत्थि एगपदत्तादो। आणद-पाणद० जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणं-ताणु०चउक० विह० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। अविह० सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सेसाणं णत्थि भागाभागो। एवमाहार०-आहारमिस्स०-परिहार० वत्तव्वं।

§१६४. इंदियाणुवादेण एइंदिय० सम्मत्त-सम्मामि० ओघभंगो। सेसाणं णत्थि भागाभागो। एवं बादरसुहुम-एइंदिय०-पज्ज०अपज्ज०-वणप्फदि०-णिगोद०बादर-

है कि मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग मिथ्यात्वके समान है। तथा शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सभी शुक्ललेश्यावाले जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। और अविभक्तिवाले जीव सभी शुक्ललेश्यावाले जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें इसीप्रकार भागाभाग है। इतनी विशेषता है कि पूर्वमें जहां जहां असंख्यात कहा है वहां वहां यहां संख्यात कर लेना चाहिये। इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके लोभकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है क्योंकि वहां लोभ नियमसे है। आनत और प्राणत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक प्रत्येक स्थानमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्य-ग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव उक्त स्थानोंके सभी जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले जीव उक्त स्थानोंके सभी जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। यहां शेष प्रकृ-तियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसीप्रकार अहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये।

§१६४. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग ओघके समान है। यहां शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अप-र्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोदियाजीव, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वन-स्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,

**सुहुम०-पज्ज०अपज्ज०-मदि-सुद०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं ।**

**§ १६५. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे पंचिंदियभंगो। णवरि, चत्तारिसंजलण-अट्ठणोक० भागाभागो णत्थि। एवं णउंस० वत्तव्वं। णवरि इत्थिवे० अत्थि भागाभागो। सव्वत्थ अणंतभागालावो कायव्वो। पुरिसवेदे पंचिंदि०भंगो। णवरि, चत्तारिसंजलण-पुरिस० भागाभागो णत्थि। अवगदवेद० चउवीस० विह० सव्वजी० केव०? अणंतिमभागो। अविह० सव्वजी० केव०? अणंता भागा। एवमकसाय०-सम्मादिट्ठि-खइय० वत्तव्वं।**

**§ १६६. कसायाणुवादेण कोध० ओघभंगो। णवरि, चत्तारिसंजलण०भागाभागो**

बादर निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव, बादर निगोद पर्याप्त जीव, बादर निगोद अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीव, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–उपर्युक्त मार्गणावाले जीव अनन्त हैं और यहां सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंका सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं तथा शेषका सत्त्व ही है। अतः इन दो प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त मार्गणाओंमें भागाभाग ओघके समान कहा है।

§ १६५. **वेदमार्गणाके** अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान भागाभाग होता है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवोंके चार संज्वलन और आठ नोकषायकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता। इसीप्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंके स्त्रीवेदकी अपेक्षा भी भागाभाग होता है। परन्तु नपुंसकवेदी जीवोंके भागाभाग कहते समय सर्वत्र असंख्यातभागके स्थानमें अनन्तभाग कहना चाहिये। पुरुषवेदी जीवोंमें पंचेन्द्रियोंके समान भागाभाग होता है। इतनी विशेषता है कि इनके चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता। अपगतवेदी जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव समस्त अपगतवेदी जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले अपगतवेदी जीव समस्त अपगतवेदी जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। इसीप्रकार अकषायी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवालोंका प्रमाण असंख्यात है। इनके अतिरिक्त शेष सब मार्गणावालोंका प्रमाण अनन्त है। अतः जहां जितनी प्रकृतियोंका सत्त्व और असत्त्व पाया जाय उस क्रमको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त व्यवस्थानुसार इन मार्गणाओंमें भागाभाग जानना।

§ १६६. **कषायमार्गणाके** अनुवादसे क्रोधकषायी जीवोंके भागाभाग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायी जीवोंके चार संज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता।

**णत्थि। एवं माण०, णवरि तिण्णिसंजलण० भागाभागो णत्थि। एवं माय०, णवरि दोण्हं संजलण० भागाभागो णत्थि। एवं लोभ०, णवरि लोभ० भागाभागो णत्थि। सुहुमसांपराय० तेवीसपयडि० विह० सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। अविह० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। लोभसंजलण०भागाभागो णत्थि०। जहाक्खाद० चउवीस० विह० केव० ? संखेज्जदिभागो। अविह० सव्वजी० केव ? संखेज्जा भागा। संजदासंजद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विह० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। अविह० केव० ? असंखे०भागो। सेसाणं णत्थि भागाभागो।**

इसीप्रकार मानकषायी जीवोंके भागाभाग होता है। इतनी विशेषता है कि इनके मान आदि तीन संज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता। इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंके भागाभाग होता है। इतनी विशेषता है कि इनके माया और लोभ संज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता। इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंके भागाभाग होता है। इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता।

**विशेषार्थ**–क्रोधादि प्रत्येक कषायवाले जीव अनन्त हैं अतः इनका भागाभाग ओघके समान बन जाता है। शेष विशेषता ऊपर बतलाई ही है।

सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंमें तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्व सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अविभक्तिवाले समस्त सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके लोभसंज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। यथाख्यात संयत जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव समस्त यथाख्यात संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले जीव समस्त यथाख्यात संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। संयतासंयत जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सब संयतासंयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ; असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले जीव सब संयतासंयतोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। संयतासंयत जीवोंमें शेष प्रकृतियोकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है।

**विशेषार्थ**–सूक्ष्मसांपरायिक और यथाख्यातसंयत जीवोंमें उपशमश्रेणीवालोंसे क्षपकश्रेणीवाले संख्यातगुणे होते हैं, अतः इनका भागाभाग उक्त रूपसे कहा है। यद्यपि संयतासंयतोंका प्रमाण असंख्यात है तो भी उनमें मिथ्यात्व आदिकी सत्तासे रहित जीव अल्प हैं। अतः यहां भी इनकी अविभक्तिवालोंसे इनकी विभक्तिवाले असंख्यात बहुभाग कहे हैं। यहां शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता।

§ १६७. अभव्वसिद्धि० छव्वीसंपयडि० भागाभागो णत्थि। वेदगसम्माइ० मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विह० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। अविह० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सेसाणं णत्थि भागाभागो। उवसम० अणंताणु०चउक्क० विह० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। अविह० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदिभागो। सेसाणं णत्थि भागाभागो। एवं सम्मामि० वत्तव्वं। सासण० अट्ठावीसपयडीणं णत्थि भागाभागो।

एवं भागाभागो समत्तो।

§ १६८. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण छव्वीसंपय० विह० अविह० केत्तिया ? अणंता। सम्मत्त०-सम्मामि० विह० केत्ति० ?

§ १६७. अभव्य जीवोंके छब्बीस प्रकृतियोंका ही सत्त्व है इसलिये भागाभाग नहीं है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग-प्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति-वाले जीव सब उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्र-माण हैं। तथा अविभक्तिवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सब उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये। सब सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी ही सत्ता है इसलिये भागाभाग नहीं है।

**विशेषार्थ**–अभव्योंमें सभीके छब्बीस प्रकृतियां ही पाई जाती हैं, अतः वहां भागा-भाग नहीं है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्क, मिथ्यात्व और सम्यग्मि-थ्यात्वका सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृ-ष्टियोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं, अतः इनके इनकी अपेक्षा भागाभाग कहा है। सब सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सभी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है, अतः भागाभाग नहीं होता।

इसप्रकार भागाभाग अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ १६८. **परिमाणानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। **उनमेंसे ओघकी** अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति वाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ? सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

असंखेज्जा । अविहत्तिया अणंता । एवमणाहारएसु वत्तव्वं ।

§१६६. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विह० अविह० केत्तिया ? असंखेज्जा । बारसक०-णवणोक० विह० केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवा सोहम्मीसाण जाव अवराइद०-वेउव्विय०-तेउ०-पम्म० वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि मिच्छत्तस्स अविह० णत्थि । एवं पंचिंदि०तिरि०जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिय० वत्तव्वं ।

§ १७०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० विह० केत्ति० ? अणंता । अविह०केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत्त-सम्मामि० विह० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

असंख्यात हैं । अविभक्ति वाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—ओघसे छब्बीस प्रकृतिवाले जीव अनन्त हैं, क्योंकि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंको छोड़कर शेष सभी संसारी जीवोंके छब्बीस प्रकृतियां पाई जाती हैं । तथा अविभक्तिवाले भी अनन्त हैं, क्योंकि इनमें सिद्धोंका भी ग्रहण हो जाता है । पर सम्य-क्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिवाले जीव असंख्यात ही होते हैं, क्योंकि इन दो प्रकृ-तियोंके कालमें संचित हुए जीवोंका प्रमाण असंख्यातसे अधिक नहीं होता । शेष सभी जीव इन दो प्रकृतियोंसे रहित हैं अतः उनका प्रमाण अनन्त बन जाता है । छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवालोंमें अनाहारकोंकी मुख्यता है । अतः अनाहारकोंका कथन ओघके समान करनेका निर्देश किया है ।

§१६६. **आदेशकी** अपेक्षा **नरकगतिमें** नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्य-मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म ऐशान स्वर्गसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, पीतलेश्यावाले और पद्म-लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि द्वितीयादि पृथिवीवाले नारकी जीव मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नहीं है । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

§ १७०. **तिर्यंचगतिमें** तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले

अविह० केत्ति० ? अणंता । बारसक०-णवणोकसाय० विह० केत्ति० ? अणंता । एवमसंजद-तिण्णिलेस्सएत्ति वत्तव्वं । णवरि, किण्ह-णीलले० मिच्छत्त० अविह० के० ? संखेज्जा । पंचिं०तिरि०अपज्ज० सम्मत्त-सम्मामि० विह० अविह० केत्ति० ? असंखेज्जा । मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० विह० असंखेज्जा । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज० -चत्तारिकाय-बादरसुहुम०-तेसिंपज्ज० -अपज्ज०-बादर-वणप्फदि० पत्तेयसरीर०-बादरणिगोदपदिट्टिद०-तेसिंपज्ज०-अपज्ज०-तसअपज्ज०-विहंग० वत्तव्वं ।

§१७१.मणुसगईए मणुस्सेसु छब्बीसंपयडीणं विह० केत्ति० ? असंखेज्जा । अविह० केत्ति० ? असंखेज्जा (संखेज्जा) । सम्मत्त-सम्मामि० विह० अविह० केत्ति० ? असंखेज्जा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अट्ठावीस० विह० अविह० केत्तिया ? संखेज्जा । एवं मणपज्जव०-संजद०-सामाइय-छेदो० वत्तव्वं । णवरि सामाइयछेदो० लोह० अविह० णत्थि । सव्वट्ठ० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विह० अविह० केत्ति० ? संखेज्जा । बारसक०-णवणोकसाय० विह० केत्ति० ? असंखेज्जा (संखेज्जा) । एवमा-

तिर्यंच जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार असंयत और कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कृष्णलेश्यावाले और नील-लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय तथा इन चारोंके बादर और सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त,बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर,बादर निगोद प्रतिष्ठित तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रसलब्ध्यपर्याप्त और विभंगज्ञानी जीवोंके कहना चाहिये ।

§१७१.मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले मनुष्य कितने हैं ? असंख्यात हैं । अविभक्तिवाले कितने हैं ? संख्यात हैं । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मि-थ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें लोभकी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं । सर्वार्थसिद्धिमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्य-ग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

हार०-आहारमिस्स०-परिहार० वत्तव्वं ।

§१७२. इंदियाणुवादेण एइंदियबादरसुहुम-तेसिंपज्ज०-अपज्ज० छव्वीसपयडि० विहत्तिया केत्तिया ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० ओघभंगो । एवं वणप्फदि-णिगोद०-तेसिं-बादर-सुहुम-तेसिं-पज्ज०-अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाणि-मिच्छादि०-असण्णि त्ति वत्तव्वं । पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० विह० अविह० णारयभंगो, बारसक०-णवणोकसाय० मणुसभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-चक्खु०-ओहिदंस०-सुक०-सण्णि त्ति।

§१७३. कायजोगीसु मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० विह० के० ? अणंता । अविह० केत्तिया ? असंखेज्जा । सम्मत्त-सम्मामि० विह० अविह० ओघभंगो । बारसक०-णवणोकसाय० विह० केत्ति० ? अणंता । अविह० संखेज्जा । एवमोरालिय०-अचक्खु० भवसिद्धि०-आहारए त्ति वत्तव्वं । ओरालियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक-

संख्यात हैं । तथा बारहकषाय और नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

§१७२. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा परिमाण ओघके समान है । इसीप्रकार वनस्पतिकायिक और निगोदिया जीव तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण नारकियोंके समान है । तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण सामान्य मनुष्योंके समान है । इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

§१७३. काययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाले काययोगी जीवोंका परिमाण ओघके समान है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले काययोगी जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । तथा अविभक्तिवाले काययोगी जीव संख्यात हैं । इसीप्रकार औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगी

साय० विह० केत्ति० ? अणंता। अविह० केत्ति० ? संखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि० विह० अविह० ओघभंगो। एवं कम्मइय०। णवरि, अणंताणुबंधिचउक्क० अविह० केत्ति० असंखेज्जा। वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त० विह० केत्ति० असंखेज्जा। अविह० के० ? संखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विह० अविह० केत्ति० ? असंखेज्जा। बारसक०-णवणोकसाय० विह० केत्ति० ? असंखेज्जा।

§१७४. वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छत्त-अट्ठक०-णवुंस० विह० के० ? असंखेज्जा। अविह० संखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विह० अविह० के० ? असंखेज्जा। चत्तारिसंजलण-अट्ठणोक० विह० के० ? असंखेज्जा। पुरिसवेद० पंचिंदियभंगो। णवरि, चत्तारिसंज०-पुरिस० विह० के० ? असंखेज्जा। णवुंसयवेदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० तिरिक्खोघभंगो। अट्ठक०-इत्थिवेद० विह० के० ? अणंता। अविह० के० ? संखेज्जा। चत्तारिसंजलण-अट्ठणोकसाय०

जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण ओघके समान है।

इसी प्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाले कार्मणकाययोगी जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

§१७४. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व, आठ कषाय और नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा अविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। चार संज्वलन और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। पुरुषवेदी जीवोंका परिमाण पंचेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदी जीवोंमें चार संज्वलन और पुरुषवेदकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं। नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिकी अपेक्षा परिमाण तिर्यंच ओघके समान है। आठ कषाय और स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं। तथा अविभक्तिवाले कितने जीव हैं। संख्यात हैं। चार संज्वलन और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं। अपगतवेदी जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ?

**विह० अणंता । अवगदवेद० चउवीसंपयडीणं विह० के० ? संखेज्जा । अविह० के० ? अणंता । एवमकसाय० वत्तव्वं । कोधकसाय० कायजोगिभंगो । णवरि, चत्तारि-संजलण० विह० के० ? अणंता । एवं माण० । णवरि तिण्णिसंजलण० विह० अणंता । एवं माय०, णवरि दोण्हं संजलणाणं विह० अणंता । एवं लोभ०, णवरि लोभविह० के० ? अणंता । सुहुमसांपराय० दंसणतिय-एक्कारसक०-णवणोकसाय० विह० अविह० केत्ति० ? संखेज्जा । लोभसंजलण० विह० के० ? संखेज्जा । जहाक्खाद० चउवीसंपयडीणं विह० अविह० संखेज्जा । संजदासंजदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विह० के० ? असंखेज्जा । अविह० के० ? संखेज्जा । अणंताणु०चउक्क० विह० अवि० के० ? असंखेज्जा । बारसक०-णवणोक० विह० के० ? असंखेज्जा । अभव्व० छव्वीसंपय० विह० के० ? अणंता । सम्मादिट्ठि०-खइय० सव्वपय० विह० के० ? असंखेज्जा । अविह० के० ? अणंता । वेदयसम्मत्त० मिच्छत्त-सम्मामि० विह०**

संख्यात हैं । तथा अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । अपगतवेदी जीवोंके समान अकषायी जीवोंका परिमाण कहना चाहिये ।

**क्रोध कषायी** जीवोंका परिमाण काययोगी जीवोके समान है । इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायी जीवोंमें चार संज्वलनकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । इसी-प्रकार मानकषायी जीवोंका परिमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानादि तीन संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं । इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंका परिमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मायाकषायी जीवोंमें मायादि दो संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं । इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंमें परिमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीवोंमें लोभसंज्वलनवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।

**सूक्ष्मसांपरायिक** संयत जीवोंमें तीन दर्शनमोहनीय, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले तथा अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? संख्यात हैं । लोभ संज्वलनकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? संख्यात हैं । यथाख्यातसंयत जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । संयतासंयत जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । अवि-भक्तिवाले कितने जीव हैं ? संख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अवि-भक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्ति-वाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं ।

**अभव्योंमें** छब्बीस प्रकृतियोकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें उनके संभव सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । वेदकसम्यग्दृष्टि

के० ? असंखेज्जा । अवि० के० ? संखेज्जा । अणंताणु०चउक० विह० अविह० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त-बारसक०-णवणोकसाय० विह० के० ? असंखेज्जा । उवसमसम्माइ० अणंताणु०चउक० विह० के० ? असंखेज्जा । अविह० के० ? असंखेज्जा । सेसपय० विह० असंखेज्जा । एवं सम्मामि० । सासण० अट्ठावीसंपयडीणं विह० के० ? असंखेज्जा ।

एवं परिमाणं समत्तं ।

§१७५. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छब्बीसंपयडीणं विह० केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । अविह० केव० खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं विह० के० खेत्ते ? लोगस्स असंखे०भागे । अविह० सव्वलोगे । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइंदिय०-

जीवोंमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं ।

**विशेषार्थ**–आदेशकी अपेक्षा जो सब मार्गणाओंमें परिमाण कहा है सो किस मार्गणावाले जीवोंका कितना प्रमाण है, किस मार्गणामें किन कारणोंसे कितनी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव होते हैं, इन सब बातोंका विचार करके विवक्षित मार्गणामें विभक्तिवाले तथा विभक्ति और अविभक्तिवाले जीवोंका प्रमाण निकाल लेना चाहिये । विशेष वक्तव्य न होने से अलग अलग विशेषार्थ नहीं लिखा ।

इसप्रकार परिमाणानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§१७५. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग या लोकके असंख्यात बहुभाग या सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ? अविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रमें

**चत्तारिकाय०-बादर-तेसिमपज्ज०-सुहुम०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-तेसिमपज्ज०बादरणिगोदपदिट्ठिद०-तेसिमपज्ज०-वणप्फदि०-बादर-सुहुम०-तेसिं पज्ज० अपज्ज०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि सुदअण्णाणि-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि० असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। णवरि, कायजोगि-कम्मइय०-भवसिद्धिय-अणाहारिमग्गणाओ मोत्तूण अण्णत्थ केवलिपदं णत्थि। सेसाणं मग्गणाणं अट्ठावीस-पयडीणं विहत्तिया के० खेत्ते ? लोगस्स असंखे०भागे। णवरि, बादरवाउपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे। सव्वत्थ समुक्कित्तणावसेण सव्वपयडीणं विहत्तियाविहत्तिय-पदविसेसो च जाणिय वत्तव्वो।**

**एवं खेत्तं समत्तं।**

रहते हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवी कायिक आदि चार स्थावरकाय, तथा ये चारों बादर और इनके अपर्याप्त, पृथिवी कायिक आदि चार सूक्ष्म और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके अपर्याप्त, बादर निगोद-प्रतिष्ठित तथा इनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारी और अनाहारी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन उपर्युक्त मार्गणास्थानों-मेंसे काययोगी, कार्मणकाययोगी, भव्य और अनाहारक मार्गणाओंको छोड़कर अन्य मार्ग-णाओंमें केवलिसमुद्धातपद सम्बन्धी विशेषता नहीं है। शेष मार्गणाओंमें अट्ठाईस प्रकृति-योंकी विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। सर्वत्र समुत्कीर्तनाके अनुसार सर्व प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति पदोंमें जहां जो विशेषता हो उसको जानकर कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**—छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है यह तो स्पष्ट है, क्योंकि कुछ गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंको छोड़कर शेष सबके छब्बीस प्रकृतियां पाई जाती हैं। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात होते हुए भी स्वल्प हैं अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा अधिक नहीं। तथा छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंमें सयोगी और सिद्ध जीव मुख्य हैं, अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग, लोकके असंख्यात बहुभाग और सब लोक प्रमाण बन जाता है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवालोंमें

§ १७६. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघे० छव्वीसं पय० विह० केवडियं खेत्तं फोसिदं ?, सव्वलोगो। अविहत्तिएहि केवडि० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा। सम्मत्त०-सम्मामि० विह० केव० ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। अविहत्ति० केव० ? सव्वलोगो। एवं तिरिक्खोघं सव्वएइंदिय-चत्तारिकाय-बादर-तेसिमपज्ज-सुहुम०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-तेसिमपज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिद०-तेसिमपज्ज०-वणप्फदि०-बादर-सुहुम-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि-ओरालिय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदि-सुद-अण्णाणि-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादिट्ठि०-

एकेन्द्रिय मुख्य हैं और उनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है अतः उक्त दो प्रकृतियोंकी अविभक्तिवालोंका वर्तमान क्षेत्र भी सब लोक बन जाता है। यह सामान्य कथन हुआ। इसी प्रकार मार्गणाओंकी अपेक्षा कथन करते समय उक्त सभी प्रकृतियोंके सत्त्व और असत्त्वका विचार करते हुए जहां जो विशेषता संभव हो उसके अनुसार कथन करना चाहिये। जिसका संक्षेपमें ऊपर निर्देश किया ही है।

इसप्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ १७६. **स्पर्शानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघनिर्देशकी** अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोकका स्पर्श किया है। अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, लोकके असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकाय आदि चार स्थावर काय, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और इन चार बादरोंके अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर काय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके अपर्याप्त, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर तथा इनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य,

**असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। णवरि, अभवसिद्धि० सम्मत्त-सम्मामि० (वज्जाणं) अविह० णत्थि। कायजोगि०-कम्मइय०-भवसिद्धिय-अणाहारिमग्गणाओ मोत्तूण अण्णत्थ केवलिपदं णत्थि। तिरिक्खोघम्मि अणंताणुबंधिचउक्कअविहत्तियाणं छ चोद्दसभागा। एवमोरालिय०-णवुंसयवेदाणं वत्तव्वं। एदेसु मिच्छ० अविह० लोगस्स असंखे० भागो। सम्मत्त-सम्मामि० विह० अट्ठ चोद्दसभागा णत्थि। चत्तारि कसाय-असंजद-अचक्खु० मिच्छ०-अणंताणु० अविह० अट्ठ चोद्दसभागा। तिण्णि-लेस्सा० लोगस्स असंखे० भागा। वुत्तसेसमग्गणासु सम्मत्त-सम्मामि० वज्जाणमविहत्तिया णत्थि, अण्णत्थ वि विसेसो अत्थि सो जाणिय वत्तव्वो।**

**§१७७. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु अट्ठावीसपयडीणं विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखज्जदिभागो, छ चोद्दसभागा वा देसूणा।**

मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्ति नहीं है। तथा काययोगी, कार्मणकाययोगी, भव्य और अनाहारक मार्गणाओंको छोड़कर उपर्युक्त शेष मार्गणाओंमें केवलिसमुद्घात पद नहीं है। सामान्य तिर्यंचोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये। इन उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण नहीं है। क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। ऊपर जिन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अभावकी अपेक्षा स्पर्श कहा है उन मार्गणाओंको छोड़कर ऊपर कही गई शेष मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व को छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं। इनके अतिरिक्त औदारिकमिश्रकाययोगी आदि मार्गणाओंमें भी विशेषता है सो जान कर उसका कथन करना चाहिये।

§१७७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ

मिच्छा० अणंताणु० ४ अविह० केव० ? लोगस्स असंखे० भागो। पढमपुढवीए खेत्तभंगो। एवं णवगेवज्ज० जाव सव्वट्ठ०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगदवेद-अकसाय-मणपज्जव०-संजद-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादेत्ति वत्तव्वं। णवरि, अवगदवेद-अकसाय-संजद-जहाक्खादेसु अविहत्तियाणं केवलिभंगो कायव्वो। अण्णत्थ वि पदविसेसो जाणियव्वो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वपयडीणं विहत्तिएहि सम्मत्त-सम्मामि० अविहत्तिएहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो एक्क बे तिण्णि चत्तारि पंच छ चोद्दसभागा वा देसूणा। अणंताणु० अविह० लोग० असंखे० भागो।

§१७८. पंचिंदियतिरिक्खतिएसु सव्वपयडीणं विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो सव्वलोगो वा। अणंताणु० ४ अविह० केव० ? लोग० असंखे० भागो छ चोद्दसभागा। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०

कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले सामान्य नारकियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान होता है। इसी प्रकार नौ ग्रैवेयकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायिक, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी, अकषायी, संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंमें उक्त सात प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श केवलिसमुद्घातपदके समान कहना चाहिये। तथा ऊपर कहे गये मार्गणास्थानोंमेंसे मनःपर्ययज्ञानी आदि अन्य मार्गणास्थानोंमें भी पदविशेष जान लेना चाहिये।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक भाग, दो भाग, तीन भाग, चार भाग, पांच भाग, तथा छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनन्तानुबन्धीकी अविभक्तिवाले उक्त द्वितीयादि पृथिवीके नारकियोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ १७८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमें सर्व प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले उक्त जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया

पज्ज० मिच्छ० अविह० केव० ? लोग० असंखे० भागो। एवं पंचि०तिरि०अपज्ज०-सव्वमणुस्स-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज० बादरपुढवि०-बादरआउ०-बादरतेउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं वत्तव्वं। णवरि, मणुस्सतिए अविहत्तियाणं केवलिभंगो कायव्वो। अण्णत्थ सम्म०-सम्मामि० वज्जाणमविह० णत्थि। बादरवाउपज्जत्त० सव्वपयडि० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। णवरि, सम्म०-सम्मामि० विह० वट्टमाणेण लोग० असंखे० भागो।

§१७६. देवेसु सव्वपय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा। मिच्छत्त-अणंताणु० अविह० लोगस्स असंखे० भागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। एवं सोहम्मीसाणेसु। भवण०-वाण०-जो

---

है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक, सब प्रकारके मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बारद जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंमें उक्त सात प्रकृतियों की अविभक्तिवाले मनुष्योंका स्पर्श केवलिसमुद्घात पदके समान कहना चाहिये। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक आदि मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं। बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§१७६. देवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ तथा नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले देवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें देवोंके स्पर्शका कथन करना

दिसि०सव्व-पय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखेज्जदिभागो, अद्धुट्ठ अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा । अणंताणु०चउक्क० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे०भागो, अद्धुट्ठ अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारेत्ति सव्वपय० विह० दंसणतिय-अणंताणु० ४ अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे०भागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा । आणद-पाणद-आरणच्चुद० सव्वपयडि० विह० सत्तपयडि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, छ चोद्दसभागा वा देसूणा ।

§ १८०. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० सव्वपय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा । सेस० अविह० केवलिभंगो,णवरि अणंताणुबंधि० अविह० अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि-पुरिसवेदेसु वत्तव्वं । णवरि,

चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले भवनवासी आदि देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग और आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सनत्कुमार स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और दर्शनमोहनीयकी तीन तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्गमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और सात प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§१८०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले उक्त चार प्रकारके जीवोंका स्पर्श केवलिसमुद्घातपदके समान है । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले उक्त चार प्रकारके जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पांचों

केवलिभंगो णत्थि । चक्खुदंसणी-सण्णीणमेवं चेव वत्तव्वं । वेउव्वियकायजोगि० सव्वपय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा । मिच्छत्त-अणंताणु०४ अविह० लोगस्स असंखे०भागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ।

§ १८१. अभिणि०-सुद०-ओहि० सत्तपय० विह० मत्तपय० अविह० केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे०भागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा । सेस० अविह० खेत्तभंगो । एवमोहिदंमण०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सम्मामिच्छाइट्ठीणं वत्तव्वं । णवरि, अविहत्तिय० गदि-[पद] विसेसो जाणिय वत्तव्वो । विहंग० सव्व-पय० विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग०असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा ।

§ १८२. संजदासंजद० सव्वपय० विह० अणंताणु० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ?

मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें केवलिसमुद्घातपदके समान स्पर्श नहीं है । चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले वैक्रियिककाययोगी जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§१८१. मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले उक्त मतिज्ञानी आदि जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओं-में अविभक्तिवाले जीवोंके पदविशेष जानकर कहना चाहिये । विभंगज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§१८२. संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अनन्तानुबन्धी

**लोग० असंखे०भागो, छ चोद्दसभागा वा देसूणा । दंसणतिय० अविह० खेत्तभंगो। एवं सुक्कलेस्सि० । णवरि अविह० केवलिपदमत्थि । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमारभंगो । सासण० सव्वपय० विह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ।**

**एवं फोसणं समत्तं ।**

**§१८३. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठावीसं-पयडीणं विहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । एवं जाव अणाहारएत्ति वत्तव्वं । णवरि, मणुसअपज्ज० छव्वीसं पय० सम्मत्त-सम्मामि० विह० केवचिरं कालादो होंति ? जह० खुद्दाभवग्गहणं एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। वेउव्वियमिस्स० छव्वीसं पय० सम्मत्त-सम्मामि० विह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं**

चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तीन दर्शनमोहनीयकी अविभक्तिवाले संयतासयत जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सब प्रकृति-योंकी अविभक्तिवाले शुक्लेश्यावाले जीवोंके केवलिसमुद्घातपद है । पीत लेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सौधर्म स्वर्गके समान है । पद्मलेश्यावाले जीवोका स्पर्श सानत्कुमार स्वर्गके समान है । सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवे भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

इसप्रकार स्पर्शनानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§१८३. **कालानुगमकी** अपेक्षासे निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघकी अपेक्षा** अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । अर्थात् जिनके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसे जीव सर्वदा पाये जाते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है। तथा दोनोंका

एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । आहार० अट्ठावीसं पय० विह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसाय-सुहुमसांपराय-जहाक्खादाणं, णवरि चउवीसपय० वत्तव्वं । आहारमिस्स० अट्ठावीसपय० विहत्ति० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अंतोमुहुत्तं । उवसमसम्मा० अट्ठावीसपय० विह० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं । उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। एवं सम्मामि० । सासण० अट्ठावीसपय० विह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । कम्मइय०-अणाहार० सम्मत्त-सम्मामि० विह० जह० एगसमओ, उक्क० आवलियाए असंखेज्जदि-भागो ।

एवं णाणाजीवेहि कालो समत्तो ।

उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । आहारककाययोगी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका काल जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्थानमें चौबीस प्रकृतियां कहना चाहिये । आहारकमिश्र काययोगी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त है । उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है । जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवे भागप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**–ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं यह तो स्पष्ट है । इसके अतिरिक्त सान्तर मार्गणाओंको छोड़कर तथा अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंको छोड़कर शेष सब मार्गणाओंमें भी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्वदा हैं यह भी स्पष्ट है । पर सान्तर मार्गणाओं और उक्त स्थानोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका सर्वदा पाया जाना संभव नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्व आदि आठ मार्गणाएं स्वयं सान्तर हैं, इन मार्गणाओंवाले जीव सर्वदा नहीं होते, तथा अपगतवेदी, अकपायी और यथाख्यातसंयत जीव यद्यपि पाये तो सर्वदा जाते हैं पर इनका सर्वदा पाया जाना सयोगियों की अपेक्षासे जानना चाहिये और सयोगी

§१८४. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणं विहत्तियाणमंतरं केव० ? णत्थि अंतरं। एवं जाव अणाहारए त्ति वत्तव्वं। णवरि मणुस-अपज्ज० अट्ठावीसंपयडीणमंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। एवं सासण०-सम्मामि० वत्तव्वं। वेउव्वियमिस्स० छव्वीसंपय० विहत्ति० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बारस मुहुत्ता। सम्मत्त-सम्मामि० विह० अंतरं केव०। जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस मुहुत्ता। आहार०-आहारमिस्स० अट्ठावीसंपय० विहत्ति० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवम-

अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिसे रहित होते हैं। इसलिये यहां ऐसे अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसंयत जीव विवक्षित हैं जो चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हों। ग्यारहवें गुण स्थान तकके ही जीव ऐसे हो सकते हैं। पर उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणीपर जीव सर्वदा नहीं चढ़ते। अतः इस विवक्षासे ये तीन स्थान भी सान्तर हैं। इस प्रकार इन सान्तर मार्गणाओंमें और अपगतवेदी आदि स्थानोंमें सम्भव सब प्रकृतियोंका यथासम्भव काल जानना चाहिये जो ऊपर कहा ही है। इन मार्गणाओंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा जो जघन्य और उत्कृष्ट काल खुद्दाबन्धमें बतलाया है वही यहां पर लिया गया है। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिये यहां उसका खुलासा नहीं किया है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा काल समाप्त हुआ।

§१८४. अन्तरानुयोगद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना अन्तरकाल है ? अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि २८ प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य कथन करना चाहिये। इतनी विशेपता है कि लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें अट्ठाईस प्रकृतियों की विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपम-के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौवीस मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके

कसाय०-जहाक्खाद० वत्तव्वं । णवरि चउवीमपयडिआलावो कायव्वो । अवगदवेद० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अट्ठकसाय-दोवेद० विह० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । सेसपय० विह० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा।

§ १८५. सुहुमसांपराइय० दंसणतिय-एक्कारसक०-णवणोकसाय० विह० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । लोभसंजलण० विहत्ति० अंतरं जह० एगसमओ उक्क० छम्मासा । उवसमसम्माइट्ठी० अट्ठावीसपय० विह० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० चउवीसमहोरत्ताणि । सत्तरादिंदियाणि त्ति किण्ण परूविज्जदे ? ण, पाहुडगंथाभिप्पाएण उवसमसम्माइट्ठीणं सत्तरादिंदियंतरणियमाभावादो । कम्मइय०-अणाहार० सम्मत्त-सम्मामि० विह० अंतरं जह० एगसमओ, उक्क० अंतो-मुहुत्तं । सव्वत्थ अविहत्तियाणं कालंतरपरूवणा जाणिय कायव्वा, सुगमत्तादो ।

एवमंतरं समत्तं

कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्थानमें चौवीस प्रकृतियोंका कथन करना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय और दो वेदकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एकसमय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले अपगतवेदी जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है ।

§१८५. सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंमें तीन दर्शनमोहनीय, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौवीस दिन रात है ।

**शंका**—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले उपशमसम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल सात दिन रात क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि कसायपाहुड ग्रन्थके अभिप्रायानुसार उपशमसम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल सात दिन रात होनेका नियम नहीं है ।

कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । सभी मार्गणाओंमें अविभक्तिवाले जीवोंके काल और अन्तरका कथन जानकर करना चाहिये, क्योंकि इसका कथन सुगम है ।

**१८६. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्व-**

**विशेषार्थ**—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये ओघकी अपेक्षा इनका अन्तर नहीं है। गतिमार्गणा से लेकर अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार जानना। पर जो आठ सान्तर मार्गणाएं और अकषायी, यथाख्यातसंयत, अवगतवेदी, कार्मणकाययोगी तथा अनाहारक जीव हैं इनमें अन्तरकाल पाया जाता है। सान्तर मार्गणाओंमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सासादन, मिश्र, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी और उपशमसम्यग्दृष्टियोंका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल है वही यहाँ अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना। वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें छब्बीस प्रकृतियोकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल वही है जो वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल है। केवल सम्यक्प्रकृति और सम्यमिथ्यात्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस मुहूर्त है, इतनी विशेषता है। उपशमश्रेणीकी अपेक्षा उपशान्तमोह और यथाख्यातसंयतोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व होता है इसी अपेक्षासे अकषायी और यथाख्यातसँयतोमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तर आहारककाय योगियोंके समान कहा है। तथा अपगतवेदियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, आठ कषाय और दो वेदकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल उपशमश्रेणीकी अपेक्षा जानना। उपशमश्रेणीका अन्तर ऊपर बतलाया ही है। तथा शेप प्रकृतियोंका अन्तर क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे जानना। क्षपकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होता है। इसीप्रकार सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंके कथन करना। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसंपरायमें क्षपकश्रेणीवालोंके एक सूक्ष्म लोभ रहता है अतः इसका अन्तर क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे और शेष प्रकृतियोंका अन्तर उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे कहना। कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका मतलब यह है कि उक्त दो प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक मरकर विग्रहगतिसे नहीं जाते हैं। यहां प्राभृत ग्रन्थके अभिप्रायानुसार उपशमसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन रात न बतलाकर साधिक चौबीस दिन रात बतलाया है सो प्रकृतमें प्राभृत ग्रन्थसे मूल कसायपाहुड, उसकी चूर्णि और उच्चारणावृत्ति इन सबका ग्रहण होता है। क्योंकि इसका अधिकतर खुलासा उच्चारणावृत्तिमें ही मिलता है।

इसप्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§१८६. **भावानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका **है—**ओघ निर्देश और आदेश निर्देश

**पयडीणं जे विहत्तिया तेसिं को भावो ? ओदइओ भावो । कुदो ? संतेसु वि अवसेसभावेसु तेसु विवक्खाभावादो ।**

**एवं भावो समत्तो**

**१८७६ अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्थाणप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा, सव्वत्थोवा छव्वीसंपयडीणं अविहत्तिया, विहत्तिया अणंतगुणा । के ते ? उवसंतकसायप्पहुडि जाव मिच्छादिट्ठि त्ति । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वथोवा विहत्तिया । के ते ? अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीससंतकम्मिया तेवीस-बावीससंतकम्मिया च । अविहत्तिया अणंतगुणा । के ते ? छव्वीस-एक्कवीस संतकम्मियप्पहुडि जाव सिद्धा त्ति । एवं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालिमिस्स०-**

उनमें से **ओघकी** अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है, यद्यपि उनके अन्य भाव भी रहते हैं किन्तु यहां उनकी विवक्षा नहीं है ।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§१८७. **अल्पबहुत्वानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघनिर्देशकी** अपेक्षा स्वस्थान अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । वह इसप्रकार है–छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं ।

**शंका**–छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ?

**समाधान**–उपशान्तकषायसे लेकर मिथ्यादृष्टि तकके जीव छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले होते हैं ।

सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ।

**शंका**–सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ?

**समाधान**–जिनके अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है वे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव हैं ।

सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंसे इन दो प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं ?

**शंका**–जिनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति नहीं पाई जाती है वे जीव कौनसे हैं ?

**समाधान**–छब्बीस प्रकृतिवाले जीव और इक्कीस प्रकृतिवाले जीवोंसे लेकर सिद्ध जीवों तकके सब जीव उक्त दो प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले हैं ।

इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदमें आठ

कम्मइय०-णवुंस । णवरि णवुंसयवेदे अट्ठणोकसाय-चदुसंजलणाणं अविहत्तिया णत्थि । आहारि-अणाहारीणं भवसिद्धियाणं च ओघभंगो ।

§१८८. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं विहत्तिया अविहत्तिया असंखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्काणं सव्वत्थोवा अविहत्तिया, विहत्तिया असंखेज्जगुणा । एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-देव-सोहम्मादि जाव सहस्सारेत्ति वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वत्थोवा अणंताणुबंधिचउक्क० अविहत्तिया, विहत्तिया-[ अ ] संखेज्जगुणा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं

नोकषाय और चार संज्वलनोंकी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं । आहारक, अनाहारक और भव्य जीवोंके अल्पबहुत्वका भंग ओघके समान है ।

**विशेषार्थ**—बारहवे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तकके जीव तथा सिद्ध जीव ऐसे हैं जिनके मोहनीय कर्मकी सत्ता नहीं पाई जाती । किन्तु शेष ग्यारहवें गुणस्थान तकके जीवोंके मोहनीय कर्मकी सत्ता है । इसलिये प्रकृतमें मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवालोंसे उन्हींकी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे बतलाये हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सम्बन्धमें विशेष वक्तव्य होनेसे उनकी अपेक्षा अल्पबहुत्व अलगसे कहा है । उनमें भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता सब जीवोंके नहीं पाई जाती किन्तु जो उपशम सम्यग्दृष्टि हैं, या जिन्होंने वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है, या जिन्होंने इन दो प्रकृतियोंकी क्षपणा अथवा उद्वेलना नहीं की है उन्हींके इन दो प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है शेष सब संसारी जीवोंके और मुक्त जीवोंके इनकी सत्ता नहीं पाई जाती, इसलिये इन दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवालोंसे अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इन सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कौन जीव हैं और अविभक्तिवाले कौन जीव हैं इसका निर्देश मूलमें किया ही है ।

§१८८. **आदेशनिर्देशकी** अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इन दो प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्यदेव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । जिन मार्गणाओंमें जीवोंका प्रमाण असंख्यात है उन सभी मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवालोंका कथन नारकियोंके समान करना चाहिये । आशय यह है कि असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें सम्यक्-

**असंखेज्जरासीसु सव्वत्थ णिरयभंगो । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी०-भवण०-वाण० जोदिसिय त्ति ।**

**§१८६. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं अविहत्तिया, विहत्तिया अणंतगुणा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं विवरीयं वत्तव्वं । एवमेइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदिकाइय-णिगोद-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-मदि-सुदअण्णाण असण्णि त्ति वत्तव्वं । णवरि मिच्छत्त-अणंताणु० अप्पाबहुअं णत्थि; अविहत्तिया-णमभावादो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्ज०-तसअपज्ज०-पंचिंदिय-अपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-पुढवि-आउ-तेउ-वाउ० तेसिं-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-पज्जत्तापज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिद-पज्जत्ता-**

प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके जानना चाहिये ।

§१८६. **तिर्यंचोंमें** मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । यहां सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवालोंका कथन इस उपर्युक्त कथनसे विपरीत करना चाहिये । अर्थात् तिर्यंचोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्ति-वाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय बादर, एकेन्द्रिय सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा बादर और सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, निगोद जीव, बादरनिगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव तथा बादर और सूक्ष्म निगोद जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और असंयत जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन एकेन्द्रियादि जीवोंमे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है क्योंकि इनमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतु-ष्ककी अविभक्तिवाले जीव नही हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय पर्याप्तक, विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक, पृथिवी कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इन चारोंके बादर और सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त, बादरनिगोदप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनकी अवि-

पज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं विहत्तिया, अविहत्तिया असंखेज्जगुणा।

§ १९०. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा अट्ठावीसंपयडीणं अविह०, विह० संखेज्जगुणा। आणदादि जाव सव्वट्ठेत्ति सव्वत्थोवा सत्तपयडीणं अविह०, विह० संखेज्जगुणा। वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-तेउ०-पम्म० देवभंगो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारएत्ति।

§१९१. परत्थाणप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स विहत्तिया, सम्मामिच्छत्तस्स विहत्तिया विसेसाहिया। केत्तियमेत्तो विसेसो? बावीसविहत्तिएणूणसत्तावीसविहत्तियमेत्तो। लोहसंजलणस्स अविहत्तिया अणंतगुणा। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमसंखेज्जदिभागो। को पडि०? सम्मामि० विहत्ति०पडिभागो। मायासंज० अविहत्तिया विसेसाहिया। केत्तियमेत्तो विसेसो? लोहक्खवगमेत्तो। माणसंजल० अविह० विसेसा०।

भक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ १९०. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। तथा इनकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। तथा इनकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान अल्पबहुत्व कहना चाहिये। इसी प्रकार जानकर अनाहारक मार्गणा तक कहना चाहिये।

§ १९१. परस्थान अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण क्या है? सत्ताईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंके प्रमाणमेंसे बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका प्रमाण कम कर देनेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना है। सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंसे लोभ संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। गुणकारका प्रमाण क्या है? अभव्योंसे अनन्तगुणा या सिद्धोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। प्रतिभागका प्रमाण क्या है? सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना प्रतिभागका प्रमाण है। लोभ संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीवोंसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण क्या है? लोभ संज्वलनकी क्षपणा करने वाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण है। मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीवोंसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है? मायासंज्वलनकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण

के०मेत्तो वि० ? मायासंजलणखवगमेत्तो । कोधसंज० अवि० विसेसा० । के० मेत्तो ? माणसंजलणखवगमेत्तो । पुरिस० अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? कोध-संजल० खवगमेत्तो । छण्णोक० अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? पुरिस० णवक-बंधक्खवगमेत्तो । इत्थिवेद० अविह० विसे० । के० मेत्तो ? छण्णोकसायखवगमेत्तो । णवुंस० अविह० विसे० । के० मेत्तो ? इत्थि०खवगमेत्तो । अट्ठकसायाणं अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? तेरसविहत्तियमेत्तो । मिच्छत्तस्स अविह० विसेसा । के० मेत्तो ? तेवीस-बावीस-इगवीसविहत्तियमेत्तो । अणंताणु०चउक्क० अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? चउवीसविहत्तियमेत्तो । तेसिं चेव विहत्तिया अणंतगुणा । को गुणगारो ? अणंताणुबंधि० अविहत्तियविरहिदसव्वजीवरासिम्हि अणंताणुबंधि० अविहत्तिएहि

है उतना विशेषका प्रमाण है। मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीवोंसे क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? मानसंज्वलनकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण है। क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीवोंसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? क्रोधसंज्वलनकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण है। पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? पुरुषवेदके नवकबन्धकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण है। छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ? विशेषका प्रमाण कितना है ? छह नोकषायोंकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? स्त्रीवेदकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। नपुंसक-वेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? तेरह प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। गुण-कारका प्रमाण कितना है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवालोंसे रहित सर्व जीव राशिमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाली जीवराशिका भाग देनेपर जो लब्ध

भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो। मिच्छत्तस्स विहत्तिया विसेसाहिया। के० मेत्तेण ? चउवीसविहत्तियमेत्तेण। अट्ठक० विह० विसेसा०। के०मेत्तो ? तेवीस-बावीस-इगवीसविहत्तियमेत्तो। णवुंस० विह० विसेसा। के० मेत्तो ? तेरसविहत्तियमेत्तो। इत्थिवेद० विह० विसे०। के० मेत्तो ? बारसविहत्तियमेत्तो। छण्णोकसाय० विह० विसे०। के० मेत्तो ? एक्कारसविहत्तियमेत्तो। पुरिस० विह० विसे०। के० मेत्तो ? पंचविहत्तियमेत्तो। कोधसंजल० विह० विसेसा०। के० मेत्तो ? चत्तारिविहत्तियमेत्तो। माणसंज० विह० विसे। के० मेत्तो ? तिण्णिविहत्तियमेत्तो। संज० विह० विसे०। के० मेत्तो ? दोण्हं विहत्तियमेत्तो। लोभसंजल० विह० विसे०। के० मेत्तो ? एगविहत्तियमेत्तो। सम्मामि० अविह० विसेसा०। के० मेत्तो ? सम्मामिच्छत्तविहत्तिय-

आवे उतना गुणकारका प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीवोंसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीवोंसे नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? तेरह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीवोंसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? बारह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीवोंसे छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? ग्यारह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीवोंसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? पांच प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीवोंसे क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? चार प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? तीन प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है। मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है ? एकविभक्तिस्थानवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना

विरहिदलोभसंजल० अविहत्तियमेत्तो । सम्मत्तस्स अविहत्तिया विसेसाहिया । के० मेत्तो ? बावीसविहत्तिएहि ऊणसत्तावीसविहत्तियमेत्तो ।

§ १९२. आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरईएसु सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स अविहत्तिया । के ते ? इगिवीस-बावीससंतकम्मिया । अणंताणु० चउक० अविहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? चउवीस-संतकम्मियग्गहणादो । सम्मत्तस्स विहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुण० । आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? बावीस-चदुवीसविहत्तियसहिद-अट्ठावीससंतकम्मिय-ग्गहणादो । सम्मामि० विह० विसे० । के० मेत्तो ? बावीसविहत्तिएहिं परिहीण-

है । लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? लोभसञ्वलनकी अविभक्तिवालोंके प्रमाणमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवालोंके प्रमाणको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना है । सम्य-मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंके प्रमाणमें से बाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण कम कर देनेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना है ।

§१९२. **आदेशनिर्देशकी** अपेक्षा **गतिमार्गणाके** अनुवादसे **नरकगतिमें** नारकियोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव सबसे थोड़े हैं ।

**शंका**–नारकियोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ।

**समाधान**–इक्कीस और बाईस प्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकी जीव मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले हैं ।

मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकियोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकी असख्यातगुणे हैं । गुणकारका प्रमाण क्या है ? गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है । इतने गुणित होनेका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले नारकियोका ग्रहण किया गया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकारका प्रमाण क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग है । इतने गुणित होनेका कारण यह है कि यहां बाईस और चौबीसप्रकृतिक विभक्ति-स्थानवाले नारकियोंके साथ अट्ठाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकी जीवोंका ग्रहण किया है । सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणोंमेंसे बाईसप्रकृतिक विभक्तिवाले नारकियोंका प्रमाण घटा देने

**सत्तावीससंतकम्मियमेत्तो। सम्मामिच्छत्त-अविहत्तिया असंखेज्जगुणा। को गुणगारो? सम्मामि० विहत्तिएहिं किंचूणणेरइयविक्खंभसूचीए ओवट्टिदाए जं भागलद्धं तत्तिय-मेत्तसेढीओ गुणगारो। कुदो? छव्वीसविहत्तियाणं पाहण्णेण गहणादो। सम्मत्त अविह० विसे०। के० मेत्तो? बावीसविहत्तियूणसत्तावीससंतकम्मियमेत्तो। अणंताणु० चउक्क० विह० विसेसा०। के० मेत्तो? एक्कवीसविहत्तिएहि यूणअट्ठावीसविहत्तिय-मेत्तो। मिच्छत्त० विह० विसेसा०। केत्ति०? चउवीसविहत्तियमेत्तो। बारसक०-णव-णोकसायविह० विसेसा०। के० मेत्तेण? बावीस-इगवीसविहत्तियमेत्तेण। एवं पढमपुढवी-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खपज्जत्त-देव-सोहम्मीसाण जाव सहस्सार-वेउव्वि०-वेउव्वियमिस्स०-तेउ०-पम्म० वत्तव्वं।**

पर जो प्रमाण शेष रहे उतना विशेषका प्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकारका प्रमाण क्या है? सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकियोंके प्रमाणसे नारकियोंकी कुछ कम विष्कम्भसूचीके भाजित कर देनेपर जो भाग लब्ध आवे उतनी जगच्छ्रेणियां प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण है। इसका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकियोंमें छब्बीसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंका प्रधानरूपसे ग्रहण किया है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है? सत्ताईस प्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणमेंसे बाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना विशेषका प्रमाण है। सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले नारकियोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है? अट्ठाईस प्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणमेंसे इक्कीसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंका प्रमाण घटा देनेपर जो शेष रहे उतना विशेषका प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकियोंसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है? चौबीसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंका जितना प्रमाण है उतना है। मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकियोंसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण कितना है? बाईस और इक्कीसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंका जितना प्रमाण है उतना है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्यदेव, सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये।

§ १९३. विदियादि जाव सत्तमीए सव्वत्थोवा अणंताणु० चउक्क० अविह० । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० असंखे० गुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विहत्ति० विसेसा० । बावीसं-पयडीणं विह० विसेसा० । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण-वाण०-जोदिसि० वत्तव्वं ।

§ १९४. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त० अविह० । अणंताणु० चउक्क० अविह० असंखेज्ज-गुणा । सम्मत्तविह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंत-गुणा । सम्मत्तअविह० विसे० । अणंताणुबंधीचउक्कविह० विसेसा० । मिच्छत्तविह० विसेसा० । बारसक०-णवणोकसाय० वि० विसे० । एवमसंजद०-किण्ण-णील-काउ-लेस्सा० । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा सम्मत्त० विहत्तिया । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । मिच्छत्त-सोल-

§ १९३. दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकी जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकी जीव असंख्यात-गुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यँच योनीमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

§ १९४. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले तिर्यँच जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले तिर्यँच जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले तिर्यँच जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले तिर्यँच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले तिर्यँच जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले तिर्यँच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्ता-नुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले तिर्यँच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले तिर्यँच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले तिर्यँच जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नील-लेश्यावाले और कपोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यँच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष

सक०-णवणोकसाय० विह० विसे० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-चत्तारिकाय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिद-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-विभंगणाणीणं वत्तव्वं ।

§ १९५. मणुसगईए मणुसेसु सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविहत्तिया । के ते ? खीणकसायप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति । मायासंजल० अविह० विसे० । माणसंजल० अविह० विसे० । कोधसंजल० अविह० विसे० । पुरिस० अविह० विसे० । छण्णोकसाय-अविह० विसे । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस० अविह० विसे० । अट्ठक० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० संखे० गुणा । अणंताणु० चउक० अविह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० ।

अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, तथा उनके बादर और सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर निगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा विभंगज्ञानी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १९५. **मनुष्यगतिमें** मनुष्योंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ।

**शंका**—लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले मनुष्य कौनसे हैं ?

**समाधान**—क्षीणकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीव लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले हैं ।

लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले मनुष्योंसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले मनुष्य संख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले मनुष्य संख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले मनुष्य असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले मनुष्य असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्क्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी

**अणंताणुचउक्क० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्ठक० विह० विसे० । णवुंस० विह० विसे० । इत्थि० विहत्ति० विसे० । छण्णोकसायविह० विसे० । पुरिस० विह० विसे० । कोधसंजल० विह० विसे० । माणसंजल० विह० विसे० । मायासंजल० विह० विसे० । लोहसंजल० विह० विसे० । मणुसपज्जत्ताणमेवं चेव । णवरि, जम्हि असंखेज्ज-गुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं । मणुसिणीसु सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० । मायासंज० अविह० विसे० । माणसंजल० अविह० विसेसाहिया । कोधसंजल० अविह० विसे० । सत्तणोक० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस० अविह० विसे० । अट्ठकसाय० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० संखेज्जगुणा । अणंताणु०चउक्क० अविह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० संखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विह० विसे० ।**

चतुष्ककी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे लोभ संज्वलनकी विभक्ति-वाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । मनुष्य पर्याप्त जीवोंके इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां असंख्यातगुणा है वहां संख्यातगुणा कहना चाहिये । मनुष्यनियों में लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्ति-वाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोध संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सात नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव संख्यात-गुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्ता-नुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले

मिच्छत्त० विह० विसे०। अट्ठक० विह० विसे०। णवुंस० विह० विसे०। इत्थि० विह० विसे०। सत्तणोक० विह० विसे०। कोधसंजल० विह० विसे०। माणसंजल०-विह० विसे०। मायासंजल० विह० विसे०। लोभसंजल० विह० विसे०।

§१६६. आणद-पाणदप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्ज त्ति सव्वत्थोवा मिच्छत्त०अविह०। सम्मामिच्छत्त०अविह० विसेसा०। सम्मत्त० अविह० विसेसा०। अणंताणु० चउक्क० अविह० संखेज्जगुणा। तस्सेव विह० संखेज्जगुणा। सम्मत्त० विह० विसे०। सम्मामि० विह० विसेसा०। मिच्छत्त० विह० विसेसा०। बारसक० णवणोक० विह० विसे०। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति सव्वत्थोवा सम्मत्त० अविह०। मिच्छत्त-सम्मामि० अविह० विसे०। अणंताणु० चउक्क० अविह० संखेज्जगुणा। तस्सेव विह० संखेज्जगुणा। मिच्छत्त-सम्मामि० विह० विसेसा। सम्मत्त० विह० विसेसाहिया। बारसक०-णवणोक० विह० विसे०।

जीव विशेष अधिक हैं। इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सात नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे क्रोध संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं।

§१६६. आनत और प्राणत स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह कषाय और नौ नो कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं।

§ १९७. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त० विह० । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० विह० विसे० । एवं बादर सुहुम-एइंदिय-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि०-णिगोद०-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-मदि सुदअण्णाण-मिच्छाइट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं ।

§ १९८. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त० सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० । मायासंजल० अविह० विसे० । माणसंज० अविह० विसे० । कोधसंजल० अविह० विसे० । पुरिस० अविह० विसे० । छण्णोकसाय० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस अविह० विसे० । अट्ठक० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अवि० असंखेज्जगुणा । अणंताणु०चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु०

§ १९७. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद, सूक्ष्म निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १९८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे माया संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मान संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष

चउक्क० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्ठक० विह० विसेसा० । णवुंस० विह० विसेसा० । इत्थि० विह० विसे० । छण्णोक० विह० विसे० । पुरिस० विह० विसे० । कोधसंजल० विह० विसे० । माणसंजलण० विह० विसे० । मायासंजल० विह० विसेसा० । लोभसंजल० विह० विसे० । एवं पंचमण०-पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि त्ति वत्तव्वं ।

§१६६. कायजोगीसु सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० । मायासंजल० अविह० विसे० । माणसंजल० अविह० विसे० । कोधसंजल० अविह० विसे० । पुरिस० अविह० विसे० । छण्णोक० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस० अविह० विसे० । अट्ठक० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० असंखेज्जगुणा । अणंताणु०चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विह० विसे० ।

अधिक है । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

§१६६. काययोगी जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अन०

मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्ठक० विह० विसे० । णवुंस० विह० विसे० । इत्थि० विह० विसे० । छण्णोक० विह० विसे० । पुरिस० विह० विसे० । कोधसंजल० विह० विसे० । माणसंजल० विह० विसे० । मायासंजल० विह० विसेसा० । लोभसंजल० विह० विसे० । एवमोरालिय०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारएत्ति वत्तव्वं ।

§ २००. ओरालियमिस्स० सव्वत्थोवा बारसक०-णवणोक० अविह०। मिच्छत्त० अविह० संखेज्जगुणा। अणंताणुचउक्क० अविह० संखेज्जगुणा। सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा। सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । सम्मत्त० अवि० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । बारसक०-णवणोक० विह० विसे० । एवं कम्मइय० । णवरि, मिच्छत्त-अविहत्तियाणमुवरि अणंताणु०चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । आहार०-आहारमिस्स० सव्वत्थोवा मिच्छत्त-सम्मत्त-

न्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे छह नोकषायकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसीप्रकार औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ २००. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे है । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे है । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनन्ता-

सम्मामि० अविहत्तिया। अणंताणु०चउक्क० अवि० संखेज्जगुणा। तस्सेव विह० संखेज्ज-गुणा। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विह० विसेसा०। बारसक०-णवणोकसाय० विह० विसे०।

§२०१. वेदाणुवादेण इत्थि० सव्वत्थोवा णवुंस० अविह०। अट्ठक० अविह० संखे-ज्जगुणा। कुदो? बारसविहत्तिएहिंतो तेरसविहत्तियाणमद्धापडिभागेण संखेज्जगुणत्त-सिद्धीए पडिबंधाभावादो। ण च ओघमणुस्सगईयादिसु वि एसो पसंगो आसंक-णिज्जो; तत्थ सिद्धसजोगीणं पहाणभावेणाद्धापडिभागस्स पहाणत्ताभावादो। एसो

नुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्ति-वाले जीव विशेष अधिक हैं।

**विशेषार्थ**—बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अविभक्तिवाले औदारिकमिश्रकाय-योगी जीव वे हैं जो कपाट और प्रतर समुद्घात अवस्थाको प्राप्त हैं। इसलिये ये सबसे थोड़े बतलाये हैं। तथा मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले औदारिक मिश्रकायोगियोंमें, जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं वे, और जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि या कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर मनुष्यों और तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं वे लिये गये हैं, इसलिये ये पूर्वोक्त जीवोंसे संख्यातगुणे बतलाये हैं। इसी प्रकार आगेका अल्पबहुत्व भी घटित कर लेना चाहिये। किन्तु कार्मणकाययोगियोंमें जो मिथ्यात्वकी अविभक्ति-वालोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे बतलाये हैं सो इसका कारण यह है कि यहा चारों गतियोंके कार्मणकाययोग अवस्थामें स्थित अनन्तानु-बन्धीके विसंयोजक जीव लिये गये हैं। अतः इनके असंख्यातगुणे होनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

§२०१. **वेद मार्गणाके** अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। क्योंकि बारह प्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेरहप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीव कालसम्बन्धी प्रतिभागसे संख्यातगुणे सिद्ध होते हैं। अतः नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ऐसा माननेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पर इससे सामान्य प्ररूपणा और मनुष्य गति आदि मार्गणाओंमें भी यह प्रसंग प्राप्त होता है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वहां सामान्य प्ररूपणा और मनुष्य गति आदिमार्गणाओंमें सिद्ध और सयोगी जीवोंका मुख्य रूपसे ग्रहण किया गया है, इसलिये वहां काल सम्बन्धी प्रतिभागकी प्रधानता नहीं है। यह अर्थ यथासंभव अन्य मार्गणाओंमें

**अत्थो जहासंभवमण्णत्थ वि वत्तव्वो। तदो मिच्छत्त० अविह० संखेज्जगुणा। अणंताणु०चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा। सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा। सम्मामि० विह० विसे०। तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा। सम्मत्त० अविह० विसेसा०। अणंताणु०-चउक्क० विह० विसे०। मिच्छत्त० विह० विसे०। अट्ठक० विह० विसे०। णवुंस० विह० विसे०। चत्तारिसंजल० अट्ठणोक० विह० विसे०। पुरिसवेदे सव्वत्थोवा छण्णोक० अविह०। इत्थिवेद० अविह० संखेज्जगुणा। णवुंस० अविह० विसे०। अट्ठक० अविह० [ संखेज्ज ] गुणा। एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। सेसपंचिंदियभंगो जाव छण्णोकसाय० विह० विसेसाहियात्ति। तदुवरि चत्तारि संजल० पुरिस० विह० विसे०। णवुंसए सव्वत्थोवा इत्थि० अविह०। अट्ठक० अविह० संखेज्जगुणा। सेसं पंचिंदियभंगो। णवरि, सम्मामि० अविह०अणंतगुणा। उवरि वि इत्थिवेदविहत्ति-**

भी कहना चाहिये। आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे चार संज्वलन और आठ नौकषायकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। पुरुषवेदी जीवोंमें छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। यहां पर कारण पहलेके समान कहना चाहिये। अर्थात् बारह प्रकृतिक विभक्तिस्थानके कालसे तेरह प्रकृतिक विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है, अतः नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ऐसा माननेमें कोई बाधा नहीं है। इसके आगे छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं इस स्थानतकका अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियोंके समान है। तथा इसके ऊपर चार संज्वलन और पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। नपुंसकवेदी जीवोंमें स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। शेष अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। तथा आगे भी स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीवोंसे आठ नोकषाय

एहिंतो अट्ठणोक०- चदुसंजलणविहत्तिया विसेसाहिया त्ति वत्तव्वं । अवगदवेदे सव्व-त्थोवा मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विह० । अट्ठक०-इत्थि०-णवुंस० [ विह० विसेसा० । छण्णोकसा० विह० विसे०] । पुरिस० विह० विसे० । कोधसंजल० विह० विसे० । माण-संजल० विह० विसे० । मायासंजल० विह० विसे० । लोभसंजल० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मायासंजल० अविह० विसे० । माणसंजल० अविह० विसे० । कोधसंज० अविह० विसे० । पुरिस० अविह० विसे० । छण्णोकसाय० अविह० विसे० । अट्ठक०-इत्थि०-णवुंस० अविह० विसे० । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०अविह० विसे० ।

§ २०२. कसायाणं[2] [ (णु) वादेण कोहकसाईसु सव्वत्थोवा पुरिस०] अविह० । छण्णोक० अविह० विसे० । इत्थिवेदअविह० विसे० । णवुंस० अवि० विसे० । अट्ठक०

और चार संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ऐसा कहना चाहिये ।

अपगतवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे मानसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मायासंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोक-षायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसक-वेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

§२०२. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायवाले जीवोंमें पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । शेष कथन

(१) स०....( त्रु० १५ ) पु-स० ।-स० अविह० सव्वत्थोवा सत्तणोक० विसे० पु-अ०, आ० ।

(२) कसायाण० ( त्रु० १५ ) अविह०-स० । कसायाणमण्णत्थ विसेसाहिया त्ति लोभसज० अविह०-अ०, आ० ।

अविह० संखेज्जगुणा ।सेसस्स ओघभंगो जाव पुरिस० विहत्तिओ त्ति । तदुवरि चत्तारि संज० विह० विसे० । एवं माण०, णवरि तिण्णिक० विह० विसे० । एवं माया०, णवरि दोण्णिक० विह० विसे० । एवं लोभ०, णवरि लोभ० विह० विसेसाहिया । अकसायीसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विहत्तिया। [अट्ठक०], णवणोक० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० अविह० विसे० । एवं जहाक्खाद० । णवरि जम्हि अणंतगुणा तम्हि संखेज्जगुणा वत्तव्वं ।

§२०३.आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० ।मायासंजलण० अविह० विसे० । एवं जाव अट्ठक० अविह० । सम्मत्त० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० विसे० । अणंताणुबंधिचउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा। तस्सेव विह० असंखेज्जगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामिच्छत्त०

'पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं' इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान है । इसके आगे चार संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार मान कषायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहना । किन्तु यहां इतनी विशेषता और है कि चार संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे तीन संज्वलनोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसीप्रकार मायाकषायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे दो संज्वलनोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार लोभ कषायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना । किन्तु यहां इतनी विशेषता और है कि दो संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

**अकषायी** जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे आठ कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे उन्हींकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्व, सम्यक्-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार यथा-ख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि ऊपर पूर्वमें जहां अनन्तगुणा कहा है वहां यथाख्यातसंयतोंके संख्यातगुणा कहना चाहिये ।

§२०३. **मतिज्ञानी,** श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। आगे आठ कषायोंकी अविभक्तिस्थान तक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । आठ कषायोंकी अविभक्ति-वाले जीवोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्या-त्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे उन्हीं की विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष

विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । अट्ठक० विह० विसे० । एवं जाव लोभ० विह० विसे० । एवमोहिदंस० । मणपज्जव०-संजदाणं पि एवं चेव । णवरि, जम्हि असंखेज्जगुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं सामाइयछेदो० वत्तव्वं । णवरि, अट्ठक० अवि० संखेज्जगुणा । लोभसंजल० अविह० णत्थि । परिहार० सव्वत्थोवा सम्मत्त० अविह० । सम्मामि० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० विसे० । अणंताणु०चउक्क० अविह० संखेज्जगुणा । तस्सेव विह० संखेज्जगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामि० विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । बारसक०-णवणोक० विह० विसे० । एवं संजदासंजदाणं । णवरि, जम्हि संखेज्जगुणा तम्हि असंखेज्जगुणा । सुहुमसांपराइय० सव्वत्थोवा दंसणतियस्स विह० । वीसपय० विह० विसे० । तेसिं चेव अविह० संखेज्जगुणा । दंसणतिय० अविह० विसे० । लोभसंजल० विह० विसे० ।

अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे 'इनसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं' इस स्थान तक इसी प्रकार कहना चाहिये । इसी प्रकार अवधदर्शनी जीवोंके अल्पबहुत्व कहना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंके भी इसीप्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मतिज्ञानी आदि जीवोंके जहां असंख्यातगुणा कहा है वहां इनके संख्यातगुणा कहना चाहिये । इसी प्रकार सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें आठ कषायकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । तथा इन दोनों संयत जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्ति नहीं हैं । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां परिहारविशुद्धिसंयतोंके संख्यातगुणा है वहां इनके असंख्यातगुणा है । सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंमें तीन दर्शनमोहनीयकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे उन्हीं बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तीन दर्शनमोहनीयकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २०४. सुक्क० सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० । मायासंज० अविह० विसे० । माणसंज० अवि० विसे० । कोधसंज० अविह० विसेसा० । पुरिस० अविह० विसे० । छण्णोक० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस० अविह० विसेसा० । अट्ठक० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० अविह० विसे० । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु०चउक्क० अविह० संखेज्जगुणा । तस्सेव विह० संखेज्जगुणा । एवं विवरीदकमेण सेसाणं विसेसाहियत्तं वत्तव्वं । अभवसिद्धि०-सासण० णत्थि अप्पाबहुगं ।

§ २०५. सम्मादिट्ठिसु सव्वत्थोवा अणंताणु०चउक्क० विह० । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामि० विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । अट्ठक० विह० विसे० । एवं जाव लोभ० विहत्तिओ त्ति विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मायासंजल०

§ २०४. **शुक्ललेश्यावाले** जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष-अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार आगे विपरीतक्रमसे शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंको उत्तरोत्तर विशेषाधिक कहना चाहिये ।

अभव्य जीव और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि वे सब जीव क्रमसे छब्बीस और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही होते हैं ।

§ २०५. सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे इसी प्रकार लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवों तक विशेष अधिक कहना चाहिये । लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे उसीकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे

अविह० विसे० । माणसंजल० अविह० विसे० । कोधसंज०अविह० विसे० । पुरिस० अविह० विसे०। छण्णोक० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंसय० अविह० विसे० । अट्ठक० अविह० विसे० । सम्मत्त अविह० विसे० । सम्मामि० अविह० विसे० । मिच्छत्त अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० अविह० विसे० । एवं खइय-सम्माइट्ठीसु । णवरि, अट्ठकसायादि कायव्वं । वेदगसम्मा० सव्वत्थोवा सम्मामि० अविह० । मिच्छत्त अविह० विसे० । अणंताणु०चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । तस्सेव विह० असंखेज्जगुणा । मिच्छत्त विह० विसे० । सम्मामि०विह० विसे० । सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० विह० विसे० । उवसमसम्मा० सव्वत्थोवा अणंताणु० चउक्क० अविह० । तस्सेव विह० असंखेज्जगुणा । चउवीसंपय० विह० विसे० । एवं सम्मामि० ।

§ २०६. अणाहार० सव्वत्थोवा सम्मत्त० विह० । सम्मामि० विह० विसे० । बारसक०-णवणोक० अविह० अणंतगुणा । मिच्छत्त० अविह० विसे० । अणंताणु०-

क्रोधसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्ति-वाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्या-त्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके आठ कषायोंकी विभक्तिवालोंको आदि लेकर कहना चाहिये । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सम्यग्मि-थ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§२०६. अनाहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कषाय और नौ

**चउक० अविह० विसे० । तस्सेव विह० अणंतगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । बारसक०-णवणोक० विह० विसे० । सम्मामि० अविह० विसे० । सम्मत्त० अविह० विसे० ।**

**एवमप्पाबहुगं समत्तं ।**

**।। एवमेगेग-उत्तरपयडिविहत्ती समत्ता ।।**

नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति समाप्त हुई।

***पयडिट्ठाणविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि। तं जहा, एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं अप्पाबहुअं भुजगारो पदणिक्खेवो वड्ढि त्ति।**

§२०७. मिच्छत्तादियाओ पयडीओ त्ति घेत्तव्वाओ; कम्मपयडिं मोत्तूण अण्णपयडीहि अहियाराभावादो। चिट्ठंति एत्थ पयडीओ त्ति ट्ठाणं। अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसादि-पयडीणं ठाणाणि पयडिट्ठाणाणि। ताणि च बंधट्ठाणाणि उदयट्ठाणाणि संतट्ठाणाणि त्ति तिविहाणि होंति। तत्थ केसिमेत्थ ग्गहणं? ण बंधट्ठाणाणं; तेसिं महाबंधे बंधगेत्ति सण्णिदे उवरि वण्णिज्जमाणत्तादो। णोदयट्ठाणाणं गहणं; वेदगेत्ति अणियोगद्दारे पुरदो वण्णिज्जमाणत्तादो। परिसेसादो संतपयडिट्ठाणाणं अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस चदुवीस तेवीस बावीस एक्कवीस तेरस बारस एक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि एक्कं ति एदेसिं गहणं।

*प्रकृतिस्थानविभक्तिमें ये अनुयोगद्वार आये हैं। जो इस प्रकार हैं—एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, परिमाण क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, अल्पबहुत्व, भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि।

§२०७. इस कसायपाहुडमें प्रकृति शब्दसे मिथ्यात्व आदिक कर्मप्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि प्रकृतमें मिथ्यात्व आदिक कर्मप्रकृतियोंको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंका अधिकार नहीं है। जिसमें प्रकृतियां रहती हैं उसे अर्थात् प्रकृतियोंके समुदायको स्थान कहते हैं। अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस आदि प्रकृतियोंके स्थानोंको प्रकृतिस्थान कहते हैं।

**शंका**–वे प्रकृतिस्थान बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। सो उनमेंसे यहां किसका ग्रहण किया है?

**समाधान**–प्रकृतमें बन्धस्थानोंका तो ग्रहण किया नहीं जा सकता है, क्योंकि आगे 'बन्धक' नामवाले महाबन्ध अधिकारमें उनका वर्णन किया जानेवाला है। उदयस्थानोंका भी ग्रहण नहीं हो सकता है, क्योंकि आगे वेदक अनुयोगद्वारमें उनका वर्णन किया जानेवाला है। अतः पारिशेष न्यायसे अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप सत्त्वप्रकृतिस्थानोंका प्रकृतमें ग्रहण किया है।

**विशेषार्थ**–प्रकृतमें मोहनीय कर्मके बन्धस्थानों और उदयस्थानोंका कथन न करके उक्त स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंके द्वारा सत्त्वस्थानोंका कथन किया जा रहा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§२०८. पयडिट्ठाणाणं विहत्ती भेदो पयडिट्ठाणविहत्ती, तीए पयडिट्ठाणविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि होंति त्ति संबंधो कायव्वो। परोक्खाणमणिओगद्दाराणं कथमिमाणि त्ति पच्चक्खणिद्देसो ? ण, बुद्धीए पच्चक्खीकयाणं तदविरोहादो। तेरस अणियोगद्दाराणि त्ति परिमाणमकाऊण सामण्णेण इमाणि त्ति किमट्ठं णिद्देसो कदो ? एदाणि तेरस चेव अणियोगद्दाराणि ण होंति अण्णाणि वि समुक्कित्तणा सादिय अणादिय धुव अद्धुव भाव भागाभागेत्ति सत्त अणियोगद्दाराणि एदेसु तेरससु अणिओगद्दारेसु पविट्ठाणि त्ति जाणावणट्ठं परिमाणं ण कदं। एदेसिं सत्तण्हमणिओगद्दाराणं जहा तेरससु अणिओगद्दारेसु अंतब्भावो होदि तहा वत्तव्वं।

§२०८. प्रकृतिस्थानोंकी विभक्ति अर्थात् भेदको प्रकृतिस्थानविभक्ति कहते हैं। उस प्रकृतिस्थानविभक्तिके ये अनुयोगद्वार होते हैं प्रकृतमें इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये।

**शंका**–जब अनुयोगद्वार परोक्ष हैं, तो उनका 'इमाणि' इस पदके द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे निर्देश कैसे हो सकता है ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि बुद्धिसे प्रत्यक्ष करके उनका 'इमाणि' इस पदके द्वारा प्रत्यक्ष-रूपसे निर्देश करनेमें कोई विरोध नहीं है।

**शंका**–'प्रकृतिस्थानविभक्तिके विषयमें तेरह अनुयोगद्वार हैं' इस प्रकार उनका परिमाण न करके सामान्यसे 'इमाणि' इस पदके द्वारा उनका निर्देश किसलिये किया ?

**समाधान**–ये अनुयोगद्वार केवल तेरह ही नहीं हैं किन्तु इनमें इनके अतिरिक्त समुत्कीर्तना, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, भाव और भागाभाग ये सात अनुयोगद्वार और भी सम्मिलित हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये उक्त अनुयोगद्वारोंका परिमाण नहीं कहा है।

इन सात अनुयोगद्वारोंका तेरह अनुयोगद्वारोंमें जिस प्रकार अन्तर्भाव होता है उसका कथन कर लेना चाहिये।

**विशेषार्थ**–चूर्णिसूत्रकारने प्रकृतिस्थानविभक्तिका कथन 'एकजीवकी अपेक्षा स्वामित्व' आदि अनुयोगोंके द्वारा करनेकी सूचना की है जिनकी संख्या तेरह होती है। पर ये अनुयोगद्वार तेरह हैं इस प्रकारका उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण बतलाते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि चूर्णिसूत्रकारको यहां समुत्कीर्तना, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, भाव और भागाभाग ये सात अनुयोगद्वार और इष्ट हैं जिनका उक्त अनुयोगद्वारोंमें संग्रह कर लेने पर सबका प्रमाण बीस हो जाता है। यही सबब है कि चूर्णिसूत्रकारने 'तेरह' संख्याका निर्देश नहीं किया। उक्त तेरह अनुयोगद्वारोंमें समुत्कीर्तना सम्मिलित नहीं है पर चूर्णिसूत्रकारने चूर्णिद्वारा इसका कथन किया है। भागाभाग भी सम्मिलित नहीं हैं पर नानाजीवोंकी अपेक्षा भंग विचयके अनन्तर भागाभाग अनुयोगद्वार आता है और वहां

***पयडिट्ठाणविहत्तीए पुव्वं गमणिज्जा ट्ठाणसमुक्कित्तणा ।**

§२०९. 'पुव्वं' पढमं चेव 'गमणिज्जा' अवगंतव्वा 'ट्ठाणसमुक्कित्तणा' ठाणवण्णणा; ताए अणवगयाए सेसाणिओगद्दाराणं पढणासंभवादो । तेण ट्ठाणसमुक्कित्तणा सव्वाणियोगद्दाराणमादीए वत्तव्वेत्ति भणिदं होदि ।

***अत्थि अट्ठावीसाए सत्तावीसाए छव्वीसाए चउवीसाए तेवीसाए वावीसाए एक्कवीसाए तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से च १५ । एदे ओघेण ।**

चूर्णिसूत्रकारने 'सेसाणि अणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि' यह चूर्णिसूत्र कहा है । मालूम होता है इस परसे वीरसेनस्वामीने यह निश्चय किया है कि चूर्णिसूत्रकारको इन तेरहके अतिरिक्त सात अनुयोगद्वार और इष्ट है । अब समुत्कीर्तना आदि सात अनुयोगद्वारोंका 'एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व' आदि तेरह अनुयोगद्वारोंमें किस प्रकार अन्तर्भाव होता है इसका निर्देश करते हैं । समुत्कीर्तनाका स्वामित्व अनुयोगद्वारमें अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि समुत्कीर्तनामें स्थानोंका और स्वामित्वमें स्थानोंके स्वामीका कथन रहता है, अतः अलगसे स्थान न कहने पर भी किस स्थानका कौन स्वामी है इसका कथन करनेसे स्थानोंका कथन होही जाता है । सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवका काल और अन्तर अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि काल और अन्तरका ज्ञान हो जाने पर सादि आदिका ज्ञान हो ही जाता है । मोहनीयके उदयादिके सद्भावमें ही ये अट्ठाईस प्रकृतिक आदि स्थान होते हैं यह बात भावानुयोगद्वारका अलगसे कथन न करने पर भी जानी जाती है । तथा भागाभागका अल्पबहुत्वानुयोगद्वारमें अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि किस स्थानवाले जीव अल्प हैं और किस स्थानवाले जीव बहुत हैं, इसका ज्ञान हो जाने पर भागाभागका ज्ञान हो ही जाता है । इस प्रकार समुत्कीर्तना आदि सात अनुयोगद्वारोंका स्वामित्व आदिकमें अन्तर्भाव जानना चाहिये ।

***प्रकृतिस्थानविभक्तिमें सर्वप्रथम स्थानसमुत्कीर्तनाको जान लेना चाहिये ।**

§२०९. इस चूर्णिसूत्रमें 'पूर्व' पद 'प्रथम' इस अर्थमें आया है । 'गमणिज्जा'का अर्थ 'जानना चाहिये' होता है । 'ट्ठाणसमुक्कित्तणा' का अर्थ 'अट्ठाईस आदि स्थानोंका वर्णन' है । जब तक अट्ठाईस आदि स्थानोंका ज्ञान नहीं हो जायगा तब तक स्वामित्व आदि शेष उन्नीस अनुयोगद्वारोंका कथन करना संभव नहीं है, इसलिये स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारको सभी अनुयोगद्वारोंके आदिमें कहना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

***मोहनीयके अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक ये पन्द्रह सत्त्वस्थान होते हैं । ये सत्त्वस्थान ओघसे होते हैं ।**

§२१०. एदे पण्णारस ट्ठाणवियप्पा ओघेण होंति । एदेसिं ट्ठाणाणं पदेमपरूवणट्टं जइवसहाइरियो उत्तरसुत्तं भणदि ।

***एक्किस्से विहत्तियो को होदि ? लोहसंजलणो ।**

§२११. जस्स लोहसंजलणमेक्कं चेव संतकम्मं सो लोहसंजलणो एकिस्से विहत्तिओ ।

***दोण्हं विहत्तिओ को होदि ? लोहो माया च ।**

§२१२. लोह-मायासंजलणाणि दो चेव जस्स संतकम्ममत्थि सो दोण्हं विहत्तिओ ।

***तिण्हं विहत्ती लोहसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलणाओ ।**

§२१३. लोभ-माया-माणसंजलणाओ तिण्णि चेव जदा होंति तदा तिण्हं पयडिट्ठाणं होदि ।

***चउण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ ।**

§२१४. चत्तारि संजलणाओ सुद्धाओ जत्थ संतकम्मं होंति तत्थ चदुण्हं विहत्ती णाम ट्ठाणं होदि ।

§२१०. ये पन्द्रहों सत्त्वस्थानविकल्प ओघकी अपेक्षा होते हैं । अब इन सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियोंका कथन करने के लिये यतिवृषभ आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं --

***एक प्रकृतिकी विभक्तिवाला कौन है ? लोभसंज्वलनवाला जीव एक प्रकृतिकी विभक्तिवाला होता है ।**

§२११. जिस जीवके एक लोभसंज्वलनकी ही सत्ता होती है वह लोभसंज्वलनका धारक जीव एक प्रकृतिकी विभक्तिवाला होता है ।

***दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कौन है ? संज्वलन लोभ और मायाकी सत्तावाला जीव दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।**

§२१२. जिस जीवके लोभसंज्वलन और मायासंज्वलन केवल ये दो कर्म सत्तामें होते हैं वह दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।

***जिसके लोभसंज्वलन, मायासंज्वलन और मानसंज्वलन ये तीन कर्म पाये जाते हैं वह तीन प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।**

§२१३. जिस समय जीवके केवल लोभ, माया और मानसंज्वलन ये तीन कर्म पाये जाते हैं उस समय उसके तीनप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है ।

***जिसके चारों संज्वलनकषायें पाई जाती हैं वह चार प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।**

§२१४. जहां पर केवल लोभसंज्वलन आदि चार कर्मोंकी सत्ता होती हैं वहां चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है ।

*पंचण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ पुरिसवेदो च।

§२१५. पुरिसवेदो चत्तारि संजलणाओ च सुद्धाओ जत्थ संतकम्मं होंति तत्थ पंचपयडिट्ठाणं होदि।

*एक्कारसण्हं विहत्ती, एदाणि चेव पंच छण्णोकसाया च।

§२१६. चदुसंजलण-पुरिसवेद-छण्णोकसाय केवला जत्थ संतकम्मसरूवेण चिट्ठंति तत्थ एक्कारसण्हं ट्ठाणं।

*बारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव इत्थिवेदो च।

§२१७. एदाणि एक्कारसकम्माणि इत्थिवेदसहियाणि जत्थ संतकम्मं तत्थ बारसण्हं ट्ठाणं होदि।

*तेरसण्हं विहत्ती एदाणि चेव णवुंसयवेदो च।

§२१८. बारसपयडीओ पुव्वुत्ताओ जत्थ णवुंसयवेदेण सह संतं होंति तत्थ तेरसण्हं ट्ठाणं।

*एक्कवीसाए विहत्ती एदे चेव अट्ठ कसाया च।

§२१९. पुव्वुत्ततेरसकम्माणि अट्ठकसाया च जत्थ संतं तत्थ एक्कवीसाए ट्ठाणं।

*चारों संज्वलन और पुरुषवेद यह पांचप्रकृतिक विभक्तिस्थान है।

§२१५. जहां पर केवल पुरुषवेद और चारों संज्वलन ये पांच कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां पर पांचप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है।

*पुरुषवेद और चार संज्वलन ये पूर्वोक्त पांच और छह नोकषाय यह ग्यारह प्रकृतिक विभक्तिस्थान है।

§२१६. जहां पर चारों संज्वलन, पुरुषवेद और हास्यादि छह नोकषाय ये कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां ग्यारहप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है।

*पूर्वोक्त ग्यारह और स्त्रीवेद यह बारहप्रकृतिक विभक्तिस्थान है।

§२१७. जहां पर स्त्रीवेदके साथ पूर्वोक्त ग्यारह कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां बारह प्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है।

*पूर्वोक्त बारह और नपुंसकवेद यह तेरहप्रकृतिक विभक्तिस्थान है।

§२१८. जहां पर नपुंसकवेदके साथ पूर्वोक्त बारह कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां पर तेरहप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है।

* ये पूर्वोक्त तेरह और आठ कषाय यह इकीस प्रकृतिक विभक्तिस्थान है।

§२१९. जहां पर पूर्वोक्त तेरह कर्म और अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क तथा प्रत्याख्यानावरण चतुष्क ये आठ कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां पर इकीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है।

***सम्मत्तेण बावीसाए विहत्ती ।**

§ २२०. पुव्वुत्तएक्कवीसकम्माणि सम्मत्तेण बावीसाए ट्ठाणं होदि ।

***सम्मामिच्छत्तेण तेवीसाए विहत्ती ।**

§ २२१. पुव्वुत्तबावीसकम्मेसु सम्मामिच्छत्तेण सहिदेसु तेवीसाए ट्ठाणं होदि ।

***मिच्छत्तेण चदुवीसाए विहत्ती ।**

§ २२२. पुव्वुत्ततेवीसकम्माणि मिच्छत्तेण सह चउवीसाए ट्ठाणं होदि ।

***अट्ठावीसादो सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु अवणिदेसु छव्वीसाए विहत्ती ।**

§ २२३. मोहट्ठावीससंतकम्मिएण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु उव्वेल्लिदेसु छव्वीसाए ट्ठाणं होदि ।

***तत्थ सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए विहत्ती ।**

§२२४. तत्थ छव्वीसपयडिट्ठाणम्मि सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए ट्ठाणं होदि ।

***सव्वाओ पयडीओ अट्ठावीसाए विहत्ती ।**

*सम्यक्त्वप्रकृतिके साथ बाइस प्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§२२०. पूर्वोक्त इक्कीस कर्मोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिके मिला देनेसे बाइसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*सम्यग्मिथ्यात्वके साथ तेईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§२२१. पूर्वोक्त बाइस कर्मोंमें सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके मिला देने पर तेईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*मिथ्यात्वके साथ चौबीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§२२२. पूर्वोक्त तेइस कर्मोंमें मिथ्यात्वके मिला देनेपर चौबीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*मोहनीयके अट्ठाईस भेदोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके निकाल देने पर छब्बीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§२२३. जिसके मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है वह जब सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है तब उसके छब्बीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*उसमें सम्यग्मिथ्यात्वके मिला देनेपर सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§२२४. उसमें अर्थात् छब्बीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वके मिला देने पर सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*मोहनीयकी संपूर्ण प्रकृतियां अट्ठाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§ २२५. मोहट्ठावीसपयडीओ जत्थ संतं तत्थ अट्ठावीसाए ट्ठाणं होदि ।

***संपहि एसा ।**

§ २२६. एदेसिमोघपण्णारसपयडिट्ठाणाणं संदिट्ठी–

***२८ २७ २६ २४ २३ २२ २१ १३ १२ ११ ५ ४ ३ २ १**

***एवं गदियादिसु णेदव्वा ।**

§ २२७. गदियादिसु चोद्दसमग्गणट्ठाणेसु ट्ठाणसमुक्कित्तणा जाणिदूण णेदव्वा; सुगमत्तादो ।

§ २२८. संपहि चुण्णिसुत्ताइरियेण सूचिदं मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुच्चारणाइरियवयण-विणिग्गयविवरणं भणिस्सामो । तं जहा-मणुसतिय-पचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसि०-सण्णि-आहारीणमोघभंगो । णवरि मणुसिणीसु पंचपयडिट्ठाणं णत्थि ।

§ २२५. जहां पर मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है वहां पर अट्ठाईस प्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*अब यह—

§ २२६. ओघकी अपेक्षा कहे गये इन पन्द्रह प्रकृति स्थानोंकी संदृष्टि है—

* २८ २७ २६ २४ २३ २२ २१ १३ १२ ११ ५ ४ ३ २ १

***इसी प्रकार गति आदि मार्गणाओंमें उक्त स्थानोंको जान लेना चाहिये ।**

§ २२७. गति आदि चौदह मार्गणास्थानोंमें स्थानसमुत्कीर्तनाको जान कर लगा लेना चाहिये, क्योंकि वह सुगम है ।

§ २२८. अब आगे मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये, चूर्णिसूत्रकारोंके द्वारा सूचित किये गये और उच्चारणाचार्यके मुखसे निकले हुए व्याख्यानको कहते है । वह इस प्रकार है—सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक इनके पन्द्रहों प्रकृतिसत्त्वस्थान ओघके समान होते हैं । इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंके पांचप्रकृतिकसत्त्वस्थान नहीं पाया जाता ।

**विशेषार्थ**—पहले जो सामान्यसे पन्द्रह सत्त्वस्थानोंका कथन कर आये हैं वे सामान्य मनुष्य आदि सभी मार्गणाओं में सम्भव हैं क्योंकि इन मार्गणाओंमें प्रारम्भके बारह गुणस्थान नियमसे पाये जाते हैं । किन्तु मनुष्यनी छह नोकषाय और पुरुषवेदका एक साथ क्षय करती है अतः उसके पांच प्रकृतिरूप स्थान नहीं पाया जाता ।

§२२६. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-बावीस-एक्कवीसाए ट्ठाणं। एवं पढमाए पुढवीए, तिरिक्खगइ० पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदिय-तिरिक्खपज्ज०-देव-सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्वियमिस्स०-ओरालिय-मिस्स-कम्मइय-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव वत्तव्वं। णवरि बावीस-एक्कवीसपयडिट्ठाणाणि णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-भवण०-वाण०-जोदिसिय० वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसपयडिट्ठाणाणि। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-सव्वपंचकाय-तस०अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाणि-विहंग-मिच्छादिट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० अत्थि अट्ठावीस-चउवीस-बावीस-एक्कवीसपयडि-ट्ठाणाणि। वेउव्वियकायजोगीसु अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस-पयडिट्ठाणाणि। एवं किण्ह०-णील० वत्तव्वं। आहारक०-आहारमिस्सकायजोगीसु अत्थि अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीसपयडिट्ठाणाणि।

§२२६. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप छह स्थान पाये जाते हैं। इसीप्रकार पहले नरकमें समझना चाहिये। इसी प्रकार तिर्यंचगतिमें सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच और पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा सामान्य देव, सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियकमिश्र-काययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तक इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके पूर्वोक्त स्थानोंमेंसे बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थान नहीं पाये जाते हैं। इसी-प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—दूसरे नरकसे लेकर उक्त सभी मार्गणाओंमें सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते हैं, अतः इन मार्गणाओंमें २२ और २१ प्रकृतिरूप स्थान किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हैं। शेष कथन सुगम है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होते हैं। इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय, बादर सूक्ष्म आदि सभी पांचो स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, मत्यज्ञानी. श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके अट्ठाईस, चौबीस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। वैक्रियिककाययोगियोंके अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। इसीप्रकार कृष्णलेश्यावाले और नीललेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंके अट्ठाईस,

§२३०. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीस-तेरस-बारसपयडिट्ठाणाणि। एवं णवुंसयवेदम्मि वत्तव्वं। पुरिसवेदे अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीस-तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-पयडिट्ठाणाणि। अवगदवेद० अत्थि चउवीस एक्कवीस-एक्कारस-पंच-चत्तारि-तिण्णि-दोण्णि-एक्कपयडिट्ठाणाणि।

§२३१. कसायाणुवादेण कोधक० अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीस-तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-चत्तारिपयडिट्ठाणाणि। एवं माणक०। णवरि तिण्णिपयडिट्ठाणं पि अत्थि। एवं माया०। णवरि दोपयडिट्ठाणं पि अत्थि। एवं लोभ०। णवरि एगपयडिट्ठाणं पि अत्थि। अकसाईसु अत्थि चउवीस-एक्कवीस-पयडिट्ठाणाणि। एवं सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० वत्तव्वं। णवरि सुहुमसांपराय० एयपयडिट्ठाणं पि अत्थि।

चौवीस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं।

**विशेषार्थ**—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देव और नारकियोंमें उत्पन्न तो होता है पर वह अपर्याप्त अवस्थामें ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है, अतः वैक्रियिककाययोगी जीवके २२ प्रकृतिक स्थान नहीं कहा। नील और कृष्ण लेश्यामें २१ प्रकृतिक स्थान मनुष्योंकी अपेक्षासे जानना चाहिये, क्योंकि सौधर्मादिस्वर्गमें तीन अशुभ लेश्याएं नहीं होतीं। नारकियोंमें २१ प्रकृतिक स्थान पहले नरकमें ही पाया जाता है। पर वहां कपोत लेश्या ही होती है।

§२३०. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह और बारह प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। इसीप्रकार नपुंसकवेदमें कहना चाहिये। पुरुषवेदमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह और पांच प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। अपगतवेदमें चौबीस, इक्कीस, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप स्थान होते हैं।

§२३१. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी जीवोंके अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस तेईस, बाईस, इकीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाच और चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होते हैं। इसीप्रकार मानकषायी जीवोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मानकषायी जीवोंके तीन प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है। इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके दो प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है। इसी प्रकार लोभकषायी जीवोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके एक प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है। अकषायी जीवोंके चौबीस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। इसीप्रकार सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात संयमी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंके एक प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान भी पाया जाता है।

§ २३२. आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघभंगो। णवरि सत्तावीस-छव्वीसट्ठाणाणि णत्थि। एवं मणपज्जव०-संजद०-सामाइयछेदो०-ओहिदंसण-सम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्वं। परिहार० अत्थि अट्ठावीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीसपयडिट्ठाणाणि। एवं संजदासंजद०।

§२३३. लेस्साणुवादेण काउलेस्सा० वेउव्वियकायजोगिभंगो। णवरि, बावीसपयडिट्ठाणं पि अत्थि। तेउ०-पम्म०-असंजद० अत्थि अट्ठावीस-सत्तावीस छव्वीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीसपयडिट्ठाणाणि। अभवसिद्धि० अत्थि छव्वीसपयडिट्ठाणं।

§२३४. खइयसम्माइट्ठी० अत्थि एक्कवीस-तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-चत्तारि-तिण्णि-दोण्णि-एगपयडिट्ठाणाणि। वेदगसम्माइट्ठी० अत्थि अट्ठावीस-चउवीस-तेवीस-बावीसपयडिट्ठाणाणि। उवसम० अत्थि अट्ठावीस-चउवीस०ट्ठाणाणि। एवं सम्मामि०। सासण० अत्थि अट्ठावीसाए ट्ठाणं।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

§ २३२. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके ओघके समान स्थान होते हैं। इतनी विशेषता है कि इनके सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान नहीं होते। इसीप्रकार मन:पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। परिहारविशुद्धिसंयतोंके अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। इसीप्रकार संयतासंयतोंके कहना चाहिये।

§ २३३. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कापोतलेश्यावाले जीवोंके वैक्रियिककाययोगी जीवोंके समान सत्त्वस्थान होते है। इतनी विशेषता है कि इनके बाईस प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है। तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और असंयत जीवोंके अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। अभव्य जीवोंके छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान होता है।

विशेषार्थ–प्रथम नरकके नारकियोंके और अविरतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके अपर्याप्त अवस्थामें कापोत लेश्या होती है। अत: कापोतलेश्यामें २२ प्रकृतिरूप स्थान बन जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ २३४. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिरूप स्थान होते है। उपशम सम्यग्दृष्टियोंके अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके भी उक्त दो स्थान जानना चाहिये। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके एक अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थान होता है।

§३२५.संपहि समुक्कित्तणं भणिय चुण्णिसुत्ताइरिएण सूचियाणं उच्चारणाइरिएण समुक्कित्तणा सादि० अणादि० धुव० अद्धुव० एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं भुजगारो पदणिक्खेवो वड्ढि त्ति उद्दिट्ठाणमहियाराणं परूवणाए कीरमाणाए ताव चुण्णिसुत्तसूइदअत्थाहियाराणमुच्चारणाइरियस्स उच्चारणं भणिस्सामो। तं जहा—सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण छव्वीसाए ट्ठाणं किं सादियं किमणादियं किं धुवं किमद्धुवं वा? सादियं वा अणादियं वा धुवं वा अद्धुवं वा। सेसाणि ट्ठाणाणि सादि-अद्धुवाणि। एवं मदि-सुदअण्णाण-असंजद-अचक्खु०-

विशेषार्थ—उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके २३ और २२ प्रकृतिरूप स्थानोंके नहीं कहनेका कारण यह है कि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं करते हैं। तथा उपशमसम्यग्दृष्टियोंके समान सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके भी २८ और २४ ये दो स्थान होते हैं। ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त कर सकता है तथापि जिसने सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना कर दी है ऐसा २७ विभक्तिस्थानवाला जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता। किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित कर्मप्रकृतिमें बतलाया है कि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें २८, २७ और २४ ये तीन विभक्तिस्थान होते हैं। इससे यह निश्चित होता है कि कर्मप्रकृतिके अभिप्रायानुसार २७ विभक्तिस्थानवाला जीव भी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार प्रकृतिस्थान समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§३२५.इस प्रकार समुत्कीर्तनाका कथन करके चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये और उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये समुत्कीर्तना, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व,भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि इन अधिकारोंकी प्ररूपणा करते समय पहले चूर्णिसूत्रके द्वारा सूचित किये गये अधिकारोंकी उच्चारणाचार्यके द्वारा कही गई उच्चारणावृत्तिको कहते हैं। वह इस प्रकार है—

सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा ओघ और आदेशके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है क्या अध्रुव है? छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान सादि भी है, अनादि भी है, ध्रुव भी है और अध्रुव भी है। इस स्थानको छोड़कर शेष सभी स्थान सादि और अध्रुव हैं। इसीप्रकार मतिअज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, मिथ्या-

मिच्छा०-भवसिद्धि० वत्तव्वं। णवरि, भवसिद्धिएसु धुवं णत्थि। पदविसेसो च जाणियव्वो। अभवसिद्धिएसु अणादियं धुवं च। सेसासु मग्गणासु सादि अद्धुवं।

एवं सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमो समत्तो।

❀सामित्तं त्ति जं पदं तस्स विहासा पढमाहियारो।

§२३६. कुदो, चोद्दसमग्गणट्ठाणाणुगयन्थाणमाहारत्तणेण अवट्ठाणादो। 'तस्स' अहियारस्स एसा 'विहासा' परूवणा त्ति एदेण सिस्ससंभालणं कयं।

❀तं जहा—एक्किस्से विहत्तिओ को होदि ?

§२३७. एदं पुच्छासुत्तं किमट्ठं वुच्चदे ? सत्थस्स पमाणभावपदुप्पायणट्ठं। कधं

दृष्टि और भव्यजीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके ध्रुवपद नहीं पाया जाता है। यहां पदविशेष अर्थात् जिस मार्गणामें जितने सत्त्वस्थान हैं वे स्थान समुत्कीर्तनासे जान लेना चाहिये। अभव्य जीवोंके अनादि और ध्रुव ये दो पद पाये जाते हैं। शेष मार्गणाओंमें जहां जितने सत्त्वस्थान होते हैं वे सादि और अध्रुव होते हैं।

**विशेषार्थ**—२६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सादि और अनादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके पाया जाता है इसलिये इसमें सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं। किन्तु शेष सत्त्व-स्थान अनादि मिथ्यादृष्टिके नहीं होते इसलिये उनमें सादि और अध्रुव ये दो विकल्प ही प्राप्त होते हैं। मूलमें जो मतिअज्ञान आदि मार्गणाएं गिनाई हैं वे सादि और अनादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके सम्भव हैं अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है। किन्तु भव्य जीवोंके जब कर्मोंके सम्बन्धकी ध्रुवता नहीं स्वीकार की गई है तब यहां ध्रुव भंग कैसे प्राप्त हो सकता है। यही सबब है कि इनके ध्रुव पदका निषेध किया है। इन मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाएं बदलती रहती हैं इसलिये उनके सभी प्रकृति-स्थानोंकी अपेक्षा सादि और अध्रुव ये दो ही पद बतलाये हैं। किन्तु अभव्य मार्गणा सदा एकसी रहती है उसमें परिवर्तन नहीं होता और उसमें एक २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान ही पाया जाता है इसलिये उसमें उक्त स्थानकी अपेक्षा अनादि और ध्रुव ये दो ही पद कहे हैं। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार सादि, अनादि ध्रुव और अध्रुवानुगम समाप्त हुआ।

**✻स्वामित्व नामका जो पद है उसका विवरण करते हैं, यह पहला अर्थाधिकार है।**

§२३६. चूंकि यह चौदह मार्गणास्थानोंके अर्थाधिकारोंका मूल आधार है अतः यह पहला अधिकार है। उस अधिकारकी यह विभासा अर्थात् विशेष रूपसे प्ररूपणा की जाती है। इससे शिष्यको सावधान किया गया है।

**✻वह इस प्रकार है—एकप्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ?**

§२३७. **शंका**—यह पृच्छासूत्र किसलिये कहा है ?

पुच्छादो पमाणभावावगमो ? एस गोदमसामिपुच्छा तित्थियरविसया जेण तेण पमाणत्तमवगम्मदे, सगकत्तारत्तं वा अवणिदमेदेण सुत्तेण।

**ॐणियमा मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा खवओ एक्किस्से विहत्तिए सामिओ।**

§२३८. मणुस्सो चेव, णिरय-तिरिक्ख-देवगईसु मोहक्खवणाए अभावादो। तं पि कुदो णव्वदे ? 'णियमा मणुस्सो' त्ति वयणादो। 'वा' सद्देण ण अण्णगईणं गहणं; मणुस्सिणी-समुच्चयट्ठं ठवियस्स अण्णगइगहणविरोहादो। विदिओ 'वा' सद्दो मणुस्सिणीसमुच्चयट्ठो त्ति काऊण पढमं 'वा' सद्दो गइसमुच्चयट्ठो त्ति किण्ण घेप्पदे ? ण, दोण्हं 'वा'सद्दाणं

समाधान–शास्त्रकी प्रमाणताके प्रतिपादन करनेके लिये कहा है।

शंका–पृच्छाके द्वारा शास्त्रकी प्रमाणताका ज्ञान कैसे होता है ?

समाधान–चूंकि यह पृच्छा गौतम स्वामीने तीर्थंकर महावीर भगवान से की है। अतः इससे शास्त्रकी प्रमाणताका ज्ञान हो जाता है।

अथवा, चूर्णिसूत्रकारने इस सूत्रके द्वारा अपने कर्तृत्वका निवारण कर दिया है अर्थात् इससे उन्होंने यह सूचित किया है कि यह वस्तु उनकी स्वयं की उपज नहीं है, किन्तु गौतम स्वामीने भगवान महावीरसे जो प्रश्न किये थे और उन्हें उनका जो उत्तर प्राप्त हुआ था उसे ही उन्होंने निबद्ध किया है।

***नियमसे क्षपक मनुष्य और मनुष्यनी ही एकप्रकृतिक स्थानविभक्तिका स्वामी होता है।**

§२३८. मनुष्य ही एक प्रकृतिकस्थानविभक्तिका स्वामी है, क्योंकि नरकगति, तिर्यंच-गति, और देवगतिमें मोहनीय कर्मकी क्षपणा नहीं होती है।

शंका–नरक, तिर्यंच और देवगतिमें मोहनीय कर्मकी क्षपणा नहीं होती यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान–चूर्णिसूत्रमें आये हुए 'णियमा मणुस्सो' इस वचनसे जाना जाता है कि उक्त तीन गतियोंमें मोहनीय कर्मका क्षय नहीं होता है।

यदि कहा जाय कि 'मणुस्सो वा' यहां स्थित 'वा' शब्दसे अन्य नरकादि गतियोंका ग्रहण हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि यहां पर 'वा' शब्द मनुष्यनियोंके समुच्चयके लिये रखा गया है, अतः उससे अन्य गतिका ग्रहण मानने में विरोध आता है।

शंका–'मणुस्सिणी वा' यहां पर स्थित दूसरा 'वा' शब्द मनुष्यनियोंके समुच्चयके लिये है ऐसा मानकर पहला 'वा' शब्द अन्य गतियोंके समुच्चयके लिये है ऐसा क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है ?

उवसमुवए चेव पउत्तीदो। 'मणुस्सो' त्ति वुत्ते पुरिस-णवुंसयवेदविसेसणोवलक्खिय-मणुस्साणं गहणमण्णहा तत्थ एक्किस्से विहत्तीए अभावप्पसंगादो। 'खवओ' त्ति णिद्देसो उवसामयपडिसेहफलो। कुदो? तत्थ एक्कस्स वि कम्मस्स खवणाभावेण सयलपयडीणं घट्टकयाहलजलवि(चि)-क्खल्लो व्व उवसंतभावेण अवट्ठाणादो।

*एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं विहत्तिओ।

§२३६. जहा एक्किस्से विहत्तीए सामित्तं वुत्तं तहा एदेसिं ट्ठाणाणं वत्तव्वं, मणुस्सक्खवगं मोत्तूण अण्णत्थ खवणपरिणामाभावादो। तं कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव सुत्तादो। ते परिणामा मणुस्सेसु व अण्णत्थ किण्ण होंति? साहावियादो। णवरि, पंचण्हं विहत्ती मणुस्सेसु चेव, ण मणुस्सिणीसु; तत्थ सत्तणोकसायाणमक्कमेण खवणुवलंभादो।

*एक्कावीसाए विहत्तिओ को होदि? खीणदंसणमोहणिज्जो।

**समाधान**-नहीं, क्योंकि उक्त अर्थके समुच्चय करनेमें ही दोनों 'वा' शब्दोंकी प्रवृत्ति होती है, अतः प्रथम 'वा' शब्दके द्वारा अन्य गतियोंका समुच्चय नहीं किया जा सकता है।

चूर्णिसूत्रमें 'मणुस्सो' ऐसा कहनेपर पुरुषवेद और नपुंसकवेदसे युक्त मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा नपुंसकवेदी मनुष्योंमें एक प्रकृतिस्थान विभक्तिके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। चूर्णिसूत्रमें 'क्षपक' पदसे उपशामकोंका निषेध किया है, क्योंकि उपशामकोंके एक भी कर्मका क्षय न होकर जिसप्रकार जलमें निर्मलीफलको घिस कर डालने से उसका कीचड़ उपशान्त होजाता है उसी प्रकार समस्त कर्मप्रकृतियां उपशान्तरूपसे अवस्थित रहती हैं।

*इसीप्रकार दो, तीन, चार, पांच, ग्यारह, बारह और तेरह प्रकृतिरूप स्थानोंके स्वामी नियमसे मनुष्य और मनुष्यनी होते हैं।

§२३६. जिसप्रकार एक विभक्तिका स्वामी कहा उसीप्रकार इन स्थानोंका स्वामी कहना चाहिये, क्योंकि मनुष्य ही क्षपक होता है। उसे छोड़ कर अन्य देव नारक आदि जीवोंमें क्षपणाके योग्य परिणाम नहीं होते।

**शंका**-अन्य गतियोंमें क्षपणारूप परिणाम नहीं होते यह कैसे जाना जाता है?

**समाधान**-इसी सूत्रसे जाना जाता है।

**शंका**-वे परिणाम मनुष्योंके समान अन्यत्र क्यों नहीं होते?

**समाधान**-ऐसा स्वभाव है।

यहां इतनी विशेषता है कि पांच प्रकृतिरूप स्थान मनुष्योंमें ही पाया जाता है मनुष्यनियोंमें नहीं, क्योंकि मनुष्यनियोंके सात नोकषायोंका एक साथ क्षय होता है।

*इक्कीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी कौन होता है? जिसने दर्शनमोहनीयका

§२४०. दंसणमोहणीयक्खवणा वि चारित्तमोहणीयक्खवणं व मणुस्सेसु चेव होदि; 'णियमा मणुस्सगदीए' त्ति वयणादो। तम्हा णियमा मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा खवओ त्ति एत्थ वि सामित्तं वत्तव्वं ? ण, खीणदंसणमोहणीयं चउग्गईसु उप्पज्जमाणं पेक्खिदूण णेरईओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो खीणदंसणमोहणिज्जो एक्कवीसपयडिट्ठाणस्स सामी होदि त्ति तहा वयणादो। खविय चउग्गइसुप्पण्णाणं पुव्वुत्तट्ठाणाणि चउगईसु किण्ण लब्भंति ? ण, चारित्तमोहक्खवयाणं णिब्बीजीकयसंतकम्माणं सेसगईसु उप्पत्तीए अभावादो।

*बावीसाए विहत्तीओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे समत्ते सेसे।

§२४१.एत्थ वि 'मणुस्सो' त्ति वुत्ते पुरिस-णवुंसयवेदजीवाणं गहणं; अण्णहा णवुंसय-

क्षय कर दिया है ऐसा जीव इक्कीस प्रकृतिकस्थानका स्वामी होता है।

§२४०. शंका–जिसप्रकार चरित्रमोहनीयका क्षय मनुष्योंके ही होता है, उसीप्रकार दर्शनमोहनीयका क्षय भी मनुष्योंके ही होता है, क्योंकि 'णियमा मणुस्सगदीए' अर्थात् दर्शनमोहनीयका क्षय नियमसे मनुष्यगतिमें होता है ऐसा आगमका वचन है, अतएव इस सूत्रमें भी स्वामित्वको बतलाते हुए 'णियमा मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा खवओ' ऐसा कहना चाहिये ?

समाधान–नहीं, क्योंकि जिनके दर्शनमोहनीयका क्षय होगया है ऐसे जीव चारों गतियोंमें उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं, अतः जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है ऐसा नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव इक्कीस प्रकृतिकस्थानका स्वामी होता है इसलिये सूत्रमें 'खीणदंसण मोहणिज्जो' ऐसा सामान्य वचन दिया है।

शंका–चारित्रमोहनीयका क्षय करके चारों गतियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके पूर्वोक्त एक, दो आदि प्रकृतिकस्थान क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान–नहीं, क्योंकि चारित्र मोहनीयका क्षय करनेवाले जीव सत्तामें स्थित कर्मोंको निर्बीज कर देते हैं अतः उनकी शेष गतियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है।

*बाईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? जिस मनुष्य या मनुष्यनीके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होकर सम्यक्त्व शेष है वह बाईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है।

§२४१. यहां पर भी 'मणुस्सो' ऐसा कहने से पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये अन्यथा नपुंसकवेदी मनुष्योंके दर्शनमोहनीयके क्षयके अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायगा।

वेदेसु दंसणमोहक्खवणाभावप्पसंगादो। मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेसु खविदेसु पुणो पच्छा सम्मत्तं खवेंतेण संखेज्जट्ठिदिखंडयसहस्साणि पादिय पच्छा चरिमे सम्मत्तट्ठिदि-खंडए पादिदे कदकरणिज्जो णाम होदि। तस्स वि बावीसाए ट्ठाणं; तत्थ सम्मत्तसंत-सब्भावादो। सो वि कालं काऊण सव्वत्थ उप्पज्जदि। तेण 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' त्ति वयणं ण घडदे। किंतु णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा बावीसविहत्तीए सामि त्ति वत्तव्वं ? ण एस दोसो; इच्छिज्जमाणत्तादो। सुत्तविरुद्धं कथमब्भुवगंतुं सक्किज्जदे ? ण सुत्तविरुद्धो एसत्थो; सुत्तेणेव उवइट्ठत्तादो। तं जहा–जदि मणुस्सा चेव बावीसविहत्तिया होंति तो एक्किस्से विहत्तियस्स सामित्ते भण्णमाणे जहा णियमा मणुस्सो णियमा खवगो सामी होदि त्ति भणिदं तहा एत्थ वि भणेज्ज ? ण च एवं; णियमसद्दाभावादो। तम्हा चदुसु वि गदीसु बावीसविहत्तिएण होदव्वं। जदि एवं, तो सुत्ते सेसगइग्गहणं किण्ण कयं ? ण, तालपलंबसुत्तं व देसामासियभावेण

शंका–मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके क्षीण हो जानेपर उसके अनन्तर सम्यक्-प्रकृतिको क्षय करने वाला जीव जब सम्यक्प्रकृतिके संख्यात हजार स्थितिखण्डोंका घात करके उसके अन्तिम स्थितिखण्डका घात करता है तब उसकी कृतकृत्य वेदक संज्ञा होती है। इस जीवके भी बाईस प्रकृतिक स्थान पाया जाता है, क्योंकि यहां पर सम्यक्प्रकृतिकी सत्ता पाई जाती है। ऐसा जीव मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है, इसलिये मनुष्य और मनुष्यनी बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी हैं, यह वचन घटित नहीं होता अतः नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव बाईस प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिये ?

समाधान–यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि चारों गतिके जीव बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी हैं यह बात इष्ट ही है।

शंका–चारों गतिके जीव बाईस प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी हैं यह कथन उक्त सूत्रके विरुद्ध है। फिर इसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

समाधान–यह अर्थ सूत्रविरुद्ध नहीं है, क्योंकि सूत्रमें ही इसका उपदेश पाया जाता है। उसका खुलासा इस प्रकार है–यदि मनुष्य ही बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी होते तो एक प्रकृतिक स्थानके स्वामित्वका कथन करते समय जिसप्रकार 'णियमा मणुस्सो णियमा खवगो सामी होदि' यह कहा है उसी प्रकार यहां भी कहते। परन्तु यहां ऐसा नहीं कहा क्योंकि उपर्युक्त सूत्रमें 'नियम' शब्द नहीं पाया जाता है, अतः चारों ही गतियोंमें बाईस प्रकृतिक स्थान होना चाहिये यह सिद्ध होता है।

शंका–यदि ऐसा है तो सूत्रमें शेष गतियोंका ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान–नहीं, क्योंकि जिस प्रकार 'तालपलंब' सूत्र देशामर्षकभावसे अशेष वनस्प-

सेसगइपरूवयत्तादो ।

§२४२. अथवा 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' त्ति तईयाए विहत्तीए अत्थे पढमाविहत्ती णिद्देसो दट्ठव्वो। तेण मणुस्सेण वा मणुस्सिणीए वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे सम्मत्ते च सेसे बावीसविहत्तीओ होदि त्ति एदेण सुत्तेण बावीसविहत्तियसंभवपरूवणादुवारेण सामित्तपरूवणा कदा । तेण बावीससंतकम्मिओ अण्णदरो सामि त्ति सुत्तत्थो दट्ठव्वो। अथवा, जइवसहाइरियस्स वे उवएसा । तत्थ कदकरणिज्जो ण मरदि त्ति उवदेसमस्सिदूण एदं सुत्तं कदं, तेण मणुस्सा चेव बावीसविहत्तिया त्ति सिद्धं । कदकरणिज्जो मरदि त्ति उवएसो जइवसहाइरियस्स अत्थि त्ति कथं णव्वदे ? 'पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि णियमा देवेसु उववज्जदि । जदि णेरइएसु तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उववज्जदि तो णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो' त्ति जइवसहाइरियपरूविदचुण्णिसुत्तादो । णवरि, उच्चारणाइरियउवएसेण पुण कदकरणिज्जो ण मरइ चेवेत्ति णियमो

तियोंका प्रतिपादक है, उसीप्रकार प्रकृत सूत्र भी देशामर्षकभावसे शेष तीन गतियोंका प्ररूपण करता है ।

§२४२. अथवा 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' यह तृतीया विभक्तिके अर्थमें प्रथमा विभक्तिका निर्देश जानना चाहिये । इसलिये उक्त सूत्रका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य या मनुष्यनीके द्वारा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर और सम्यक्प्रकृतिके शेष रहने पर चारों गतियोंका जीव बाईस प्रकृतिरूप स्थानका स्वामी होता है । इस प्रकार इस सूत्रके द्वारा बाईस प्रकृतिक स्थान किसके संभव है इसकी प्ररूपणाद्वारा उसके स्वामित्वकी प्ररूपणा की । अतः बाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला किसी भी गतिका जीव उक्त स्थानका स्वामी है यह सूत्रका अर्थ समझना चाहिये ।

अथवा, यतिवृषभ आचार्यके दो उपदेश हैं । उनमेंसे कृतकृत्यवेदक जीव मरण नहीं करता है इस उपदेशका आश्रय लेकर यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है, इसलिये मनुष्य ही बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी होते हैं यह बात सिद्ध होती है ।

**शंका**–कृतकृत्यवेदक जीव मरता है यह उपदेश यतिवृषभाचार्यका है यह कैसे जाना जाता है ?

**समाधान**–'कृतकृत्यवेदक जीव यदि कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें मरण करता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है । किन्तु जो कृतकृत्यवेदक जीव नारकी, तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है वह नियमसे अन्तर्मुहूर्त कालतक कृतकृत्यवेदक रह कर ही मरता है' इसप्रकार यतिवृषभाचार्यके द्वारा कहे गये चूर्णिसूत्रसे जाना जाता है कि कृतकृत्यवेदक जीव मरता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार कृत्यकृत्य वेदक

**णत्थि; चउसु वि गईसु बावीसविहत्तियसंतसमुक्कित्तणादो।**

सम्यग्दृष्टि जीव नहीं ही मरता है ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि उच्चारणाचार्यने चारों ही गतियोंमें बाईस प्रकृतिक विभक्ति स्थानका सत्त्व स्वीकार किया है।

**विशेषार्थ**—यहां यतिवृषभ आचार्यने बाईस विभक्तिस्थानका स्वामी मनुष्य और मनुष्यनीको बतलाया है। इसपर शंकाकारका कहना है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला मनुष्य जब मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर चुकता है तब बाईस विभक्ति स्थानका स्वामी होता है। इस समय सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थिति आठ वर्ष प्रमाण होती है। यद्यपि जब तक यह जीव कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नहीं हो जाता है तब तक नहीं मरता है इसलिये इस अपेक्षासे बाईस विभक्तिस्थानका स्वामी केवल मनुष्य और मनुष्यनी भले ही हो जाओ, पर कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि हो जाने पर इसका मरण भी देखा जाता है और ऐसा जीव मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है। अतः बाईस विभक्तिस्थानका स्वामी चारों गतिका जीव होता है यतिवृषभ आचार्यको ऐसा कहना चाहिये था। शंकाकारकी इस शंकाका वीरसेन स्वामीने तीन प्रकारसे समाधान किया है। पहले तो यह बतलाया है कि बाईस विभक्तिस्थानके स्वामीका कथन करनेवाले उक्त चूर्णिसूत्रमें 'णियमा' पद न होनेसे यह जाना जाता है कि इस स्थानका स्वामी चारों गतियोंका जीव होता है। यद्यपि उक्त सूत्रमें चारों गतियोंका ग्रहण नहीं किया है फिर भी उक्त सूत्र तालप्रलम्ब सूत्रके समान देशामर्षक है अतः 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' इस पदसे मनुष्यगतिके ग्रहणके समान अन्य तीन गतियोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये। दूसरा समाधान इसप्रकार किया है कि सूत्रमें 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी' इसप्रकार जो प्रथमाविभक्त्यन्त पद है वह तृतीया विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये। और इसप्रकार यह तात्पर्य निकल आता है कि बाईस विभक्ति स्थानका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है पर उसकी समाप्ति चारों गतियोंमें हो सकती है। तीसरा समाधान इसप्रकार किया है कि इस विषयमें यतिवृषभ आचार्यके दो उपदेश जानना चाहिये। एक उपदेशके अनुसार कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव मरता नहीं है और दूसरे उपदेशके अनुसार मरता भी है। इनमेंसे पहले उपदेशका संग्रह यहां किया गया है तथा दूसरे उपदेशका संग्रह दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नामक अधिकारमें किया गया है। इसप्रकार वीरसेनस्वामीने उक्त शंकाके जो तीन उत्तर दिये हैं उनके देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि पहले दो समाधानोंके द्वारा वीरसेनस्वामीने यतिवृषभ आचार्यके भिन्न दो उपदेशोंके समन्वय करनेका प्रयत्न किया है। और तीसरे उत्तरमें समन्वय करनेकी दिशा छोड़कर मतभेदको स्वीकार कर लिया है। मालूम होता है कि वीरसेनस्वामीके सामने ऐसा कोई स्पष्ट आगमवचन न था जिससे 'कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि

*** तेवीसाए विहत्तिओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ते सेसे।**

§ २४३. णियमग्गहणमेत्थ कायव्वं सेसगइणिवारणट्ठं ? ण, परट्ठपडिसेहमुहेण सगट्ठ-परूवयसद्दम्मि णियमुच्चारणस्स फलाभावादो। अत्रोपयोगी श्लोकः—

निरस्यन्ती परस्यार्थं स्वार्थं कथयति श्रुतिः।
तमो विधुन्वती भास्यं यथा भासयति प्रभा ॥ २ ॥

§ २४४. जदि एवं तो एक्किस्से विहत्तीए सामित्तसुत्ते वि णियमग्गहणं ण कायव्वं ? ण, तस्स खवगा मणुस्सा चेवेत्ति अवहारफलत्तादो। मिच्छत्तं खविय सम्मामिच्छत्तं खवेंतो ण मरदि त्ति कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो। कधमेक्कं सुत्तं दोण्ह-

जीव नहीं मरता है' इस मतकी पुष्टि की जासके। फिर भी चूंकि यतिवृषभ आचार्यने दो स्थलोंपर दो प्रकारसे निर्देश किया है इससे सिद्ध होता है कि यतिवृषभ आचार्यके सामने दो मान्यताएं रहीं होंगी। यहां इतनी विशेषता है कि उच्चारणाचार्यके उपदेशसे कृत-कृत्यवेदक जीव मरता ही नहीं है ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि उच्चारणाचार्यने चारों ही गतियोंमें बाईस प्रकृतिक स्थानके अस्तित्वका कथन किया है।

*** तेईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? जिस मनुष्य या मनुष्यनीके मिथ्यात्वका क्षय होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व शेष है वह तेईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है।**

§ २४३. **शंका**–इस सूत्रमें शेष तीन गतियोंके निवारण करनेके लिये 'नियम' पदका ग्रहण करना चाहिये ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि प्रत्येक शब्द दूसरे शब्दसे व्यक्त होनेवाले अर्थका प्रति-षेध करके अपने अर्थका प्ररूपण करता है, इसलिये सूत्रमें नियम शब्दके कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। अब यहां उपयोगी श्लोक देते हैं–

'जिसप्रकार प्रभा अन्धकारका नाश करके प्रकाश्यमान पदार्थको प्रकाशित करती है उसीप्रकार शब्द दूसरे शब्दके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका निराकरण करके अपने अर्थको कहता है ॥ २ ॥'

§ २४४. **शंका**–यदि ऐसा है तो एक प्रकृतिक स्थानके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रमें भी 'नियम' पदका ग्रहण नहीं करना चाहिये ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि उसके स्वामी क्षपक मनुष्य ही होते हैं यह बतलानेके लिये वहां 'नियम' पद दिया है।

**शंका**–मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यग्मिथ्यत्वका क्षय करनेवाला जीव नहीं मरता, यह कैसे जाना जाता है ?

मत्थाणं परूवयं ? ण, दिवायरस्स अंधयारविणामणदुवारेण घडादिविविहत्थपयासयस्सुवलंभादो ।

*** चउवीसाए विहत्तिओ को होदि ? अणंताणुबंधिविसंजोइदे सम्मादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा अण्णयरो ।**

§ २४५. अट्ठावीससंतकम्मिएण अणंताणुबंधीविसंजोइदे चउवीसविहत्तिओ होदि । को विसंजोअओ ? सम्मादिट्ठी । मिच्छाइट्ठी ण विसंजोएदि त्ति कुदो णव्वदे ? सम्मादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा चउवीसविहत्तिओ होदि त्ति एदम्हादो सुत्तादो णव्वदे । अणंताणुबंधिविसंजोइदसम्मादिट्ठिम्हि मिच्छत्तं पडिवण्णे चउवीसविहत्ती किण्ण होदि ? ण, मिच्छत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव चारित्तमोहकम्मक्खंधेसु अणंताणुबंधिसरूवेण परिणदेसु अट्ठावीसपयडिसंतुप्पत्तीदो । सम्मामिच्छाइट्ठी अणंताणुबंधिचउक्कं ण

समाधान–इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका–एक सूत्र दो अर्थोंका कथन कैसे कर सकता है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि सूर्य अन्धकारका विनाश करके उसके द्वारा घटादि नाना पदार्थोंका प्रकाशन करता हुआ देखा जाता है । इससे प्रतीत होता है कि एक सूत्र दो अर्थोंका कथन कर सकता है ।

*** चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करदेनेपर किसी भी गतिका सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है।**

§ २४५. अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर देने पर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला होता है ।

शंका–विसंयोजना कौन करता है ?

समाधान–सम्यग्दृष्टि जीव विसंयोजना करता है ।

शंका–मिथ्यादृष्टि जीव विसंयोजना नहीं करता यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान–'सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी है' इस सूत्रसे जाना जाता है कि मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करता है ।

शंका–अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होजानेपर मिथ्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी क्यों नहीं होता है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि ऐसे जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही चारित्रमोहनीयके कर्मस्कन्ध अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणत हो जाते हैं अतः उसके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता न रहकर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी ही सत्ता पाई जाती है ।

विसंजोएदि त्ति कुदो णव्वदे ? उवरि भण्णमाणचुण्णिसुत्तादो। अविसंजोएंतो सम्मामिच्छाइट्ठी कथं चउवीसविहत्तिओ ? ण, चउवीससंतकम्मियसम्मादिट्ठीसु सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णेसु तत्थ चउवीसपयडिसंतुवलंभादो। चारित्तमोहणीयं तत्थ अणंताणुबंधिसरूवेण किण्ण परिणमइ ? ण, तत्थ तप्परिणमणहेदुमिच्छत्तुदयाभावादो, सासणे इव तिव्वसंकिलेसाभावादो वा।

§ २४६. का विसंजोयणा ? अणंताणुबंधिचउक्कक्खंधाणं परसरूवेण परिणमणं विसंजोयणा। ण परोदयकम्मक्खवणाए वियहिचारो, तेसिं परसरूवेण परिणदाणं पुणरुप्पत्तीए अभावादो। अण्णदरो त्ति णिद्देसो किंफलो ? णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो

शंका–सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान–आगे कहे जानेवाले चूर्णिसूत्रसे जाना जाता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता है।

शंका–जबकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता है तो वह चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कैसे हो सकता है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि चौबीस कर्मोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर उनके भी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता बन जाती है।

शंका–सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें जीव चारित्रमोहनीयको अनन्तानुबन्धीरूपसे क्यों नहीं परिणमा लेता है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि वहां पर चरित्रमोहनीयको अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणमानेका कारणभूत मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता है, अथवा सासादन गुणस्थानमें जिसप्रकारके तीव्र संक्लेशरूप परिणाम पाये जाते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उसप्रकारके तीव्र संक्लेशरूप परिणाम नहीं पाये जाते हैं, इसलिये सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चारित्रमोहनीयको अनन्तानुबन्धीरूपसे नहीं परिणमाता है।

§ २४६. शंका–विसंयोजना किसे कहते हैं ?

समाधान–अनन्तानुबन्धी चतुष्कके स्कन्धोंके परप्रकृतिरूपसे परिणमा देनेको विसंयोजना कहते हैं।

विसंयोजनाका इस प्रकार लक्षण करनेपर जिन कर्मोंकी परप्रकृतिके उदयरूपसे क्षपणा होती है उनके साथ व्यभिचार ( अतिव्याप्ति ) आ जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीको छोड़कर पररूपसे परिणत हुए अन्यकर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं पाई जाती है। अतः विसंयोजनाका लक्षण अन्य कर्मोंकी क्षपणामें घटित न होनेसे अतिव्याप्ति दोष नहीं आता है।

**देवो वा सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी च सामिओ होदि त्ति जाणावणफलो ।**

**शंका**–चूर्णिसूत्रमें जो 'अन्यतर' पदका निर्देश किया है उसका क्या फल है ?

**समाधान**–नारकी, तिर्यंच, मनुष्य या देव इनमेंसे किसीभी गतिका सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है इस बातके ज्ञान करानेके लिये चूर्णिसूत्रमें 'अन्यतर' पदका ग्रहण किया है ।

**विशेषार्थ**–अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना वेदकसम्यग्दृष्टि करता है यह तो सर्वसम्मत मान्यता है । पर उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है इसमें दो मत हैं । कुछ आचार्योंका मत है कि उपशमसम्यक्त्वका काल थोड़ा है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका काल अधिक है अतः उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करता है । पर कुछ आचार्योंका मत है कि उपशमसम्यक्त्वके कालमें भी अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है। यह दूसरा मत प्रवाह रूपसे चला आता है, अतः मुख्य है। इससे यह तो निश्चित हो जाता है कि सम्यग्दृष्टि जीव ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करता है । पर ऐसा जीव यदि मिश्र प्रकृतिके उदयसे मिश्रगुणस्थानमें चला जाता है तो वहां भी अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अभाव बन जाता है अतः चौबीस विभक्तिस्थानका स्वामी सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव ही होता है । ऐसा जीव सासादन और मिथ्यात्वमें जा सकता है । पर वहां पहले समयसे ही अनन्तानुबन्धीका बन्ध होने लगता है और चारित्रमोहनीयकी अन्य प्रकृतियोंका अनन्तानुबन्धिरूपसे संक्रमण भी, अतः वहां भी चौबीस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है । यहां वीरसेन स्वामीने विसंयोजनाका 'अनन्तानुबन्धी चतुष्कके स्कन्धोंका परप्रकृतिरूपसे परिणमन करना विसंयोजना कहलाती है' यह लक्षण किया है । यद्यपि और भी ऐसी बहुतसी कर्मप्रकृतियां हैं जिनका परोदयरूपसे क्षय होता है । अतः विसंयोजनाका लक्षण परोदयसे होने वाली अन्य प्रकृतियोंकी क्षपणामें चला जाता है इसलिये अतिव्याप्ति दोष आता है । पर इसपर वीरसेन स्वामीका कहना है कि जिस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होनेपर उसकी पुनः संयोजना देखी जाती है उस प्रकार जिन प्रकृतियोंका अन्य प्रकृतियोंके उदयरूपसे क्षय होता है उनकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये विसंयोजनाका लक्षण अन्य प्रकृतियोंकी क्षपणामें नहीं जाता है और इसलिये अतिव्याप्ति दोष भी नहीं आता है । तात्पर्य यह है कि विसंयोजनाके उपर्युक्त लक्षणमें 'पुनः उत्पत्तिकी शक्ति रहते हुए' इतना पद और जोड़ लेना चाहिये इससे विसंयोजनाके लक्षणका परोदयसे होनेवाली कर्मक्षपणामें जो अतिव्याप्ति दोष आता था वह नहीं आता । पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो जाने पर उसकी पुनः संयोजना होती ही है । किन्तु इसका यह अभिप्राय है कि जिसके मिथ्यात्वकी सत्ता है उसके अनन्तानुबन्धीकी पुनः संयोजना हो सकती है । तथा

*** छव्वीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी णियमा ।**

§ २४७. एत्थतणमिच्छादिट्ठिणिद्देसो जेण सेसगुणट्ठाणपडिसेहफलो तेण णियमग्गहणं ण कायव्वमिदि ? ण, मिच्छादिट्ठी छव्वीसविहत्तिओ चेवेत्ति णियमपडिसेहट्ठं तक्का(तक्क-)रणादो ।

*** सत्तावीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी ।**

§ २४८. अट्ठावीससंतकम्मिओ उव्वेलिदसम्मत्तो मिच्छाइट्ठी सत्तावीसविहत्तिओ होदि । एत्थ वि पुव्विल्ल-णियमग्गहणमणुवट्टावेदव्वं, अण्णहा अट्ठावीस-छव्वीसट्ठाणाणं मिच्छादिट्ठिम्मि अभावप्पसंगादो त्ति वुत्ते ण; पुव्वावरसुत्तेहि तेसिं तत्थ अत्थित्तसिद्धीदो ।

*** अट्ठावीसाए विहत्तिओ को होदि ? सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी वा ।**

जिसने मिथ्यात्वका क्षय कर दिया है उसके अनन्तानुबन्धीकी उत्पत्ति नहीं ही होती ।

*** छब्बीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? नियमसे मिथ्यादृष्टि जीव छब्बीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है ।**

§ २४७. **शंका**–चूंकि इस सूत्रमें आये हुए 'मिथ्यादृष्टि' पदसे ही शेष गुणस्थानोंका निषेध होजाता है, अतः सूत्रमें 'नियम' पदका ग्रहण नहीं करना चाहिये ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला ही होता है, इसप्रकारके नियमके निषेध करनेके लिये चूर्णिसूत्रमें मिथ्यादृष्टि पदके साथ 'णियमा' पदका ग्रहण किया है । जिससे यह अभिप्राय निकल आता है कि मिथ्यादृष्टि जीव अन्य प्रकृतिक स्थानोंका भी स्वामी होता है । पर छब्बीस प्रकृतिक स्थान केवल मिथ्यादृष्टिके ही होता है अन्यके नहीं ।

*** सत्ताईस विभक्ति स्थानका स्वामी कौन होता है ? मिथ्यादृष्टि जीव सत्ताईस विभक्ति स्थानका स्वामी होता है ।**

§ २४८. अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है ।

**शंका**–इससे पहलेके सूत्रमें कहे गये नियम पदकी अनुवृत्ति इस चूर्णिसूत्रमें भी कर लेनी चाहिये, अन्यथा मिथ्यादृष्टिमें अट्ठाईस और छब्बीस प्रकृतिक विभक्ति स्थानोंके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है ।

**समाधान**–नहीं, क्योंकि इस सूत्रसे पिछले और अगले सूत्रके द्वारा मिथ्यादृष्टि जीवमें उक्त दोनों स्थानोंका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है ।

*** अट्ठाईस प्रकृतिक विभक्ति स्थानका स्वामी कौन होता है ? सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मि-**

§ २४६. सुगमत्तादो एत्थ ण वत्तव्वमत्थि । एवमोघेण जइवसहाइरियसामित्त-सुत्तत्थं परूविय संपहि उच्चारणाइरिय-उवसेण आदेसे सामित्तं भणिस्सामो ।

§ २५०. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज०-कायजोगि-चक्खुदं०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-सण्णि-आहारीणं मूलोघभंगो ।

§ २५१. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छाइट्ठिस्स सम्माइट्ठिस्स सम्मामिच्छाइट्ठिस्स वा। सत्तावीस-छव्वीसविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स मिच्छाइट्ठिस्स । चउवीस-बावीस-एक्कवीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स । एवं पढमाए पुढवीए; तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पज्ज०-देव-सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवेज्जे त्ति वत्तव्वं । बिदियादि जाव सत्तमी त्ति एवं चेव । णवरि, बावीस-एक्कवीसविहत्ती णत्थि । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण-जोदिसियत्ति वत्तव्वं ।

थ्यादृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव अट्ठाईस प्रकृतिक विभक्ति स्थानका स्वामी होता है ।

§ २४९. यह सूत्र सुगम है, अतः इस विषयमें अधिक कहने योग्य नहीं है । इस प्रकार ओघकी अपेक्षा यतिवृषभ आचार्यके स्वामित्व विषयक सूत्रोंका अर्थ कहकर अब उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार आदेशकी अपेक्षा स्वामित्वानुयोगद्वारका कथन करते हैं–

§ २५०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके भंग मूलोघके समान जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाओंमें सब विभक्तिस्थानोंका पाया जाना संभव है अतः इनमें स्वामित्वका कथन मूलोघके समान है ।

§ २५१. आदेशकी अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि किसी भी नारकीके अट्ठाईस विभक्ति स्थान होता है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्ति स्थान किसके होता है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि नारकीके होता है । चौबीस, बाईस और इक्कीस विभक्ति स्थान किसके होते हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें तथा तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच और पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म-ऐशान स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके कथन करना चाहिये । नरककी दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक नारकियोंके बाईस और इक्कीस विभक्तिरूप स्थान नहीं होते हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्च योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके भी कहना चाहिये ।

विशेषार्थ–सामान्यसे नारकियोंके २८, २७, २६, २४, २२ और २१ ये छह

§ २५२. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-विहत्ती कस्स ?

सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेंसे २८ सत्त्वस्थान नारकियोंके चारों गुणस्थानोंमें सम्भव है। कारण स्पष्ट है। २७ और २६ सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्टिके ही होते हैं, क्योंकि जिसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना की है वह २७ सत्त्वस्थानका स्वामी होता है। सो सम्यक्त्व-की उद्वेलना चारों गतिका मिथ्यादृष्टि ही करता है, इसलिये नारकी मिथ्यादृष्टिके २७ प्रकृतिक सत्त्वस्थान बन जाता है। इसी प्रकार २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी चारों गतिके मिथ्यादृष्टिके ही होता है। यह सत्त्वस्थान दो प्रकारसे प्राप्त होता है। एक तो जो अनादि मिथ्यादृष्टि होता है उसके यह सत्त्वस्थान पाया जाता है और दूसरे जिस मिथ्यादृष्टिने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी है उसके यह सत्त्वस्थान पाया जाता है। यतः नरकमें दोनों प्रकारके जीव सम्भव हैं अतः नारकी मिथ्यादृष्टिके २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी बन जाता है। अब रहे शेष तीन सत्त्वस्थान सो वे सम्यग्दृष्टि अवस्था में ही प्राप्त होते हैं। उसमें भी केवल अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवालेके २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके २२ प्रकृतिक व क्षायिक सम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। सामान्यसे नारकीके ये तीनों ही अवस्थाएं सम्भव हैं अतः यहां उक्त सत्त्वस्थान भी सम्भव है। इस प्रकार सामान्यसे नारकियोंके उक्त सत्त्वस्थान कैसे होते हैं इसका कारण बतलाया। प्रथम नरक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें भी उक्त सब अवस्थाएं सम्भव हैं अतः वहां भी वे सत्त्वस्थान पाये जाते हैं। किन्तु दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तकके जीव और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी, भवन वासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव इनमें कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षयिक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते; इसलिये इनके २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं पाये जाते हैं, शेष ३ सत्त्वस्थान पाये जाते हैं। यद्यपि यहां उच्चारणावृत्तिमे सामान्यसे सौधर्म और ऐशानवासी देवोंके २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी बतलाये हैं पर वे पुरुषवेदी देवोंके ही जानना चाहिये देवियोंके नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न नहीं होता ऐसा नियम है। एक बात और है और वह यह कि प्रकृतमे २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी सम्यग्दृष्टिको ही बतलाया है जब कि इसका स्वामी सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी होता है, सो यह सामान्य वचन है इसलिये कोई विरोध नहीं है। इसी प्रकार २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सासादन-सम्यग्दृष्टिके भी होता है। पर उच्चारणामे उसका उल्लेख नहीं किया है सो यहां सासादन-सम्यग्दृष्टिका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे अन्तर्भाव करके ही ऐसा विधान किया गया है ऐसा समझना चाहिये।

§ २५२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस

अण्णदरस्स। एवं मणुसअपज्ज०-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकाय-असण्णि-मदि-सुदअण्णाणि-विहंग-मिच्छाइट्ठी त्ति वत्तव्वं।

§ २५३. मणुसगईए मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं मूलोघभंगो। एवं पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि - ओरालियकायजोगि त्ति वत्तव्वं। सुक्कलेस्साए वि मणुसगइभंगो। णवरि, वावीसविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स देवस्स मणुस्सस्स वा अक्खीणदंसणमोहणीयस्स। णिरय-तिरिक्खेसु णत्थि। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीसविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स०। वावीसविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स।

विभक्तिस्थान किसके होते हैं? किसी एक लब्धपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचके होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पांचों स्थावर काय, असंज्ञी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी और मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। आशय यह है कि उक्त मार्गणावाले जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं और मिथ्यादृष्टियों के २८, २७ और २६ ये तीन सत्त्वस्थान पाये जाते हैं, अतः यहाँ ये तीन सत्त्वस्थान कहे हैं।

§ २५३. मनुष्य गतिमें सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके मूलोघके समान भंग कहना चाहिये। इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी और औदारिक काययोगी जीवोंके कहना चाहिये। शुक्ल लेश्यामें भी मनुष्य गतिके समान स्थान होते हैं। इतनी विशेषता है कि शुक्ल लेश्यामें बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है? जिसने दर्शनमोहनीयकी सम्यकत्व प्रकृतिका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे किसी एक देव या मनुष्यके बाईस विभक्ति स्थान होता है। नारकी और तिर्यंच जीवोंके बाईस विभक्ति स्थान नहीं होता। तात्पर्य यह है कि मनुष्य गतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें बाईस विभक्ति स्थान निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें ही पाया जाता है और देवोंको छोड़कर उत्तम भोगभूमिके तिर्यंच तथा पहले नरकके नारकियोंके अपर्याप्त अवस्थामें कापोत लेश्या ही होती है, अतः यहाँ शुक्ल लेश्याके साथ तिर्यंच और नारकियोंके बाईस विभक्ति स्थानका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस विभक्ति स्थान किसके होते हैं? किसी भी देवके होते हैं। बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है? जिसने दर्शनमोहनीयकी सम्यकत्व प्रकृतिका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी देवके होता है। आशय यह है कि ये देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं इस लिये इनके २८, २४, २२ और २१ ये चार सत्त्वस्थान ही पाये जाते हैं। २७ और २६ सत्त्वस्थान नहीं पाये जाते।

§ २५४. ओरालियमिस्स० अट्ठावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स तिरिक्ख-मणुस्स-मिच्छाइट्ठिस्स मणुस्सस्स सम्मादिट्ठिस्स वा । सत्तावीस-छव्वीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० दुगइमिच्छाइट्ठिस्स । चउवीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स[मणुस्स] सम्माइट्ठिस्स । वावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स दुगइअक्खीणदंसणमोहस्स । एक्कवीसविहत्ती कस्स ? दुगइसम्माइट्ठिस्स ।

§ २५५. वेउव्विय० अट्ठावीसविह० कस्स ? देव-णेरइयमिच्छा० सम्मादिट्ठिस्स

§ २५४. औदारिक मिश्र काययोगमें अट्ठाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि तिर्यंच या मनुष्यके तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्ति स्थान किसके होते हैं ? तिर्यंच और मनुष्य इन दोनों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । चौबीस विभक्ति स्थान किसके होता है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है । बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे उक्त दोनों गतियोंके किसी भी कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । इक्कीस विभक्ति स्थान किसके होता है ? उक्त दोनों गतियोंके सम्यग्दृष्टि जीवके होता है ।

**विशेषार्थ**–औदारिक मिश्र काययोग तिर्यंच और मनुष्योंके अपर्याप्त अवस्थामें होता है । अब देखना यह है कि औदारिक मिश्र काय योग अवस्थाके रहते हुए इन दो गतियोंमें से किस गतिमें कौनसा गुणस्थान रहते हुए कौन कौन सत्त्वस्थान होते हैं । यह तो सुनिश्चित है कि उपशम सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्य और तिर्यंचोंमें नहीं उत्पन्न होता । इसलिये उपशम सम्यकत्वकी अपेक्षा २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान इन दोनों गतियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें नहीं पाया जा सकता । कृतकृत्यवेदकके सिवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर तिर्यंचोंमें नहीं उत्पन्न होता, हां मनुष्योंमें अवश्य उत्पन्न हो सकता है, इसी से यहाँ औदारिक मिश्रकाययोगके रहते हुए मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंचको तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्यको २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी बतलाया है । २७ और २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान दोनों गतियोंके मिथ्यादृष्टिके होता है । यह स्पष्ट ही है । २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान मनुष्य सम्यग्दृष्टिके होनेका कारण यह है कि ऐसा वेदक सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मनुष्योंमें ही उत्पन्न होता है, तिर्यंचोंमें नहीं । शेष रहे २२ और २१ ये दो सत्त्वस्थान, सो ये दोनों गतियोंमें औदारिक मिश्र अवस्थाके रहते हुए उत्तम भोग भूमि अवस्थाकी अपेक्षा सम्भव हैं । इस प्रकार औदारिक मिश्र काययोगमें २८, २७, २६, २४, २२ और २१ ये छह सत्त्व स्थान किस प्रकार सम्भव हैं इसके कारणका विचार किया ।

§ २५५. वैक्रियिककाययोगमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? मिथ्यादृष्टि

वा। सत्तावीस-छव्वीसवि० कस्स ? देव-णेरइयमिच्छाइट्ठिस्स। चउवीस-एक्कवीसविह० कस्स ? देव-णेरइयसम्माइट्ठिस्स। बावीसविहत्ती णत्थि। एवं वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु वत्तव्वं। णवरि, बावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स देव-णेरइयसम्माइट्ठिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स।

§ २५६. आहार०-आहारमिस्स० अट्ठावीस-चउवीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० वेदयसम्माइट्ठिस्स। एक्कवीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० खइयसम्माइट्ठिस्स।

§ २५७. कम्मइय० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्णदरस्स चउगइमिच्छादिट्ठिस्स देव-मणुस्ससम्माइट्ठिस्स वा। सत्तावीस-छव्वीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० चउगइमिच्छा-

या सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीवोंके होता है। सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टि देव और नारकी जीवोंके होते हैं। चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं। सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीवोंके होते हैं। यहां बाईस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें बाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीवके होता है।

**विशेषार्थ**–वैक्रियिक काययोगमें २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके नहीं पाये जानेका कारण यह है कि यह सत्त्वस्थान मरकर अन्य गतिको प्राप्त हुए जीवके अपर्याप्त अवस्थामें ही होता है और अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिककाययोग नहीं होता। यही सबब है कि वैक्रियिक काययोगमें २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका निषेध करके वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें उसे बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

§ २५६. आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्त संयत जीवके होते हैं। इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्त संयतके होता है।

**विशेषार्थ**–आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग प्रमत्तसंयतके होते हैं। यद्यपि प्रमत्तसंयतके और भी सत्त्वस्थान पाये जाते हैं पर ऐसा जीव क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिका प्रारम्भ नहीं करता इसलिये उसके वेदक और क्षायिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा तीन ही सत्त्वस्थान बतलाये हैं।

§ २५७. कार्मणकाययोगमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतिके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके और सम्यग्दृष्टि देव तथा मनुष्यके होता है। सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं। चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? दोनों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि

इट्ठिस्स। चउवीसविह० कस्स? अण्ण० दुगइसम्माइट्ठिस्स। बावीस-एक्कवीसवि० कस्स? अण्ण० चउगइसम्माइट्ठिस्स।

§ २५८. वेदाणुवादेण इत्थिवेद० अट्ठावीसविह० कस्स? अण्ण० तिगइमिच्छा० सम्माइट्ठिस्स वा। सत्तावीस-छव्वीसविह० कस्स? तिगइमिच्छाइट्ठिस्स। चउवीस-विहत्ती कस्स? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स। तेवीस-बावीस-एक्कवीसवि० कस्स? अण्ण० मणुसिणीसम्माइट्ठिस्स। तेरस-बारसविह० कस्स? अण्ण० मणुसिणीखवयस्स।

§ २५९. पुरिसवेदे अट्ठावीसविह० कस्स? अण्ण० तिगइमिच्छा० सम्माइट्ठिस्स वा। सत्तावीस-छव्वीसविह० कस्स? अण्ण० तिगइमिच्छाइट्ठिस्स। चउवीसविह०

जीवके होता है। यहां दो गतियोंसे देव और मनुष्य गतिका ग्रहण किया है। बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं? चारों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होते हैं।

**विशेषार्थ**—२८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले वेदक सम्यग्दृष्टि देव या नारकी मरकर मनुष्योंमें और मनुष्य मरकर देवोंमें ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये कार्मणकाययोगके रहते हुए देव और मनुष्यगतिके ही सम्यग्दृष्टि जीव २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी बतलाये हैं। इसीप्रकार २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके सम्बन्धमें भी जान लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ २५८. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है? नरकगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके होता है। नरकगतिमें स्त्रीवेद नहीं होता इसलिये यहां उसका निषेध किया है। सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं? नरक गतिके बिना शेष तीन गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं। चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है? उपर्युक्त तीनों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होता है। तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्ति स्थान किसके होते हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यनीके होते हैं। तेरह और बारह विभक्तिस्थान किसके होते हैं? किसी भी क्षपक मनुष्यनीके होते हैं।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदी द्रव्य मनुष्य दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा कर सकते हैं। इसलिए यहां मनुष्यनीके २३, २२, २१, १३ और १२ सत्त्वस्थान बतलाये हैं। पर कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्रीवेदियोंमें नहीं उत्पन्न होता इसलिये २२ और २१ प्रकृतिक स्थानका स्वामी भी मनुष्यनीको ही बतलाया है। शेषकथन सुगम है।

§ २५९. पुरुषवेदमें अट्ठाईस विभक्ति स्थान किसके होता है? तिर्यंच, मनुष्य और देव इन तीन गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके होता है। सत्ताईस और छब्बीस विभक्ति स्थान किसके होते हैं? उपर्युक्त तीनों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं। नारकी पुरुषवेदी नहीं होते इसलिये यहां उनका ग्रहण नहीं किया है।

**कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स । एवमेक्कवीस । तेवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुससम्माइट्ठिस्स अक्खविद-सम्मामिच्छत्तस्स । बावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइ-सम्माइट्ठिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स । तेरस-बारस-एक्कारस-पंचविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्सखवयस्स ।**

**§ २६०. णवुंस० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइमिच्छा० सम्माइट्ठिस्स वा । सत्तावीस-छव्वीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइमिच्छादिट्ठिस्स । चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स । बावीसविह० कस्स ? अण्ण० दुगइसम्माइट्ठिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स । एक्कावीसविह० कस्स ? अण्ण० दुगइखइयसम्मादिट्ठिस्स । तेवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्ससम्माइट्ठिस्स अक्खविदसम्मामिच्छत्तस्स । तेरस-बारसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्सखवयस्स ।**

चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? उपर्युक्त तीनों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । इसी प्रकार इक्कीस विभक्तिस्थान भी उक्त तीन गतियोंके सम्यग्दृष्टि जीवके कहना चाहिये । तेईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है । दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ और मिथ्यात्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा मनुष्य ही करता है, इस लिये २३ प्रकृतिक सत्वस्थानका स्वामी मनुष्यको ही बतलाया है । बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे उक्त तीनों गतियोंके किसी भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । तेरह, बारह, ग्यारह और पांच विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी एक क्षपक मनुष्यके होते हैं ।

§ २६०. नपुंसकवेदमें अट्ठाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतिके मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । देवगतिमें नपुंसकवेद नहीं होता इसलिये यहां उसका निषेध किया है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी जीवके होते हैं । चौबीस विभक्ति स्थान किसके होता है ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे नरक और मनुष्यगतिके किसी भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होता है । इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? नरक और मनुष्य गतिके किसी भी क्षायिक सम्यग्दृष्टिके होता है । तेईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यके है । तेरह और बारह विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी क्षपक मनुष्यके होते हैं ।

**विशेषार्थ**—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि मरकर नरकगतिके सिवा

§ २६१. अवगद० चउवीस-एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० उवसंतकसायस्स । एकारस-पंच-चदु-तिण्णि-दोण्णि-एक्कविहत्ती कस्स ? अण्ण० खवयस्स ।

§ २६२. कसायाणुवादेण कोधक० अट्ठावीसादि जाव पंच-चत्तारिविहत्ति त्ति मूलोघभंगो । एवं माण०, णवरि तिविह० अत्थि । एवं माया०, णवरि दुविह० अत्थि । एवं लोभ०, णवरि एयविह० अत्थि । अकसा० चउवीस-एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० उवसंतकसायस्स । एवं जहाक्खाद० ।

§ २६३. आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० सम्माइट्ठिस्स । सत्तावीस-छव्वीसविह० णत्थि । सेसाणमोघभंगो । एवमोहिदंसणी-सम्माइट्ठि-मणपज्जवणाणीणं । एवं सामाइय-छेदो० ।

शेष नपुंसकोंमें नहीं उत्पन्न होता, इसलिये २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी नपुंसकवेदी नारकी और मनुष्य बतलाये हैं । यहां मनुष्यपर्याय जिस भवमें क्षायिक सम्यग्दर्शन पैदा करना है उसी भवकी अपेक्षा लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ २६१. अपगतवेदियोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी उपशान्तकषाय जीवके होते हैं । ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी क्षपकके होते हैं । अपगतवेदियोंके उपशमश्रेणीकी अपेक्षा २४ और २१ तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा ११, ५, ४, ३, २ और १ सत्त्वस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ २६२. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी जीवोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानसे लेकर पांच और चार विभक्तिस्थान तक मूलोघके समान कथन करना चाहिये । इसीप्रकार मानकषायियोंके भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके तीन विभक्तिस्थान भी पाया जाता है । इसीप्रकार मायाकषायवाले जीवोंके भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके दो विभक्तिस्थान भी पाया जाता है । मायाकषायवालोंके समान लोभकषायवालोंके भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके एक विभक्तिस्थान भी पाया जाता है । कषायरहित जीवोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी उपशान्तकषाय जीवके होते हैं । अकषायी जीवोंके समान यथाख्यात संयतोंके भी कहना चाहिये ।

§ २६३. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है । उक्त तीन ज्ञानवाले जीवोंके सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं । शेष चौबीस आदि स्थानोंका ओघके समान कथन करना चाहिये । अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि और मनःपर्ययज्ञानवाले जीवोंके भी इसीप्रकार समझना चाहिये । इसीप्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भी

§ २६४. परिहार० अट्ठावीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० संजदस्स । सुहुमसांपराइय० चउवीस-एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स । एक्कविह० कस्स ? अण्ण० खवयस्स । संजदासंजद० अट्ठावीस-चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० दुगईसु वट्टमाणस्स । तेवीस-बावीस-एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्सस्स मणुस्सिणीए वा । असंजद० अट्ठावीसादि जाव एक्कवीसं ति ओघभंगो ।

§ २६५. लेस्साणुवादेण किण्हलेस्साए अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्णद० चउगइमिच्छाइट्ठिस्स, देवगईए विणा तिगइसम्माइट्ठिस्स । छव्वीस-सत्तावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइमिच्छाइट्ठिस्स । चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स । एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्स-मणुस्सिणीखइयसम्माइट्ठिस्स । एवं णील-काउलेस्साणं । णवरि काउलेस्साए बावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स अक्खीणदंसण-

समझना चाहिये ।

§ २६४. परिहार विशुद्धिसंयतोंमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी संयतके होते हैं । सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धि संयतोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी उपशामकके होते है । एक विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी क्षपकके होता है । संयतासंयतोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? तिर्यंच और मनुष्यगतिमें विद्यमान किसी भी जीवके होते हैं । तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी मनुष्य या मनुष्यनीके होते हैं । असंयतोंके अट्ठाईस विभक्तिस्थानसे लेकर इक्कीस विभक्तिस्थान तक ओघके समान समझना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर यदि तिर्यंच होता है तो उत्तम भोगभूमिज ही होता है पर वहां संयमासंयमकी प्राप्ति सम्भव नहीं, इसलिये संयतासंयत गुणस्थानमें २२ और २१ ये दो सत्त्वस्थान केवल मनुष्य गतिमें ही बतलाये हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ २६५. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यामें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीवके और देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । छब्बीस और सत्ताईस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है । इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य या मनुष्यनीके होता है । इसी प्रकार नील और कपोत लेश्याओंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें बाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीका पूरा क्षय

**मोहणीयस्स । एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइखइयसम्माइट्ठिस्स ।**

**§२६६. तेउ-पम्मलेस्सासु अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइमिच्छा०-सम्मामि०-सम्मादिट्ठीणं । सत्तावीस-छव्वीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइमिच्छाइट्ठिस्स । चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स । एवमेक्कवीस० वत्तव्वं । तेवीसविह०**

नहीं किया है ऐसे नरक, तिर्यंच और मनुष्य गतिके किसी भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होता है । इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवके होता है ।

**विशेषार्थ**—देवगतिके सिवा शेष तीन गतियोंमें कृष्णलेश्याके रहते हुए सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके जीवोंके २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान बन जाता है यह तो स्पष्ट ही है, किन्तु देवगतिमें कृष्णलेश्याके रहते हुए यह स्थान मिथ्यादृष्टिके ही प्राप्त होता है, क्योंकि कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याऐ भवनत्रिकमें अपर्याप्त अवस्थामें ही पाई जाती हैं और इनके अपर्याप्त अवस्थामें सम्यग्दर्शन नहीं होता । २७ और २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान चारों गतिके कृष्णलेश्यावाले मिथ्यादृष्टियोंके सम्भव है, क्योंकि ऐसे जीवोंके चारों गतियोंमें पाये जानेमें कोई बाधा नहीं । २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान कृष्णलेश्याके रहते हुए देवगतिमें नहीं बतलानेका कारण यह है कि देवगतिमें कृष्णलेश्या अपर्याप्त अवस्थामें भवनत्रिकके पाई जाती है पर वहां सम्यग्दर्शन नहीं होता ऐसा नियम है । कृष्णलेश्यामें २३ और २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं पाये जाते, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ अशुभ लेश्यावाले जीवके नहीं होता । २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया तो जाता है पर यह मनुष्य या मनुष्यनीके ही सम्भव है, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जानेपर मनुष्यगतिमें छहों लेश्याएँ सम्भव हैं । नीललेश्या और कापोतलेश्यामें भी इसीप्रकार सत्त्वस्थान प्राप्त होते हैं । किन्तु कापोतलेश्यामें २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि प्रथम नरकके नारकी, भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्योंके अपर्याप्त अवस्थामे कापोत लेश्या पाई जानेके कारण कापोत लेश्यामें उक्त तीन गतिका जीव २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी बन जाता है। प्रथम नरकमें कापोतलेश्या ही है और क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्यके भी कापोतलेश्या हो सकती है इसलिये इन दो गतिके जीव पर्याप्त अवस्थामें भी २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हो सकते हैं ।

§२६६. पीत और पद्मलेश्यामें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? नरकगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है । उक्त तीन गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । इसीप्रकार इक्कीस विभक्तिस्थानका भी कथन

कस्स ? अण्ण० मणुस० मणुस्सिणीए वा। बावीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० दुगइअ-क्खीणदंसणमोहणीयस्स। अभव्वसिद्धि० छब्बीसविह० कस्स ? अण्ण०।

§२६७. खइयस्स एक्कवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्माइट्ठिस्स। सेसमोघभंगो। वेदगसम्माइट्ठिस्स अट्ठावीस-चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्माइट्ठिस्स। तेवीसविह० कस्स ? मणुस्सस्स मणुस्सिणीए वा। बावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्माइट्ठिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स। उवसम० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउग्गइसम्माइट्ठिस्स। चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउग्गइसम्माइट्ठिस्स विसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कस्स। सासण० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसासणसम्माइट्ठिस्स। सम्मामि० अट्ठावीस-चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्मामिच्छाइट्ठिस्स। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं सामित्तं समत्तं।

करना चाहिये। तेईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने मिथ्यात्वका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी मनुष्य या मनुष्यनीके होता है। बाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे मनुष्य और देवगतिके किसी भी जीवके बाईस विभक्तिस्थान होता है। अभव्योंमें छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी अभव्यके होता है।

§२६७. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टिके शेष स्थान ओघके समान समझना चाहिये। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टिके होते हैं। तेईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? मनुष्य या मनुष्यनीके होता है। बाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया ऐसे चारो गतियोंके किसी भी कृत्यकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके होता है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतियोके किसी भी सम्यग्दृष्टिजीवके होता है। चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर दी है, ऐसे चारों गतिके किसी भी उपशमसम्यग्दृष्टिजीवके होता है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतिके किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतिके किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं। कार्मणकाययोगियोंके स्थानोंका जिसप्रकार कथन कर आये हैं उसीप्रकार अनाहारक जीवोंके समझना चाहिये।

इसप्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

* कालो।

§ २६८. अहियारसंभालणवयणमेदं। तत्थ कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण एक्किस्से विहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। तं जहा–इगिवीससंतकम्मिओ चेव खवणाए अब्भुट्ठेदि, सुद्धसद्दहणेण विणा चारित्तमोहक्खवणाणुववत्तीदो। तदो सो खवगसेढिमब्भुट्ठिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण तदो अट्ठकसाए खवेदि। पुणो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण थीणगिद्धीतिय-णिरयगइ-तिरिक्खगइ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी [तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी] एइंदिय बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजादि-आदावुज्जोव-थावर-सुहुम-साहारणसरीराणि एदाओ सोलसपयडीओ खवेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंत-राइयाणं सव्वघादिबंधं देसघादिं करेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण ओहिणाणा-वरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणं सव्वघादिबंधं देसघादिं करेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीय-भोगंतराइयाणं सव्वघादिबंधं देसघादिं करेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण चक्खुदंसणावरणीयस्स सव्वघादिबंधं

* अब कालानुयोगद्वारका अधिकार है।

§ २६८. 'कालो' यह वचन अर्थाधिकारका निर्देश करनेके लिए दिया है।

कालानुयोगद्वारकी अपेक्षा ओघ और आदेशके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा एक विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

उसका खुलासा इसप्रकार है–जिसके चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्ता विद्यमान है वही चारित्रमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दर्शनके विना चारित्रमोहकी क्षपणा नहीं बन सकती। इसप्रकार चारित्रमोहकी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहण करके अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवें भागको व्यतीत करके अनन्तर अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्याना-वरण चतुष्कका क्षय करता है। अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर स्त्यानगृद्धित्रिक, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्मशरीर और साधारणशरीर इन सोलह प्रकृतियोंका क्षय करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त बिताकर मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्त-रायके सर्वघातिबन्धको देशघातिरूप करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर अवधि-ज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके सर्वघातिबन्धको देशघातीरूप करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके सर्वघातिबन्धको देशघातिरूप करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर चक्षुदर्शना-

देसघादिं करेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण आभिणिबोहियणाणावरणीय-परिभो-गंतराइयाणं सव्वघादिबंधं देसघादिं करेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण विरियंत-राइयसव्वघादिबंधं देसघादिं करेदि। तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण चदुसंजलण-णवणो-कसायाणं तेरसण्हं कम्माणमंतरं करेदि, ण अण्णेसिं; तेसिं चारित्तमोहत्ताभावादो। अंतरं करेमाणो पुरिसवेद-कोधसंजलणाणं पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तपमाणं मोत्तूण अंतरं करेदि, सेसएक्कारसण्हं कम्माणमुदयावलिं मोत्तूण। तदो कदंतरबिदियसमए मोहणी-यस्स आणुपुव्विसंकमो लोभस्स असंकमो मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ बंधो एगट्ठाणिओ उदओ णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामओ सव्वकम्माणं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा सव्वमोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो त्ति एदाणि सत्तकरणाणि जुगवं पारभदि। कयंतरबिदियसमयप्पहुडि णवुंसयवेदं खवेमाणो अंतोमुहुत्तं गंतूण खवेदि। से काले इत्थिवेदक्खवणं पारभिय तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण तं पि खविज्जमाणं खवेदि। एदेसिं दोण्हं पि कम्माणं खवणकालो पढमट्ठिदीए संखेज्जा भागा। तदो इत्थिवेदे खीणे सत्तणोकसाए अंतोमुहुत्तकालेण खवेमाणो सवेददुचरिमसमए पुरिसवेदचिराणसंतकम्मं

वरणके सर्वघाति बन्धको देशघातिरूप करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर मतिज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके सर्वघातिबन्धको देशघातिरूप करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर वीर्यान्तरायके सर्वघातिबन्धको देशघातिरूप करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त बिताकर चार संज्वलन और नौ नोकषाय इन तेरह कर्मोंका अन्तर करता है और दूसरे कर्मोंका अन्तर नहीं करता, क्योंकि और दूसरे कर्म चारित्रमोहनीयके भेद नहीं हैं। उक्त तेरह प्रकृतियोंका अन्तर करते समय पुरुषवेद और क्रोध संज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर ऊपरके निषेकोंका अन्तर करता है। और अनु-दयरूप शेष ग्यारह कर्मोंकी उदयावलि प्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर ऊपरके निषेकोंका अन्तर करता है।

तदनन्तर अन्तर करनेके दूसरे समयमें क्षपक जीव मोहनीयका आनुपूर्वी क्रमसे संक्रम, लोभका असंक्रम, मोहनीयका एकस्थानिक बन्ध, मोहनीयका एक स्थानिक उदय, नपुं-सक वेदका आवृत्तकरण संक्रम, समस्त कर्मोंकी छह आवलीके अनन्तर ही उदीरणाका होना और समस्त मोहनीयका संख्यात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबन्ध इन सात करणोंको एक साथ प्रारंभ करता है। फिर अन्तर करनेके दूसरे समयसे लेकर नपुंसकवेदका क्षय करता हुआ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालमें उसका क्षय करता है। उसके अनन्तर स्त्रीवेदकी क्षपणाका प्रारंभ करके अन्तर्मुहूर्त कालमें उसका भी क्षय करता है। इन दोनों ही कर्मोंका क्षपणाकाल प्रथमस्थितिका संख्यात बहुभाग प्रमाण है। इसप्रकार स्त्रीवेदके क्षय हो जानेपर अन्त-र्मुहूर्त कालके द्वारा शेष सात नोकषायोंका क्षय करता हुआ सवेद भागके द्विचरम समयमें

छण्णोकसायचरिमफालिं च सव्वसंकमेण कोधसंजलणम्मि संकामेदि। तदो सवेदिय-चरिमसमयप्पहुडि समयूणदोआवलियमेत्तकालं पंचविहत्तिओ होदि। से काले अवेदओ होदूण अस्सकण्णकरणं करेमाणो पुरिसवेदणवकबंधं खवेदि। तम्मि खीणे चत्तारि विहत्तिओ होदि। तदो उवरिमंतोमुहुत्तं गंतूण अस्सकण्णकरणे समत्ते चदुण्हं संजलणाणमेक्केक्किस्से संजलणाए तिण्णि तिण्णि बादरकिट्टीओ अंतोमुहुत्तकालेण करेदि। तदो किट्टीकरणे समत्ते कोधसंजलणस्स तिण्णि किट्टीओ जहाकमेण खवेदि। कोधसंजलणे खविदे तिण्हं विहत्तिओ होदि। तदो जहाकमेण अंतोमुहुत्तकालेण माणसंजलणतिण्णि किट्टीओ खवेदि। ताधे दोण्हं विहत्तिओ होदि। तदो अंतोमुहुत्तेण कालेण मायासंजलण-तिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो लोभसंजलणपढमकिट्टीए अब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्त-कालं गंतूण खवेदि। तम्मि खीणे एक्किस्से विहत्तिओ होदि। तदो जहाकमेण दुसमयूण-दोआवलियमेत्तकालेणूणो लोभपढमविदियबादरकिट्टीओ लोभसुहुमकिट्टीओ च खवे-

पुरुषवेदके सत्तामें स्थित पुराने कर्मोंकी और छह नोकषायोंकी अन्तिम फालिका सर्वसंक्रमके द्वारा क्रोध संज्वलनमें संक्रमण करता है। तदनन्तर वेदका अनुभव करने वाला वह जीव सवेदभागके चरम समयसे लेकर एक समय कम दो आवली कालतक पुरुषवेद और चार संज्वलन इन पांच प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है। इसप्रकार सवेद अनिवृत्तिकरणके अनन्तर अवेद अनिवृत्तिकरणके कालमें अवेदक होकर अश्वकर्ण करणको करता हुआ पुरुषवेदके नवकबन्धका एक समयकम दो आवली प्रमाण कालके द्वारा क्षय करता है। इसप्रकार पुरुषवेदके क्षीण हो जानेपर यह जीव चार प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल बिताकर अश्वकर्णकरणके समाप्त हो जानेपर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा चारों संज्वलन कषायोंमेंसे एक एक संज्वलनकी तीन तीन बादरकृष्टियां करता है। इसप्रकार कृष्टिकरणके समाप्त हो जानेपर क्रोधसंज्वलनकी तीनों कृष्टियोंका यथाक्रमसे क्षय करता है। इसप्रकार क्रोधसंज्वलनके क्षीण हो जानेपर यह जीव तीन प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा मानसंज्वलनकी तीनों कृष्टियोंका यथा-क्रमसे क्षय करता है। इसप्रकार मानसंज्वलनके क्षीण होजानेपर उस समय यह जीव दो प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है। तदनन्तर अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा मायासंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता हुआ लोभसंज्वलनकी पहली कृष्टिके भीतर दो समय कम दो आवली-मात्र कालको व्यतीत करके उनका क्षय करता है। इसप्रकार मायासंज्वलनके क्षीण हो जानेपर यह जीव केवल एक लोभप्रकृतिकी सत्तावाला होता है। तदनन्तर लोभकी पहली और दूसरी बादर कृष्टिका तथा लोभकी सूक्ष्मकृष्टियोंका यथाक्रमसे क्षय करते हुए इस जीवको लोभप्रकृतिके क्षय करनेमें जितना काल लगता है उसमेंसे दो समयकम दो आव-लीप्रमाण कालके कम कर देनेपर जो काल शेष रहता है वह एक प्रकृतिरूप स्थानका

माणस्स जो कालो सो एगविहत्तियस्स जहण्णकालो होदि।

§ २६६. उक्कस्सकालो वि अंतोमुहुत्तं। तं जहा-पुरिसवेद-लोभसंजलणाणं उदएण जो खवगसेढिं चडिदो सो कोधसंजलणोदएण खवगसेढिं चडिदस्स अस्सकण्णकरण-काले कोधसंजलणं फद्दयसरूवेण खवेदि। कोधसंजलणोदएण खवगसेढिं चडिदस्स किट्टीकरणकाले माणसंजलणं फद्दयसरूवेण खवेदि। कोधसंजलणोदएण खवगसेढिं चडिदो जेण कालेण कोधसंजलणतिण्णिकिट्टीओ वेदयमाणो खवेदि तम्हि चेव द्वाणे तेणेव कालेण एसो मायासंजलणं फद्दयसरूवेण खवेदि। कोधोदएण चडिदो जम्मि माणकिट्टीओ खवेदि तम्हि लोहोदएण चडिदो एगविहत्तिओ होदूण अस्सक-ण्णकरणं करेदि। कोधोदएण खवगसेढिं चडिदो जम्मि मायाए तिण्णि किट्टीओ खवेदि तम्मि उद्देसे तेणेव कालेण लोभस्स तिण्णि किट्टीओ करेदि। कोधोदएण जम्मि काले लोभपढमविदियबादरकिट्टीओ सुहुमकिट्टिं च वेदेदि लोहोदएण खवगसेढिं चडिदो लोभकिट्टीओ तम्हि चेव उद्देसे तेणेव कालेण खवेदि। संपहि कोहोदएण

जघन्य काल होता है।

§२६६. तथा एक प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट कालभी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। वह इसप्रकार है-पुरुषवेद और लोभसंज्वलनके उदयसे जो क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है वह जीव, क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवका जो अश्वकर्णकरणका काल है, उस कालमें क्रोधसंज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है। तथा क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वनके कृष्टिकरणका जो काल है पुरुषवेद और लोभ-संज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उस कालमें मानसंज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है। तथा क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस कालमें क्रोधसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका अनुभव करता हुआ उनका क्षय करता है, पुरुषवेद और लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उसी स्थानमें और कालमें मायासंज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है। क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय मानकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता है लोभके उदयसे चढ़ा हुआ जीव उस समय एक प्रकृतिकी सत्तावाला होकर अश्वकर्ण क्रियाको करता है। क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय मायाकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता है लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उसी स्थानमें और उसी कालके द्वारा लोभकी तीन कृष्टियां करता है। क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय लोभकी पहली और दूसरी बादर कृष्टियोंका तथा सूक्ष्मकृष्टिका वेदन करता है लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उसी स्थानमें और उसी कालके द्वारा लोभकी तीन कृष्टि-योंका क्षय करता है। इसप्रकार क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके दो समय

खवगसेढिं चडिदस्स जो माणतिण्णिकिट्टीवेदयकालो दुसमयूणदोआवलियपरिहीणो मायासंजलणतिण्णिकिट्टीवेदयकालो लोभपढमविदियबादरकिट्टीणं सुहुमकिट्टीए च जो वेदयकालो सो एक्किस्से विहत्तियस्स उक्कस्सकालो होदि। जहण्णकालादो उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तभावेण सरिसो होदूण संखेज्जगुणो।

* एवं दोण्हं तिण्हं चदुण्हं विहत्तियाणं।

§ २७०. जधा एक्किस्से विहत्तियस्स जहण्णुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं तहा एदेसिंपि जहण्णुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं चेव। तं जहा-दोण्हं विहत्तियस्स ताव उच्चदे, कोधोदएण खवगसेढिं चडिय माणतिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो मायाए पढमकिट्टीवेदयकालब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण माणणवकबंधं खवेदि से काले दोण्हं विहत्तिओ होदि। पुणो मायासंजलणपढमविदियतदियकिट्टीओ खवेमाणो मायासंजलणणवकबंधं लोभसंजलणपढमकिट्टीवेदगकालब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण खवेदि तेण मायासंजलणतिण्णिकिट्टीवेदयकालो सयलो दोण्हं विहत्तियस्स जहण्णकालो होदि। दोण्हं

कम दो आवलियोंसे न्यून मानकी तीन कृष्टियोंका जो वेदक काल है और माया संज्वलनकी तीन कृष्टियोंका जो वेदक काल है, और लोभसंज्वलनकी पहली और दूसरी बादरकृष्टियोंका तथा सूक्ष्मकृष्टिका जो वेदक काल है वह सब लोभके उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़े हुए जीवके एक प्रकृतिरूप स्थानका उत्कृष्ट काल होता है। एक प्रकृतिरूप स्थानके जघन्यकालसे उसीका उत्कृष्ट काल सामान्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त होता हुआ भी संख्यातगुणा है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त सामान्यकी अपेक्षा दोनों काल समान हैं फिर भी जघन्यकालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

*इसीप्रकार दो, तीन और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§२७०. जिस प्रकार एक प्रकृतिकस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है उसीप्रकार इन स्थानोंका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त समझना चाहिये। वह इस प्रकार है। उसमें पहले दो प्रकृतिक स्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल कहते हैं-क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाला जीव मानसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता हुआ मायाकी पहली कृष्टिके वेदन करनेके कालमेंसे दो समय कम दो आवलीप्रमाण कालके व्यतीत होनेपर संज्वलनमानके नवक समयप्रबद्धका क्षय करता है और इसप्रकार वह जीव दो प्रकृतिरूप स्थानका स्वामी होता है। पुनः मायासंज्वलनकी पहली, दूसरी और तीसरी कृष्टिका क्षय करता हुआ लोभसंज्वलनकी पहली कृष्टिके वेदन करनेके कालमेंसे दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके जानेपर मायासंज्वलनके नवक समयप्रबद्धका क्षय करता है। अतः माया संज्वलनकी तीन कृष्टियोंका समस्त वेदककाल दो प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल

विहत्तियाणमुक्कस्सकालो पुण मायासंजलणोदएण खवगसेढिं चडिदस्स अस्सकण्णकरण-कालं किट्टीकरणकालं मायातिण्णिकिट्टीवेदयकालं च घेत्तूण होदि । कुदो ? पुरिसवेद-माओदएण जो खवगसेढिं चाडिदो सो कोधोदएण चडिदस्स अस्सकण्णकरणकाले कोधं फद्दयसरूवेण खवेदि । कोधोदएण चाडिदस्स किट्टीकरणकाले माणं फद्दयसरूवेण खवेदूण दोण्हं विहत्तिओ होदि । तदो कोधकिट्टीवेदयकालम्मि मायालोभसंजलणाण-मस्स (कण्ण) करणं करेदि । पुणो माणकिट्टीवेदयकालम्मि मायालोभसंजलणकिट्टीओ करेदि । तदो मायासंजलणाए अप्पणो तिण्णिकिट्टीओ पुव्वविधाणेण खविय एक्किस्से विहत्तिओ होदि त्ति ।

§ २७१. तिण्हं विहत्तियस्स जहण्णकालो अंतोमुहुत्तं । तं जहा—पुरिसवेदकोध-संजलणाणमुदएण जो खवगसेढिं चडदि सो कोधसंजलणतिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो माणपढमकिट्टीअब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण कोधणवकबंधं खवेदि तिण्हं विहत्तिओ होदि । पुणो माणसंजलणतिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो मायासंजलणपढमकिट्टी-

होता है । दो प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल तो मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणी-पर चढ़े हुए जीवके अश्वकर्णकरणके कालको मायासंज्वलनके कृष्टिकरणके कालको और मायासंज्वलनके तीन कृष्टियोंके वेदककालको मिला कर होता है । इसका कारण यह है कि जो जीव पुरुषवेद और मायाके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है वह, क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वलनके अश्वकर्णकरणका जो काल है उस कालमें क्रोधका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है । क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वलनके कृष्टिकरणका जो काल है मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उस कालमें मानका स्पर्धकरूपसे क्षय करके दो प्रकृतिरूप स्थानका मालिक होता है । तदनन्तर क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय क्रोधकी तीन कृष्टियोंका वेदन करता है उस समय, मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव माया और लोभसंज्वलनकी अश्वकर्णक्रियाको करता है । तदनन्तर क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ा हुआ जीव जिस समय मानकी तीन कृष्टियोंका वेदन करता है उस समय, मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव माया और लोभसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंको करता है । तदनन्तर मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ वह जीव मायासंज्वलन सबन्धी अपनी तीन कृष्टियोंका पूर्वोक्त विधिके अनुसार क्षय करके एक प्रकृतिकी सत्तावाला होता है ।

§ २७१. तीन प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । वह इसप्रकार है—पुरुषवेद और क्रोधसंज्वलनके उदयसे जो क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है वह क्रोधसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका क्षय करके मानसंज्वलनकी पहली कृष्टिके कालमेंसे दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके जानेपर क्रोधसंज्वलनके नवक समयप्रबद्धका क्षय करता है और तब तीन प्रकृतिकस्थानका

अब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण जेण खवेदि तेण माणसंजलणतिण्णिकिट्टी-खवणकालो तिण्हं विहत्तियस्स जहण्णकालो होइ । तस्सेव उक्कस्सकालो वुच्चदे । तं जहा–जो पुरिसवेद-माणोदएण खवगसेढिं चाडिदो सो कोधोदएण खवगसेढिं चडिदस्स अस्सकण्णकरणकाले कोधसंजलणं फद्दयसरूवेण खवेदि । ताधे तिण्हं विहत्तिओ होदि । तदो कोधोदएण चडिदस्स किट्टीकरणकाले माण-माया-लोभसंजलणाणमस्सकण्णकरणं करेदि । कोधोदयक्खवगस्स कोधतिण्णिकिट्टीवेदयकालम्मि माण-माया-लोभसंजलणाणं किट्टीओ करेदि । तदो माणसंजलणतिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो मायासंजलणपढमकिट्टि-अब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण माणणवकबंधं जेण खवेदि तेण माणोद-यक्खवगस्स अस्सकण्णकरणकालो किट्टीकरणकालो किट्टीवेदयकालो च तिण्हं विहत्तियस्स उक्कस्सकालो होदि ।

§ २७२. चउण्हं विहत्तियस्स जहण्णकालो वुच्चदे । तं जहा–पुरिसवेदमाणो-

स्वामी होता है । पुनः मानसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता हुआ मायासंज्वलनकी पहली कृष्टिके कालमेंसे दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके जानेपर चूंकि उनका क्षय करता है इसलिये मानसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका जो क्षपणकाल है वह तीन प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल होता है ।

अब तीन प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल कहते हैं वह इस प्रकार है–जो पुरुषवेद और मानसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है वह जीव क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधके अश्वकर्णकरणका जो काल है उस कालमें क्रोध-संज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है । और तब वह जीव तीन प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है । तदनन्तर क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वलनके तीन कृष्टियोंके करनेका जो काल है उसकालमें, मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव मान, माया और लोभसंज्वलनकी अश्वकर्णक्रियाका करता है । तथा क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधकी तीन कृष्टियोंके वेदनका जो समय है, मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उस समय मान, माया और लोभसंज्वलनकी तीन कृष्टियां करता है । तदनन्तर मानसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका क्षपण करता हुआ माया संज्वलनकी पहली कृष्टिके कालमेंसे दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके जानेपर मानके नवकबन्धका चूंकि क्षय करता है इसलिये मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके अश्वकर्णकरणकाल, कृष्टिकरणकाल और कृष्टिवेदककाल यह सब मिलकर तीन प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्टकाल होता है ।

§ २७२. अब चार प्रकृतिरूप स्थानका जघन्यकाल कहते हैं । वह इसप्रकार है–जो पुरुष वेद और मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है वह जीव, क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपक-

**दएण जो खवगसेढिं चडिदो सो कोधसंजलणोदयक्खवयस्स अस्सकण्णकरणकालम्मि दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण पुरिसवेदणवकबंधं खवेदि, ताधे चउण्हं विहत्तिओ होदि । तदो कोधसंजलणं फद्दयसरूवेण खवेमाणो माणोदयक्खवयस्स अस्सकण्णकरण-कालब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण कोधसंजलणणवकबंधे खविदे जेण तिण्हं विहत्तिओ होदि, तेण कोधसंजलणस्स फद्दयसरूवेण खवणद्धा चदुण्हं विहत्ति-यस्स जहण्णकालो होदि । तस्सेव उक्कस्सकालो वुच्चदे । तं जहा–इत्थिवेदकोधोदएण जो खवगसेढिं चडिदो सो सवेदियचरिमसमए पुरिसवेदबंधगो होदूण तदो अंतोमुहुत्त-मुवरि गंतूण पुरिसवेदेण सह छण्णोकसाएसु खीणेसु जेण चत्तारि विहत्तिओ होदि तेण कोधोदयक्खवगस्स अस्सकण्णकरणकालो किट्टीकरणकालो किट्टीवेदयकालो च दुसम-यूणदोआवलियब्भहिओ चउण्हं विहत्तियस्स उक्कस्सद्धा ।**

श्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वलनके अश्वकर्णकरणका जो काल है उसमें दो समय-कम दो आवली प्रमाण कालके जानेपर पुरुषवेदके नवकबन्धका क्षय करता है । तब जाकर चार प्रकृतिरूप स्थानका स्वामी होता है । तदनन्तर क्रोधसंज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता हुआ वह जीव चूंकि मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके अश्व-कर्णकरणके कालमें दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके व्यतीत होनेपर क्रोधसंज्वलनके नवकबन्धका क्षय करके तीन प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है इसलिये क्रोधसंज्वलनके स्पर्धकरूपसे क्षय होनेका जो काल है वह चार प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल है ।

अब इसी चार प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल कहते हैं । वह इसप्रकार है–जो जीव स्त्रीवेद और क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है वह सवेदभागके चरम समयमें पुरुषवेदका बन्धक होकर अन्तर्मुहूर्त बिताकर पुरुषवेदके साथ छह नोकषायोंके क्षीण हो जानेपर चूंकि चार प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है इसलिये क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणी-पर चढ़े हुए जीवके अश्वकर्णकरणकाल, कृष्टिकरणकाल और दो समयकम दो आवलियोंसे अधिक कृष्टिवेदककाल यह सब मिलाकर चार प्रकृतिरूप स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

**विशेषार्थ**–एक, दो, तीन और चार विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल किस प्रकार प्राप्त होता है इस विषयका ठीक तरहसे ज्ञान करानेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है। इससे दो बातें जानी जाती हैं। एक तो यह कि किस कषायके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवके चार कषायोंकी क्षपणा किस प्रकार होती है। और दूसरी यह कि किसी एक कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जिस समय अमुक क्रिया होती है उसी समय दूसरी कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके कौनसी क्रिया होती है ।

| काल | क्रोधके उदयसे | मानके उदयसे | मायाके उदयसे | लोभके उदयसे |
|---|---|---|---|---|
| अन्त-मुहूर्त | चारों कषायोंका अश्वकर्णकरण | क्रोधक्षय (नवकबन्धके बिना) | क्रोधक्षय (नवकबन्धके बिना) | क्रोधक्षय (नवकबन्धके बिना) |
| ,, | क्रोध, मान, माया व लोभकी १२ कृष्टिकरण | मान, माया व लोभका अश्वकर्ण करण | मानक्षय (नवकबन्धके बिना) | मानक्षय (नवकबन्धके बिना) |
| ,, | क्रोध तीन कृष्टि क्षय (नवकबन्धके बिना) | मान, माया व लोभकी ९ कृष्टि करण | माया और लोभका अश्वकर्ण करण | मायाक्षय (नवकबन्धके बिना) |
| ,, | मान तीन कृष्टि क्षय (नवकबन्धके बिना) | मान तीन कृष्टि क्षय (नवकबन्धके बिना) | माया व लोभकी ६ कृष्टि करण | लोभका अश्वकर्ण करण |
| ,, | माया तीन कृष्टि क्षय (नवकबन्धके बिना) | माया तीन कृष्टि क्षय (नवकबन्धके बिना) | माया तीन कृष्टि क्षय (नवकबन्धके बिना) | लोभ ३ कृष्टि करण |
| ,, | लोभ तीन कृष्टि क्षय | लोभ तीन कृष्टि क्षय | लोभ तीन कृष्टि क्षय | लोभ तीन कृष्टि क्षय |

स्त्रीवेदके उदयसे जो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है वह छह नोकषाय और पुरुषवेदका एक साथ क्षय कर देता है, अतः स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके अश्वकर्णकरणके कालमें या स्पर्धकरूपसे क्रोधक्षयके कालमें पुरुषवेदके नवकबन्ध क्षयको प्राप्त न होकर पहले ही निर्जरित होजाते हैं। पर जो जीव पुरुषवेद या नपुंसक वेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके अश्वकर्णकरणके कालमें या क्रोधक्षयके कालमें दो समय कम दो आवलि काल तक पुरुषवेदके नवकबन्ध रहते हैं। कोष्ठकके प्रथम नम्बरके चारों खानोंमें इतनी विशेषता है जो उनमें नहीं दिखाई गई है। अतः इस विशेषताको ध्यानमें रखना चाहिये; क्योंकि इतनी विशेषताको ध्यानमें रखकर कोष्ठकके ऊपरसे उक्त चारों स्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालके ले आनेमें सरलता होती है। अब आगे उन्हीं कालोंको कोष्ठकके ऊपरसे समझानेका प्रयत्न किया जाता है–जो जीव क्रोध, मान या मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ेगा उसके एक विभक्ति स्थानका जघन्य काल दो समय न्यून दो आवलीकम अन्तर्मुहूर्त होगा। यह बात छठे नम्बरके प्रारम्भके तीन खानोंसे भली भांत ज्ञात हो जाती है। अन्तर्मुहूर्त कालमेंसे दो समय कम दो आवलिकाल कम करनेका कारण यह है कि लोभकी तीन कृष्टियोंके क्षय कालमें दो समय कम दो आवलिकाल तक मायाके नवकबन्ध पाये जाते हैं। इसीप्रकार इतना काल कम करनेका कारण अन्यत्र भी जानना। तथा जो जीव लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ेगा उसके एक विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल प्राप्त होगा। यह बात लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए

जीवके कोष्ठकके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे अन्तिम तीन खानोंसे जानी जाती है। यहां लोभका अश्वकर्णकरण,लोभकी तीन कृष्टिकरण और लोभकी तीन कृष्टियोंका क्षय, इस कालमेंसे दो समय कम दो आवली कम कर देनेपर एक विभक्ति स्थानका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है। दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल क्रोध या मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है यह बात ऊपरसे पांचवें नम्बरके प्रारम्भके दो खानोंसे जानी जाती है। वहां मायाकी तीन कृष्टियोंके क्षयका जो काल बतलाया है वही दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल है। यद्यपि मायाके नवकबन्धका क्षय लोभ कृष्टिक्षयके कालमें होता है, अतः दो विभक्तिस्थानका दो समय कम दो आवलिकाल और कहना चाहिये था, पर मायाकृष्टि क्षयके कालमें दो समय कम दो आवलिकाल तक मानके नवक बन्धका क्षय होता रहता है अतः यदि अन्तमें इतना काल बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भमें उतनाही काल घटाना पड़ता है। इसलिये इस घटाने और बढ़ानेकी विधिको छोड़कर मायाकी तीन कृष्टियोंके क्षयका काल दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल है ऐसा कहा। तथा जो जीव मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके दो विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल होता है। यह बात मायाके उदयसे क्षपकक्षेणीपर चढ़े हुए जीवके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे तीसरे, चौथे और पांचवें नम्बरके खानोंसे जानी जा सकती है। तीन विभक्तिस्थानका जघन्य काल क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है। यह बात ऊपरसे प्रारम्भके चौथे खानेसे जानी जानी जा सकती है। विशेष कथन जिस प्रकार दो विभक्तिस्थानके जघन्य कालके कहते समय कर आये हैं उसी प्रकार यहां जानना। तथा तीन विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल मानसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है। यह बात मानके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे प्रारम्भके दूसरे, तीसरे और चौथे खानेसे जानी जा सकती है। चार विभक्तिस्थानका जघन्यकाल स्त्रीवेदके विना शेष दो वेदोंमेंसे किसी एकके साथ मान, माया व लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है। यह बात प्रथम नम्बरके कोष्ठकके अन्तके तीन खानोंसे जानी जाती है। तथा चार विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल स्त्रीवेद और क्रोधके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है यह बात क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे प्रारम्भके तीन खानोंसे जानी जाती है। यहां स्त्रीवेदके उदयकी प्रधानतासे उत्कृष्ट काल इसलिये कहा है कि ऐसे जीवके चारों कषायोंके अश्वकर्णकरणके कालमें पुरुषवेदके नवकबन्ध नहीं रहते। अतः अन्यवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके दो समय कम दो आवलि काल अधिक प्राप्त होता है। इसप्रकार एक, दो, तीन और चार विभक्तिस्थानोंका जघन्य व उत्कृष्ट काल जानना चाहिये।

*** पंचण्हं विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कस्सेण दोआवलियाओ समयूणाओ।**

§ २७३. कुदो ? कोधसंजलणपुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चडिदस्स सवेदियदुचरिमसमए छण्णोकसाएहि सह खविदपुरिसवेदचिराणसंतस्स सवेदियचरिमसमए समयूणदोआवलियमेत्तपुरिसवेदणवकसमयपबद्धाणमुवलंभादो । चिराणसंतसमयपबद्धाणं व णवकबंधसव्वसमयपबद्धाणमेक्कसराहेण विणासो किण्ण होदि ? ण, बंधावलियाए अइक्कंताए पुणो संकमणआवलियचरिमसमए सव्वणवकबंधाणं णिस्संतभावुवलंभादो। ते च समयूणदोआवलियणवकसमयपबद्धा कमेणेव परसरूवेण गच्छंति बंधावलियसंकमणावलियचरिमसमयाणं सव्वसमयपबद्धसंबंधियाणमक्कमेण समत्तीए अभावादो ।

*** पांच प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवलीप्रमाण है।**

§ २७३. **शंका**–पांच प्रकृतिक स्थानका एक समय कम दो आवलीप्रमाण काल क्यों है ?

**समाधान**–क्योंकि जो क्रोधसंज्वलन और पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है, अतएव जिसने सवेदभागके द्विचरम समयमें छह नोकषायोंके साथ पुरुषवेदके सत्तामें स्थित पुराने कर्मोंका नाश कर दिया है, उसके सवेदभागके चरम समयमें एक समय कम दो आवली प्रमाण कालतक स्थित रहनेवाले पुरुषवेदसंबन्धी नवक समयप्रबद्ध पाये जाते हैं। अतः पांच प्रकृतिक स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवली होता है।

**शंका**–पुराने सत्कर्मोंके समान सम्पूर्ण नवक समयप्रबद्धोंका उसीसमय एकसाथ नाश क्यों नहीं हो जाता ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि बन्धावलिके व्यतीत हो जानेके अनन्तर संक्रमणावलिके अन्तिम समयमें सम्पूर्ण नवक समयप्रबद्धोंका विनाश देखा जाता है, इसलिये पुराने सत्कर्मोंके साथ नवक समयप्रबद्धोंका नाश नहीं होता ।

तथा एक समय कम दो आवलीप्रमाण वे नवक समयप्रबद्ध क्रमसे ही परप्रकृतिरूपसे संक्रान्त होते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण समयप्रबद्धसम्बन्धी बन्धावलि और संक्रमणावलिके अन्तिम समयोंकी एकसाथ समाप्ति नहीं हो सकती ।

**विशेषार्थ**–यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके छह नोकषायोंकी क्षपणाके साथ पुरुषवेदका क्षय हो जाता है अतः ऐसे जीवके पांच विभक्तिस्थान नहीं होता । पर जो पुरुषवेद या नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके छह नोकषायोंके क्षपणाके कालमें पुरुषवेदका क्षयतो होता है पर ऐसे जीवके पुरुषवेदके दो समयकम दो आवलीप्रमाण नवकबन्ध समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेषका ही क्षय होता है। अतः यह जीव दो समय कम दो आवली काल तक

*** एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।**

§ २७४. एक्कारसविहत्तीए ताव उच्चदे । तं जहा-अण्णदरवेदोदएण खवगसेढिं चडिय इत्थिणवुंसयवेदेसु खविदेसु एक्कारसविहत्ती होदि । ताव सा होदि जाव छण्णोकसाया परसरूवेण ण गच्छंति । एसो एक्कारसविहत्तीए जहण्णकालो । उक्कस्सओ वि छण्णोकसायक्खवणकालो चेव अण्णत्थ एक्कारसविहत्तीए अणुवलंभादो । णवरि, छण्णोकसायक्खवणजहण्णकालादो उक्कस्सकालेण विसेसाहिएण संखेज्जगुणेण वा होदव्वं, अण्णहा एक्कारसविहत्तिकालस्स जहण्णुक्कस्सविसेसणाणुववत्तीदो । अहवा जहण्णकालो उक्कस्सकालो च सरिसो छण्णोकसायक्खवणद्धामेत्तत्तादो । ण च छण्णोकसायक्खवणद्धा अणवट्ठिदो सव्वेसिं पि जीवाणं सरिसेत्ति भणंताणमाइरियाणमुवदेसालंबणादो । ण च

पांच विभक्तिस्थान वाला रहता है । यही सबब है कि पांच विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल दो समयकम दो आवलिप्रमाण बतलाया है ।

*** ग्यारह, बारह और तेरह प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ २७४. पहले ग्यारह प्रकृतिक स्थानका काल कहते हैं । वह इसप्रकार है-तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़कर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके क्षपित हो जानेपर ग्यारह प्रकृतिक स्थान होता है । यह स्थान तबतक होता है जबतक छह नोकषाय परप्रकृतिरूपसे संक्रान्त नहीं होती हैं । ग्यारह प्रकृतिक स्थानका यह जघन्य काल है । इस स्थानका उत्कृष्ट काल भी छह नोकषायोंके क्षपणाका जितना काल है उतना ही होता है, क्योंकि छह नोकषायोंके क्षपणोन्मुख जीवको छोड़कर अन्यत्र ग्यारह प्रकृतिक स्थान नहीं पाया जाता है । इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी क्षपणाके जघन्य कालसे छह नोकषायोंकी क्षपणाका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक होना चाहिये या संख्यातगुणा होना चाहिये । यदि ऐसा न माना जाय तो ग्यारह प्रकृतिक स्थानके कालके जो जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण दिये हैं वे नहीं बन सकते हैं । अथवा, उक्त स्थानका जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल समान है; क्योंकि दोनों काल छह नोकषायोंकी क्षपणामें जितना समय लगता है तत्प्रमाण हैं । यदि कहा जाय कि छह नोकषायोंकी क्षपणाका काल अनवस्थित है अर्थात् भिन्न भिन्न जीवोंके भिन्न भिन्न होता है सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि सभी जीवोंके छह नोकषायोंकी क्षपणाका काल सदृश है, इसप्रकारका कथन करनेवालोंको आचार्योंके उपदेशका आलम्बन है, अर्थात् आचार्योंका इसप्रकारका उपदेश पाया जाता है । यदि कहा जाय कि ऐसी अवस्थामें ऊपर चूर्णिसूत्रमें कालके जो जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण दे आये हैं वे निष्फल हो जायँगे सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि दोनों विशेषण विवक्षाभेदसे दिये गये हैं, इसलिये

जहण्णुक्कस्सविसेसणं णिप्फलत्तमल्लियइ, विवक्खाविसयाणं दोण्हं णिप्फलत्तविरोहादो।

§ २७५. बारसविहत्तीए उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं। तं जहा-इत्थिवेदेण वा पुरिसवेदेण वा खवगसेढिं चडिय णवुंसयवेदं खविय जावित्थिवेदं ण खवेदि ताव बारसविहत्तियस्स उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो। जहण्णकालो बारसविहत्तीए किण्ण वुत्तो ? उवरि भणिस्समाणत्तादो।

§ २७६. तेरसविहत्तियस्स जहण्णकालो अंतोमुहुत्तं। तं जहा-इत्थिवेदेण वा पुरिसवेदेण वा खवगसेढिं चडिय अट्ठकसाएसु खविदेसु तेरसविहत्ती होदि। सा ताव होदि जाव णवुंसयवेदसव्वसंकमचरिमसमओ त्ति। एसो तेरहविहत्तीए जहण्णओ अंतोमुहुत्तकालो। संपहि उक्कस्सो वुच्चदे। तं जहा-णवुंसयवेदोदयेण खवगसेढिं चढिय अट्ठकसाएसु खविदेसु तेरसविहत्तीए आदी होदि। पुणो ताव तेरसविहत्ती चेव होदूण गच्छदि जावित्थिवेदखवणकालचरिमसमओ त्ति। एसो तेरहविहत्तीए उक्कस्सकालो जहण्णकालादो इत्थिवेदक्खवणकालमेत्तेण अब्भहियत्तादो।

इन्हें निष्फल माननेमें विरोध आता है।

§ २७५. बारह प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। वह इसप्रकार है–स्त्रीवेदके उदयके साथ या पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ कर और नपुंसकवेदका क्षय करके क्षपकजीव जब तक स्त्रीवेदका क्षय नहीं करता है तब तक बारह प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।

**शंका**–बारह प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल क्यों नहीं कहा ?

**समाधान**–बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल आगे कहनेवाले हैं, अतः यहां नहीं कहा।

§ २७६. तेरह प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। वह इस प्रकार है–स्त्रीवेदके उदयके साथ या पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ कर अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया तथा लोभ इन आठ कषायोंके क्षय कर देनेपर तेरह प्रकृतिक स्थान होता है। यह स्थान तब तक रहता है जब तक नपुंसकवेदके सर्वसंक्रमणका अन्तिम समय प्राप्त होता है। यह इस स्थानका अन्तर्मुहूर्त जघन्यकाल है।

अब तेरह प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल कहते हैं। वह इस प्रकार है–नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ कर आठ कषायोंके क्षय कर देनेपर तेरह प्रकृतिक स्थानका प्रारम्भ होता है। पुनः यह स्थान तब तक अस्तित्वमें रहता है जब तक स्त्रीवेदके क्षपणकालका अन्तिम समय प्राप्त होता है। यह तेरह प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल अपने जघन्य कालसे स्त्रीवेदके क्षपण करनेका जितना काल है उतना अधिक है।

§ २७७. संपहि बारसविहत्तियस्स जहण्णकालविसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

* णवरि बारसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ।

§ २७८. तं जहा—णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिं चढिय अट्ठकसाएसु खविदेसु तेरसविहत्ती होदि। पुणो पच्छा णवुंसयवेदमप्पणो खवणपारंभपदेसे आढविय खवेमाणो णवुंसयवेदमप्पणो खवणकाले अक्खविय इत्थिवेदक्खवणामाढवेदि। पुणो इत्थिवेदेण सह णवुंसयवेदं खवेमाणो ताव गच्छदि जाव इत्थिवेदचिराणखवणकालतिचरिमसमओ त्ति तदो सवेदियदुचरिमसमए णवुंसयवेदपढमट्ठिदीए दोट्ठिदिमेत्ताए सेसाए इत्थिणवुंसयवेदसव्वसंतकम्मम्मि पुरिसवेदम्मि संछुद्धे से काले बारसविहत्तिओ होदि, णवुंसयवेदउदयट्ठिदीए तत्थ विणासाभावादो। विदियसमए एक्कारसविहत्ती होदि, फलं दाऊण पुव्विल्लट्ठिदीए अकम्मसरूवेण परिणमत्तादो। तेण जहण्णेण एगसमओ त्ति वुत्तं।

२७७. अब बारह प्रकृतिक स्थानके जघन्य कालविशेषके कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है।

§ २७८. बारह प्रकृतिक स्थानके जघन्य कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़कर आठ कषायोंका क्षयकर देनेपर तेरह प्रकृतिक स्थान प्राप्त होता है। इसके पश्चात् नपुंसकवेदकी क्षपणाके प्रारम्भस्थानसे नपुंसकवेदका क्षय करता हुआ क्षपणकालके भीतर नपुंसकवेदका क्षय न करके स्त्रीवेदकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है। अनन्तर स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका क्षय करता हुआ तब तक जाता है जब तक स्त्रीवेदके सत्तामें स्थित प्राचीन निषेकोंके क्षपणकालका त्रिचरम समय प्राप्त होता है। अनन्तर सवेद भागके द्विचरम समयमें नपुंसकवेदकी प्रथम स्थितिके दो समयमात्र शेष रहनेपर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदसम्बन्धी सत्तामें स्थित समस्त निषेकोंके पुरुषवेदमें संक्रान्त हो जानेपर तदनन्तर नपुंसकवेदी बारह प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है, क्योंकि यहांपर नपुंसकवेदकी उदयस्थितिका विनाश नहीं हुआ है। तथा यही जीव दूसरे समयमें ग्यारह प्रकृतिक स्थानका अधिकारी होता है। क्योंकि पूर्वोक्त स्थिति अपना फल देकर अकर्मरूपसे परिणत हो जाती है। अतः बारह प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल एक समय कहा है।

**विशेषार्थ**—यदि कोई स्त्रीवेद या पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है तो वह आठ कषायोंका क्षय करनेके बाद पहले नपुंसकवेदका क्षय करके अनन्तर अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा स्त्रीवेदका क्षय करता है। पर जो नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है वह आठ कषायोंके क्षय करनेके बाद पहले नपुंसकवेदके क्षयका प्रारम्भ करके बीचमें ही स्त्रीवेदका क्षय करने लगता है और इस प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसक-

*** एक्कावीसाए विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।**

§ २७९. कुदो ? चउवीससंतकम्मिएण तिण्णि वि करणाणि काऊण खविददंसणमोहणीएण एक्कवीसमोहपयडीणमाहारत्तमुवगएण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तकालेण खवगसेढिमब्भुट्ठिएण अट्ठकसाएसु खविदेसु इगिवीसविहत्तीए जहण्णेणंतोमुहुत्तकालुवलंभादो ।

*** उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।**

§ २८०. कुदो ? देवस्स णेरइयस्स वा सम्माइट्ठिस्स चउवीससंतकम्मियस्स पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि दंसणमोहं खविय इगिवीसविहत्तीए आदिं कादूण पुव्वकोडिं सव्वसंजममणुपालेदूण कालं करिय तेत्तीससागरोवमाउएसु देवेसुप्पज्जिय पुणो अवसाणे कालं कादूण पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववज्जिय सव्वज-

वेदका एक साथ क्षय करता हुआ नपुंसकवेदके क्षय होनेके उपान्त्य समयमें ही स्त्रीवेदका क्षय कर देता है । इस प्रकार बारह प्रकृतिक स्थानके जघन्यकाल एक समयको छोड़ कर शेष तेरह और ग्यारह प्रकृतिक स्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा बारह प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होते हैं । ग्यारह विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल समान होता है या जघन्यसे उत्कृष्ट काल विशेषाधिक या संख्यातगुणा होता है। इस सम्बन्धमें अभी अधिक लिखनेके योग्य सामग्री नहीं प्राप्त हुई अतः यहां उस विषयमें कुछ नहीं लिखा है । इस विषयकी चर्चा करते हुए यद्यपि वीरसेन स्वामीने पहले जघन्य कालसे उत्कृष्टकाल विशेष अधिक या संख्यातगुणा होना चाहिये ऐसा निर्देश किया है पर अन्तमें वे स्वयं आचार्य परम्परासे प्राप्त हुए उपदेशानुसार इसी नतीजेपर पहुंचनेकी प्रेरणा करते हैं कि दोनों काल समान होना चाहिये ।

*** इक्कीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ २७९. **शंका**–इक्कीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान**–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव तीनों करण करके और दर्शनमोहनीयका क्षय करके इक्कीस मोहप्रकृतियोंका स्वामी होता हुआ सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा क्षपकश्रेणीपर चढ़ कर आठ कषायोंका क्षय कर देता है । अतः इक्कीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है ।

*** इक्कीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है ।**

§ २८०. **शंका**–ईक्कीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर क्यों है ?

**समाधान**–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक देव या नारकी सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां गर्भसे लेकर आठ वर्षके अनन्तर दर्शनमोहनीयका क्षय करके इक्कीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी हुआ । अनन्तर शेष पूर्वकोटि काल तक सकल संयमका पालन करके और मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें

हण्णंतोमुहुत्तसंसारे सेसे अट्ठकसाए खविय तेरसविहत्तिभावमुवगयस्स अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहियूण बेपुव्वकोडीहि सादिरेयतेत्तीससागरोवममेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो ।

*** बावीसाए तेवीसाए विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं ।**

§ २८१. बावीसविहत्तियस्स ताव उच्चदे । तं जहा, तेवीसविहत्तीएण सम्मामिच्छत्ते खविदे बावीसविहत्तीए आदी होदि । पुणो जाव सम्मत्तअक्खीणचरिमसमओ ताव बावीसविहत्तिओ । एसो बावीसविहत्तियस्स जहण्णकालो । उक्कस्सो वि एत्तिओ चेव, एगसमयम्मि वट्टमाणजीवाणमणियट्टिपरिणामे पडुच्च भेदाभावादो । ण च अणियट्टीअद्धाणं विसरिसत्तमत्थि एगसमयम्मि वट्टमाणजीवपरिणामाणं भेदप्पसंगादो ।

§ २८२. संपहि तेवीसविहत्तीए उच्चदे । तं जहा, चउवीससंतकम्मिएण मिच्छत्ते खविदे तेवीसविहत्तीए आदी होदि । पुणो जाव सम्मामिच्छत्तसंतकम्मं सव्वं सम्मत्तम्मि ण संछुहदि ताव तेवीसविहत्तीए जहण्णकालो । उक्कस्सविवक्खाए वि तेवीसविह-

उत्पन्न हुआ । पुनः आयुके अन्तमें मर कर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ वहाँ संसारमें रहनेका सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल शेष रह जानेपर आठ कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक स्थानको प्राप्त करता है । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटिसे अधिक तेंतीस सागर होता है ।

*** बाईस और तेईस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ २८१. उनमेंसे पहले बाईस प्रकृतिक स्थानका काल कहते हैं । वह इस प्रकार है– तेईस प्रकृतिकी सत्तावाले किसी जीवके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका नाश कर देनेपर बाईस प्रकृतिक स्थानका प्रारम्भ होता है । अनन्तर जब तक सम्यक्प्रकृतिके क्षीण होनेका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता तब तक वह जीव बाईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी रहता है । बाईस प्रकृतिक स्थानका यह जघन्यकाल है । इसका उत्कृष्टकाल भी इतना ही होता है, क्योंकि एक कालमें विद्यमान अनेक जीवोंमें अनिवृत्तिरूप परिणामोंकी अपेक्षा भेद नहीं पाया जाता । यदि कहा जाय कि नाना जीवोंकी अपेक्षा होनेवाले अनिवृत्तिकरणसंबन्धी कालोंमें विसदृशता पाई जाती है सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर जो जीव अनिवृत्तिकरणमें समान समयवर्ती हैं उनके परिणामोंमें भेदका प्रसंग प्राप्त होता है ।

§ २८२. अब तेईस प्रकृतिक स्थानका काल कहते हैं वह इस प्रकार है–चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वके क्षपित कर देनेपर तेईस प्रकृतिक स्थानका प्रारंभ होता है । अनन्तर जब तक सत्तामें स्थित सम्यग्मिथ्यात्व कर्म सम्यक्प्रकृतिमें संक्रमित नहीं हो जाता तब तक तेईस प्रकृतिक स्थान पाया जाता है और यही इस स्थानका जघन्य

तिकालो एत्तिओ चेव, कारणं सुगमं ।

*** चउवीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।**

§ २८३. कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मियस्स सम्माइट्ठिस्स अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय चउवीसविहत्तीए आदिं कादूण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमच्छिय खविदमिच्छत्तस्स चउवीस-विहत्तीए जहण्णकालुवलंभादो ।

*** उक्कस्सेण बे-छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।**

§ २८४. कुदो ? छब्बीससंतकम्मियस्स लांतवकाविट्ठमिच्छाइट्ठिदेवस्स चोद्दससा-गरोवमाउट्ठिदियस्स तत्थ पढमे सागरे अंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्व-लहुएण कालेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय चउवीसविहत्तीए आदिं कादूण सव्वु-क्कस्समुवसमसम्मत्तद्धमच्छिय विदियसागरोवमपढमसमए वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय तेरससागरोवमाणि सादिरेयाणि सम्मत्तमणुपालेदूण कालं कादूण पुव्वकोडाउअमणुस्से-सुववज्जिय पुणो एदेण मणुस्साउएणूणबावीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय पुणो

काल है । उत्कृष्ट कालकी विवक्षा करनेपर तेईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल भी इतना ही होता है । जघन्य और उत्कृष्ट दोनों कालोंके समान होनेका कारण सुगम है ।

*** चौबीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ २८३. **शंका**–चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

**समाधान**–जिसके प्रारंभमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है पश्चात् जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करके चौबीस प्रकृतिक स्थानको प्रारंभ किया है, और उसके अनन्तर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक वहां रहकर मिथ्यात्वका क्षय किया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल पाया जाता है ।

*** चौबीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ बत्तीस सागर है ।**

§ २८४. **शंका**–चौबीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ बत्तीस सागर कैसे है ?

**समाधान**–जिसके प्रारंभमें छब्बीस कर्मोंकी सत्ता है और जो चौदह सागर आयु वाला है ऐसा लांतव और कापिष्ठ स्वर्गका मिथ्यादृष्टि देव जब पहले सागरमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुके शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके सबसे कम कालके द्वारा चार अनन्तानु-बन्धियोंकी विसंयोजना करके चौबीस प्रकृतिक स्थानको प्रारंभ करता है और उपशम सम्यक्त्वके सबसे उत्कृष्ट कालतक उपशम सम्यक्त्वके साथ रहकर दूसरे सागरके पहले समयमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके साधिक तेरह सागर काल तक वहां सम्यक्त्वका पालन करके और मरकर पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे मरकर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे कम बाईस सागर प्रमाण आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। अनन्तर वहांसे

पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय तत्तो कालं काऊण अणंतरमणुस्साउएणूणएकतीस-सागरोवमट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तदो अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए सम्मामिच्छत्तं गंतूण तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं काऊण पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय तदो कालं काऊण मणुस्साउएणूणवीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय कालं काऊण पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय पुणो मणुस्साउएणूणवावीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तदो कालं काऊण पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्साहियमणुस्साउएणूणचउवीससागरोवमट्ठिदीएसु देवेसुववज्जिय कालं कादूण पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि मिच्छत्तं खविय तेवीसविहत्तियत्तं गयस्स चउवीसविहत्तीए सादिरेयवेछावट्ठिसागरोवममेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो ।

§ २८५. किमदिरेयपमाणं ? सम्मामिच्छत्त-सम्मत्तखवणकालं उवसमसम्मत्तेण सह ट्ठिदचउवीसविहत्तियकालम्मि सोहिदे सुद्धसेसमेत्तमदिरेगपमाणं । दंसणमोहक्खवणकालादो उवसमसम्मत्तकालो संखेज्जगुणो त्ति कधं णव्वदे ? अप्पाबहुगवयणादो । तं

मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहांसे मरकर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे न्यून इकतीस सागरप्रमाण आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ और वहां आयुमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर तथा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और मरकर पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तदनन्तर वहांसे मरकर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे कम बीस सागरप्रमाण स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । फिर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे कम बाईस सागरप्रमाण स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर आठवर्ष अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वोक्त मनुष्यायुसे न्यून चौबीस सागरप्रमाण स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां गर्भसे आठवर्ष और अन्तर्मुहूर्त कालके व्यतीत हो जानेपर मिथ्यात्वका क्षय करके तेईस प्रकृतिक स्थानको प्राप्त हुआ । तब उसके चौबीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर पाया जाता है ।

§ २८५. **शंका**–अधिक कालका प्रमाण क्या है ?

**समाधान**–उपशमसम्यक्त्वके साथ स्थित चौबीस प्रकृतिक स्थानके कालमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाके कालको घटा देनेपर जो शुद्धकाल शेष रह जाय वह यहां अधिक कालका प्रमाण है ।

**शंका**–दर्शनमोहनीयके क्षपणाकालसे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है यह

जहा—सव्वत्थोवा चारित्तमोहक्खवय-अणियट्टिअद्धा, तस्सेव अपुव्वअद्धा संखेज्जगुणा, कसायउवसामयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, तस्सेव अपुव्वअद्धा संखेज्जगुणा, दंसणमोहक्खवय-अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, तस्सेव अपुव्व-अद्धा संखेज्जगुणा, अणंताणुबंधिचउक्कविसंजोएंतस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, अपुव्वअद्धा संखेज्जगुणा। दंसणमोहउवसामयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, तस्सेव अपुव्वअद्धा संखेज्जगुणा, उवसमसम्मत्तद्धा संखेज्जगुणे त्ति ।

कैसे जाना जाता है ?

**समाधान**—अल्पबहुत्वके प्रतिपादक वचनोंसे जाना जाता है कि दर्शनमोहके क्षपणाकालसे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है । वे अल्पबहुत्वके प्रतिपादक वचन इस प्रकार हैं—चारित्रमोहके क्षपक अनिवृत्तिकरणका काल सबसे कम है । इससे चारित्रमोहके क्षपक अपूर्व करणका काल संख्यातगुणा है। इससे कषायके उपशामक अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है। इससे कषायके उपशामक अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है। इससे दर्शनमोहके क्षपक अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे इसी दर्शनमोहके क्षपक अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करने वाले जीवके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे दर्शनमोहकी उपशामना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है ।

**विशेषार्थ**—चौबीस विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ बत्तीस सागर होता है जिसे घटित करके ऊपर बतलाया ही है । यहां इतनी ही विशेष बात लिखनी है कि जो जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके उपशमसम्यक्त्वके सबसे बड़े काल तक चौबीस विभक्तिस्थानके साथ उपशमसम्यक्त्वी होकर रहता है पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके कुछ कम छयासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रह कर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें जाकर अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है और दूसरी बार वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके छयासठ सागरमें जब अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाय तब मिथ्यात्वकी क्षपणा करके तेईस विभक्तिस्थानवाला हो जाता है उसके ही चौबीस विभक्तिस्थानका यह उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। यहां यदि प्रारम्भमें बतलाये गये चौबीस विभक्तिस्थानके साथ उपशमसम्यक्त्वके कालको अलग करदिया जाय और कुछ कम दूसरे छयासठ सागरमें सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक् प्रकृतिकि क्षपणाकालको मिला दिया जाय तो प्रारम्भमें प्राप्त हुए वेदकसम्यक्त्वके कालसे लेकर सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाकाल तक एकसौ बत्तीस सागर होते हैं । किन्तु सम्यग्मि-

* छव्वीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? अणादि-अपज्जवसिदो ।

§ २८६. कुदो ? अभव्वस्स अभव्वसमाणभव्वस्स वा छव्वीसविहत्तीए आदि-अंताणमभावादो ।

* अणादि-सपज्जवसिदो ।

§ २८७. भव्वम्मि छव्वीसविहत्तिं पडि आदिवज्जियम्मि सम्मत्ते पडिवण्णे छव्वीसविहत्तीए विणासुवलंभादो ।

* सादि-सपज्जवसिदो ।

§ २८८. सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिय छव्वीसविहत्तियभावमुवगयस्स छव्वीसविहत्तीए विणासुवलंभादो ।

थ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिकी क्षपणाके समय चौबीस विभक्तिस्थान नहीं रहता, अतः इन दोनों प्रकृतियोंके क्षपणाकालको एकसौ बत्तीस सागरमेंसे घटा देना चाहिये और प्रारम्भमें बतलाये गये उपशमसम्यक्त्वके कालमें चौबीस विभक्तिस्थान रहता है अतः इस कालको सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाकालसे रहित एकसौ बत्तीस सागरप्रमाण कालमें जोड़ देना चाहिये तो इस प्रकार चौबीस विभक्तिस्थानका साधिक एकसौ बत्तीस सागरप्रमाण काल आ जाता है । यद्यपि एक ओर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाकालको घटाया है और दूसरी ओर चौबीस विभक्तिस्थानके साथ स्थित उपशमसम्यक्त्वके कालको जोड़ा है फिर भी उक्त दो प्रकृतियोंके क्षपणाकालसे चौबीस विभक्तिस्थानके साथ स्थित उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक है अतः चौबीस विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ बत्तीस सागर हो जाता है ।

* छब्बीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? अनादि-अनन्त काल है ।

§ २८६ **शंका**—छब्बीस प्रकृतिक स्थानका अनादि-अनन्त काल कैसे है ?

**समाधान**—क्योंकि, जो जीव अभव्य हैं या अभव्योंके समान हैं उनके छब्बीस प्रकृतिक स्थानका आदि और अन्त नहीं पाया जाता है ।

* छब्बीस प्रकृतिक स्थानका काल अनादि सान्त भी है ।

§ २८७. अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीवके छब्बीस प्रकृतिक स्थान आदिरहित है, पर जब वह सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब उसके छब्बीस प्रकृतिक स्थानका अन्त हो जाता है, इसलिये छब्बीस प्रकृतिक स्थानका काल अनादि-सान्त भी है ।

* तथा छब्बीस प्रकृतिक स्थानका काल सादि सान्त भी है ।

§ २८८. अट्ठाईस प्रकृतिकी सत्तावाले जिस सादि मिथ्यादृष्टिने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके छब्बीस प्रकृतिरूपस्थानको प्राप्त किया है उसके छब्बीस प्रकृतिक स्थानका विनाश देखा जाता है, इसलिये छब्बीस प्रकृतिक स्थान सादि-सान्त भी है ।

*** तत्थ जो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ ।**

§ २८६. **कुदो ? सत्तावीससंतकम्मिएण मिच्छादिट्ठिणा पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागमेत्तकालेण सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लमाणेण उव्वेल्लणकालम्मि अंतोमुहुत्तावसेसम्मि उवसमसम्मत्ताहिमुहभावमुवगएण अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिम्मि सव्वगोवुच्छाओ गालिय उव्वराविददोगोवुच्छेण विदियट्ठिदिम्मि ट्ठिदसम्मामिच्छत्तचरिमफालिं सव्वसंकमेण मिच्छत्तस्सुवरि पक्खिविय मिच्छत्तपढमट्ठिदिचरिमगोवुच्छं वेदयमाणेण एगसमयं छव्वीसविहत्तियत्तमुवणमिय तदुवरिमसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय अट्ठावीससंतकम्मियत्ते समालंबिदे छव्वीसविहत्तीए एगसमयकालुवलंभादो ।**

*** उक्कस्सेण उवड्ढं पोग्गलपरियट्टं ।**

§ २९०. **कुदो ? अणादियमिच्छादिट्ठिम्मि तिण्णि वि करणाणि काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णम्मि अणंतसंसारं छेत्तूण ट्ठविद-अद्धपोग्गलपरियट्टम्मि पुणो मिच्छत्तं गंतूण**

*** छब्बीस प्रकृतिक स्थानके इन तीनों भेदोंमें जो सादि-सान्त छब्बीस प्रकृतिक स्थान है उसका जघन्य काल एक समय है ।**

§ २८९. **शंका**—सादि-सान्त छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय कैसे है ?

**समाधान**—जिसके सम्यक्प्रकृतिके बिना सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है, और जो पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व कर्मकी उद्वेलना कर रहा है, पर उद्वेलनाके कालमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर जो उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके सम्मुख हुआ है तथा अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें सर्व गोपुच्छोंको गला कर जिसके दो गोपुच्छ शेष रह गये हैं, तथा जो दूसरी स्थितिमें स्थित सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको सर्व संक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम गोपुच्छका वेदन कर रहा है वह मिथ्यादृष्टि जीव एक समय तक छब्बीस प्रकृतिक स्थानको प्राप्त करके उसके अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है, अतः इसके छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है ।

*** सादि-सान्त छब्बीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है ।**

§ २९०. **शंका**- सादिसान्त छब्बीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन कैसे है ?

**समाधान**—जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और इस प्रकार जिसने अनन्तसंसारको छेदकर संसारमें रहनेके कालको अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण किया । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें

सव्वजहण्णेण पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण उव्वेल्लणकालेण सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिय छव्वीसविहत्तीए आदिं कादूण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं परियट्टिदूण अद्धपोग्गलपरियट्टे सव्व-जहण्णंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तियभावमुवणमिय सिद्धिं गयम्मि छव्वीसविहत्तीए उवड्ढपोग्गलपरियट्टमेत्तो उक्कस्सकालुवलंभादो । केत्तिएणूणमद्धपोग्गलपरियट्टं ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण । सुत्तेण अवुत्तं ऊणत्तं कधं णव्वदे ? ण, ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं उवड्ढपोग्गलपरियट्टमिदि णयारलोवं काऊण णिद्दिट्ठत्तादो ।

*** सत्तावीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ ।**

§ २६१. कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा सम्मत्तुव्वेल्लणकाले अंतोमुहुत्तावसेसे तिण्णि वि करणाणि कादूण अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिदुचरिमसमए सम्मत्तचरिमफालिं सव्वसंकमेण मिच्छत्तम्मि पक्खित्ते पढमट्ठिदिचरिमसमए सत्तावीस विहत्ती होदि । से काले उवसमसम्मत्तं घेत्तूण जेण अट्ठावीसविहत्तिओ होदि तेण

भाग प्रमाण उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके और इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक स्थानका प्रारम्भ करके देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक परिभ्रमण करके अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप कालमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानको प्राप्त होकर क्रमसे सिद्धिको प्राप्त हुआ उसके छब्बीस प्रकृतिक स्थानका देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

**शंका**–यहाँ अर्धपुद्गल परिवर्तनको जो देशोन कहा है सो देशोनका प्रमाण क्या है ?

**समाधान**–यहाँ देशोनका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग इष्ट है ।

**शंका**–सूत्रमें ऊनपनेका निर्देश तो नहीं किया है फिर यह कैसे जाना कि यहाँ देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण काल इष्ट है ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि ऊन+अर्धपुद्गल परिवर्तनके स्थानमें प्राकृतके नियमानुसार णकारका लोप करके उपार्धपुद्गल परिवर्तन शब्दका निर्देश किया है ।

*** सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है ।**

§ २६१. **शंका**–सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय कैसे है ?

**समाधान**–जब अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्प्रकृतिके उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर तीनों करणोंको करता है और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सम्यक्प्रकृतिकी अन्तिम फालिको सर्वसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त कर देता है तब वह मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है । पुनः अनन्तर समयमें उपशम सम्य-

सत्तावीसविहत्तीए जहण्णकालस्स पमाणमेगसमओ ।

*** उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।**

§ २६२. कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तकालेण सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सत्तावीसविहत्ती होदि । तदो सव्वुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण जाव सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लदि ताव सत्तावीसविहत्तीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो ।

*** अट्ठावीसविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।**

§ २६३. कुदो ? छव्वीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्हि उवसमसम्मत्तं घेत्तूण उप्पाइदअ-ट्ठावीससंतकम्मम्मि सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमट्ठावीससंतकम्मेण सह अच्छिय अणंताणु-बंधिचउक्कं विसंजोइय उप्पाइदचउवीससंतकम्मम्मि अट्ठावीसविहत्तियस्स अंतोमुहुत्त-मेत्तजहण्णकालुवलंभादो ।

*** उक्कस्सेण बे-छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।**

§ २६४. तं जहा, एक्को मिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तिओ जादो ।

क्त्वको प्राप्त करके चूंकि वह अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होजाता है इसलिये सत्ताईस प्रकृतिक स्थानके जघन्य कालका प्रमाण एक समय है यह सिद्ध होता है ।

*** सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है ।**

§ २६२. **शंका**–सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग कैसे है ?

**समाधान**–अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण कालके द्वारा सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करनेपर सत्ताईस प्रकृतिक स्थानवाला होता है । तदनन्तर वह जीव जब तक सबसे उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्य-ग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना करता है तबतक उसके सत्ताईस प्रकृतिक स्थान पाया जाता है । अतः सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ।

*** अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहुर्त है ।**

§ २६३. **शंका**-अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कैसे है ?

**समाधान**–छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी एक मिथ्यादृष्टि जीवने उपशम सम्य-क्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त किया । अनन्तर सबसे जघन्य अन्त-र्मुहूर्त काल तक अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तासे युक्त रहनेके पश्चात् अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके चौबीसप्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की । तब उसके अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

*** अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है ।**

§ २६४. वह इस प्रकार है–कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण

तदो मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वुकस्ससम्मत्तुव्वेल्लणकाले अंतोमुहुत्तावसेसे सत्तावीसविहत्तिओ होदि त्ति ण होदूण उव्वेलणकालमचरिमसमए मिच्छत्तपढमट्ठिदीए चरिमणिसेयं काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । तदो पढम-छावट्ठिं भमिय मिच्छत्तं गंतूण पुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागभूदसव्वुकस्स सम्मत्तुव्वेल्लणकालचरिमसमए उवसमसम्मत्तं घेत्तूण विदियछावट्ठिं भमिय मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वुकस्ससम्मत्तुव्वेल्लणकालेण सत्तावीस-विहत्तिओ जादो । तदो तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादिरेयाणि बेछावट्ठि-सागरोवमाणि अट्ठावीस-विहत्तियस्स उकस्सकालो । एवं जइवसहाइरिय-चुण्णि-सुत्त-मस्सिदूण ओघे परूवणा कदा ।

§ २६५. संपहि उच्चारणाइरियपरूविद-ओघुच्चारणं चुण्णिसुत्तसमाणं पुणरुत्तभएण छड्डिय आदेसुच्चारणं भणिस्सामो । अचक्खु०-भवसिद्धि० ओघभंगो ।

§ २६६. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीसविहत्ती केवचिरं कालादो ?

करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हुआ। तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्प्रकृतिके सबसे उत्कृष्ट उद्वेलनकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागके व्यतीत होनेपर वह सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता पर ऐसा न होकर वह उस कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर उद्वेलना कालके उपान्त्य समयमें मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम निषेकका अन्त करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः सम्यक्प्रकृतिके सबसे उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्या-तवें भागप्रमाण उद्वेलना कालके अन्तिम समयमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और दूसरे छियासठ सागर काल तक भ्रमण करनेके पश्चात् पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्-प्रकृतिके सबसे उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हुआ । अतः पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

इसप्रकार यतिवृषभके चूर्णिसूत्रोंका आश्रय लेकर ओघका कथन किया ।

§ २६५. अब यतः उच्चारणाचार्यके द्वारा उच्चारणावृत्तिमें किया गया ओघका कथन चूर्णिसूत्रोंके समान है अतः पुनरुक्त दोषके भयसे उसका कथन न करके उच्चारणामें कहे गये आदेश प्ररूपणाका कथन करते हैं–अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके प्रकृतिस्थानोंका काल ओघके समान है । तात्पर्य यह है कि ये दोनों मार्गणाएँ मोहनीयके अवस्थानकाल तक सर्वदापाई जाती हैं । अतः इनमें ओघके समान काल बन जाता है ।

§ २६६. आदेशकी अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमें अट्ठाईस विभक्ति स्थानका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तेतीस सागर है । इसीप्रकार छब्बीस विभक्ति स्थानके कालका कथन करना चाहिये । सत्ताईस विभक्ति स्थानका काल ओघके समान

**जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं छव्वीस० वत्तव्वं । सत्तावीस० ओघभंगो । चउवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । वावीसविह० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एक्कवीसविह० जह० चउरासीदिवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । उक्क० सागरोवमं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणं । एवं पढमाए पुढवीए । णवरि, सगट्ठिदी वत्तव्वा । विदियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीस-छव्वीस विह० केव० ? जह० एगसमओ. उक्क० सगसगट्ठिदी । सत्तावीस० ओघभंगो । चउवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा ।**

है । चौबीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन तेतीस सागर है । बाईस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इक्कीस विभक्ति स्थानका कितना काल है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम एक सागर है । सामान्य नारकियोंके विभक्तिस्थानोंके कालका जिसप्रकार कथन किया है उसीप्रकार पहले नरकमें समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहां उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंके अट्ठाईस और छब्बीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सत्ताईस विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है । चौबीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—जिसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रह गया है ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके नरक अवस्थामें २८ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय बन जाता है । इसीप्रकार प्रत्येक नरकमें २८ विभक्तिस्थानका एक समय काल जानना चाहिये । तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किया हुआ जो सम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्वमें जाकर और एक समय तक अनन्तानुबन्धीकी सत्ताके साथ रहकर तथा दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है उसके भी २८ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय बन जाता है । पर यह व्यवस्था प्रथमादि छह नरकोंमें ही लागू होती है सातवेंमें नहीं, क्योंकि सातवेंमें ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त हुए बिना नहीं मरता है ऐसा नियम है । २८ विभक्तिस्थानवाला कोई एक जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और वहां वह वेदक सम्यक्त्वके कालके भीतर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके मरण होनेमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर मिथ्यादृष्टि हो गया उसके २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर पाया जाता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि ऐसे जीवके अनन्ता-

नुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होनी चाहिये। २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर अन्य प्रकारसे भी प्राप्त हो सकता है सो उसका विचार कर कथन कर लेना चाहिये। इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २८ विभक्तिस्थानके उत्कृष्ट कालका कथन अपने अपने नरककी स्थितिप्रमाण घटितकर लेना चाहिये। जिसके नरकमें रहनेका काल एक समय शेष रहनेपर सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना हो गई है उसके नरकमें २६ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। इसीप्रकार सातों नरकोंमें २६ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय जानना चाहिये। तथा २६ विभक्तिस्थानवाला जो मिथ्यादृष्टि नारकी जीव नरकमें उत्पन्न होकर जीवन पर्यन्त मिथ्यादृष्टि बना रहता है उस नारकीके सामान्यसे २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पाया जाता है। इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २६ विभक्तिस्थानका अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्टकाल घटित कर लेना चाहिये। जिसके नरकमें रहनेका काल एक समय शेष रहनेपर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना हो गई है उसके २७ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय ओघके समान बन जाता है। इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २७ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय जानना चाहिये। तथा ओघकी अपेक्षा जो सत्ताईस विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है वह यहां सामान्यसे नारकियोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। जिस सम्यग्दृष्टि नारकीने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके चौबीस विभक्तिस्थानको प्राप्त किया और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त कर ली उस नारकीके २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त जान लेना चाहिये। तथा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसने अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी पुनः जीवन भर २४ विभक्तिस्थानके साथ रहकर अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर वह मिथ्यात्वमें जाकर २८ विभक्तिस्थानवाला हो गया उसके २४ विभक्तिस्थानका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट काल पाया जाता है। सातवें नरकमें २४ विभक्तिस्थानका यही उत्कृष्ट काल होता है। किन्तु प्रथमादि छह नरकोंमें २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। उसमें जीवनके अन्तमें मिथ्यात्वमें नहीं ले जाना चाहिये, क्योंकि प्रारम्भके छह नरकोंमें सम्यग्दृष्टि नारकियोंका मरण होता है। अतः यहां कुछ कमसे भवके प्रारम्भमें विसंयोजना होने तकके कालका ही ग्रहण करना चाहिये। कृतकृत्य वेदकके कालमें एक समय शेष रहनेपर जो जीव नरकमें उत्पन्न होता है। उसके २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा कृतकृत्य वेदकके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर जो जीव नरकमें उत्पन्न होता है उसके २२ विभक्तिस्थानका

§ २९७. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु अट्ठावीसविह० केव० ? जह० एगसमओ। उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सादिरेयाणि। सत्तावीस० ओघभंगो। छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा। चउवीसविह० केव० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि

उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। पहले नरकमें २२ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल इसीप्रकार जानना चाहिये; क्योंकि अन्य नरकोंमें २२ विभक्तिस्थान नहीं होता है। नरकमें इक्कीस विभक्तिस्थानका जघन्य काल जो अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष प्रमाण बतलाया है उसका यह कारण प्रतीत होता है कि यदि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव कृतकृत्य वेदकके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर नरकसम्बन्धी सम्यग्दृष्टिकी जघन्य आयुके साथ मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि नरकमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि जीवकी जघन्य आयु चौरासी हजार वर्षसे कम नहीं होती है किन्तु ऐसे जीवके २२ और २१ इन दोनों विभक्ति स्थानोंका पाया जाना भी सम्भव है। अत: यहां २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष कहा है। इससे यह भी निष्कर्ष निकल आता है कि जिसके २२ विभक्तिस्थानके कालमें एक समय शेष रहा है ऐसा जीव यदि सम्यग्दृष्टिकी जघन्य आयुके साथ मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो उसके २१ विभक्तिस्थानका काल एक समय कम चौरासी हजार वर्ष होता है। इसीप्रकार उत्तरोत्तर बाईस विभक्तिस्थानके कालमें एक एक समय तक बढ़ाते हुए अन्तर्मुहूर्त काल तक ले जाना चाहिये और इक्कीस विभक्तिस्थानके कालमें एक एक समय घटाते हुए अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष तक ले जाना चाहिये। उक्त कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि कोई २१ विभक्तिस्थानवाला जीव वहां की क्षायिक सम्यग्दृष्टिकी आयुके साथ मरकर यदि नरकमें उत्पन्न हो तो उसके चौरासी हजार वर्षसे कम आयु नहीं पाई जायगी। तथा नरकमें २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग कम एक सागर प्रमाण है। इसका यह तात्पर्य है कि यद्यपि पहले नरककी उत्कृष्ट आयु परिपूर्ण एक सागर प्रमाण है फिर भी वहां उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टिके पहले नरककी उत्कृष्ट आयु नहीं प्राप्त होती है किन्तु पल्यके असंख्यातवें भाग कम एक सागर ही प्राप्त होती है।

§ २९७. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य है। सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल ओघके समान जानना चाहिये। छब्बीस विभक्तिस्थानका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। वह अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। चौबीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और

**देसूणाणि। बावीसविह० केव० ? जह० एगस० उक्क० अंतोमुहुत्तं। एक्कवीसविह० केव० ? जह० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्ज० अट्ठावीस-छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। सेसाणं तिरिक्खोघभंगो। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ। उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं मणुस्सअपज्ज-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमपज्ज०-अपज्ज०-विगलिंदियअपज्ज०-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकायबादरअपज्ज०-सुहुमपज्ज० अपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं।**

उत्कृष्ट काल देशोन तीन पल्य है। बाईस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इक्कीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है और उत्कृष्टकाल तीन पल्य है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीवोंके अट्ठाईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। उक्त दोनों प्रकारके तिर्यंचोंके शेष सम्भव प्रकृतिकस्थानोंका काल ओघके समान समझना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस और चौबीस प्रकृतिकस्थानोंके कालका कथन पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें उक्त स्थानोंके कहे गये कालके समान करना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तजीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, और छब्बीस प्रकृतिक स्थानोंका काल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, विकलेन्द्रिय अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों बादरकाय अपर्याप्त, पांचों सूक्ष्मकाय पर्याप्त, पांचों सूक्ष्मकाय अपर्याप्त और त्रसकाय अपर्याप्त इन जीवोंके भी अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानोंका काल कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–२८, २७, और २६ विभक्तिस्थानके जघन्य काल एक समयका खुलासा जिस प्रकार नरकगतिके कथनके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये। तथा अन्य मार्गणास्थानोंमें जहां इन विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय बतलाया हो वहां भी इसी प्रकार खुलासा कर लेना चाहिये। हम पुनः पुनः इसका निर्देश नहीं करेंगे। तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण करनेवाले किसी एक जीवके उपशमसम्यक्त्व होकर २८ विभक्तिस्थानकी प्राप्ति हुई। पुनः मिथ्यात्वमें जाकर जिसने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ किया और अतिदीर्घकाल तक जो तिर्यंचगतिमें ही उसकी उद्वेलना करता हुआ तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और वहां सम्यक्त्व प्राप्तिके योग्य

कालके प्राप्त होने पर जिसने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें पुनः उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया। तथा अनन्तर वेदक सम्यग्दृष्टि होकर जो जीवनपर्यन्त उसके साथ रहा उस तिर्यंचके २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य प्राप्त होता है। जो तिर्यंच सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके प्रारम्भसे अन्त तक तिर्यंच पर्यायमें ही बना रहता है उस तिर्यंचके २७ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल ओघके समान पल्यका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है। २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि किसी एक जीवके मिथ्यात्वके साथ निरन्तर तिर्यंचपर्यायमें रहनेका काल उक्त प्रमाण ही है। २४ विभक्ति-स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। तथा उत्कृष्ट-काल जो कुछ कम तीन पल्य कहा है उसका कारण यह है कि कोई एक जीव उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ और वहां पर उसने सम्यक्त्वके योग्य कालके प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी। पुनः जीवन भर जो २४ विभक्तिस्थानके साथ रहा। उसके २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य होता है। यहां कुछ कमसे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होने तकका काल लेना चाहिये। यहां २२ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। भोगभूमिके तिर्यंचकी जघन्य आयु पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट आयु तीन पल्यप्रमाण होती है। इसी अपेक्षासे तिर्यंचोंमें २१ विभक्ति-स्थानका जघन्य काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट काल तीन पल्यप्रमाण कहा है। यहां यह शङ्का की जा सकती है कि सर्वार्थसिद्धिमें बतलाया है कि जिसने क्षायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेके पहले तिर्यंचायुका बन्ध कर लिया है ऐसा मनुष्य उत्तम भोगभूमिके तिर्यंच पुरुषोंमें ही उत्पन्न होता है और उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवकी जघन्य आयु भी दो पल्यसे अधिक होती है। अतः यहां २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण नहीं बन सकता है। इस शङ्काका यह समाधान है कि सर्वार्थसिद्धिको छोड़ कर हमने दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदायमें प्रचलित कार्मिक ग्रन्थ देखे पर वहां हमें यह कहीं लिखा हुआ नहीं मिला कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि मर कर अगर तिर्यंच और मनुष्य होता है तो उत्तमभोगभूमिया ही होता है। वहां तो केवल इतना ही लिखा है कि ऐसा जीव यदि मर कर तिर्यंच और मनुष्य हो तो असंख्यातवर्षकी आयु-वाला भोगभूमिया ही होता है। इससे मालूम होता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जो 'उत्तम' पद आया है वह भोगभूमि पदका विशेषण न होकर पुरुष पदका विशेषण है। अथवा ये दोनों कथन मान्यताभेदसे सम्बन्ध रखते हों तो भी कोई आश्चर्य नहीं। इस प्रकार ऊपर जो सामान्य तिर्यंचोंके २८ आदि विभक्तिस्थानोंका काल बतलाया है, उसमेंसे २८ और २६

§२६८. मणुस्सेसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। तेवीस-बावीस-तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-चत्तारि-तिण्णि-दोण्णि-एगविहत्तियाणमोघभंगो। एक्कवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं । उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि किंचूणपुव्वकोडितिभागेणब्भहियाणि । एवं मणुसपज्ज० । णवरि, बावीसविह० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मणुस्सिणीसु । णवरि, बारस० जह० अंतोमुहुत्तं । एक्कवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं । उक्क० पुव्वकोडी देसूणा ।

विभक्तिस्थानोंके उत्कृष्टकालको छोड़ कर शेष सब कालविषयक कथन पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकोंके भी घटित हो जाता है । किन्तु इन दोनों प्रकारके तिर्यंचोंके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्यप्रमाण होता है । यहां पूर्वकोटि पृथक्त्वसे पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके ६५ पूर्वकोटियोंका और पंचेन्द्रिय-तिर्यंचपर्याप्तकोंके ४७ पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके २८, २७, २६ और २४ विभक्तिस्थानोंका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल कहते समय पूर्वकोटिपृथक्त्वसे १५ पूर्वकोटियोंका ही ग्रहण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इनके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल १५ पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य होता है । पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानका एक समय प्रमाण जघन्यकाल उद्वेलनाकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये । तथा अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा यहां उक्त विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल कहा है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त आदि जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिये ।

§ २६८. **मनुष्योंमें** अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस और चौबीस विभक्तिस्थानोंके जघन्य और उत्कृष्टकालका कथन पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें उक्त स्थानोंके कहे गये जघन्य और उत्कृष्टकालके समान है । तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक स्थानोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओघके समान है । इक्कीस विभक्तिस्थानका काल कितना है । जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य है । इसीप्रकार मनुष्यपर्याप्तकोंके समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके बाईस विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार मनुष्यणिओंके समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके बारह विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा इनके इक्कीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि है।

**विशेषार्थ**–मनुष्योंमें २८, २७, २६ और २४ विभक्तिस्थानोंका काल पंचेन्द्रिय-

तिर्यंचोंके समान होता है। इसका यह तात्पर्य है कि पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान सामान्य मनुष्योंमें भी २८, २७, और २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय, २४ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त तथा २८ और २६ विभक्तियोंका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य, २७ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल ओघके समान पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण और २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम तीन पल्य जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां पूर्वकोटिपृथक्त्वका खुलासा करते समय तिर्यंचोंकी ९५ पूर्वकोटियां न कह कर मनुष्योंकी ४७ पूर्वकोटियां ही कहना चाहिये। शेष खुलासा जिस प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके कथनके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहां कर लेना चाहिये। तथा सामान्य मनुष्योंमें केवल २१ विभक्तिस्थानके कालको छोड़ कर शेष विभक्तिस्थानोंका काल ओघके समान है। अतः ओघका कथन करते समय जिस प्रकार खुलासा कर आये हैं उसी प्रकार यहां कर लेना चाहिये। हां, ओघसे २१ विभक्तिस्थानके कालमें कुछ विशेषता है जो निम्न प्रकार है। उसमें भी सामान्य मनुष्योंके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल तो ओघके समान अन्तर्मुहूर्त ही होता है। पर उत्कृष्ट काल जो साधिक तेतीस सागर बतलाया है वह न होकर कुछ कम पूर्वकोटि त्रिभागसे अधिक तीन पल्य प्रमाण ही होता है। यथा—एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस कर्मभूमिया मनुष्यने आयुके त्रिभागप्रमाण शेष रहनेपर परभवसम्बन्धी मनुष्यायुका बन्ध किया। पुनः आयुबन्धके पश्चात् वेदक सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तर क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त किया। तदनन्तर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ शेष आयुका भोग करके और आयुके अन्तमें मरकर उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयुके साथ मनुष्य हुआ और वहांसे देवगतिमें गया। उसके २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिके कुछ कम एक त्रिभागसे अधिक तीन पल्यप्रमाण पाया जाता है। ऊपर जिस प्रकार सामान्य मनुष्योंमें २८ आदि विभक्तिस्थानोंके कालका खुलासा किया है उसी प्रकार पर्याप्त मनुष्योंके कर लेना चाहिये। पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि पर्याप्त मनुष्योंके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंके उत्कृष्ट कालका खुलासा करते समय पूर्वकोटिपृथक्त्वसे २३ पूर्वकोटियोंका ही ग्रहण करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके २२ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। कृतकृत्य वेदक कालमें एक समय शेष रहनेपर जो मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है उस पर्याप्त मनुष्यके २२ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। तथा जिस मनुष्य पर्याप्तने दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया है और कृतकृत्यवेदक होकर जो नहीं मरा है उसके २२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। तथा सामान्य मनुष्योंके समान मनुष्यणियोंके भी २८ आदि विभक्तिस्थानोंका काल जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके बारह विभ-

§ २६६. देवेसु अट्ठावीसविह० जह० एगसमओ। चउवीसविह० जह० अंतोमुहुत्तं। उक्क० दोण्हंपि तेत्तीसं सागरोवमाणि। सत्तावीसविह० ओघभंगो। छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ। उक्क० एक्कत्तीससागरोवमाणि। बावीसविह० जह० एगसमओ। उक्क० अंतोमुहुत्तं। एक्कवीसविह० केव० ? जह० पलिदोवमं सादिरेयं, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। भवण०-वाण०-जोइसि० अट्ठावीस-छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। सत्तावीस० ओघभंगो। चउवीसविह० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जदेवाणमोघभंगो।

क्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि जो जीव स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदके क्षय हो जानेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा ही स्त्रीवेदका क्षय होता है। इसी प्रकार मनुष्यणियोंके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण ही होता है। इनके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त क्यों होता है, यह तो स्पष्ट ही है पर उत्कृष्टकाल जो कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण बतलाया उसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यणियोंमें उत्पन्न नहीं होता अतः एक भवकी अपेक्षा ही इनका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है। किन्तु क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति कर्मभूमिज मनुष्यके ही होती है और कर्मभूमिज मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होती है। साथ ही यह भी नियम है कि कर्मभूमिज मनुष्यके आठ वर्षके पहले सम्यक्त्व उत्पन्न करनेकी योग्यता नहीं होती, अतः एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यणीने आठ वर्षके उपरान्त वेदक सम्यक्त्वपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न किया है उसके २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण देखा जाता है।

§ २६६. देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय है और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनों स्थानोंका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। बाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इक्कीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है जघन्य काल साधिक पल्य और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है।

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमे अट्ठाईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है। चौबीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

णवरि, उक्क० सगट्ठिदी वत्तव्वा। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अट्ठावीस-चउवीस-विह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी। बावीस० णारगभंगो। एक्कवीस० केव० ? जह० जहण्णट्ठिदी अंतोमुहुत्तूणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी।

सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक देवोंके स्थानोंके कालका कथन ओघके समान करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक देवोंके अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। बाईसप्रकृतिक स्थानका काल नारकियोंके समान समझना चाहिये। इक्कीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण है और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

**विशेषार्थ**–जिस वेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्यने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं की है वह मर कर जब उत्कृष्ट आयुके साथ चार विजयादिकमें या सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होता है और वहां भी यदि वह अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करता है तो उसके २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल ३३ सागर पाया जाता है। तथा जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है ऐसा जो वेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य उक्त स्थानोंमें पैदा होता है उसके २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल ३३ सागर देखा जाता है। २६ विभक्तिस्थान मिथ्यादृष्टिके ही होता है। अतः देवोंमें २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल ३१ सागर ही कहना चाहिये, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव नौग्रैवेयक तक ही पैदा होता है और नौग्रैवेयकमें उत्कृष्ट आयु ३१ सागरप्रमाण ही है इससे अधिक नहीं। वैमानिकोंमें जघन्य आयु साधिक एक पल्य और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है अतः यहां २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल साधिक एक पल्य और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर कहा है। भवनत्रिकोंमें चौबीस विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण कहनेका कारण यह है कि इनमें सम्यग्दृष्टि जीव अन्य गतिसे आकर उत्पन्न नहीं होते हैं। अतः वहीं जिन्होंने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है उनके ही २४ विभक्तिस्थान होता है जिसका जीवन भर पाया जाना सम्भव है, अतः 'भवनत्रिकोंमें २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होता है। सौधर्मसे लेकर नौग्रैवेयक तक तो सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके जीव पैदा होते हैं। अतः वहां २८, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बन जाता है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें यद्यपि सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं फिर भी जो वहां उत्पन्न होनेके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर देते हैं उनके २८ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है।

§ ३००. इंदियाणुवादेण एइंदिय० बादर० सुहुम० अट्ठावीस-सत्तावीसविह० केव० ? जह० एगसमओ उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। छब्वीसवि० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। बादरपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। एवं विगलिंदिय-विगलिंदियपज्ज०। पंचिंदिय-पंचिंदि-

और जो जीवनके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करते हैं उनके चौबीस विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है यहां हमने जिन विभक्तिस्थानोंके जघन्य या उत्कृष्ट कालके विषयमें विशेष कहना था उन्हींके कालका खुलासा किया है शेषका नहीं। अतः शेषका विचार कर लेना चाहिये।

§ ३००. इन्द्रियमार्गणाकेअनुवादसे एकेन्द्रिय, तथा इनके बादर और सूक्ष्म जीवोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग है। छब्बीस विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है। इसीप्रकार विकलेन्द्रिय,विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—यद्यपि एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका निरन्तर उस पर्यायमें रहनेका काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक है, फिर भी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें २८ और २७ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है इससे अधिक नहीं। अतः एकेन्द्रियादि उक्त जीवोंके २८ और २७ विभक्तिस्थानोंका काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। किन्तु २६ विभक्तिस्थानके विषयमें यह बात नहीं है अतः उसका काल उक्त जीवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। तथा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष प्रमाण ही होता है अतः इनके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष कहा है। तथा विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके भी २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष जानना चाहिये। क्योंकि कोई एक जीव विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रियपर्याप्त पर्यायमें निरन्तर संख्यात हजार वर्ष तक ही रहता है। इसके पश्चात् उसकी विवक्षित पर्याय बदल जाती है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। जो सुगम होनेके कारण वीरसेनस्वामीने नहीं कहा है। विशेषार्थमें हमने जिन विभक्तिस्थानोंके जघन्य या उत्कृष्ट कालोंका खुलासा नहीं किया है इसका कारण यह है कि उनका खुलासा नरकगति आदिके सम्बन्धमें विशेषार्थ लिखते समय कर आये हैं।

यपज्ज०-तस-तसपज्जत्ताणमोघभंगो । णवरि, अट्ठावीस० जह० एगसमओ उक्क० सग-ट्ठिदी ? छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादर-सुहुम० वणप्फदि०-बादर-सुहुम० णिगोद०-बादर-सुहुम० अट्ठावीस-सत्तावीस० एइंदियभंगो । छव्वीसविह० केव० ? जह० एगस० उक्क० सगट्ठिदी । बादर-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्त० बादर-एइंदियपज्जत्तभंगो ।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके ओघके समान कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अट्ठाईस विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा छब्बीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । पृथिवीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक तथा इनके बादर और सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक तथा इनके बादर और सूक्ष्म, निगोदजीव तथा इनके बादर और सूक्ष्म जीवोंके अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्ति-स्थानका काल एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । उक्त जीवोंके छब्बीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर अप्कायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका काल बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ–२४ विभक्तिस्थानसे लेकर शेष सब विभक्तिस्थान पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके ही होते हैं अतः इनके २४ आदि विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओघके समान बन जाता है । अब रही २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंके कालोंकी बात, सो इनके २७ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल भी ओघके समान बन जाता है । किन्तु २८ विभक्तिस्थानके जघन्यकालमें और २६ विभक्ति-स्थानके उत्कृष्टकालमें कुछ विशेषता है जो ऊपर बताई ही है । तथा एकेन्द्रिय जीवोंके २८ और २७ विभक्तिस्थानोंके कालोंका तथा एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके २६ विभक्तिस्थानके कालका जिसप्रकार खुलासा कर आये हैं उसीप्रकार पृथिवीकायिक आदि जीवोंके भी २८ आदि विभक्तिस्थानोंके कालोंका खुलासा कर लेना चाहिये । तथा वीरसेनस्वामीने जिसप्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि जीवोंके २८ आदि विभक्तिस्थानोंके कालोंका विवेचन नहीं किया है उसीप्रकार यहांभी इन पृथिवी कायिक आदिके बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्तभेदोंके २८ आदि विभक्तिस्थानोंके कालोंका विवेचन नहीं किया है सो जिसप्रकार एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त आदिके २८ आदि विभक्तिस्थानोंका काल ऊपर कह

§ ३०१. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-आहार० अप्पप्पणो पदाणं विह०जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। कायजोगि० अट्ठावीस-सत्तावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। सेसाणं मणजोगिभंगो। ओरालियकायजोगि० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। सेसाणं मणजोगिभंगो। ओरालियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-बावीसविह० के० ? जह एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। चउवीस-एक्कवीसवि० के० ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एवं वेउव्वियमिस्स०। आहारमिस्स० सव्वपदाणं विह० के० ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। कम्मइय० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। चउवीस-बावीस-एक्कवीसवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बेसमया।

आये है उसीप्रकार यहां भी कह लेना चाहिये।

§ ३०१. योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंके अपने अपने विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी जीवोंके अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानोंका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवे भाग है। छब्बीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी स्थिति प्रमाण है। शेष स्थानोंका काल मनोयोगियोंके समान है। औदारिककाययोगी जीवोंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। शेष स्थानोंका काल मनोयोगियोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस और बाईस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। जिसप्रकार औदारिक मिश्रकाययोगियोंके अट्ठाईस आदि स्थानोंका काल कह आये है उसीप्रकार वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंके उक्त स्थानोंका काल जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंके संभव सभी स्थानोंका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगियोंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्ति स्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। चौबीस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है।

**विशेषार्थ**–पांचों मनोयोग, पांचों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग और आहारक काय-

योगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इन योगोंमें सम्भव अपने अपने विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा अन्य प्रकारसेभी इन योगोंमें अपने अपने विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त बन सकता है सो विचार कर कथन कर लेना चाहिये। काययोगमें २८, २७, और २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय जिसप्रकार नारकियोंके घटित करके लिख आये हैं उसीप्रकार घटित कर लेना चाहिये। सर्वदा काययोग एकेन्द्रियोंके ही रहता है और एकेन्द्रियोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है अतः काययोगमें २८ और २७ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें इतना ही काल लगता है। काययोगका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है अतः इसमें २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल इतना ही प्राप्त होता है। क्योंकि इतने काल तक निरन्तर २६ विभक्तिस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं है। काययोगमें शेष विभक्तिस्थानोंका काल मनोयोगियोंके समान कहनेका कारण यह है कि शेष विभक्तिस्थान संज्ञीके ही होते हैं और वहां तीनों योग बदलते रहते हैं अतः काययोगमें भी शेष विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। औदारिक काययोगमें २८, २७, और २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिये। या इसका जघन्यकाल एक समय है इसलिये भी इसमें उक्त विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है अतः इसमें २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम २२ हजार वर्ष प्रमाण बन जाता है। तथा औदारिक काययोगमें भी शेष विभक्तिस्थानोंका काल मनोयोगियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। औदारिक मिश्रकाययोगमें २८, २७, २६ और २२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। तथा औदारिक मिश्रकाययोगका काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसमें उक्त विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा औदारिकमिश्रकाययोगमें २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो २४ और २१ विभक्तिस्थानवाला जीव औदारिकमिश्र काययोगको प्राप्त हुआ है उसके औदारिक मिश्रकाययोगके कालमें २४ और २१ विभक्तिस्थान ही बना रहता है। यद्यपि जो २२ विभक्तिस्थानवाला जीव औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त होता है। उसके औदारिकमिश्रकाययोगके रहते हुए ही २२ विभक्तिस्थान बदल कर २१ विभक्तिस्थान आजाता है किन्तु इसप्रकार २१ विभक्तिस्थानके प्राप्त होनेपर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिक मिश्रकाययोग फिर भी बना रहता है अतः औदारिक मिश्रकाययोगमें २१ विभक्तिस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं कहा

§ ३०२. वेदाणुवादेण इत्थि० अट्ठावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपलिदोवमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीसवि० ओघभंगो । छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । चउवीसविह० जह० एगसमओ । कुदो ? उवसमसेढीदो ओदरिय सवेदी होदूण विदियसमए कालं कादूण देवेसुप्पण्णस्स एगसमयकालुवलंभादो । उक्क०पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि । तेवीस-बावीस-तेरस-बारसवि० ओघभंगो । णवरि, बारसविह० एयसमओ णत्थि । एक्कवीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । पुरिसवेदे अट्ठावीस-चउवीस-

है । औदारिक मिश्रकाययोगके समान वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्भव विभक्तिस्थानोंका काल होता है, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः इसमें सम्भव २८, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय है अतः इसमें सम्भव २८, २७, २६, २४, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय कहा है । यहां २८, २७, २६ और २२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय अन्य प्रकारसे भी बन सकता है सो विचार कर कथन कर लेना चाहिये । तथा निष्कुट क्षेत्रके प्रति गमन करने वाले जीवोंके ही तीन विग्रह होते हैं और ऐसे जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं । तथा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें २८, २७ और २६ ये तीन विभक्तिस्थान ही सम्भव हैं अतः कार्मणकाययोगमें इन तीनोंका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा । तथा २४, २२ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव यदि मरते है तो अधिकसे अधिक दो विग्रह ही कर लेते हैं अतः कार्मणकाययोगमें इनका दो समय प्रमाण उत्कृष्ट काल कहा है ।

§ ३०२. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें अट्ठाईस प्रकृतिस्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है । सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है । छब्बीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय है ।

**शंका**–स्त्रीवेदमें चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

**समाधान**–क्योंकि जो उपशमश्रेणीसे उतरकर वेद सहित हुआ और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुआ उस स्त्रीवेदीके चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । स्त्रीवेदमें चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्टकाल देशोन पचपन पल्य है । तेईस, बाईस, तेरह और बारह प्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्यकाल एक समय नहीं है । इक्कीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटिप्रमाण है ।

विह० के० ? जह० एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्क० ओघभंगो । सत्तावीस० ओघभंगो । छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । तेवीस-तेरस-बारस-एक्कारसविह० ओघभंगो । णवरि, बारसविह० एयसमओ णत्थि । एक्कवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० ओघभंगो । बावीसविह० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचविह० के० ? जहण्णुक्क० एगसमओ । णवुंस० अट्ठावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीस-छव्वीस-वि० एइंदियभंगो । चउवीस-बावीस-एक्कवीसविह० णारयभंगो । णवरि, चउवीस-एक्कवीसवि० जह० एगसमओ । सेसं इत्थिभंगो । णवरि, बारस-वि० जहण्णुक्क० एयसमओ । अवगदवेदे चउवीस-एक्कवीसवि० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सेसाणं जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि, पंचविहत्ती केव० ? बेआवलियाओ बिसमऊणाओ ।

पुरुषवेदमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? इन दोनों स्थानोंका जघन्यकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा दोनों ही स्थानोंका उत्कृष्टकाल ओघके समान है । तथा सत्ताईसप्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है । छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । तेईस, तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिकस्थानका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्यकाल एक समय नहीं है । इक्कीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल ओघके समान है । बाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । पांच प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ।

नपुंसकवेदमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है । सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल एकेन्द्रियोंके समान है । चौबीस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानका काल नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानोंका जघन्यकाल एक समय है । शेष स्थानोंका काल स्त्रीवेदियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है ।

अपगतवेदमें चौबीस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । शेष स्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि पांच प्रकृतिकस्थान दो समय कम दो आवली प्रमाण काल तक होता है ।

**विशेषार्थ**–स्त्रीवेद में २८ विभक्तिस्थानका जो साधिक पचपन पल्य उत्कृष्ट काल

बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि २८ विभक्तिस्थान वाला कोई एक स्त्रीवेदी मनुष्य पचपन पल्यकी आयुवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ और वहां पर्याप्त होनेके पश्चात् उसने सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना होनेके अन्तिम समयमें उपसमसम्यक्त्व पूर्वक वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की। तथा वह जीवन भर वेदकसम्यक्त्वके साथ ही रहा तो उसके पचपन पल्यकाल तक २८ विभक्तिस्थान पाया जाता है। देवी होनेके पहले यह स्त्रीवेदी जीव और कितने काल तक २८ विभक्तिस्थानके साथ रह सकता है इसका स्पष्ट उल्लेख अन्यत्र देखनेमें नहीं आया। स्वयं वीरसेन स्वामीने भी इस कालको साधिक कहके छोड़ दिया है। किन्तु एकैक प्रकृतिविभक्ति अनुयोगद्वारमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल बतलाते हुए उनका उत्कृष्टकाल साधिक पचपन पल्य कहा है। इससे मालूम पड़ता है कि यहां साधिक से सम्यक्प्रकृतिका उद्वेलनाकाल इष्ट है। जो कुछ भी हो तात्पर्य यह है कि स्त्रीवेदमें २८ विभक्तिस्थान साधिक पचवन पल्यकाल तक पाया जाता है। स्त्रीवेदमें २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्टकाल सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण बतलाया है और इतने काल तक यह जीव मिथ्यादृष्टिभी रह सकता है तथा मिथ्यादृष्टिके निरन्तर २६ विभक्तिस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं है। अतः स्त्रीवेदमें २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण बन जाता है। स्त्रीवेदमें २४ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय स्वयं वीरसेन स्वामीने बतलाया है। तथा उत्कृष्टकाल जो कुछ कम पचपन पल्य बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि कोई एक जीव पचपन पल्यकी आयुवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ और वहां पर्याप्त होनेके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी। अनन्तर जीवन भर ऐसा जीव २४ विभक्ति स्थानके साथ रहा तो उसके २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम पचवन पल्यप्रमाण प्राप्त होता है। २३ और १३ विभक्तिस्थानका काल ओघके समान है। इसमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है। २२ विभक्तिस्थानवाला जीव यद्यपि मर सकता है पर अन्य पर्यायमें ऐसे जीवके नपुंसकवेद या पुरुषवेदका ही उदय होता है अतः स्त्रीवेदमें २२ विभक्तिस्थानका काल भी ओघके समान बन जाता है। अब रही बारह विभक्तिस्थानकी बात, सो स्त्रीवेदके उदयसे जो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके बारह विभक्तिस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त ही पाया जाता है, एक समय नहीं। तथा जो स्त्रीवेदी क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ा और वहांसे गिर कर एक समयके लिये सवेदी होकर मर गया उसके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा जो स्त्रीवेदी जीव आठ वर्षके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करलेता है और आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि

§ ३०३. कसायाणुवादेण कोधक० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-तेवीस-

काल तक उस पर्यायमें बना रहता है उसके २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण प्राप्त होता है। जिस पुरुषवेदी २८ विभक्तिस्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके २४ विभक्तिस्थानको प्राप्त किया और एक अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त कर लिया उस पुरुषवेदी जीवके २४ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। बारह विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय जिसप्रकार स्त्रीवेदमें नहीं प्राप्त होता है उसी प्रकार पुरुषवेदमें भी नहीं प्राप्त होता है। जो पुरुषवेदी जीव २१ विभक्तिस्थानको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर अपगतवेदी होजाता है उसके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। २२ विभक्तिस्थानके कालमें एक समय शेष रहते हुए जो मनुष्य, तिर्यंच या देवगतिमें उत्पन्न हुआ है उसके पुरुष वेदके साथ २२ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा जो जीव पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है, उसके छह नोकषायोंकी क्षपणा अपगतवेदी होनेके उपान्त्य समयमें ही होती है अतः पुरुषवेदमें पांच विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्राप्त होता है। स्त्रीवेदमें २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल जिसप्रकार साधिक पचपन पल्य घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार नपुंसकवेदमें २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल साधिक ३३ सागर घटित कर लेना चाहिये। तथा २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय भी स्त्रीवेदके समान घटित कर लेना चाहिये। तथा जो नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदके क्षय होनेके उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदका क्षय होजाता है इसलिए इसके बारह विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ही प्राप्त होता है। जो २४ और २१ विभक्तिस्थानवाला जीव एक समय तक अपगतवेदी होकर और दूसरे समयमें मरकर देवगतिको प्राप्त होजाता है उस अपगतवेदी जीवके २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा २४ या २१ विभक्तिस्थानवाला जो जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ा और नौवें गुणस्थानमें अपगतवेदी हो गया। पुनः उतरते समय नौवें गुणस्थानमें सवेदी होगया उसके २४ या २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। अपगतवेदमें शेष ग्यारह आदि विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है। किन्तु पांच विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल दो समय कम दो आवली प्रमाण है। अतः अपगतवेदीके इसका काल उक्तप्रमाण जानना चाहिये। ऊपर जिस वेदमें जिस विभक्ति स्थानके कालका ज्ञान सुगम समझा उसका खुलासा नहीं किया है।

§ ३०३. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोध कषायमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, और इक्कीस प्रकृतिकस्थानोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल

बावीस-एक्कवीसवि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। तेरस० बारस० आदिं कादूण जाव चदुविहत्तिओ त्ति ओघभंगो। एवं माण०; णवरि अत्थि तिण्हं विहत्तिओ। एवं माय०; णवरि अत्थि दोण्हं विहत्तिओ। एवं लोभ०; णवरि अत्थि एक्किस्से विहत्तिओ। माण-माया-लोभकसायीसु चदुण्हं तिण्हं दोण्हं विह० जहण्णा दो आवलियाओ दुसमयूणाओ। अकसाईसु चउवीस-एक्कवीसविह० केव० ? जहण्ण० एग०-समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं। णवरि, सुहुमसांपराइय० एक्किस्से विहत्तिओ केव० ? जहण्णुक्क० अंतोमु०।

अन्तर्मुहूर्त है। तेरह और बारहसे लेकर चार प्रकृतिकस्थान तकका काल ओघके समान है। क्रोधकषायके समान मानकषायमें भी समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मानकषायमें तीनप्रकृतिक स्थान भी है। इसीप्रकार मायाकषायमें भी समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि माया कषायमें दोप्रकृतिक स्थान भी है। इसीप्रकार लोभकषायमें भी समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि लोभकषायमें एक प्रकृतिक स्थान भी है। मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें क्रमसे चार, तीन और दो प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल दो समयकम दो आवलीप्रमाण है।

कषाय रहित जीवोंमें चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार सूक्ष्मसांपराय संयत और यथाख्यात संयतोंके कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपरायिक संयतके एक प्रकृतिक स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**—क्रोधादि कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमें २८, २७, २६, २४, २३, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। किन्तु जिस कषायके उदयसे जीव क्षपकश्रेणी चढ़ता है उसके अपनी अपनी कृष्टि वेदनके काल तक उसीका उदय बना रहता है, अतः क्रोधमें चार विभक्तिस्थान तकका काल, मानमें तीन विभक्तिस्थान तकका काल, मायामें दो विभक्तिस्थान तकका काल और लोभमें एक विभक्तिस्थान तकका काल ओघके समान बन जाता है। किन्तु जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मानकषायमें चार विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। जो मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मायाकषायमें तीन विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। तथा जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके लोभकषायमें दो विभक्तिस्थानका जघन्यकाल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। अकषायी सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यात संयत जीवोंमें २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय उपशमश्रेणीमें

§ ३०४. णाणाणुवादेण मदि-सुदअण्णाणि० अट्ठावीसवि० केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सत्तावीस-छब्बीसविह० ओघभंगो। विभंग० अट्ठावीस-सत्तावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। छब्बीसवि० के० ? जह० एगसमओ उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि।

अकषायी आदि होनेके एक समय बाद मरणकी अपेक्षासे कहा है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उक्त विभक्तिस्थानोंके साथ इन अकषायी आदिके उपशमश्रेणीमें इतने काल तक रहनेकी अपेक्षासे कहा है। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए सूक्ष्मसांपरायिक जीवके एक विभक्तिस्थान ही होता है अतः सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये।

§ ३०४. ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल ओघके समान है। विभंगज्ञानियोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल देशोन तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थानमें रहनेका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। यद्यपि सासादनका जघन्यकाल एक समय है, पर ऐसा जीव नियमसे मिथ्यात्वमें ही जाता है और मति-अज्ञान तथा श्रुताज्ञान इन दोनों गुणस्थानोंमें ही पाये जाते हैं। इस लिये इन दोनों अज्ञानियोंके २८ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलनाके उत्कृष्टकालकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि जब तक कोई एक मत्यज्ञानी या श्रुताज्ञानी जीव सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करता रहता है तब तक उसके २८ विभक्तिस्थान बना रहता है। तथा इनके २७ और २६ विभक्तिस्थानका काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये। सुगम होनेसे नहीं लिखा है। जो अवधिज्ञानी २४ विभक्तिस्थानवाला जीव मिथ्यात्वमें आकर और एक समय रह कर मर जाता है उसके विभंगज्ञानके रहते हुए २८ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा जो सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करनेवाला विभंगज्ञानी उद्वेलना करनेके एक समय पश्चात् उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके २७ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा इनके २८ और २७ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण उद्वेलनाकी अपेक्षासे कहा है। जो विभंगज्ञानी जीव सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेके पश्चात् एक समय तक २६ विभक्तिस्थानके साथ रह कर पश्चात् उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है उसके २६ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय

§ २०५. आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्ठावीस-चउवीसविह० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । णवरि, चउवीसविह० सादिरेयाणि । सेस० ओघभंगो । एवमोहिदंस०-सम्माइट्ठि० वत्तव्वं । मणपज्जव० अट्ठावीसविह० के० ?

प्राप्त होता है । तथा अपर्याप्त अवस्थामें विभंगज्ञान नहीं होता । अतः इतने कालसे कम तेतीस सागर काल तक जो नारकी २६ विभक्तिस्थानके साथ मिथ्यादृष्टि बना रहता है उसके २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्राप्त होता है ।

§ २०५. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन छ्यासठ सागर है। इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतिकस्थानका काल साधिक छ्यासठ सागर है । शेष स्थान ओघके समान हैं । इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व या वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके और अन्तर्मुहूर्त काल तक उनके साथ रह कर अनन्तर सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है उसके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानके रहते हुए २८ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा जो मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके और २४ विभक्तिस्थानके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है उसके २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है । वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर प्रमाण है । अब यदि इसमें उपशमसम्यक्त्वका काल जोड़ दिया जाये और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना होनेके अनन्तरका मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षपणाकाल घटा दिया जाय तो उक्त काल कुछ कम छ्यासठ सागर प्रमाण रह जाता है, जो २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल ठहरता है, अतः उक्त तीन ज्ञानोंमें २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम छ्यासठ सागर प्रमाण कहा है । तथा जो उपशमसम्यक्त्वके कालमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके वेदकसम्यग्दृष्टि होता है और अपने उत्कृष्ट काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहते हुए अन्तमें मिथ्यात्वकी क्षपणा करता है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनासे लेकर मिथ्यात्वकी क्षपणा तकका काल छ्यासठ सागरसे अधिक प्राप्त होता है और यही २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल है । अतः उक्त तीन ज्ञानोंमें २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर कहा है । इन तीन ज्ञानोंमें शेष २३ आदि विभक्तिस्थानोंका काल ओघके समान जानना चाहिये, क्योंकि उक्त विभक्तिस्थान सम्यग्दृष्टि जीवके ही होते हैं और वहाँ इन तीनों ज्ञानोंका पाया जाना सम्भव ही है। अवधि दर्शनी और सम्यग्दृष्टिके भी विभक्तिस्थानोंके काल मतिज्ञानी आदिके समान जान लेना चाहिये ।

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल

**जहण्ण० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं चउवीसविह० वत्तव्वं। तेवीस-बावीस-तेरसादि जाव एक्किस्से विहत्तिओ त्ति ओघभंगो। णवरि बारसविह० एग-समओ णत्थि। एक्कवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं संजद०। णवरि बारस० जह० एगसमओ। एवं सामाइयछेदो०, णवरि इगिवीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ। परिहार० अट्ठावीस-चउवीस-तेवीस-बावीस-एक्कवीस-विह० मणपज्जवभंगो। एवं संजदासंजद। असंजद० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस०**

अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटिप्रमाण है। इसीप्रकार चौबीस प्रकृतिकस्थानके कालका कथन करना चाहिये। तेईस, बाईस, और तेरहसे लेकर एक प्रकृतिकस्थान तकका काल ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय नहीं है। इक्कीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। इसीप्रकार संयतोंके समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि संयतोंके बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय है। इसी प्रकार सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन दोनों संयतोंके इक्कीस और चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय है। परिहारविशुद्धि संयतोंमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानोंका काल मन:पर्ययज्ञानियोंके समान है। इसीप्रकार संयतासंयतोंके समझना चाहिये।

**विशेषार्थ**—मन:पर्ययज्ञान छद्मस्थ संयतके होता है अतः छद्मस्थ संयतका जो जघन्य और उत्कृष्ट काल है वही मन:पर्ययज्ञानमें २८ और २४ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल जानना चाहिये जो ऊपर बतलाया ही है। तथा २१ विभक्तिस्थानके उत्कृष्ट काल और १२ विभक्तिस्थानके कालको छोड़ कर शेष २३ आदि विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल मन:पर्ययज्ञानमें भी ओघके समान बन जाता है। किन्तु २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है। यहां कुछ कमसे आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त काल लिया गया है। तथा बारह विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि मन:पर्ययज्ञान पुरुषवेदी जीवके होता है और पुरुषवेदमें १२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय नहीं बनता है। मन:पर्ययज्ञानके समान संयतोंके भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके बारह विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय भी बन जाता है, क्योंकि संयतोंमें नपुंसकवेदवाले जीवोंका भी समावेश है। संयतोंके समान सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोंके भी जानना चाहिये। किन्तु इनके २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और एक समय तक सामायिक और छेदोपस्थापना संयत रह कर मर जाते हैं उनके २४ और २१

**मदिअण्णाणिभंगो। णवरि, अट्ठावीस० उक्क० तेत्तीससागरो० पलिदो० असंखे० भागेण सादिरेयाणि। चउवीस-एक्कवीसविह० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि। बावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतो-मुहुत्तं। चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो।**

विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। परिहार विशुद्धि संयतोंके २८, २४, २३, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल यद्यपि मनःपर्ययज्ञानीके समान होता है फिर भी इनके २८, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल कहते समय पूर्व-कोटि वर्षमेंसे ३८ वर्ष कम करना चाहिये। तथा संयतासंयतोंके २८, २४, २३, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान कहना चाहिये।

असंयतोंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानोंका काल मत्यज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असं-ख्यातवें भाग अधिक तेतीस सागर है। चौबीस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। बाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंके स्थानोंका काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**—यद्यपि असंयतोंमें २८ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल और २७ तथा २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान बन जाता है किन्तु असंयतोंमें २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है, क्योंकि असंयत पदसे मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानोंका ग्रहण होता है और इस अपेक्षासे असंयतोंके २८ विभक्तिस्थानका उक्त काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती है। तथा जिस असंयतने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है या दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी क्षपणा की है उसके अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही अन्य गुणस्थानकी प्राप्ति होती है अतः असंयतोंके २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। जो जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी या तीन दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करके संयत होता है, तथा मर कर एक समय कम तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होता है और वहांसे च्युत होकर एक पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य होकर भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर संयत हो क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है उसके असंयत अवस्थामें २४ और २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व-कोटि अधिक तेतीस सागर देखा जाता है। तथा जो संयत बाईस विभक्तिस्थानके कालमें एक समय शेष रहनेपर अन्य गतिको प्राप्त होजाता है उसके असंयत अवस्थामें २२ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट

§ ३०६. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० अट्ठावीस-छव्वीसवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीसविह० ओघभंगो । चउवीसविह० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरो० देसूणाणि । बावीसविह० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एक्कवीसवि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सागरोवमं देसूणं । णवरि, किण्ह-णील० बावीसविहत्ती णत्थि । एक्कवीसविहत्ती जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । तेउ०पम्म० अट्ठावीस-छव्वीसविह० जह० एगसमओ, उक्क० बे-अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि । सत्तावीसविह० ओघभंगो । चउवीसविह० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क बे-अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । तेवीस-बावीसवि० जह० अंतोमु० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एक्कवीसवि० जह० एगसमओ उक्क० बे-अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । सुक्के० अट्ठावीसविह०

ही है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंके विभक्तिस्थानोंका काल त्रस पर्याप्तकोंके समान ही है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

§ ३०६. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कपोत लेश्यावाले जीवोंमें अट्ठाईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका काल ओघके समान है। चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ कम तेतीस, कुछ कम सत्रह और कुछ कम सात सागर है। बाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इक्कीस प्रकृतिकस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक सागर है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्यावालोंके बाईस प्रकृतिकस्थान नहीं पाया जाता है तथा इक्कीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

पीत और पद्मलेश्यावालोंके अट्ठाईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय है। उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक दो और साधिक अठारह सागर है। तथा सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका काल ओघके समान है। चौबीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक दो और साधिक अठारह सागर है। तेईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और बाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय है। तथा दोनों स्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इक्कीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है।

शुक्ल लेश्यावालोंके अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

जह० एगस०, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि। सत्तावीस-छव्वीसविह० देवोघभंगो। णवरि छव्वीस० एकत्तीससागरो० सादिरेयाणि। चउवीसविह० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि। एकवीसविह० जह० एगसमओ। उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि। सेस० ओघभंगो। णवरि बावीस० जह० एगसमओ। अभव्वसिद्धि० छव्वीसवि० केव० ? अणादि-अपज्जवसिदो।

§ ३०७. खइयसम्मादिट्ठीसु एकवीसादि जाव एयविहत्तिओ त्ति ओघभंगो। वेदग-सम्मादि० अट्ठावीस-चउवीस-तेवीस-बावीसविह० आभिणि० भंगो। णवरि चदुवीस० छावट्ठिसागरो० देसूणाणि। उवसमे अट्ठावीस-चउवीस० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। सासणे अट्ठावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छआवलियाओ। सम्मामि० उवसमसम्माइट्ठिभंगो। मिच्छाइट्ठि० मदिअण्णाणिभंगो। सण्णीसु छव्वीस० पुरिस० भंगो। सेस० ओघभंगो। असण्णि० एइंदियभंगो। आहार० छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। सेस० ओघं जाणिदूण भाणिदव्वं।

काल साधिक तेतीस सागर है। सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल सामान्य देवोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि छब्बीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तथा इक्कीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। शेष स्थानोंका काल ओघके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके बाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय है। अभव्योंके छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? अनादि-अनन्त है।

§ ३०७. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतिक स्थानसे लेकर एक प्रकृतिक स्थान तक प्रत्येक स्थानका काल ओघके समान है। वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक स्थानका काल मतिज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतिक-स्थानका उत्कृष्ट काल देशोन छयासठ सागर है। उपशमसम्यक्त्वमें अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सासादनमें अट्ठाईस प्रकृतिक-स्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल उपशम सम्यग्दृष्टिके समान जानना चाहिये। मिथ्यादृष्टिका काल कुमतिज्ञानीके समान जानना चाहिये।

संज्ञी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल पुरुषवेदके समान है। शेष कथन ओघके समान है। असंज्ञी जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान है।

आहारक जीवोंमें छब्बीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है। शेष कथन ओघके समान कहना चाहिये।

अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं कालो समत्तो।

*** अंतराणुगमेण एक्किस्से विहत्तीए णत्थि अंतरं।**

§ ३०८. कुदो ? खवगसेढीए उप्पण्णत्तादो। ण च खविदकम्मंसाणं पुणरुप्पत्ती अत्थि, मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणं संसारकारणाणमभावादो। ण च कारणेण विणा कज्जमुप्पज्जइ, अणवत्थापसंगादो।

अनाहारक जीवोंमें कार्मण काययोगियोंके समान जानना चाहिये।

**विशेषार्थ**–कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल जो अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर बतलाया है सो यहाँ उत्कृष्ट काल कापोत लेश्याकी अपेक्षासे जानना चाहिये; क्योंकि यह काल प्रथम नरककी अपेक्षासे प्राप्त होता है और प्रथम नरकमें कपोत लेश्या ही होती है। किन्तु कृष्ण और नील लेश्यामें २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त ही प्राप्त होगा, क्योंकि २१ विभक्तिस्थानके रहते हुए कृष्ण और नील लेश्या कर्मभूमिज मनुष्योंके ही सम्भव है पर इनके प्रत्येक लेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्तसे अधिक नहीं होता है। तथा कृष्ण और नील लेश्यामें जो २२ विभक्तिस्थानका निषेध किया है सो इसका कारण यह है कि २२ विभक्तिस्थानके रहते हुए यदि अशुभ लेश्या होती है तो एक कापोत लेश्या ही होती है। लेश्याओंमें शेष कालोंका कथन सुगम है अतः यहाँ खुलासा नहीं किया है। इसी प्रकार आगेकी मार्गणाओंमें भी अपने अपने विभक्तिस्थानोंका काल सुगम होनेसे नहीं लिखा है। हाँ वेदकसम्यक्त्वमें २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल जो कुछ कम छयासठ सागर प्रमाण बतलाया है सो इसका कारण यह है कि वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है जिसमें कृतकृत्यवेदक तकका काल सम्मिलित है, अतः इसमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणा कालको कम कर देनेपर २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

इसप्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

*** अन्तरानुगमकी अपेक्षा एक प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं होता है।**

§ ३०८. **शंका**–एक प्रकृतिक स्थानका अन्तर क्यों नहीं होता है ?

**समाधान**–क्योंकि एक प्रकृतिक स्थान क्षपकश्रेणीमें होता है, अतः उसका अन्तर नहीं पाया जाता। क्योंकि जिन कर्मोंका क्षय कर दिया जाता है उनकी पुनः उत्पत्ति होती नहीं, क्योंकि उनका क्षय करदेनेवाले जीवोंके संसारके कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग नहीं पाये जाते। और कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति मानना युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर कार्य-कारणभावकी व्यवस्था नहीं बन सकती।

*** एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं एक्कवीसाए बावीसाए तेवीसाए विहत्तियाणं ।**

§ ३०९. जहा एक्किस्से विहत्तियाणं णत्थि अंतरं तहा एदेसिं पि, खवणाए उप्पण्णत्तं पडि विसेसाभावादो ।

*** चउवीसाए विहत्तियस्स केवडियमंतरं ? जह० अंतोमुहुत्तं ।**

§ ३१०. कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मियसम्माइट्ठिस्स अणंताणु० चउक्कं विसंजोइय चउवीसविहत्तीए आदिं कादूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण अट्ठावीसविहत्तिओ होदूण अंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो सम्मत्तं घेत्तूण अणंताणु० विसंजोइय चउवीसविहत्तियभावमुवगयस्स चउवीसविहत्तीए अट्ठावीसविहत्तिएहि अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

*** उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं ।**

§ ३११. कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमस-

*** इसीप्रकार दो, तीन, चार, पाँच, ग्यारह, बारह, तेरह, इक्कीस, बाईस और तेईस प्रकृतिकस्थानोंका भी अन्तर नहीं होता है ।**

§ ३०९. जिसप्रकार क्षपकश्रेणीमें उत्पन्न होनेके कारण एक प्रकृतिकस्थानका अन्तर नहीं होता है उसीप्रकार ये दो आदि प्रकृतिकस्थान भी क्षपकश्रेणीमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः एक प्रकृतिकस्थानसे इनमें कोई विशेषता नहीं है, और इसलिये इन दो आदि स्थानोंका भी अन्तर नहीं पाया जाता है ।

*** चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर कितना है । जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ ३१०. शंका–चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान–कोई एक सम्यग्दृष्टि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला है । उसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके चौबीस प्रकृतिकस्थानका प्रारंभ किया । पुनः वह सम्यक्त्व दशामें अन्तर्मुहूर्त रह कर मिथ्यात्वमें गया और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला हुआ उसके एक अन्तर्मुहूर्त तक चौबीस प्रकृतिकस्थान नहीं रहा । पुनः अन्तर्मुहूर्तके बाद सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके चौबीस प्रकृतिकस्थानको प्राप्त हो गया । इसप्रकार पूर्वोक्त जीवके अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है ।

*** चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन अर्थात् देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है ।**

§ ३११. शंका–चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कैसे है ?

समाधान–कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रथम समयमें

म्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तिओ होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो अणंताणु० विसंजोएदूण चउवीसविहत्तीए आदिं कादूण मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। तदो उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिदूण अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वये त्ति उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तिओ होदूण जेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएदूण चउवीसविहत्तियत्तमुप्पाइदं तस्स दोहि अंतोमुहुत्तेहि ऊण-अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तअंतरुवलंभादो। उवरि अण्णे वि अंतोमुहुत्ता अत्थि ते किण्ण गहिदा? गहिदा चेव, किंतु तेसु सव्वेसु मेलिदेसु वि अंतोमुहुत्तं चेव होदि त्ति वेहि चेव अंतोमुहुत्तेहि अद्धपोग्गलपरियट्टमूणमिदि भणिदं।

* छव्वीसविहत्तीए केवडियमंतरं? जहण्णेण पलिदो० असंखे० भागो।

३१२. कुदो? जो मिच्छादिट्ठी छव्वीसविहत्तिओ होदूणच्छिदो, पुणो उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तिओ होदूण अंतरिदो, मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णेण पलिदोवमस्स

उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानकी सत्तावाला हुआ और अन्तर्मुहूर्त वहाँ रह कर तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके उसने चौबीस प्रकृतिकस्थानका प्रारंभ किया। अनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर अट्ठाईस प्रकृतिकस्थान वाला होकर उसने चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर किया। तदनन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन कालतक संसारमें परिभ्रमण करके सिद्ध होनेके लिये जब अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानवाला हुआ। पुनः चूँकि वह इतना काल जानेपर अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना करके चौबीस प्रकृतिकस्थानको उत्पन्न करता है, इसलिये उसके चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर दो अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है।

शंका–ऊपर जिन दो अन्तर्मुहूर्तोंको कम किया है उनके अतिरिक्त अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालमेंसे कम करने योग्य और भी अन्तर्मुहूर्त हैं, उन्हें यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया?

समाधान–कम करने योग्य शेष सभी अन्तर्मुहूर्तोंका यहाँ ग्रहण कर ही लिया है। किन्तु पुनः उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिसे लेकर मोक्ष जाने तकके उन सब अन्तर्मुहूर्तोंके मिलाने पर भी एक ही अन्तर्मुहूर्त होता है इसलिये सभी अन्तर्मुहूर्तोंको अलगसे न गिना कर चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर दो अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल होता है ऐसा कहा है।

* छब्बीस प्रकृतिकस्थानका कितना अन्तर है? जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

§ ३१२. शंका–छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्यों है?

समाधान–छब्बीस प्रकृतिवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके और अट्ठाईस प्रकृतिवाला होकर छब्बीस प्रकृतिकस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ। अनन्तर

असंखेज्जदि भागमेत्तुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेलिय छव्वीसविहत्तिओ जादो तस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजहण्णंतरुवलंभादो ।

*** उक्कस्सेण बेछावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।**

§ ३१३. कुदो ? अट्ठावीस-सत्तावीसविहत्तियाणं जो उक्कस्सकालो पुव्वं परूविदो सो छव्वीसविहत्तियस्स उक्कस्संतरकालो त्ति अब्भुवगमादो ।

*** सत्तावीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पलिदो० असंखे० भागो ।**

§ ३१४. कुदो ? सत्तावीसविहत्तियमिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तिओ होदूण अंतरिदो । पुणो मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णुव्वेल्लणकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय जो सत्तावीसविहत्तिओ जादो, तत्थ पलिदो० असंखे० भागमेत्तअंतरकालुवलंभादो ।

*** उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।**

मिथ्यात्वमें जाकर सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके पुनः छब्बीस प्रकृतिक स्थानवाला हो गया । उसके छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण पाया जाता है ।

* छब्बीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक सौ बत्तीस सागर है ।

§ ३१३. **शंका**–छब्बीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक सौ बत्तीस सागर कैसे है ?

**समाधान**–अट्ठाईस और सत्ताईस प्रकृतिकस्थानोंका जो उत्कृष्ट काल पहले कह आये हैं वह छब्बीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल होता है ऐसा स्वीकार किया गया है, अतः छब्बीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है ।

* सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है ।

§ ३१४. **शंका**–सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग क्यों है ?

**समाधान**–जो सत्ताईस प्रकृतिकस्थानवाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके और अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानवाला होकर सत्ताईस प्रकृतिकस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वमें जाकर सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिकस्थान वाला हो गया । उसके सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर काल पल्यके असंख्यातवें भाग पाया जाता है ।

*** सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ।**

§ ३१५. कुदो ? अणादियमिच्छादिट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए सम्मत्तं घेत्तूण जहाकमेण सत्तावीसविहत्तिओ जादो । तदो सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लिदूणंतरिदो । उवड्ढपोग्गलपरियट्टम्मि सव्वजहण्णपलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागमेत्तकाले सेसे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण तदो सम्मत्तुव्वेल्लणकाले सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सम्मत्ताहिमुहो होदूण अंतरं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिदुचरिमसमए सम्मत्तमुव्वेल्लिय चरिमसमए सत्तावीसविहत्तिओ होदूण कमेण जो सिद्धो जादो तस्स पढमिल्लेण पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण पच्छिमेण अंतोमुहुत्तकालेण च ऊण-अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तुक्कस्संतरकालुवलंभादो ।

* अट्ठावीसविहत्तियस्स जहण्णेण एगसमओ ।

§ ३१६. कुदो ? अट्ठावीसविहत्तिओ मिच्छाइट्ठी सम्मत्तुव्वेल्लणकाले अंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्ताहिमुहो होदूण अंतरं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिदुचरिमसमए सम्मत्तमुव्वे-

§३१५. शंका–सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण कैसे है ?

समाधान–जब संसारमें रहनेका काल अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र शेष रह जाय तब उसके प्रथम समयमें जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करके यथाक्रमसे सत्ताईस प्रकृतिकस्थानवाला हुआ । तदनन्तर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिकस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ। पुन:जब उपार्धपुद्गल परिवर्तनकालमें सबसे जघन्य पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण काल शेष रहा तब उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके और अन्तर्मुहूर्तकाल तक उसके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर सम्यक्प्रकृतिके उद्वेलनाकालमें जब सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब सम्यक्त्वके अभिमुख होकर और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके उपान्त्य समयमें सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करके मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके अन्तिम समयमें सत्ताईस प्रकृतिवाला होकर क्रमसे जो सिद्ध हो गया, उसके सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका, सत्ताईस प्रकृतिकस्थानके अन्तरके पहले जो पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाण उद्वेलनाकाल कह आये हैं और अन्तरके बाद जो सिद्ध होने तकका अन्तर्मुहूर्तकाल कह आये हैं इन दोनोंसे कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ।

* अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§३१६. शंका–अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय कैसे है ?

समाधान–अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्प्रकृतिके उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना

छिय चरिमसमए सत्तावीसविहत्तिओ जो जादो तेण से काले उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीससंते समुप्पाइदे एगसमयअंतरुवलंभादो।

*** उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।**

§ ३१७. कुदो, अणादियमिच्छाइट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टस्सादिसमए उवसमसम्मत्तं घेत्तूण जो अट्ठावीसविहत्तिओ जादो, तत्थ अट्ठावीसविहत्तीए आदिं कादूण तदो सव्वजहण्ण पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्तकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय सत्तावीसविहत्तिओ जादो। अंतरिय अद्धपोग्गलपरियट्टं भमिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्ठावीसविहत्तिओ होदूण तदो अंतोमुहुत्तेण सिद्धो जादो। तस्स पुव्विल्लेण पलिदो० असंखे० भागेण पच्छिल्लेण अंतोमुहुत्तेण च ऊण-अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तुक्कस्संतरकालुवलंभादो। एवमचक्खु०-भवसिद्धियाणं वत्तव्वं।

§ ३१८. संपहि उच्चारणाइरियवक्खाणमस्सिदूण भणिस्सामो। उच्चारणाए ओघो

करके मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिके अन्तिम समयमें सत्ताईस प्रकृतिवाला हुआ। पुनः तदनन्तर कालमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतिकी सत्ता उपार्जित की, उसके अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका अन्तरकाल एक समय पाया जाता है।

*** अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है।**

§ ३१७. शंका—अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कैसे है ?

**समाधान**—जब संसारमें रहनेका काल अर्धपुद्गलपरिवर्तन शेष रह जाय तब जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके प्रथम समयमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतिस्थानकी सत्तावाला हुआ, और इसप्रकार अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका प्रारंभ करके अनन्तर सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके द्वारा सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिकस्थानवाला होकर अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ और उपार्धपुद्गलपरिवर्तन कालतक संसारमें परिभ्रमण करके संसारमें भ्रमण करनेका काल सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके जो पुनः अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानवाला होकर अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सिद्ध हो जाता है उसके अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका, अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानके अन्तर होनेके पहलेके पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण कालसे और पुनः अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानके प्राप्त होनेके बादके अन्तर्मुहूर्त कालसे न्यून अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र उत्कृष्ट अन्तर काल होता है। इसीप्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये।

§ ३१८. अब उच्चारणाचार्यके व्याख्यानका आश्रय लेकर अन्तरकालको कहते हैं।

**शंका**—उच्चारणा वृत्तिके अनुसार ओघ अन्तरकालका कथन क्यों नहीं किया ?

किण्ण वुच्चदे ? ण, तम्मि चुण्णिसुत्तसमाणे भण्णमाणे पुणरुत्तदोसप्पसंगादो।

§ ३१९. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसवि० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे०भागो, अंतोमुहुत्तं। उक्क० सव्वेसिं तेत्तीससागरो० देसूणाणि। बावीस-एक्कवीसवि० णत्थि अंतरं। पढमाए पुढवीए अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमुहुत्तं। उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। बावीस०-एक्कवीसविह० णत्थि अंतरं। विदियादि जाव सत्तमित्ति अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० जह० एगस०, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु०। उक्क० सगसगट्ठिदी देसूणा।

**समाधान**—नहीं, क्योंकि चूर्णिसूत्रके समान होनेसे उसका पुनः कथन करने पर पुनरुक्त दोषका प्रसंग प्राप्त होता है, अतः उच्चारणाका आश्रय लेकर ओघ अन्तरकालको नहीं कहा।

§३१९.आदेशकी अपेक्षा **नरकगतिमें** नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण तथा चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उक्त तीनों प्रकृतिस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर देशोन तेतीस सागर है। बाईस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानोंका अन्तर नहीं होता है। पहली पृथिवीमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर एक समय सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असख्यातवें भाग तथा चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उक्त तीनों स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी स्थितिप्रमाण है। बाईस और इक्कीस प्रकृतिस्थानका अन्तर नहीं है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येक नरकमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग तथा चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा उक्त तीनों स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

**विशेषार्थ**—जो नारकी सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करनेके पश्चात् एक समय बाद उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके २८ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है। जो २७ विभक्तिस्थानवाला नारकी उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अति लघु अन्तर्मुहूर्त कालमें मिथ्यात्वमें जाता है और वहां पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है उसके २७ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर पल्यको असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है। जो २६ विभक्तिस्थानवाला नारकी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्तकरके अति लघु अन्तर्मुहूर्त कालमें मिथ्यात्वमें जाता है और वहां पल्यके

असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है उसके २६ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है। तथा जो २४ विभक्तिस्थानवाला नारकी मिथ्यात्वमें जाकर और अति लघु कालके द्वारा पुनः सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर देता है उसके २४ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा इन सब विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। जो निम्न प्रकार है–कोई एक जीव अट्ठाईस विभक्तिस्थानके साथ तेतीस सागरकी आयुवाला नारकी हुआ। अनन्तर पर्याप्त होनेके पश्चात् वेदकसम्यग्दृष्टि होकर उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी और जीवन भर २४ विभक्ति स्थानके साथ रहा। अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि होगया और इस प्रकार २८ विभक्तिस्थानको प्राप्त कर लिया तो उसके २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल प्रारम्भके और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालको छोड़कर तेतीस सागर प्रमाण पाया जाता है। कोई एक २७ विभक्तिस्थान वाला जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उसने उपशम सम्यक्त्व पूर्वक वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया और जब आयुमें पल्यका असंख्यातवां भाग-प्रमाण काल शेष रहा तब मिथ्यात्वमें जाकर उसने सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलनाका प्रारम्भ किया। तथा आयुमें एक समय शेष रहनेपर वह २७ विभक्तिस्थानवाला होगया तो उसके अन्तर्मुहूर्त कालको छोड़कर शेष ३३ सागर काल २७ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। इसी प्रकार २६ विभक्तिस्थानका अन्तर काल कहना चाहिये। विशेषता इतनी है कि प्रारम्भमें २६ विभक्तिस्थानसे उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करावे तथा पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके शेष रहनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करावे। कोई एक जीव ३३ सागरकी आयुके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदक सम्यग्दृष्टि होकर उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करदी। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके बाद वह मिथ्यात्वमें गया और जीवन भर मिथ्यादृष्टि बना रहा। किन्तु अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर पुनः वह उपशम सम्यक्त्व पूर्वक वेदक सम्यग्दृष्टि होगया और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करदी, तब जाकर उसके प्रारम्भके और अन्तके कुछ अन्तर्मुहूर्त कालोंको छोड़कर शेष तेतीस सागर काल २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल होता है। किन्तु ऐसे जीवको मरते समय अन्तर्मुहूर्त पहले पुनः मिथ्यात्वमें लेजाना चाहिये। तथा नरकमें २२ और २१ विभक्ति-स्थान होते हैं पर उनका अन्तर काल नहीं पाया जाता। प्रथमादि नरकमें भी इसी प्रकार अन्तरका कथन करना चाहिये किन्तु उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते समय कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। तथा आगेकी मार्गणाओंमें भी जहां जिन

§ ३२०. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीसविह० ओघभंगो। छव्वीसविह० जह० पलिदो० असंखे० भागो, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। बावीस-एक्कवीसविह० णत्थि अंतरं। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिं० तिरि० जोणिणीसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमुहुत्तं। उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। बावीस-एक्कवीसविह० णत्थि अंतरं। णवरि, जोणिणी० बावीस-इगिवीसं णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० सव्वपदाणं णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-सव्वपंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय-अवगदवेद-अकसायि०-सव्वणाणि केवलवज्ज-सव्वसंजम असंजदवज्ज-ओहिदंसण-अभवसिद्धि०-सव्वसम्मादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति वत्तव्वं।

विभक्तिस्थानोंका अन्तर सम्भव है वहां इसी प्रकार विचार कर उसका कथन करना चाहिये। किन्तु उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते समय उस उस मार्गणाकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा ही उसका कथन करना चाहिये।

§ ३२०. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर ओघके समान है। तथा छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्यका असंख्यातवां भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। बाइस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर नहीं है। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थान नहीं पाया जाता है। पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें संभव सभी पदोंका अन्तरकाल नहीं होता है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी प्रकारके एकेन्द्रिय, सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी प्रकारके पांच स्थावरकायिक जीव, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, केवलज्ञानको छोड़ कर शेष समस्त ज्ञानवाले, असंयतोंको छोड़कर सभी संयमवाले, अवधिदर्शनी, अभव्य, सभी प्रकारके सम्यग्दृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कथन करना चाहिये। अर्थात् इन जीवोंके किसी भी स्थानका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है।

§३२१. मणुस्स-मणुस्सपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-विह० जह० एगसमओ, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमु० । उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । तेवीस-बावीसादि उवरि० णत्थि अंतरं ।

§३२२. देवेसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चदुवीस० जह० एयसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमुहुत्तं । उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । बावीस-इगिवीस० णत्थि अंतरं । भवण०-वाण०-जोदिसि० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जेत्ति अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसवि० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे०भागो, अंतोमु० । उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । बावीस-एक्कवीस-विह० णत्थि अंतरं । पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमुहुत्तं । उक्क०

§३२१. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्यका असंख्यातवां भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । किन्तु तेईस और बाईससे लेकर आगे एक प्रकृतिकस्थान तक किसी भी स्थानका अन्तर नहीं होता है ।

§ ३२२. देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन इकतीस सागरोपम है। बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं होता है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं होता । पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि इन जीवोंमें छब्बीस

सम्मादिट्ठी देसूणा । छव्वीसविह० ओघभंगो । सेसाणं णत्थि अंतरं ।

§ ३२३. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि० अट्ठावीसवि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सेसाणं ट्ठाणाणं णत्थि अंतरं । एवं कायजोगि-ओरालिय०-वेउव्विय०-चत्तारिकसाय० वत्तव्वं ।

§ ३२४. वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं, सागरोवमसदपुधत्तं, उवड्डपोग्गलपरियट्टं । छव्वीसविह० जह० पलिदो० असंखे० भागो । उक्क० पणवण्णपलिदोवमाणि, बे-छावट्ठिसागरोवमाणि, तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । सेसाणं ट्ठाणाणं णत्थि अंतरं । असंजद० णवुंस० भंगो । चक्खु० तसभंगो ।

§ ३२५. लेस्साणुवादेण किण्ण-णील-काउ० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसवि०

प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । शेष स्थानोंका अन्तर नहीं होता है ।

§ ३२३. योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष सत्ताईस आदि प्रकृतिकस्थानोंका अन्तर नहीं होता है । इसीप्रकार कावयोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिककाययोगी और चारों कषायवाले जीवोंमें अट्ठाईस आदि स्थानोंका अन्तर कहना चाहिये ।

§ ३२४. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईसप्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा स्त्रीवेदी जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्व है । पुरुषवेदी जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है । तथा नपुंसकवेदी जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिकस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । तथा उक्त तीनों वेदवाले जीवोंमें छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । और उत्कृष्ट अन्तर स्त्रीवेदी जीवोंमें साधिक पचपन पल्य, पुरुषवेदी जीवोंमें साधिक एक सौ बत्तीस सागर और नपुंसकवेदी जीवोंमें साधिक तेतीस सागर है । संभव शेष स्थानोंका अन्तर ही नहीं है । असंयतोंमें नपुंसकवेदियोंके समान जानना चाहिये । चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रस जीवोंके समान जानना चाहिये ।

§ ३२५. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्त-

जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि देसूणाणि । णवरि, सत्तावीस० सादिरेय० । एगवीसविह० णत्थि अंतरं । णवरि काउ० बावीसवि० अत्थि । णवरि तिस्सेवि अंतरं णत्थि । तेउ०-पम्म०-सुक्क० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० बे-अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि, एक्कतीससागरोवमाणि देसूणाणि । णवरि सत्तावीस० सादिरे० । सेसाणं णत्थि अंतरं । सण्णी० पुरिसभंगो । आहारि० अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीसवि० जहण्ण० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो । छब्वीसविह० ओघभंगो । सेसाणं णत्थि अंतरं ।

एवमंतरं समत्तं ।

* णाणाजीवेहि भंगविचओ । जेसिं मोहणीयपयडीओ अत्थि

मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर कृष्णलेश्यावालोंमें देशोन तेतीस सागर, नील लेश्यावालोंमें देशोन सत्रह सागर और कापोत लेश्यावालोमें देशोन सात सागर होता है । इतनी विशेषता है कि सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कमकी जगह साधिक कहना चाहिये । यद्यपि उक्त तीनों लेश्यावालोंके इक्कीस प्रकृतिकस्थान संभव है पर वह स्थान अन्तररहित है । इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यावालोंके बाईस प्रकृतिकस्थान भी संभव है परन्तु उसका भी अन्तर नहीं होता है । पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है । उक्त चारों स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पीतलेश्यावाले जीवोंमें साधिक दो सागर, पद्मलेश्यावाले जीवोंमें साधिक अठारह सागर और शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें कुछ कम इकतीस सागर होता है । इतनी विशेषता है कि सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट अन्तर तीनों लेश्यावालोंके कुछ कमके स्थानमें साधिक कहना चाहिये । शेष स्थानोंका अन्तर ही नहीं होता है ।

संज्ञी जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कहना चाहिये । आहारक जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाशके जितने प्रदेश हों उतने समय प्रमाण होता है । परन्तु छब्बीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर ओघके समान जानना चाहिये । शेष स्थानोंका अन्तर ही नहीं पाया जाता ।

इसप्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय अनुयोगद्वारका कथन करते हैं । जिन

तेसु पयदं।

§ ३२६. 'णाणाजीवेहि भंगविचओ' त्ति एत्थ 'कीरदे' इच्चेदेण पदेण संबंधो कायव्वो, अण्णहा अत्थावगमाभावादो। जेसु जीवेसु मोहणीयपयडी अत्थि तेसु चेव एत्थ पयदं, मोहणीए अहियारादो।

* सव्वे जीवा अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीससंतकम्मविहत्तिया णियमा अत्थि।

§ ३२७. सव्वे जीवा अट्ठावीसविहत्तिया ते णियमा अत्थि त्ति संबंधो ण कायव्वो, सव्वेसिं जीवाणं अट्ठावीसविहत्तित्ताभावादो। किंतु जो (जे) अट्ठावीसविहत्तिया जीवा, ते सव्वे अत्थि त्ति संबंधो कायव्वो। एवं सव्वत्थ वत्तव्वं। तदो एदेसिं ट्ठाणाणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि त्ति सिद्धं।

* सेस विहत्तिया भजियव्वा।

§ ३२८. २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १। एदाणि भयणिज्जाणि पदाणि। पुणो एदेसिं भयणिज्जपदाणं भंगपमाणपरूवणगाहा एसा। तं जहा,

'भयणिज्जपदा तिगुणा अण्णोण्णगुणा पुणो वि कायव्वा।
धुवरहिया रूवूणा धुवसहिया तत्तिया चेव॥ ३॥'

जीवोंके मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां पाई जाती है उनका यहां प्रकरण है।

§ ३२६. 'णाणाजीवेहि भंगविचओ' इस वाक्यमें 'कीरदे' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये, अन्यथा अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता। जिन जीवोंमें मोहनीयकर्म विद्यमान है इस अधिकारमें उनका ही प्रकरण है, क्योंकि प्रकृतमें मोहनीयकर्मका अधिकार है।

* जो जीव मोहनीय कर्मप्रकृतियोंकी अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिवाले हैं वे सब नियमसे हैं।

§ ३२७. सभी जीव अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले नियमसे हैं इसप्रकार संबन्ध नहीं करना चाहिये, क्योंकि सभी जीवोंके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं पाई जाती है। किन्तु ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये कि जो जीव अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले हैं वे सभी हैं। इसीप्रकार सभी स्थानोंमें कहना चाहिये। इस कथनसे इन अट्ठाईस आदि स्थानोंसे युक्त जीव और इन अट्ठाईस आदि स्थानोंसे रहित जीव नियमसे हैं यह सिद्ध होता है।

* शेष तेईस आदि विभक्तिस्थानवाले जीव कभी होते हैं और कभी नहीं भी होते।

§ ३२८. २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, और १ ये स्थान भजनीय हैं। अब इन भजनीय पदोंके भंगोंके प्रमाणको बतलानेवाली गाथा देते हैं–

"भजनीय पदोंका १ १ इसप्रकार विरलन करके तिगुना करे। पुनः उस तिगुनी विरलित राशिका परस्परमें गुणा करे। इस क्रियाके करनेसे जो लब्ध आता है उससे अध्रुव

§ ३२६. एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चदे। तं जहा, भयणिज्जपदाणि दस। पुणो एदाणि विरलिय तिगं कादूण अण्णोण्णेण गुणिदे सव्वभंगा उप्पज्जंति। तेसिं पमाण-मेदं–५६०४६। पुणो एत्थ एगरूवे अवणिदे भयणिज्जपदभंगा होंति। तम्हि चेव अवणिदरूवे पक्खित्ते धुवभंगेण सह सव्वभंगा उपज्जंति।

§ ३३०. संपहि तिगुणिय अण्णोण्णगुणस्स कारणे भण्णमाणे ताव एसा संदिट्ठी ठवेदव्वा। $\begin{matrix}१&१&१&१&१&१&१&१&१&१\\२&२&२&२&२&२&२&२&२&२\end{matrix}$। एत्थ उवरिमअंका एयवयणस्स हेट्ठिम-अंका वि बहुवयणस्स। एवं ठविय तदो एदेसिमालावपरूवणा कीरदे। तं जहा–सिया एदे

भङ्ग एक कम होते हैं और ध्रुवभङ्ग सहित अध्रुवभङ्ग उक्त संख्याप्रमाण ही होते हैं।"

§ ३२९. अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं। वह इसप्रकार है- प्रकृतमें २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ इसप्रकार ये दस विभक्तिस्थान भजनीय हैं। इन १० पदोंका १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ इसप्रकार विरलन करके इन्हें ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ इसप्रकार तिगुना करे और परस्परमें ३×३×३×३×३×३×३×३ ३×३ गुणा कर दे। ऐसा करनेसे सभी ध्रुव और अध्रुव भङ्ग उत्पन्न हो जाते हैं। उन सबका प्रमाण ५९०४९ होता है। इस उपर्युक्त राशिमेंसे १ कम कर लेनेपर भजनीय पदोंका प्रमाण ५९०४८ होता है। तथा इस संख्यामें, जो एक घटाया था उसे मिला देने पर ध्रुवभङ्गके साथ सभी भङ्गोंका प्रमाण ५९०४९ आता है।

उदाहरण–भजनीयपद १०,

भजनीय पदोंका विरलन– १ १ १ १ १ १ १ १ १ १

विरलितराशिका त्रिगुणीकरण और परस्पर गुणा –३×३×३×३×३×३×३×३×३×३=५९०४९।

५९०४९–१=५९०४८ अध्रुवभंग।

५९०४८+१=५९०४९ ध्रुव और अध्रुव सभी भंग।

§ ३३०. विरलित राशिके प्रत्येक एकको तिगुना करनेके और उसके परस्पर गुणा करनेके कारणको बतलानेके लिये निम्न लिखित संदृष्टि स्थापित करनी चाहिये–

$$\begin{matrix}१&१&१&१&१&१&१&१&१&१\\२&२&२&२&२&२&२&२&२&२\end{matrix}$$

इस संदृष्टिमें ऊपर रखा हुआ एकका अंक एकवचनका और नीचे रखा हुआ दो का अंक बहुवचनका द्योतक है। इसप्रकार संदृष्टिको स्थापित करके अब उन भंगोंके आलापोंका कथन करते हैं। वह इसप्रकार है–

कदाचित् ये २८, २७, २६, २४ और २१ ध्रुवस्थानवाले ही जीव होते हैं।

च, सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च, सिया एदे च तेवीसविहत्तिया च ।

§ ३३१. 'सिया एदे च' एवं भणिदे धुवपदाणं गहणं, तेसिं बहुवयणणिद्देसो चेव जीवेसु बहुवेसु चेव धुवपदाणमवट्ठाणादो। 'तेवीसविहत्तिओ च' एवं भणिदे एगवयणग्गहणं। कुदो ? दंसणमोहक्खवगस्स तेवीसविहत्तियस्स कयाइ एकस्सेव उवलंभादो। 'सिया तेवीसविहत्तिया च' एवं भणिदे हेट्ठिमबहुवयणस्स गहणं। कुदो ? तेवीसविहत्तियाणं दंसणमोहक्खवयाणं कयाइ अट्ठोत्तरसयमेत्ताणमुवलंभादो। एवमुप्पण्णदोभंगसंदिट्ठी एसा २। पुणो एदेसिं करणकिरियाए आगमणे इच्छिज्जमाणे एगरूवं ट्ठविय दोहि रूवेहि गुणिदे धुवभंगेण विणा तेवीसविहत्तियस्स एयबहुवयणभंगा चेव आगच्छंति। पुणो धुवभंगेण सह आगमणमिच्छामो त्ति दोरूवेसु रूवं पक्खिविय गुणिदे धुवभंगेण सह तिण्णिभंगा आगच्छन्ति ३। एदेण कारणेण भयणिज्जपदं तीहि रूवेहि गुणिज्जदि।

कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवविभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और तेईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है। कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवविभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और तेईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं।

§ ३३१. 'सिया एदे च' ऐसा कहनेपर ध्रुवपदोंका ग्रहण करना चाहिये। उन ध्रुवपदोंका बहुवचनके द्वारा निर्देश किया है, क्योंकि ध्रुव पद बहुत जीवोंमें ही पाये जाते हैं। अर्थात् उपर्युक्त अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानोंके धारक सर्वदा अनेक जीव रहते हैं, अतः ध्रुवपदोंका निर्देश बहुवचनके द्वारा किया गया है। 'तेवीसविहत्तिओ च' इसप्रकार कहनेपर एक वचनका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि जो मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करके तेईस विभक्तिस्थानको प्राप्त हुआ है ऐसा जीव कदाचित् एक ही पाया जाता है। 'सिया तेवीसविहत्तिया च' ऐसा कहनेपर जो संदृष्टि पीछे दे आये हैं उसमें नीचे रखे हुए दो अंकसे सूचित होनेवाले बहुवचनका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि कदाचित् मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीयका क्षय करके तेईस विभक्तिस्थानको प्राप्त हुए एक सौ आठ जीव पाये जाते हैं। इसप्रकार ध्रुवभंगके विना तेईस विभक्तिस्थानके निमित्तसे उत्पन्न हुए दो भंगोंकी संदृष्टि यह है २। गणितकी विधिके अनुसार यदि इन दो भंगोंको लाना इष्ट हो तो एक अंकको स्थापित करके उसे दो अंकसे गुणितकर देनेपर तेईस विभक्तिस्थानके ध्रुवभंगके विना एकवचन और बहुवचनके द्वारा कहे गये दो भंग ही आते हैं। और यदि ध्रुवभंगके साथ तेईस विभक्तिस्थानके भंग लाना इष्ट हो तो दोके अंकमें एकको जोड़ देनेपर ध्रुवभंगके साथ तीन भंग उत्पन्न होते हैं ३। इसी कारणसे भजनीयपदको तीनसे गुणित करे ऐसा कहा है।

उदाहरण–१×२=२ तेईस विभक्तिस्थानके भंग।

२+१=३; १×३=३ ध्रुवभंगके साथ तेईस विभक्तिस्थानके भंग।

एवं सेसवावीसविहत्तियप्पहुडि जाव एगविहत्तिओ त्ति ताव पादेक्कं तिहि गुणो कारणं वत्तव्वं ।

§ ३३२. संपहि तिगुणिय अण्णोण्णगुणस्स कारणं वुच्चदे। तं जहा-सिया एदे च वावीसविहत्तिओ च, सिया एदे च वावीसविहत्तिया च । एवं वावीसविहत्तियस्स एगसंजोगेण एयबहुवयणाणि अस्सिदूण दो भंगा २ । पुणो वावीस-तेवीसविहत्तियाणं दुसंजोगो वुच्चदे । तं जहा-सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च वावीसविहत्तिओ च १। सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च वावीसविहत्तिया च २। सिया एदे च तेवीसविहत्तिया च वावीसविहत्तिया (ओ) च ३। सिया एदे च तेवीसविहत्तिया च वावीसविहत्तिया च ४। एवं वावीसविहत्तियस्स दुसंजोगभंगा चत्तारि हवंति । पुणो एदेसु पुव्वुत्तेगसंजोगभंगेसु पक्खित्तेसु छब्भवंति ।

§ ३३३. पुणो एदेसिं करणकिरियाए आणयणं वुच्चदे । तं जहा-पुव्वुत्ततेवीसविह-

इसीप्रकार शेष बाईस विभक्तिस्थानसे लेकर एक विभक्तिस्थान तक प्रत्येक स्थानको तीनसे गुणा करनेका कारण कहना चाहिये ।

§ ३३२. अब विरलित राशिके प्रत्येक एकको तिगुना करके परस्परमें गुणा करे यह कह आये हैं उसका कारण कहते हैं । वह इसप्रकार है-

कदाचित् ये २८ आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है। कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । इसप्रकार एकवचन और बहुवचनका आश्रय लेकर बाईस विभक्तिस्थानके एकसयोगी भङ्ग दो होते हैं। अब बाईस और तेईस विभक्तिस्थानोंके दोसंयोगी भङ्ग कहते हैं । वे इसप्रकार हैं- कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुव स्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । यह पहला भङ्ग है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं। यह दूसरा भंग है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । यह तीसरा भंग है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । यह चौथा भङ्ग है । इस प्रकार बाईस विभक्तिस्थानके तेईस विभक्तिस्थानके संयोगसे द्विसंयोगी भंग चार होते हैं, इन चार भंगोंमें पहले कहे गये बाईस विभक्तिस्थानके एक संयोगी दो भङ्गोंके मिला देनेपर कुल भङ्ग छह होते हैं ।

§ ३३३. अब ये छहों भङ्ग गणितकी विधिके अनुसार कैसे निकलते हैं यह बतलाते हैं ।

यतिण्णिभंगेसु दोहि रूवेहि गुणिदेसु तेवीसविहत्तियस्स तिहि भंगेहि विणा बावीस-विहत्तियस्स एगदुसंजोगभंगा चेव आगच्छंति । पुणो तेसिं णट्ठभंगाणं पि आगमण-मिच्छामो त्ति पुव्विल्लगुणगारम्मि रूवं पक्खिविय गुणिदे बावीसविहत्तियस्स एग-दुसंजोगभंगा तेवीसविहत्तियस्स एगसंजोगभंगा च सव्वे एगवारेण आगच्छंति । तेसिं पमाणमेद ९। एवं तेवीस-बावीसविहत्तियाणमेगदुसंजोगपरूवणा कदा ।

§ ३३४. संपहि तिगुणण्णोण्णगुणस्स णिण्णयत्थं पुणो वि परूवणा कीरदे। तं जहा–तेरसविहत्तियस्स एगसंजोगेण एग-बहुवयणाणि अस्सिदूण दो भंगा उप्पज्जंति २। पुणो तस्सेव दुसंजोगालावे भण्णमाणे पुव्वं व तेरस-तेवीसविहत्तियाणं संजोएण चत्तारि ४। तेरस-बावीसविहत्तियाणं संजोगेण वि चत्तारि चेव ४। पुणो तेरसविहत्ति-यस्स तिसंजोगे भण्णमाणे तेवीस-बावीस-तेरसविहत्तियाणं ट्ठविदसंदिट्ठीए एग-बहु-वयणाणि अस्सिदूण अक्खपरावत्ते कदे अट्ठ तिसंजोगभंगा उप्पज्जंति । संपहि तेरस-विहत्तियस्स एगदोतिसंजोगाणं सव्वभंगसमासो अट्ठारस १८। एदेसिं करण-किरियाए आणयणं वुच्चदे । तं जहा–तेवीस-बावीसविहत्तियाणं णवभंगेसु दुगुणिदेसु

वह विधि इसप्रकार है– तेईस विभक्तिस्थानसंबन्धी पूर्वोक्त तीन भङ्गोंको दोसे गुणित कर देनेपर तेईस विभक्तिस्थानके तीन भंगोंके बिना केवल बाईस विभक्तिस्थानके एक संयोगी और द्विसंयोगी भंग ही आते हैं । अब यदि इन बाईस विभक्तिस्थानके भंगोंके साथ तेईस विभक्तिस्थानके घटाए हुए भंगोंको लाना भी इष्ट है तो पूर्वोक्त दो संख्यारूप गुणकारमें एक संख्या मिला कर पूर्वोक्त गुण्यराशिसे गुणित करने पर बाईस विभक्तिस्थानके एक-द्विसंयोगी और तेईस विभक्तिस्थानके एक संयोगी सभी भंग एक साथ आ जाते हैं। उन सभी भङ्गोंका प्रमाण ९ होता है । इसप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानके एक संयोगी और द्विसंयोगी भंगोंकी प्ररूपणा की ।

§ ३३४. अब विरलित राशिके प्रत्येक एकको तिगुना करके परस्पर गुणा करनेकी विधिके निर्णय करनेके लिये और भी कहते हैं। उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है– एकवचन और बहुवचनका आश्रय लेकर तेरह विभक्तिस्थानके एकसंयोगी दो भंग उत्पन्न होते हैं । पुनः उसी तेरह विभक्तिस्थानके द्विसंयोगी भंगोंका कथन करनेपर पूर्ववत् तेरह और तेईस विभक्तिस्थानोंके संयोगसे चार भंग तथा तेरह और बाईस विभक्तिस्थानोंके संयोगसे भी चार भंग होते हैं । तथा तेरह विभक्तिस्थानके त्रिसंयोगी भंगोंका कथन करनेपर तेईस बाईस और तेरह विभक्तिस्थानोंकी जो संदृष्टि स्थापित है उसमें एकवचन और बहुवचनका आश्रय लेकर अक्षसंचार करनेपर त्रिसंयोगी भंग आठ उत्पन्न होते हैं । इसप्रकार तेरह विभक्तिस्थानके एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी सभी भंगोंका जोड़ अठारह होता है । अब इनकी गणितके अनुसार विधि कहते हैं । वह इसप्रकार है– तेईस और बाईस

तेवीसं-बावीसविहत्तियाणं भंगेहि विणा तेरसविहत्तियस्स भंगा चेव आगच्छंति। संपहि तेवीस-बावीस-तेरसविहत्तियसव्वभंगाणमागमणमिच्छामो त्ति पुव्वुत्तणवभंगेसु तीहि रूवेहि गुणिदेसु तेवीस-बावीस-तेरसविहत्तियाणं एग-बहुवयणाणि अस्सिदूण एग-दु-तिसंजोगसव्वभंगा सत्तावीस २७। एवं सेसबारसादिविहत्तियाणं पि एग-बहुवयणमस्सिदूण एग-दुसंजोगादिभंगा जाणिदूणुप्पाएदव्वा। एवमुप्पाइदे सव्वभंग-समासो एत्तिओ होदि ५६०४६। एवं भयणिज्जपदाणं तिगुणे दव्वस्स अण्णोण्णगुण-णाए च कारणं वुत्तं।

विभक्तिस्थानोंके नौ भंगोंको दूना कर देनेपर तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंके भंगोंके बिना तेरह विभक्तिस्थानके सभी भंग आते हैं। अब यदि तेईस, बाईस और तेरह विभक्तिस्थानोंके सभी भंगोंके लानेकी इच्छा हो तो पूर्वोक्त नौ भङ्गोंको तीनसे गुणित करनेपर एकवचन और बहुवचनका आश्रय लेकर तेईस, बाईस और तेरह विभक्तिस्थानोंके एक संयोगी, द्विसंयोगी और तीन संयोगी सब भङ्ग सत्ताईस होते हैं। इसी प्रकार एकवचन और बहु वचनकी अपेक्षा शेष बारह विभक्तिस्थानोंके भी एकसंयोगी और द्विसंयोगी आदि भङ्ग उत्पन्न कर लेना चाहिये। इसप्रकार उत्पन्न हुए सब भङ्गोंका जोड़ ५६०४६ होता है। इस प्रकार भजनीय पदोंको विरलित करके तिगुना क्यों करना चाहिये और तिगुणित द्रव्यको परस्परमें गुणित क्यों करना चाहिये इसका कारण कहा।

उदाहरण–

१ ध्रुवभङ्ग

२ तेईस विभक्तिस्थानके भङ्ग

३ ध्रुवभङ्ग सहित तेईस विभक्तिस्थानके भङ्ग

३×२=६ बाईस विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

३×३=६ ध्रुवभंग सहित २३ व २२ स्थानके सब भंग

६×२=१८ तेरह विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

६×३=२७ ध्रुवभंग सहित २३, २२ व १३ विभक्तिस्थानोंके सब भंग

२७×२=५४ बारह विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

२७×३=८१ ध्रुवभंग सहित २३, २२, १३ व १२ वि० स्थानके सब भंग

८१×२=१६२ ग्यारह विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

८१×३=२४३ ध्रुवभंग सहित २३ से ११ तकके स्थानोंके सब भंग

२४३×२=४८६ पांच विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग

२४३×३=७२६ ध्रुवभंग सहित २३ से ५ तकके स्थानोंके सब भंग

७२६×२=१४५८ चार विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग

७२९×३=२१८७ ध्रुवभंग सहित २३ से ४ तकके स्थानोंके भंग
२१८७×२=४३७४ तीन विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
२१८७×३=६५६१ ध्रुवभंग सहित २३ से ३ तकके स्थानोंके भंग
६५६१×२=१३१२२ दो विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
६५६१×३=१९६८३ ध्रुवभंग सहित २३ से २ तकके स्थानोंके भंग
१९६८३×२=३९३६६ एक विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
१९६८३×३=५९०४९ ध्रुवभंग सहित २३ से १ तकके स्थानोंके सब भंग

नोट—तेईस विभक्तिस्थानको प्रथम मान कर ये उत्तरोत्तर भंग लाये गये हैं। ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको २ से गुणा करने पर उत्पन्न होते हैं। अतः आगे जो बाईस आदि एक एक स्थानके भंग बतलाये गये हैं उनमें उस उस स्थानके प्रत्येक भंग और उस स्थान तकके स्थानोंके द्विसंयोगी आदि भंग सम्मिलित हैं। ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोके भंगोको दो से गुणा करनेपर उत्पन्न होवे हैं तथा इन भंगोंमें पीछे पीछेके स्थानोंके भंग मिला देनेपर वहां तकके सब भंग होते हैं। ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको तीनसे गुणा करनेपर उत्पन्न होते हैं।

**विशेषार्थ**—मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं। उनमेंसे किसीके २८ किसीके २७ और किसीके २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ या १ प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है। इस प्रकार इसके पन्द्रह विभक्तिस्थान होते हैं। इनमें से २८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले बहुतसे जीव संसारमें सर्वदा पाये जाते हैं ऐसा समय नहीं है जब इन विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अभाव होवे। अर्थात् इनका कभी अभाव नहीं होता, अतः ये पांचों ध्रुव स्थान हैं। तथा शेष स्थानवाले कभी एक और कभी अनेक जीव होते हैं अतः शेष अध्रुवस्थान हैं, यहां ध्रुवस्थानोंकी अपेक्षा २८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले नाना जीव हैं यही एक भंग होगा पर अध्रुवस्थानोंकी अपेक्षा एक संयोगी, द्विसंयोगी आदि प्रस्तारविकल्प और उनमें एक जीव तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा अनेक भंग प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक स्थानके या अन्य दूसरे स्थानोंके संयोगसे द्विसंयोगी आदि जितने विकल्प प्राप्त होते हैं उतने प्रस्तार होते हैं। यहां आलापोंके स्थापित करनेको प्रस्तार कहते हैं। और इन प्रस्तारोंमें उनके जितने आलाप होते हैं उतने भंग होते हैं। यहां पहले जो 'भयणिज्जपदा' आदि करण गाथा दी है उससे प्रस्तार विकल्प उत्पन्न न होकर आलाप विकल्प ही उत्पन्न होते हैं। जो ध्रुवभंगके साथ उत्तरोत्तर तिगुने तिगुने होते हैं। ये आलापविकल्प या भंग उत्तरोत्तर तिगुने क्यों होते हैं इसका कारण मूलमें ही दिया है।

**§ ३३५. संपहि एदेसिं चेव भंगाणमण्णेण पयारेण आणयणं वुच्चदे । तं जहा–**

**'[1]एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितश्च पदवृद्धैः ।**
**गच्छस्संपातफलं [2]समाहतस्सन्निपातफलम् ॥ ४ ॥'**

**§ ३३६. एदीए अज्जाए एसा संदिट्ठी**

| १०, | ९, | ८, | ७, | ६, | ५, | ४, | ३, | २, | १ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १, | २, | ३, | ४, | ५, | ६, | ७, | ८, | ९, | १०, |

**ठवेयव्वा[3] । एवं ठविय तदो एग-दु-तिसंजोगादिपत्थारसलागाओ आणिज्जंति । तत्थ तेवीसविहत्तियस्स एगसंजोगपत्थारो एसो ०/१ ०/२ । एत्थ उवरिमसुण्णाओ धुवं ति ठविदाओ ।**

§ ३३५. अब अन्य प्रकारसे इन भंगोंके लानेकी विधि कहते हैं । वह इसप्रकार है–

"आदिमें स्थापित एकसे लेकर बढ़ी हुई संख्यासे, अन्तमें स्थापित एकसे लेकर बढ़ी हुई संख्यामें भाग देना चाहिये । इस क्रियाके करनेसे संपात फल अर्थात् एकसंयोगी (प्रत्येक) भंग गच्छ प्रमाण होते हैं और सम्पात फलको नौ बटे दो आदिसे गुणित कर देनेपर सन्निपातफल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥"

§ ३३६. इस आर्याकी यह संदृष्टि लिखना चाहिये–

| १० | ९ | ८ | ७ | ६ | ५ | ४ | ३ | २ | १ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |

उदाहरण संपातफलका–

१० ÷ १ = १० सम्पातफल या प्रत्येक भंग ।

उदाहरण सन्निपातफलका–१० × ९/२ = ४५ द्विसंयोगी

१० × ९/२ × ८/३ = १२० त्रिसंयोगी

१० × ९/२ × ८/३ × ७/४ = २१० चतुःसंयोगी

पांच संयोगी आदि भंगोंको इसी क्रमसे ले आना चाहिये ।

इसप्रकार संदृष्टिको स्थापित करके इससे एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी आदि प्रस्तार संबन्धी शलाकाएं ले आना चाहिये । उनमेंसे तेईस विभक्तिस्थानका एकसंयोगी प्रस्तार ०/१ ०/२ यह है । इस प्रस्तारमें ध्रुव विभक्तिस्थानोंके द्योतन करनेके लिये अङ्कोंके ऊपर शून्य रखे हैं । उन शून्योंके नीचे जो १ और २ के अङ्क रखे हैं उनसे क्रमसे

(१) 'एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः । परः पूर्वेण संगुण्यस्तत्परस्तेन तेन च ।' –लीला० पृ० १०७ । (२) सम्माहत-स० । समाहृतं-आ० । समाहितः-अ० । (३) एद ट्ठविय अंतिमचउसट्ठीए एगरूवेण भाजिदाए चउसट्ठी संपातफलं लब्भदि ६४ । किं संपादफलं णाम ? संपादो एगसंजोगो तस्स फलं संपादफलं णाम । पुणो तिसट्ठिदुभागेण संपादफले गुणिदे चउसट्ठिअक्खराणं दुसंजोगभंगा एत्तिया होंति २०१६ । ×× संपहि चउसट्ठिअक्खराणं तिसंजोगभंगे भण्णमाणे दुसंजोगभंगे उप्पण्णोलसुत्तरवेसहस्सेसु तिसंजोगभंगा एत्तिया होंति ४१६६४ ।'–ध० आ० ८७३ ।

**हेट्ठिमएक्क-बेअंका वि तेवीसविहत्तियस्स एग-बहुवयणाणि त्ति गेण्हिदव्वाणि ।**

**§ ३३७. संपहि तेवीसविहत्तियस्स एगसंजोगपत्थारालावो वुच्चदे । तं जहा–सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च १ । सिया एदे च तेवीसविहत्तिया च २ । एदाहि उच्चारणा-**

तेईस विभक्तिस्थानके एकवचन और बहुवचनका ग्रहण करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–वीरसेन स्वामीने 'एकोत्तरपदवृद्धो' इत्यादि आर्याकी $\frac{10}{1}$ $\frac{9}{2}$ $\frac{8}{3}$ इत्यादि संदृष्टि बतलाई है । अतः हमने आर्याके पूर्वार्धका इसीके अनुसार अर्थ किया है । पर प्रकृति अनुयोगद्वारमें श्रुतके संयोगी अक्षरोंके भंग लाते समय उन्होंने उक्त आर्याकी $\frac{1}{64}$ $\frac{2}{63}$ $\frac{3}{62}$ इत्यादि रूपसे भी संदृष्टि स्थापित की है । लेखकने प्रमादसे इसे उलट कर लिख दिया होगा सो भी बात नहीं है; क्योंकि 'एदं ठविय अंतिमचउसट्ठाए एगरूवेण भाजिदाए चउसठी संपातफलं लब्भदि' ( इस संदृष्टिको स्थापित करके अन्तमें आये हुए चौसठमें एकका भाग देनेपर संपातफल चौसठ प्राप्त होता है ) । इससे जाना जाता है कि उक्त प्रकारसे इस संदृष्टिको स्वयं वीरसेन स्वामीने स्थापित किया है । इसके अनुसार आर्याका अर्थ निम्न प्रकार होगा– 'एकसे लेकर एक एक बढ़ाते हुए पदप्रमाण संख्या स्थापित करो । पुनः उसमें अन्तमें स्थापित एकसे लेकर पदप्रमाण बढ़ी हुई संख्याका भाग दो । इस क्रियाके करनेसे संपातफल गच्छप्रमाण प्राप्त होता है और संपातफलको नौ बटे दो आदिसे गुणित कर देने पर सन्निपातफल प्राप्त होता है' । इन दोनों अर्थोंमेंसे किसी भी अर्थके ग्रहण करनेसे तात्पर्यमें अन्तर नहीं पड़ता । और आर्याके पूर्वार्धके दो अर्थ सम्भव हैं । मालूम होता है इसीसे वीरसेन स्वामीने एक अर्थका यहां और एकका प्रकृति अनुयोगद्वारमें संकलन कर दिया है । यहां सम्पातफलसे एकसंयोगी भंगोंका ग्रहण किया है इसीलिये उन्हें गच्छप्रमाण कहा है । तथा सन्निपातफलसे द्विसंयोगी आदि भंगोंका ग्रहण किया है । दस भजनीय पदोंमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगोंका ग्रहण करना है अतः भजनीय पदोंके संयोगसे जितने विकल्प आते हैं उतने प्रस्तार विकल्प जानना चाहिये । यहां ये प्रस्तार विकल्प ही उक्त आर्याके अनुसार निकाल कर बतलाये गये हैं । तात्पर्य यह है कि यहां स्थानोंके संयोगी भंग और उनमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा अवान्तर भंग इसप्रकार दो दो बातें हैं । अतः यहां स्थानोंके संयोगी भंग प्रस्तारविकल्प हो जाते हैं । जो आर्याके द्वारा निकाल कर बतलाये गये हैं । पर अन्यत्र जहां अवान्तर भंग नहीं होते हैं वहां इस आर्याके द्वारा केवल भंग ही उत्पन्न किये जाते हैं ।

§ ३३७. अब तेईस विभक्तिस्थानके एक संयोगी प्रस्तारका आलाप कहते हैं । वह इसप्रकार है–कदाचित् अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और तेईस प्रकृतिस्थानवाला एक जीव होता है । कदाचित् अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और तेईस विभक्ति स्थानवाले

सलागाहि धुरदो कज्जं भविस्सीहिदि $\overset{0}{1}$ $\overset{0}{2}$ एसो एगो पत्थारो । एदस्स एका सलागा घेप्पदि । संपहि बावीसविहत्तियस्स भण्णमाणे एसो पत्थारो $\overset{0}{1}$ $\overset{0}{2}$ । संपहि एदस्सालावो वुच्चदे । तं जहा–सिया एदे च बावीसविहत्तिओ च१, सिया एदे च बावीसविहत्तिया च २ । एदस्स वि पत्थारस्स सलागा एका १ । एवं तेवीस-बावीसविहत्तियाणमेगसंजोगपत्थारसलागाओ भणिदाओ । संपहि तेरसादीणं पि ट्ठाणाणमेगसंजोगपत्थारालावा पुध पुध भणिदूण गेण्हिदव्वा । णवरि, एगेगपत्थारम्मि एगेगा चेव सलागा लब्भदि तासिं लद्धसलागाणं पमाणमेदं १० । अथवा पुव्वट्ठविदसंदिट्ठिम्हि एगरूवेण दससु ओवट्टदेसु पुव्वुत्तदसपत्थारसलागाओ लब्भंति । एवं भयणिज्जपदाणमेगसंजोगपत्थारसलागपमाणपरूवणा कदा । संपहि दुसंजोगपत्थारसलागपमाणपरूवणं कस्सामो । तत्थ एस पत्थारो होदि $\begin{matrix}0&0&0&0\\1&1&2&2\\1&2&1&2\end{matrix}$ उवरिमसव्वसुण्णाओ धुवस्स, मज्झिमसव्व-अंका तेवीसाए, हेट्ठिमसव्वअंका बावीसाए ।

अनेक जीव होते हैं । इन कही गई शलाकाओंसे आगे काम पड़ेगा । $\overset{0}{1}$ $\overset{0}{2}$ यह एक प्रस्तार है । इसकी एक शलाका लेना चाहिये ।

अब बाईस विभक्तिस्थानका कथन करते हैं । उसका प्रस्तार $\overset{0}{1}$ $\overset{0}{2}$ यह है । अब इसके आलाप कहते हैं । वे इसप्रकार हैं–कदाचित् अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । कदाचित अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । इस बाईस विभक्तिस्थानके प्रस्तारकी भी एक शलाका है । इसप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंके एक संयोगी प्रस्तारोंकी शलाकाएं कहीं । इसीप्रकार तेरह आदि विभक्तिस्थानोंके भी एक संयोगी प्रस्तार और उनके आलाप अलग अलग कहकर ग्रहण करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि एक एक प्रस्तारमें एक एक शलाका ही प्राप्त होती है । अतः उन तेईस आदि विभक्तिस्थानोंके एक संयोगी भंगोंकी शलाकाओंका प्रमाण १० है । अब पहले 'एकोत्तरपदवृद्धो' इत्यादि आर्याकी जो संदृष्टि स्थापित कर आये हैं उसमेंसे एकके द्वारा दसके भाजित कर देनेपर पूर्वोक्त दस प्रस्तारशलाकाएं प्राप्त होती हैं ।

इसप्रकार भजनीय पदोंके एक संयोगी प्रस्तारोंकी शलाकाओंका प्रमाण कहा । अब द्विसंयोगी प्रस्तारोंकी शलाकाओंका प्रमाण कहते हैं । द्विसंयोगी प्रस्तारोंकी शलाकाएं उत्पन्न करते समय प्रस्तार निम्नप्रकार होगा $\begin{matrix}0&0&0&0\\1&1&2&2\\1&2&1&2\end{matrix}$ इस प्रस्तारमें ऊपरके सभी शून्य ध्रुवस्थानोंके द्योतक हैं । बीचके सभी अंक तेईस विभक्तिस्थानके द्योतक हैं और नीचेके सभी अंक बाईस विभक्तिस्थानके द्योतक हैं ।

§ ३३८. संपहि एदस्सालावो वुच्चदे । तं जहा–सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च बावीसविहत्तिओ च १ । सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च बावीसविहत्तिया च २ । सिया एदे च तेवीसविहत्तिया च बावीसविहत्तिओ च ३ । सिया एदे च तेवीस-विहत्तिया च बावीसविहत्तिया च ४ । एवं तेवीस बावीसविहत्तियाणं दुसंजोगस्स एक्का चेव पत्थारसलागा होदि १ । उच्चारणसलागाओ पुण ताव पुध ट्ठवेदव्वा । संपहि तेवीस-तेरसविहत्तियाणं पत्थारे ट्ठविय एवं चेव आलावा वत्तव्वा । एवं वे दुसंजोग-पत्थारसलागा २ । तेवीसबारसण्हं संजोगेण तिण्णि पत्थारसलागा ३ । तेवीसाए सह एक्कारसण्हं संजोगेण चत्तारि पत्थारसलागा ४ । तेवीसाए पंचण्हं संजोगेण पंच पत्थारसलागा ५ । तेवीसाए चदुण्हं संजोगेण छ पत्थारसलागा ६ । तेवीसाए

§ ३३८. अब इस प्रस्तारका आलाप कहते हैं । वह इसप्रकार है–

कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है। कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थान-वाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिवाला एक जीव तथा बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभ-क्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । इसप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंके द्विसंयो-योगकी एक ही प्रस्तारशलाका होती है । पर इसकी जो चार उच्चारणशलाकाएं अर्थात् आलाप कह आये हैं उन्हें अलग स्थापित करना चाहिये । तेईस और तेरह विभक्ति-स्थानोंके प्रस्तारको स्थापित करके इसीप्रकार आलाप कहना चाहिये । इसप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंकी द्विसंयोगी एक प्रस्तार शलाका तथा तेईस और तेरह विभ-क्तिस्थानोंकी द्विसंयोगी एक प्रस्तारशलाका ये द्विसंयोगी दो प्रस्तारशलाकाएं होती हैं । तेईस और बारह विभक्तिस्थानोंके संयोगसे एक प्रस्तारशलाका होती है । इस प्रकार ऊपरकी दो और एक यह सब मिलकर तीन प्रस्तारशलाकाएं हो जाती हैं । इनमें तेईस विभक्ति-स्थानको ग्यारह विभक्तिस्थानके साथ मिलानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तार शलाकाके मिला देने पर चार प्रस्तारशलाकाएं हो जाती हैं । इनमें तेईस विभक्तिस्थानको पांच विभक्तिस्थानके साथ मिलानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तार शलाकाके मिला देनेपर पांच प्रस्तार शलाकाएं हो जाती हैं । इनमें तेईस विभक्तिस्थानको चार विभक्तिस्थानके साथ मिलादेनेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तार शलाकाके मिला देनेपर छह प्रस्तार शलाकाएं हो जाती हैं । इनमें तेईस विभक्तिस्थानको तीन विभक्तिस्थानके साथ मिलानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तारशलाकाके मिला देनेपर सात प्रस्तारशलाकाएं हो जाती हैं । इनमें तेईस विभक्तिस्थानको दो

तिण्हं संजोगेण सत्त पत्थारसलागा ७। तेवीसाए दोण्हं संजोगेण अट्ठ पत्थारसलागा ८। तेवीसाए एक्किस्से संजोगे णव पत्थारसलागा ९।

§ ३३९. संपहि बावीसतेरसण्हं दुसंजोगपत्थारो एसो ० ० ० ० / १ १ २ २ / १ २ १ २। उवरिमचदुसुण्णाओ धुवस्स, मज्झिमअंका बावीसविहत्तियस्स, हेट्ठिमअंका तेरसविहत्तियस्स। संपहि एदस्स आलावो वुच्चदे। सिया एदे च बावीसविहत्तिओ च तेरसविहत्तिओ च। एवं सेसालावा जाणिदूण वत्तव्वा। एवं बावीसाए सह बारसादि जाव एगविहत्तिओ पत्तेयं पत्तेयं दुसंजोगं कादूण अट्ठ पत्थारसलागाओ उप्पाएयव्वाओ ८।

§ ३४०. संपहि तेरसण्हं बारसेहि सह दुसंजोगालावा वत्तव्वा। तत्थ एगा पत्थारसलागा लब्भदि १। एवं तेरस धुवं कादूण णेयव्वं जाव एगविहत्तिओ त्ति। एवं णीदे तेरसविहत्तियस्स दुसंजोएण सत्त पत्थारा उप्पज्जंति ७। बारसविहत्तियस्स एक्कारसादीहि सह दुसंजोगे भण्णमाणे छप्पत्थारसलागाओ लब्भंति ६। एक्कारसविहत्तियस्स उवरिमेहि सह दुसंजोए भण्णमाणे पंच पत्थारसलागाओ लब्भंति ५। पंच-

विभक्तिस्थानके साथ मिलानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तारशलाकाके मिला देनेपर आठ प्रस्तार शलाकाएं हो जाती हैं। इनमें तेईस विभक्तिस्थानको एक विभक्तिस्थानके साथ मिला देनेसे उत्पन्न हुई एक शलाकाके मिला देनेपर नौ प्रस्तारशलाकाएं हो जाती हैं।

§ ३३९. अब बाईस और तेरह विभक्तिस्थानका द्विसंयोगी प्रस्तार कहते हैं। वह यह है— ० ० ० ० / १ १ २ २ / १ २ १ २ ऊपरके चार शून्य ध्रुवस्थानके सूचक हैं। मध्यके अङ्क बाईस विभक्तिस्थानके सूचक हैं। नीचेके अंक तेरह विभक्तिस्थानके सूचक हैं। अब इस प्रस्तारके आलाप कहते हैं। कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और तेरह विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है। इसीप्रकार शेष तीन आलाप भी जानकर कहना चाहिये। इसीप्रकार बाईस विभक्तिस्थानके साथ बारह विभक्तिस्थानसे लेकर एक विभक्तिस्थान तक बाईस बारह, बाईस ग्यारह, बाईस पांच इसप्रकार द्विसंयोग करके प्रत्येककी आठ प्रस्तारशलाकाएं उत्पन्न कर लेना चाहिये।

§ ३४०. अब तेरह विभक्तिस्थानका बारह विभक्तिस्थानके साथ द्विसंयोगी आलाप कहना चाहिये। यहां एक प्रस्तारशलाका प्राप्त होती है। इसप्रकार तेरह विभक्तिस्थानको ध्रुव करके एक विभक्तिस्थानतक ले जाना चाहिये। इसप्रकार ले जानेपर तेरह विभक्तिस्थानके द्विसंयोगी सात प्रस्तार उत्पन्न होते हैं। बारह विभक्तिस्थानके ग्यारह आदि विभक्तिस्थानोंके साथ द्विसंयोगी प्रस्तारोंका कथन करनेपर छह प्रस्तारशलाकाएं प्राप्त होती हैं। ग्यारह विभक्तिस्थानके ऊपरके पांच आदि विभक्तिस्थानोंके साथ द्विसंयोगी प्रस्तारोंका कथन करनेपर पांच प्रस्तारशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। पांच विभक्तिस्थानके ऊपरके चार आदि विभक्ति-

विहत्तियस्स उवरिमेहि सह दुसंजोगे भण्णमाणे चत्तारि पत्थारसलागाओ लब्भंति ४। चत्तारिविहत्तियस्स उवरिमेहि सह दुसंजोगे कीरमाणे तिण्णि पत्थारसलागाओ ३। तिण्णिविहत्तियस्स उवरिमेहि सह दुसंजोगे कीरमाणे दोण्णि पत्थारसलागाओ २। दोण्हं विहत्तियस्स एक्किस्सेहि विहत्तीए सह दुसंजोगे कीरमाणे एक्का पत्थारसलागा १। एवं दुसंजोगसव्वपत्थारसलागाओ एक्कदो मेलिदे पंचेतालीस ४५ होंति। अहवा पुव्व-द्दविदसंदिट्ठिम्हि उवरिमदस-णवण्हं अण्णोण्णगुणिदाणं हेट्ठिमअण्णोण्णगुणिदएक्क-बे-अंकेहि ओवट्टणम्मि कदे पुव्वुत्तपत्थारसलागा आगच्छंति। एवं दुसंजोगपरूवणा गदा।

§ ३४१. तिसंजोगपत्थारो एसो।

| ०। | ०। | ०। | ०। | ०। | ०। | ०। | ० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ |
| १ | १ | २ | २ | १ | १ | २ | २ |
| १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ |

एत्थ उवरिम-अट्ठसुण्णाओ धुवस्स। तत्तो अणंतरहेट्ठिमअंकपंती तेवीसविहत्तियस्स। उवरीदो तदिय-

स्थानोंके साथ द्विसंयोगी प्रस्तारोंका विचार करनेपर चार प्रस्तारशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। चार विभक्तिस्थानके ऊपरके तीन आदि विभक्तिस्थानोंके साथ द्विसंयोगी प्रस्तारोंका विचार करनेपर तीन प्रस्तारशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। तीन विभक्तिस्थानके ऊपरके दो आदि विभक्तिस्थानोंके साथ द्विसंयोगी प्रस्तारोंका विचार करनेपर दो प्रस्तारशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। दो विभक्तिस्थानके एक विभक्तिस्थानके साथ द्विसंयोगी प्रस्तारके लाने पर एक प्रस्तारशलाका उत्पन्न होती है। इसप्रकार द्विसंयोगी सभी प्रस्तारशलाकाओंको एकत्रित करनेपर कुल जोड़ पैंतालीस होता है। अथवा, 'एकोत्तरपदवृद्धो' इत्यादि आर्याकी जो ऊपर संदृष्टि स्थापित कर आये हैं उसमें ऊपरकी पंक्तिमें स्थित १० और ९ का अलग गुणा करे। तथा नीचेकी पंक्तिमें स्थित १ और २ का अलग गुणा करे। अनन्तर १० और ९ के गुणनफलको १ और २ के गुणनफलसे भाजित कर दे। इस प्रकारकी विधि करनेपर भी पूर्वोक्त पैंतालीस प्रस्तारशलाकाएं आ जाती हैं। इसप्रकार द्विसंयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ३४१. त्रिसंयोगी प्रस्तार यह है–

| ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ |
| १ | १ | २ | २ | १ | १ | २ | २ |
| १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ |

इस प्रस्तारमें ऊपरके आठ शून्य ध्रुवस्थानके सूचक हैं। उसके अनन्तर नीचेकी पंक्तिमें स्थित अंक तेईस विभक्तिस्थानके सूचक हैं। इसके अनन्तर ऊपरसे तीसरी पंक्तिमें स्थित

(१) –स्से बि०-स०।

अंकपंती बावीसविहत्तियस्स । सव्वहेट्ठिमअंकपंती तेरसविहत्तियस्स । संपहि एदस्सालावो वुच्चदे । सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च बावीसविहत्तिओ च तेरसविहत्तिओ च । एवं सेसालावा जाणिदूण वत्तव्वा । एत्थ एगा पत्थारसलागा लब्भदि १ । उच्चारणाओ पुण अट्ठ होंति ८ । ताओ पुण ताव ट्ठवणिज्जाओ । संपहि तेवीसबावीसविहत्तिअक्खे धुवे काऊण बारसविहत्तिएण सह तिसंजोगपत्थारो होदि त्ति विदियपत्थारसलागा २ । एवमेक्कारसविहत्तियप्पहुडि जाणिदूण णेदव्वं जाव एगविहत्तिओ त्ति । एवं णीदे अट्ठतिसंजोगपत्थारसलागाओ उप्पज्जंति ८ । संपहि तेवीसविहत्तियक्खं धुवं कादूण तेरस-बारसविहत्तिएहि सह विदिओ तिसंजोगपत्थारो २ । पुणो तेवीस-तेरसक्खे धुवे कादूण एक्कारसादीसु णेदव्वं जाव एगविहत्तिओ त्ति । एवं णीदे सत्तपत्थारसलागाओ उपज्जंति ७ । एवं तिसंजोगसेसपत्थारविही जाणिदूण णेदव्वो । एवं णीदे अट्ठण्हं संकलणासंकलणमेत्तपत्थारसलागाओ वीसुत्तरसयमेत्तीओ उपज्जंति १२० ।

अंक बाईस विभक्तिस्थानके सूचक हैं । तदनन्तर सबसे नीचेकी पंक्तिमें स्थित अंक तेरह-विभक्तिस्थानके सूचक हैं । अब इसका आलाप कहते हैं– कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव तेईसविभक्तिस्थानवाला एक जीव, बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और तेरह विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । इसीप्रकार शेष सात आलाप भी जानकर कहना चाहिये । इन सभी आलापोंकी एक प्रस्तारशलाका प्राप्त होती है । परन्तु आलाप आठ होते हैं अभी उन आठों आलापोंको स्थापित कर देना चाहिये । इसीप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंके अक्षोंको ध्रुव करके बारह विभक्तिस्थानके साथ त्रिसंयोगी एक प्रस्तार होता है । इसप्रकार यह दूसरी प्रस्तारशलाका हुई । इसीप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंको ध्रुवकरके ग्यारह विभक्तिस्थानसे लेकर एक विभक्तिस्थान तक जान कर प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न कर लेना चाहिये । इसप्रकार प्रस्तारशलाकाओंके लानेपर त्रिसंयोगी आठ प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न होती हैं । इसीप्रकार तेईस विभक्तिस्थानसंबन्धी अक्षको ध्रुव करके तेरह और बारह विभक्तिस्थानोंके साथ अन्य त्रिसंयोगी प्रस्तार ले आना चाहिये । अनन्तर तेईस और तेरह विभक्तिस्थानसंबन्धी अक्षोंको ध्रव करके एक विभक्तिस्थानतक ग्यारह आदि विभक्तिस्थानोंमें इसीप्रकार ले जाना चाहिये । इसप्रकार प्रस्तारोंके उत्पन्न करनेपर त्रिसंयोगी सात प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न होती हैं । इसीप्रकार त्रिसंयोगी शेष प्रस्तारविधिको जानकर शेष प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न कर लेना चाहिये । इसप्रकार त्रिसंयोगी प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न करनेपर आठ गच्छके संकलनाके जोड़प्रमाण कुल एकसौ बीस प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न होती । अथवा, 'एकोत्तरपदवृद्धो' इत्यादि आर्याकी

(१) 'गच्छकदी मूलजुदा उत्तरगच्छादिएहि संगुणिदा । छहि भजिदे जं लद्धं सकलणाए हवे कलणा'-धव० प० आ० प० ८४७ ।

**अहवा पुव्वुत्तसंदिट्ठिम्हि उवरिमदस-णव-अट्ठण्हमण्णोण्णगुणिदाणं हेट्ठिमएक्क-बे-तीहि अण्णोण्णगुणिदेहि ओवट्टणम्मि कदे अट्ठण्हं संकलणासंकलणमेत्तपत्थारसलागाओ लब्भंति। एदेण बीजपदेण चदुसंजोगादीणं सव्वपत्थारा जाणिदूण णेदव्वा जाव दससंजोगपत्थारो त्ति।**

जो ऊपर संदृष्टि स्थापित कर आये हैं उसमें ऊपरकी पंक्तिमें स्थित १०, ९ और ८ का गुणा करे। तथा नीचेकी पंक्तिमें स्थित १, २ और ३ का अलग गुणा करे। अनन्तर १०, ९ और ८ के गुणनफल ७२० को १, २ और ३ के गुणनफल ६ से भाजित करनेपर आठ गच्छके संकलनाके जोड़ प्रमाण कुल प्रस्तारशलाकाएं प्राप्त होती हैं। इसी बीजपदसे चार-संयोगी आदिसे लेकर दस संयोगी प्रस्तार तक सभी प्रस्तार जानकर निकाल लेना चाहिये।

विशेषार्थ—धवला प्रकृति अनुयोगद्वारमें मुख्यतः त्रिसंयोगी भंगोंके लानेके लिये एक करणसूत्र आया है। जिसका आशय यह है कि 'गच्छका वर्ग करके उसमें वर्गमूलको जोड़ दे। पुनः आदि उत्तरसहित गच्छसे गुणा करके छहका भाग दे दें तो संकलनाकी कलना अर्थात् जोड़ प्राप्त होता है'। इसके अनुसार प्रकृतमें भजनीय पद १० होते हुए भी उनमेंसे दो कम कर देनेपर शेष ८ प्रमाण गच्छ होता है, क्योंकि त्रिसंयोगी भंग उत्पन्न करते समय क्रमसे कोई दो पद ध्रुव होते जाते हैं और शेष पदोंपर एक एक करके तीसरे अक्षका संचार होता है। अतः ८ का वर्ग ६४ हुआ, तथा इसमें ८ मिलाने पर ७२ हुए। पुनः आदि उत्तर सहित गच्छसे गुणा करनेपर ७२० हुए। तदनन्तर इसमें ६ का भाग देनेपर ८ गच्छकी संकलनाकी कलना अर्थात् जोड़ १२० हुआ। यहां ये ही त्रिसंयोगी प्रस्तारविकल्प जानना चाहिये। वीरसेन स्वामीने ऊपर 'अट्ठण्हं संकलणा संकलणमेत्तपत्थारसलागाओ' पदसे इन्हीं १२० प्रस्तारविकल्पोंका उल्लेख किया है। पृथक् पृथक् वे १२० प्रस्तारविकल्प इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

| ध्रुव किये हुए २ पद | तीसराअक्ष | भंग | ध्रुव किये हुए २ पद | तीसराअक्ष | भङ्ग |
|---|---|---|---|---|---|
| २३, २२ | १३ से १ तक कोई | ८ | १३, ११ | ,, | ५ |
| २३, १३ | १२ से १ तक ,, | ७ | १२, ११ | ,, | ५ |
| २२, १३ | ,, | ७ | २३, ५ | ४ से १ तक ,, | ४ |
| २३, १२ | ११ से १ तक ,, | ६ | २२, ५ | ,, | ४ |
| २२, १२ | ,, | ६ | १३, ५ | ,, | ४ |
| १३, १२ | ,, | ६ | १२, ५ | ,, | ४ |
| २३, ११ | ५ से १ तक ,, | ५ | ११, ५ | ,, | ४ |
| २२, ११ | ,, | ५ | २३, ४ | ३ से १ तक ,, | ३ |

§ ३४२. तेसिं पत्थाराणमुच्चारणाए विणा ठवणविहाणपरूवणगाहा एसा । तं जहा–

'भंगायामपमाणो लहुओ गरुओ त्ति अक्खणिक्खेओ ।
तत्तो य दुगुण-दुगुणो पत्थारो होइ कायव्वो ॥५॥'

| | | |
|---|---|---|
| २२, ४ | „ | ३ |
| १३, ४ | „ | ३ |
| १२, ४ | „ | ३ |
| ११, ४ | ३ से १ तक कोई | ३ |
| ५, ४ | „ | ३ |
| २३, ३ | २ व १ कोई | २ |
| २२, ३ | „ | २ |
| १३, ३ | „ | २ |
| १२, ३ | „ | २ |
| ११, ३ | „ | २ |
| ५, ३ | „ | २ |
| ४, ३ | „ | २ |
| २३, २ | १ स्थान | १ |
| २२, २ | „ | १ |
| १३, २ | „ | १ |
| १२, २ | „ | १ |
| ११, २ | „ | १ |
| ५, २ | „ | १ |
| ४, २ | „ | १ |
| ३, २ | „ | १ |
| | प्रस्तारविकल्प | १२० |

अथवा ये १२० प्रस्तारविकल्प 'एकोत्तरपदवृद्धो' इत्यादि करणसूत्रके नियमानुसार भी प्राप्त किये जा सकते हैं जो अनुवादमें बतलाये ही हैं। तथा चारसंयोगी आदि प्रस्तारविकल्प भी इसी प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं। यथा—

चारसंयोगी–१२० $\times \frac{७}{४}$ =२१० प्रस्तारविकल्प
पांचसंयोगी–२१० $\times \frac{६}{५}$ =२५२ „
छहसंयोगी– २५२ $\times \frac{५}{६}$ =२१० „
सातसंयोगी–२१० $\times \frac{४}{७}$ =१२० „
आठसंयोगी–१२० $\times \frac{३}{८}$ =४५ „
नौसंयोगी– ४५ $\times \frac{२}{९}$ =१० „
दससंयोगी– १० $\times \frac{१}{१०}$ =१ „

§ ३४२. आलापोंके विना, उन प्रस्तारोंकी स्थापनाकी विधिका प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है–

'पहली पंक्तिमें जहां जितने भंग हों तत्प्रमाण एक लघु उसके अनन्तर एक गुरु इस प्रकार क्रमसे अक्षका निक्षेप करना चाहिये। तथा इसके आगे द्वितीयादि पंक्तियोंमें दूना दूना करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे प्रस्तार प्राप्त होता है ॥५॥'

(१) 'पादे सर्वगुरावाद्याल्लघु न्यस्य गुरोरधः। यथोपरि तथा शेष भूयः कुर्यादमुं विधिम् ॥२॥ ऊने दद्यात् गुरूनेव यावत्सर्वलघुर्भवेत्। प्रस्तारोऽयं समाख्यातश्छन्दोविचितिवेदिभिः ॥३॥' वृत्तर० अ० ६ श्लो० २-३।

§ ३४३. संपहि करणकमेणाणिदचदुसंजोगपत्थारसलागपमाणमेदं २१० । पंचसंजोगपत्थारसलागा एत्तिया २५२ । छसंजोगपत्थारसलागा एत्तिया २१० । सत्तसंजोगपत्थारसलागा १२० । अट्ठसंजोगपत्थारसलागा ४५ । णवसंजोगपत्थार-सलागा १० । दससंजोगपत्थारसलागा १ ।

विशेषार्थ—यद्यपि ऊपर प्रत्येक, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी स्थानोंके प्रस्तारोंका निर्देश कर आये हैं किन्तु इस गाथामें सर्वत्र प्रस्तारोंकी स्थापनाकी विधिका निर्देश किया है । यहां गाथामें लघु और दीर्घ शब्द आये हैं जिनसे लघु और दीर्घ वर्णोंका बोध होता है। किन्तु यहां जीवोंके भंग लाना इष्ट है अतः लघु शब्दसे एक जीव और दीर्घ शब्दसे अनेक जीवोंका ग्रहण करना चाहिये। प्रस्तार रचनाके समय जहां एक ही स्थानके प्रस्तारकी रचना करना हो वहां जितने भंग हों उतनी बार क्रमसे ह्रस्व और दीर्घ लिख लेना चाहिये । यथा १ २ । जहां द्विसंयोगी प्रस्तार लाना हो वहां पहली पंक्तिमें द्विसंयोगी प्रस्तारके जितने भंग हों उतनी बार लघु और दीर्घ लिखे तथा द्वितीयादि पंक्तियोंमें इन्हें दूना दूना करता जाय । यथा— द्वितीयपंक्ति १ १ २ २
प्रथमपंक्ति १ २ १ २

इसी प्रकार त्रिसंयोगी, चारसंयोगी आदि प्रस्तारोंको ले आना चाहिये ।

तीनसंयोगी प्रस्तार—

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तृ० पं० | १ | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ |
| द्वि० पं० | १ | १ | २ | २ | १ | १ | २ | २ |
| प्र० पं० | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ |

चारसंयोगी प्रस्तार—

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| च० पं० | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| तृ० पं० | १ | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ | १ | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ |
| द्वि० पं० | १ | १ | २ | २ | १ | १ | २ | २ | १ | १ | २ | २ | १ | १ | २ | २ |
| प्र० पं० | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ |

आगे पांचसंयोगी आदि प्रस्तार इसी प्रकार दूने दूने प्राप्त होते जाते हैं ।

§३४३. इसप्रकार करणसूत्रके नियमानुसार लाये हुए चारसंयोगी प्रस्तारोंकी शलाका-ओंका प्रमाण २१० है । तथा पांचसंयोगी प्रस्तारशलाकाएं २५२, छसंयोगी प्रस्तारशलाकाएं २१०, सातसंयोगी प्रस्तार शलाकाएं १२०, आठसंयोगी प्रस्तारशलाकाएं ४५, नौसंयोगी प्रस्तार शलाकाएं १० और दस संयोगी प्रस्तार शलाका १ होती है ।

§ ३४४. एवं विहाणेणुप्पाइदपत्थारसलागाओ अस्सिदूण तेसिं पत्थाराणमुच्चारणसलागाणयणट्ठमेसा अज्जा—

'सूत्रानीतविकल्पेष्वेकविकल्पान् द्विकेन संगुणयेत् ।
द्व्यादिविकल्पान् भाज्यान् द्विगुणद्विगुणेन तेनैव ॥६॥'

§ ३४५. एदिस्से अत्थो वुच्चदे । तद्यथा-'रूपोत्तरपदवृद्ध' इति सूत्रम् । एतेन सूत्रेण आनीतविकल्पाः १०, ४५, १२०, २१०, २५२, २१०, १२०, ४५, १०, १, एतेषु विकल्पेषु 'एकविकल्पान्' एकसंयोगविकल्पान् 'द्विकेन' द्वाभ्यां रूपाभ्यां 'गुणयेत्' ताडयेत् । कुतः ? एकसंयोगे एकबहुवचनभेदेन द्वयोरेव भंगयोस्समुत्पत्तेः । 'द्व्यादिविकल्पान्' द्विसंयोगादिप्रस्तारविकल्पान् 'भाज्यान्' भाज्यस्थानसम्बंधिनः 'तेनैव' ताभ्यां द्वाभ्यामेव रूपाभ्यां गुणयेत् । कीदृक्षाभ्यां 'द्विगुणद्विगुणेन' द्विगुणद्विगुणाभ्यां । एवं गणयित्वा एकत्र कृते सति सर्वोच्चारणसङ्ख्योत्पद्यते । २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२, १०२४, एते गुणकाराः । कुतः, द्विगुणद्विगुणक्रमेणोच्चारणशलाकोत्पत्तेः । एतैर्गुण्यमानराशिषु गुणितेषु समुत्पन्नोच्चा-

§ ३४४. इसप्रकार विधिपूर्वक उत्पन्नकी हुई प्रस्तार शलाकाओंका आश्रय लेकर उन प्रस्तारोंके आलापोंकी शलाकाओंके लानेके लिये यह निम्नलिखित आर्या है—

'रूपोत्तरपदवृद्धः' इत्यादि सूत्रके अनुसार लाये गये प्रस्तार विकल्पोंमें एकसंयोगी प्रस्तार विकल्पोंको दोसे गुणित करे । तथा द्विसंयोगी आदि भजनीय प्रस्तार विकल्पोंको उत्तरोत्तर दुगुने दुगुने उसी दोसे गुणा करे । ऐसा करनेसे आलापोंके सब भंग आ जाते हैं ॥ ६ ॥'

§ ३४५. अब इस आर्याका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है– पूर्वोक्त आर्यामें आये हुए 'सूत्र' पदसे 'रूपोत्तरपदवृद्धः' इत्यादि सूत्र लिया गया है । इस सूत्रसे लाये हुए एक संयोगी आदि प्रस्तारोंकी शलाकाएँ क्रमसे १०, ४५, १२०, २१०, २५२, २१०, १२०, ४५, १० और १ होती हैं । इन प्रस्तार शलाकाओंमेंसे एकसंयोगी शलाकाओंको दोसे गुणित करे, क्योंकि एकसंयोगीके एक वचन और बहुवचनके भेदसे दो ही भंग होते हैं । तथा भाज्य अर्थात् भजनीय स्थानसम्बन्धी द्विसंयोगी आदि प्रस्तार शलाकाओंको उसी दोसे गुणित करे । पर द्विसंयोगी आदि प्रस्तार शलाकाओंको दोसे गुणा करते समय वह दो उत्तरोत्तर दूना दूना होना चाहिये । इसप्रकार गिनती करके एकत्र करनेपर सभी आलापोंकी संख्या उत्पन्न होती है । दोको इसप्रकार दूना दूना करनेपर एकसंयोगी आदि प्रस्तार शलाकाओंके क्रमसे २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२ और १०२४ ये गुणकार होते हैं, क्योंकि आलाप शलाकाएँ उत्तरोत्तर दूने दूनेके क्रमसे उत्पन्न होती हैं। इन गुणकारोंके द्वारा गुण्यमानराशि १०, ४५, १२०, २१०, २५२, २१०, १२०,

रणभंगाः पृथक् पृथगेते भवन्ति–२०, १८०, ६६०, ३३६०, ८०६४, १३४४०, १५३६०, ११५२०, ५१२०, १०२४। एतेषां सर्वेषां भंगानां मानः इयान् भवति ५६०४८। ध्रुवे प्रक्षिप्ते सति इयती सङ्ख्या ५६०४६। एवं मणुस्सतियस्स। णवरि, मणुस्सिणीसु भयणिज्जपदाणि णव होंति पंचण्हमभावादो।

§ ३४६. पंचिंदिय-पंचिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-

४५, १० और १ को क्रमसे गुणित करनेपर सभी आलाप भंग अलग अलग २०, १८०, ६६०, ३३६०, ८०६४, १३४४०, १५३६०, ११५२०, ५१२० और १०२४ उत्पन्न होते हैं। इन सब भंगोंका प्रमाण ५६०४८ होता है। इसराशिमें एक ध्रुव भंगके मिला देने पर कुल जोड़ ५६०४९ होता है।

इसीप्रकार सामान्य, तथा पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यणियोंके समझना चाहिये। अर्थात् इनके ऊपर कहे गये विभक्तिस्थान सम्बन्धी सभी भंग होते हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिणियोंमें भजनीय पद नौ होते हैं। क्योंकि इनके पांच विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ–ऊपर भजनीय पद दस कह आये हैं। वे दसों पद सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्यके पाये जाते हैं। अतः इन दसों भजनीय पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा होनेवाले समग्र ५६०४८ भंग सामान्य और पर्याप्त मनुष्योंके सम्भव हैं। तथा अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थान सम्बन्धी एक ध्रुवपद भी इन दोनों प्रकारके मनुष्योंके निरन्तर पाया जाता है, अतः ओघ प्ररूपणामें कुल भंग जो ५६०४९ कहे हैं वे सभी सामान्य और पर्याप्त मनुष्योंके सम्भव हैं, इसलिये इनकी प्ररूपणा ओघ प्ररूपणाके समान है। परन्तु मनुष्यिणियोंके दस भजनीय पदोंमें पांच विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है, अतः उनके २३, २२, १३, १२, ११, ४, ३, २ और १ ये नौ भजनीय पद जानना चाहिये। जिनके एकसंयोगीसे लेकर नौसंयोगी तक प्रस्तारविकल्प क्रमशः ९, ३६, ८४, १२६, १२६, ८४, ३६, ९ और १ होंगे। तथा आलाप भंग २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६ और ५१२ होंगे। इन ९ आदि प्रस्तार विकल्पोंको २ आदि आलाप भंगोंसे क्रमशः गुणित कर देनेपर एक सयोगी आदि भंगोंका प्रमाण १८, १४४, ६७ , २०१६, ४०३२, ५३७६, ४६०८, २३०४ और ५१२ होगा। जिनका कुल जोड़ १९६८२ होता है। ये अध्रुव भंग हैं। इनमें ध्रुव भंगके मिला देने पर मनुष्यनियोंमें कुल भंगोंका प्रमाण १९६८३ होगा। तेईस विभक्तिस्थानके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग और एक ध्रुव भंग इसप्रकार इन तीन भंगोंको उत्तरोत्तर आठ बार तिगुना तिगुना करनेसे भी सब भंगोंका प्रमाण १९६८३ आ जाता है।

§ ३४६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी,

(१) –वां···( पृ० ४ ) मा–स०। –वां गुण्यमा–अ०, आ०।

ओरालि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-तेउ०-पम्म-० सुक्क०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारिति मूलोघभंगो। णवरि इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-संजदासंजद-असंजद-तेउ०-पम्म०-चत्तारि कसायाण भयणिज्जपदपमाणं णादूण भंगा उप्पादेदव्वा।

§ ३४७. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक-

काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारी जीवोंके मूलोघके समान भंग जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, संयतासंयत, असंयत, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके भजनीय पदोंका प्रमाण जानकर उनके भंग उत्पन्न करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ल लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके ध्रुव अट्ठाईस आदि और भजनीय तेईस आदि सभी पद पाये जाते हैं, इसलिए इनके ऊपर कहे गये ५९०४९ ये सभी भंग सम्भव हैं। स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवके ध्रुवपद तो सभी पाये जाते हैं पर भजनीय पदोंमें तेईस, बाईस, तेरह और बारह ये चार विभक्तिस्थान ही पाये जाते हैं, अतः इन दोनों वेदवालोंके भजनीय पदसम्बन्धी ८० भंग और १ ध्रुवभंग इसप्रकार कुल ८१ भंग सम्भव हैं। पुरुषवेदियोंके ध्रुवपद सभी पाये जाते है और भजनीय पदोंमें तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, और पांच ये छह विभक्तिस्थान पाये जाते हैं। अतः पुरुषवेदी जीवोंके भजनीय पदसम्बन्धी ७२८ भंग और १ ध्रुवभंग इसप्रकार कुल ७२९ भंग सम्भव हैं। असंयत, तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके ध्रुवपद सभी पाये जाते हैं और भजनीयपदोंमें तेईस और बाईस ये दो पद ही पाये जाते हैं, अतः इनके भजनीय पदसम्बन्धी ८ भंग और १ ध्रुवभंग इसप्रकार ९ भंग सम्भव हैं। क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके ध्रुवपद सभी पाये जाते हैं और अध्रुव पद क्रोधकषायवालोंके तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच और चार ये सात पद, मानकषायवाले जीवोंके इन सात पदोंमें तीन विभक्तिस्थानके मिला देनेसे आठ पद, मायाकषायवाले जीवोंके इन आठ पदोंमें दो विभक्तिस्थानके मिला देनेपर नौ पद और लोभकषायवालोंके इन नौ पदोंमें एक विभक्तिस्थानके मिला देनेपर दस पद पाये जाते हैं, अतः इन क्रोधादि कषायवाले जीवोंके क्रमशः २१८७, ६५६१, १९६८३ और ५९०४९ भंग सम्भव हैं।

§ ३४७. **आदेशकी** अपेक्षा **नरकगतिमें** नारकियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, और इक्कीस विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव

वीसविहत्तिया णियमा अत्थि। बावीसविहत्तिया भयणिज्जा। सिया एदे च बावीसविहत्तिओ च १, सिया एदे च बावीसविहत्तिया च २। धुवे पक्खित्ते तिण्णिभंगा ३। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्ख०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-काउलेस्सा-देव-सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धे त्ति। णवरि णवाणुदिस-पंचाणुत्तरेसु सत्तावीस-छव्वीसविहत्तिया णत्थि।

§ ३४८. विदियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-विहत्तिया णियमा अत्थि। एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसि० वत्तव्वं। पंचि० तिरि० अपज्जत्तएसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसविहत्तिया णियमा अत्थि। एवं सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-तस अपज्ज०-वेउव्विय०-

भजनीय हैं। अतः बाईस विभक्तिस्थानकी अपेक्षा दो भंग होंगे। १–कदाचित् ये अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है। २–कदाचित् ये अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं। इन दो भङ्गोंमें एक ध्रुव भङ्गके मिला देनेपर नारकियोंमें तीन भङ्ग होते हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवीके जीवोंके तथा तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और कापोतलेश्यावाले जीवोंके तथा सामान्य देवोंके और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि नौ अनुदिश और पांच अनुत्तरवासी देवोंमें सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव नहीं होते।

**विशेषार्थ**–सामान्य नारकियोंके जो तीन भङ्ग बताये हैं वे ही तीनों भङ्ग उपर्युक्त सभी जीवोंके सम्भव हैं; क्योंकि सामान्य नारकियोंके ध्रुव और भजनीय जो विभक्तिस्थान पाये जाते हैं वे सभी इन उपर्युक्त जीवोंके पाये जाते हैं। यद्यपि नौ अनुदिश और पांच अनुत्तरवासी देवोंके सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान नहीं बतलाये हैं फिर भी इन स्थानोंके न होनेसे भङ्गोंकी संख्यामें कोई अन्तर नहीं पड़ता है, क्योंकि इन देवोंके अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस इन तीन ध्रुव पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुवभङ्ग हो जाता है।

§ ३४८. दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे होते हैं। अतः यहां 'अट्ठाईस आदि चार विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा नियमसे होते हैं' यही एक ध्रुवभङ्ग पाया जाता है। इसी प्रकार तिर्यंच योनिमती जीवोंमें तथा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें उक्त अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा एक ध्रुवभङ्ग कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे होते हैं। अतः इनमें 'अट्ठाईस आदि तीन विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा नियमसे होते हैं' यही एक ध्रुवभङ्ग पाया जाता है। इसीप्रकार सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों प्रकारके स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिक

**मदिसुदअण्णाण-विहंग-किण्ह०-णील०-मिच्छा०-असण्णि त्ति वत्तव्वं। णवरि वेउव्विय०-किण्ह०-णील० चउवीस-एक्कवीसविहत्तिया णियमा अत्थि। मणुस्सअपज्जत्तएसु सव्वपदा भयणिज्जा। एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसाय०-सुहुमसांपराय०- जहाक्खाद०-उवसमसम्मत्त-सम्मामि० वत्तव्वं।**

काययोगी, मत्यज्ञानी,श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा एक ध्रुवभङ्ग कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिककाययोगी, कृष्णलेश्यावाले और नीललेश्यावाले जीवोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिवाले जीव भी नियमसे होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें सभी पद भजनीय हैं। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यात संयत इन तीन स्थानोंको छोड़कर शेष सात मार्गणाएं सान्तर हैं। इन मार्गणाओंमें कभी एक और कभी अनेक जीव होते हैं। तथा कभी इनमें जीवोंका अभाव भी रहता है। शेष तीन अपगतवेदी आदि मार्गणाएं यद्यपि सान्तर तो नहीं हैं क्योकि वेदरहित, कषायरहित और यथाख्यात संयत जीव लोकमें सर्वदा पाये जाते हैं। फिर भी मोहनीयकी सत्तासे युक्त इन मार्गणाओंवाले जीव कभी बिलकुल नहीं होते हैं, कभी एक होता है और कभी अनेक होते हैं, अतः इस अपेक्षा से ये तीन मार्गणाएं भी सान्तर हैं ऐसा समझना चाहिये। इसप्रकार इन उपर्युक्त दस मार्गणाओंके सान्तर सिद्ध होजानेपर इनमें संभव सभी पद भजनीय ही होंगे। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस ये तीन स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तारविकल्प सात और उच्चारणाविकल्प अर्थात् भंग छब्बीस होंगे। वैक्रियिक मिश्र काययोगियोंके अट्ठाईस, सत्ताईस. छब्बीस, चौबीस, बाईस और इक्कीस ये छह स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तारविकल्प ६३ और भंग ७२८ होंगे। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस ये तीन स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तारविकल्प सात और भंग २८ होंगे। अपगतवेदी जीवोंके २४, २१, ११, ५, ४, ३, २ और १ ये आठ स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तारविकल्प २५५ और भंग ६५६० होंगे। कषायरहित जीवोंके और यथाख्यात-संयतोंके २४ और २१ ये दो स्थान पाये जाते हैं, अतः यहांपर प्रस्तारविकल्प ३ और भंग ८ होंगे। सूक्ष्मसांपराय संयतोंके २४, २१ और १ ये तीन स्थान पाये जाते हैं, अतः यहांपर प्रस्तारविकल्प ७ और भंग २८ होंगे। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें २८ और २४ ये दो स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तार

§ ३४६. ओरालियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । कम्मइय० छव्वीस० णियमा अत्थि सेसपदा भयणिज्जा । एवमणाहारि० । आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्ठावीस-चउवीस-एकवीसविह० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । एवं मणपज्जव०-संजद-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठि-वेदय० वत्तव्वं । णवरि वेदय० इगिवीसं णत्थि । अभवसिद्धि० छव्वीसविह० णियमा अत्थि । खयिगे एक्कवीसविह० णियमा अत्थि । सेसपदा

विकल्प ३ और भंग ८ होंगे। सासादन सम्यग्दृष्टि स्थान भी सान्तर मार्गणा है पर उसके भंग आगे चल कर स्वतन्त्र गिनाये हैं, अतः यहां उसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है।

§ ३४६. औदारिकमिश्र काययोगियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानके धारक जीव नियमसे हैं। शेष स्थान भजनीय हैं। कार्मण काययोगमें छब्बीस विभक्तिस्थान नियमसे है, शेष स्थान भजनीय हैं। इसीप्रकार अनाहारक काययोगियोंमें समझना चाहिये।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्र काययोगियोंमें २८, २७, २६, २४, २२ और २१ ये छह स्थान पाये जाते हैं। इनमेंसे २८, २७ और २६ स्थानके धारक उक्त जीव सर्वदा रहते हैं, अतः इन तीन स्थानोंकी अपेक्षा एक एक ध्रुवभंग होगा। शेष २४, २२ और २१ ये तीन स्थान भजनीय हैं। अतः इनकी अपेक्षा प्रस्तार विकल्प ७ और भंग २८ होंगे इसप्रकार प्रस्तार विकल्प ७ और कुल भंग २६ होंगे।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान नियमसे हैं। शेष स्थान भजनीय हैं। इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धि संयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वेदक सम्यग्दृष्टियोंके इक्कीस विभक्तिस्थान नहीं होता है।

विशेषार्थ—मतिज्ञानी आदि जीवोंके सत्ताईस और छब्बीसके सिवा मोहनीयके सभी स्थान पाये जाते हैं, अतः उनके भजनीय २३ आदि दसों विभक्तिस्थानोंके प्रस्तार विकल्प १०२३ और ध्रुव तथा अध्रुव सभी भंग ४६०४६ पाये जाते हैं। परिहारविशुद्धि संयत और संयतासंयत जीवोंके २८, २४, २३, २२ और २१ ये पांच स्थान तथा वेदक सम्यग्दृष्टियोंके २१ विभक्तिस्थानके विना शेष चार स्थान पाये जाते हैं। इनमेंसे २३ और २२ विभक्तिस्थान तीनों मार्गणाओंमें भजनीय हैं, अतः इन तीनोंमेंसे प्रत्येक मार्गणामें ३ प्रस्तार विकल्प और ६ भंग होते हैं। इनमें एक ध्रुवभंग भी सम्मिलित है।

अभव्य जीवोंके नियमसे छब्बीस विभक्तिस्थान पाया जाता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके इक्कीस विभक्तिस्थान नियमसे है। तथा शेष २३ आदि ८ स्थान भजनीय हैं।

भयणिज्जा । सासण० सिया अट्ठावीसविहत्तिया सिया अट्ठावीसविहत्तिओ ।
एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

* सेसाणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि ।

§ ३५०. कुदो ? सुगमत्तादो । संपहि चुण्णिसुत्तेण सूचिदाणमुच्चारणामस्सिदूण सेसाहियाराणं परूवणं कस्सामो ।

§ ३५१. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छव्वीसविह० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा । सेसपदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुद-अण्णाण-असंजद-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा-भवसिद्धि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारित्ति वत्तव्वं ।

सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें कदाचित् २८ विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं और कदाचित अट्ठाईस विभक्तिस्थान वाला एक जीव होता है ।

**विशेषार्थ**—अभव्योंके २६ विभक्तिस्थानको छोड़कर और दूसरा कोई स्थान नहीं पाया जाता है तथा अभव्यराशि ध्रुव है । इसलिये यहां एक ही भंग संभव है । क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके इकीस विभक्तिस्थान ध्रुव है शेष ८ स्थान भजनीय हैं, अतः यहां प्रस्तार विकल्प २५५ और ध्रुव तथा अध्रुव दोनों प्रकारके भंग ६५६१ होंगे । सासादन सान्तर मार्गणा है । अतः यहां २८ स्थानकी अपेक्षा भी २ भंग होंगे ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

* भागाभाग, परिमाण आदि शेष अनुयोगद्वार जान लेने चाहिये ।

§ ३५०. **शङ्का**—यहां शेष अनुयोगद्वारोंका कथन न करके सूचनामात्र क्यों की है ?

**समाधान**—क्योंकि वे सुगम हैं, अतः चूर्णिसूत्रकारने उनकी सूचनामात्र की है ।

अब चूर्णिसूत्रके द्वारा सूचित किये गये भागाभाग आदि शेष अनुयोगद्वारोंका उच्चारणाका आश्रय लेकर कथन करते हैं—

§ ३५१. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छब्बीस विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । शेष विभक्तिस्थानवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी प्रकारके एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदकायिक, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्याओंमें प्रत्येक लेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक इनके भी भागाभाग

§ ३५२. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु छव्वीसविहत्तिया सव्वजीवाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। सेसपदा सव्वजीव० केव० ? असंखे० भागो। एवं सव्वणेरइय-सव्व-पंचिंदिय तिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्स अपज्ज०-देव०-भवणादि जाव सहस्सारे त्ति-सव्व-विगलिंदिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-पंचिं० अपज्ज०-चत्तारिकाय०-तस-तसपज्ज०-तस-अपज्ज ०-पंचमण०-पंचवचि ० -वेउव्विय ० -वेउ ० मिस्स०-इत्थि ० -पुरिस ०-विहंग ०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति वत्तव्वं। मणुस्सपज्ज०-मणुस्सिणीसु छव्वीसविह० सव्वजीवाणं के० भागो ? संखेज्जा भागा। सेसपदा संखे० भागो। आणदादि जाव उवरिमगेवज्जेत्ति अट्ठावीसविह० सव्वजीवाणं के० भागो ? संखेज्जा भागा। छव्वीस-चउवीस-एक्कवीसविह० संखेज्जदि भागो। बावीस-सत्तावीसविह० असंखेज्जदि भागो। अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति अट्ठावीसविह० सव्वजीवाणं के० भागो ? संखेज्जा भागा। सेसपदा संखेज्जदि भागो। बावीसवि० असंखे० भागो।

ओघप्ररूपणाके समान जानना चाहिये। तात्पर्य यह है इन उक्त मार्गणाओंमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं और शेष विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। अतः इनके कथनको ओघके समान कहा है।

§ ३५२. आदेशकी अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव सभी जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। इसीप्रकार सभी नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच, सामान्य मनुष्य, लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सामान्य देव तथा भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, त्रस, त्रसपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, पांचों प्रकारके मनोयोगी, पांचों प्रकारके वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव सब उक्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। तथा शेष स्थानवाले संख्यातवें भाग हैं ? आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयिक तक अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सब उक्त जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। तथा बाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं। अनुदिशसे लेकर अपराजित तक प्रत्येक स्थानके अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सब उक्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। तथा बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं।

§ ३५३. सव्वट्ठे अट्ठावीस० सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा। सेसपदा संखेज्जदि भागो। एवमाहार०-आहारमिस्स०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार० वत्तव्वं। अवगदवेद० चउण्हं वि० सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा। सेसप० संखे० भागो। अकसाय० चउवीस० सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा। सेसप० संखे० भागो। एवं जहाक्खाद०। आभिणि०-सुद-ओहि० अट्ठावीसविह० सव्वजीवाणं के० ? असंखेज्जा भागा। सेसपदा असंखे० भागो। एवं संजदासंजद० ओहिदंसण०-सम्मादि०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति वत्तव्वं। सुहुमसांपराय० एक्कविह० सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा। सेसप० संखे० भागो। सुक्क० अट्ठावीस० के० ? संखेज्जा भागा। छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० संखे० भागो। सेसप० असंखे० भागो। अभव्वसिद्धि०-सासण० णत्थि भागाभागो। खइए एक्कवीसविह० सव्वजीवाणं के० ?

§ ३५३. सर्वार्थसिद्धिमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सब उक्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहु भाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये।

अपगतवेदवालोंमें चार विभक्तिस्थानवाले जीव सब अपगतवेदी जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले संख्यातवें भाग हैं। कषायरहित जीवोंमें चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव सब कषायरहित जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। इसीप्रकार यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव उक्त सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं। इसीप्रकार संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंमें एक विभक्तिस्थानवाले जीव सब सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। शुक्ललेश्यावालोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं। अभव्य और सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें विभक्तिस्थानसम्बन्धी भागाभाग नहीं पाया जाता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सब क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात

असंखेज्जा भागा। सेसप० असंखेज्जदिभागो।

एवं भागाभागो समत्तो।

§३५४. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीस-एक्कवीसवि० केत्तिया ? असंखेज्जा। छव्वीसवि० के० ? अणंता। सेसट्ठाणविहत्तिया केत्तिया ? संखेज्जा। एवं तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालिय०-णवुंसय०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति वत्तव्वं।

§३५५. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीसवि० केत्ति० ? असंखेज्जा। बावीसविह० के० ? संखेज्जा। एवं पढमपुढवि०-पंचिंदिय तिरिक्ख- पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति। विदि-

बहुभाग हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं।

इसप्रकार भागाभागानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§३५४. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसीप्रकार तिर्यंच सामान्य, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ओघसे जिस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी जो संख्या बतलाई है वह तिर्यंच सामान्य आदि मार्गणाओंमें भी बन जाती है। यद्यपि विविध मार्गणाओंमें संख्या घट जाती है अतः ओघप्ररूपणासे आदेश प्ररूपणामें अन्तर पड़ना संभव है फिर भी अनन्तत्व सामान्य आदिको उक्त मार्गणास्थानवाले जीव उस उस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्याकी अपेक्षा उलंघन नहीं करते हैं अतः इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यंच सामान्य आदि मार्गणाओंमें कहां कितने विभक्तिस्थान पाये जाते हैं यह बात स्वामित्व अनुयोगद्वारसे जानकर ही कथन करना चाहिये, क्योंकि उक्त सब मार्गणाओंमें सब विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं।

§३५५. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसीप्रकार पहली पृथ्वीके नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर नौग्रैवेयक तकके देवोंकी संख्या कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें प्रत्येकका प्रमाण असंख्यात है।

**यादि जाव सत्तमि त्ति सव्वपदा केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं पंचिं०तिरि०जोणिणी-पंचिं०तिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसि०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-बादर-सुहुम पज्ज० अपज्ज०-तस अपज्ज०- विहंग० वत्तव्वं ।**

**§३५६. मणुसगईए मणुस्सेसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसविह केत्ति० ? असंखेज्जा । सेसपद० संखेज्जा० । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदा के० ? संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-समाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं ।**

अतः इनमें २८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानवालोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है । पर २२ विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात ही होंगे; क्योंकि सामान्य बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात नहीं होता । अतः मार्गणाविशेषमें उनका असंख्यातप्रमाण किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें स्थित अट्ठाईस आदि संभव सभी विभक्तिस्थानवाले नारकी जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसीप्रकार पंचेन्द्रियतिर्यँच योनिमती, पंचेन्द्रियतिर्यँच लब्ध्यपर्याप्त, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेद्रियलब्ध्यपर्याप्त, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त, और अपर्याप्त चारों प्रकारके पृथिवी आदि कायवाले, त्रस लब्ध्यपर्याप्त और विभङ्गज्ञानी जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–ज्योतिषी देवों तक ऊपर जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें २८, २७, २६ और २४ ये चार विभक्तिस्थान पाये जाते हैं किन्तु शेष विकलेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें २८, २७ और २६ ये तीन विभक्तिस्थान ही पाये जाते हैं । तथा इन सभी मार्गणाओंमें प्रत्येक मार्गणावाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात है अतः यहां उक्त प्रत्येक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है ।

§ ३५६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीमें सभी विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव तथा आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायसंयत और यथाख्यात संयत जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें कहां कितने विभक्तिस्थान होते हैं, इसका उल्लेख पहले कर आये हैं । यहां इन मार्गणास्थानवर्ती जीवोंकी संख्या पर्याप्त मनुष्य और

§ ३५७. अणुद्दिसादि जाव अवराइद त्ति बावीसविह० केत्ति० ? संखेज्जा । सेसपदा असंखेज्जा । एइंदिय-बादरेइंदिय-सुहुमेइंदिय० अट्ठावीस-सत्तावीसविह० केत्तिया ? असंखेज्जा । छवीसविह० के० ? अणंता । एवं वणप्फदि०-णिगोद०-पज्ज० अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि त्ति वत्तव्वं । पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-[छव्वीस] विह० चउवीसविह० एक्कवीसविह० केत्तिया ? असंखेज्जा । सेसप० संखेज्जा । एवं पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति वत्तव्वं ।

मनुष्यनीकी संख्याके साथ संख्यात सामान्यकी अपेक्षा समान है यह दिखानेके लिये 'एवं सव्वट्ठ०' इत्यादि कहा है ।

§ ३५७. नौ अनुदिशोंसे लेकर अपराजिततक प्रत्येक स्थानमें बाईस विभक्तिस्थानवाले देव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अपनेमें संभव शेष स्थानवाले देव असंख्यात हैं ।

एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार वनस्पतिकायिक, पर्याप्त वनस्पतिकायिक, अपर्याप्त वनस्पतिकायिक, निगोद, पर्याप्त निगोद, अपर्याप्त निगोद, मतिअज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

विशेषार्थ–२८ और २७ विभक्तिस्थानवाले वे ही जीव होते हैं जिन्होंने कभी उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया हो अतः इनका प्रमाण असंख्यात ही होगा । पर २६ विभक्तिस्थानवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिसे रहित सभी मिथ्यादृष्टियोंका ग्रहण हो जाता है अतः इनका प्रमाण अनन्त होगा । इसी अपेक्षासे उपर्युक्त अनन्त संख्यावाली मार्गणाओंमें २८ और २७ विभक्तिस्थान वालोंका प्रमाण असंख्यात और २६ विभक्तिस्थानवालोंका प्रमाण अनन्त कहा है ।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं । इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, पुरुष वेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

विशेषार्थ–उपर्युक्त मार्गणाओंमें सभी स्थान सम्भव हैं पर जिन विभक्तिस्थानोंमें रहनेवाले उक्त जीव असंख्यात होते हैं ऐसे विभक्तिस्थान २८, २७, २६, २४, और २१ ही हो सकते हैं । अतः इन विभक्तिस्थानवाले पंचेन्द्रिय आदिका प्रमाण असंख्यात कहा है । तथा इनसे अतिरिक्त शेष विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वत्र संख्यात ही होते हैं । अतः उनका प्रमाण संख्यात ही कहा है ।

§ ३५८. ओरालियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीसविह० केत्ति० ? असंखेज्जा। छव्वीसविह० के० ? अणंता। बावीस-एक्कवीस-चउवीसविह०के० ? संखेज्जा। एवं कम्मइय०। णवरि चउवीस० असंखेज्जा। एवमणाहार०। एवं वेउव्वियमिस्स०। णवरि छव्वीस० असंखेज्जा। वेउव्विय० सव्वपदा० असंखेज्जा। इत्थि० पंचिंदिय-भंगो। णवरि एक्कवीस० केत्तिया ? संखेज्जा। आभिणि०-सुद-ओहि० अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीसविह० के० । असंखेज्जा। सेसप० संखेज्जा। एवं ओहिदंस०-सम्मा-इट्ठि०-वेदयसम्माइट्ठि त्ति वत्तव्वं। णवरि वेदयसम्माइट्ठीसु इगिवीसादिपदं णत्थि।

§ ३५८. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। बाईस, इक्कीस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसीप्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंकी संख्या जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं। इसीप्रकार अनाहारकोंमें जानना चाहिये। तथा इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये। पर यहां इतनी विशेषता है कि छब्बीस विभक्तिस्थानवाले वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव असंख्यात होते हैं।

**विशेषार्थ**—जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य भोगभूमिके तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानके होते हुए औदारिक मिश्रकाययोग होता है। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव या नारकी मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके इक्कीस विभक्तिस्थानके होते हुए औदारिक मिश्रकाययोग होता है। तथा जो वेदक सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके चौबीस विभक्तिस्थानके रहते हुए औदारिक मिश्रकाययोग होता है। अतः औदारिकमिश्रकाययोगमें इन तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात कहा है। शेष कथन सुगम है।

वैक्रियिककाययोगियोंमें सभी सम्भव विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं। स्त्रीवेदियोंमें संभव अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्या पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

**विशेषार्थ**—स्त्रीवेदके रहते हुए मनुष्य ही इक्कीस विभक्तिस्थानवाले होते हैं अतः इनका प्रमाण संख्यात कहा है। शेष कथन सुगम है।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं। इसीप्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें संख्या कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके इक्कीस आदि विभक्तिस्थान नहीं हैं।

§ ३५६. संजदासंजद० अट्ठावीसविह० चउवीसविह० केव० ? असंखेज्जा। सेसप० संखेज्जा। काउ० तिरिक्खोघभंगो। किण्ह० णील० एवं चेव। णवरि एक्कवीसविह० के० ? संखेज्जा। तेउ० पम्म० सुक्क० पंचिंदियभंगो। अभव्वसिद्धि० छव्वीसवि० केत्ति० ? अणंता। खइए० एक्कवीसविह० के० असंखेज्जा। सेसपदा संखेज्जा। उवसमे अट्ठावीस-चउवीसवि० के० ? असंखेज्जा। सासण० अट्ठावीसवि० असंखेज्जा। सम्मामि० अट्ठावीस-चउवीस० के० ? असंखेज्जा।

एवं परिमाणं समत्तं।

विशेषार्थ–उपर्युक्त मार्गणाओंमें २७ और २६ विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं क्योंकि वे मिथ्यादृष्टिके ही होते हैं। शेष सब पाये जाते हैं किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टियोंके २८, २४, २३ और २२ ये चार विभक्तिस्थान ही पाये जाते हैं। अतः उपर्युक्त मार्गणाओंमें जहां जितने स्थान पाये जाते हैं उन स्थानवाले जीवोंकी संख्या ओघके समान बन जाती है।

§ ३५६. संयतासंयत जीवोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा अपनेमें संभव शेष स्थानवाले जीव संख्यात हैं। कापोत लेश्यामें ओघतिर्यंचके समान जानना चाहिये। कृष्ण और नील लेश्यामें इसीप्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्यामें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यामें पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ–संयतासंयत गुणस्थानमें २८ और २४ विभक्तिस्थानवाले तिर्यंच भी होते हैं अतः इन दो स्थानवाले संयतासंयतोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है। तथा शेष स्थानवाले मनुष्य ही होते हैं अतः उनकी अपेक्षा संयतासंयतोंका प्रमाण संख्यात ही होगा। छहों लेश्यावालोंमें किसके कितने स्थान किस किस गतिकी अपेक्षा संभव हैं यह बात स्वामित्व अनुयोगद्वारसे जान लेना चाहिये। उससे किस लेश्यामें किस स्थानवाले जीव कितने सम्भव हैं इसका भी आभास मिलजाता है जिसका उल्लेख ऊपर किया ही है।

अभव्योंमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अपनेमें संभव शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं। उपशम सम्यक्त्वमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सासादनसम्यक्त्वमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यात्वमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थान वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ–सभी अभव्य छब्बीस विभक्तिस्थानवाले ही होते हैं और उनका प्रमाण अनन्त है, अतः अभव्योंमें २६ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त कहा है। यद्यपि छह

§ ३६०. **खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छव्वीस-विहत्तिया केवडिए खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसप० के० खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइंदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादर अपज्ज०-सुहुमपज्ज० अपज्ज०-वणप्फदि०-णिगोद०-बादर सुहुम० पज्ज० अपज्ज०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०**

माह और आठ समयमें संख्यात जीव ही क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं पर उनका संचयकाल साधिक तेतीस सागर होनेसे २१ विभक्तिस्थानवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है। तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि और मनुष्य ही होते हैं अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें २८ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात है यह तो स्पष्ट है। किन्तु उपशम सम्यक्त्वमें २४ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात उसी मतके अनुसार प्राप्त होगा जो उपशम सम्यक्त्वके कालमें भी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना मानते हैं। सासादनमें एक अट्ठाईस विभक्तिस्थान ही होता है और उनका प्रमाण असंख्यात है अतः यहां सासादनमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात कहा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण भी असंख्यात है और उनमे २८ और २४ विभक्तिस्थानवाले जीव पाये जाते हैं अतः सम्यग्मिथ्यात्वमें २८ और २४ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात कहा है।

इसप्रकार परिमाणानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ३६०. **क्षेत्रानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे **ओघकी** अपेक्षा छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं। शेष विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यँच, सभी प्रकारके एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादरवायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक, बादरवनस्पति, बादरवनस्पति पर्याप्त बादर वनस्पति अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त, बादर निगोद, बादर निगोदपर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी

तिण्णिले०-भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि० अणाहारि त्ति वत्तव्वं ।

§ ३६१. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु सव्वप० के० खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे । एवं सव्वपुढवि०-सव्वपंचिंदिय तिरिक्ख-सव्वमणुस्स सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवि ० -आउ ०-तेउ ०-बादरवणप्फदिपत्तेय-णिगोद-पदिट्ठिदपज्जत्त-तसपज्जत्तापज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि ०-सुद०-ओहि ०-मणपज्ज०-संजद-सामाइयछेदो० - परिहार० - सुहुम ० - जहाक्खाद ० -संजदासंजद-चक्खु ० -ओहिदंस०-तिण्णिसुहलेस्सा०-सम्मादि ० खइय०-वेदग०-उवसम ०-सम्मामि०-सण्णि त्ति वत्तव्वं ।

कार्मण काययोगी, नपुंसक वेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके २६ विभक्तिस्थानकी अपेक्षा सर्वलोक और शेष संभव विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र कहना चाहिये ।

विशेषार्थ–यह परिमाणानुयोगद्वारमें ही बतला आये हैं कि २८, २७, २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं, २६ विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्त हैं तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं । अत: २६ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक और शेष विभक्तिस्थानवाले जीवोका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण बन जाता है । ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार विभक्तिस्थानोंका विचार करके ओघके समान क्षेत्रका कथन कर लेना चाहिये ।

§३६१. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें संभव सभी विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार द्वितीयादि शेष सभी पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अकषायी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यात संयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन शुभ लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और संज्ञीजीवोंमें सभी विभक्तिस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहना चाहिये । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें छब्बीस विभक्ति-

बादरवाउ० पज्ज० छब्बीस० लोग० संखे० भागे। सेसपदाणं लोगस्स असंखे० भागे। अभव्वसिद्धि० छब्बीसविह० के० खेत्ते? सव्वलोगे। सासण० अट्ठावीस० के० खेत्ते? लोग० असंखे० भागे।

एवं खेत्तं समत्तं।

§ ३६२. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठावीस-सत्तावीस० केव० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा। छब्बीस० केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो। चउवीस-एकवीस० केव० खे० फोसिदं? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा। सेसप० खेत्तभंगो। एवं कायजोगि०-चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारि त्ति वत्तव्वं।

स्थानवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। तथा इनमें संभव शेष विभक्तिस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवेंभाग प्रमाण है। अभव्योंमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं? अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले सासादन सम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं।

**विशेषार्थ**—बादर वायुकायिक पर्याप्त और अभव्य जीवोंको छोड़ कर ऊपर जितने मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें जितने पद सम्भव हों उनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवा भागप्रमाण ही क्षेत्र प्राप्त होता है। किन्तु बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें २६ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र लोकका संख्यातवां भाग प्रमाण होता है तथा अभव्योंमें २६ विभक्तिस्थान ही होता है और उनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है अतः २६ विभक्तिस्थानवाले अभव्योंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक जानना चाहिये।

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ३६२. स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये।

§ ३६३. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, छ-चोद्दसभागा वा देसूणा। सेसपदाणं खेत्त-भंगो। पढमाए खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-वि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, एक-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दसभागा वा देसूणा। चउवीस० खेत्तभंगो।

**विशेषार्थ**–यहां ओघकी अपेक्षा २८ और २७ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अतीत कालीन स्पर्श जो त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण कहा है वह देवोंकी मुख्यतासे कहा है; क्योंकि तीन गतिके जीवोंमें देवोंका स्पर्श मुख्य है। तथा सब लोकप्रमाण स्पर्श तिर्यंचोंकी मुख्यतासे कहा है। इसीप्रकार २४ और २१ विभक्ति-स्थानवालोंका अतीत कालीन स्पर्श भी देवोंकी मुख्यतासे कहा है। शेष गतियोंकी अपेक्षा २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श उसमें गर्भित हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ ३६३. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। पहले नरकमें स्पर्श क्षेत्रके समान है। दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तक अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले नारकियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा दूसरे नरककी अपेक्षा कुछ कम एक बटे चौदह भाग, तीसरे नरककी अपेक्षा कुछ कम दो बटे चौदह भाग, चौथे नरककी अपेक्षा कुछ कम तीन बटे चौदह भाग, पांचवें नरककी अपेक्षा कुछ कम चारबटे चौदह भाग, छठे नरककी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग और सातवें नरककी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। इन द्वितीयादि नरकोंमें चौबीस विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

**विशेषार्थ**–सामान्यसे नारकियोंका या प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंका जो वर्तमान और अतीत कालीन स्पर्श है वही वहां २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानकी अपेक्षा वर्तमान और अतीत कालीन स्पर्श जानना चाहिये; क्योंकि इन विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी नारकियोंमें गति और आगतिका प्रमाण अधिक है किन्तु २४ विभक्तिस्थानवाले नारकियोंमें यह बात नहीं है। चौबीस विभक्तिस्थानवाला अन्य गतिका जीव तो नारकियोंमें उत्पन्न होता ही नहीं। हां ऐसा नारकी जीव मनुष्योंमें अवश्य उत्पन्न होता है पर उनका प्रमाण अति स्वल्प है अतः २४ विभक्तिस्थानकी अपेक्षा सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक

§ ३६४. तिरिक्ख० अट्ठावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो। सव्वलोगो वा। छव्वीस० ओघभंगो। चउवीस० के० खे० फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, छ-चोद्दसभागा वा देसूणा। सेसप०खेत्तभंगो। पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणीसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० खे० फोसिदं ? लोगस्स असंखेभागो, सव्वलोगो वा। सेसप०तिरिक्खभंगो। णवरि, पचिं० तिरि० जोणिणीसु बावीस-एक्कवीसविहत्तिया णत्थि। पंचिं० तिरि० अपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसवि० के खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। एवं मणुसअपज्ज० पंचिं० अपज्ज०-तसअपज्ज०-बादर पुढवि०-आउ०-तेउ०-पज्ज० वत्तव्वं। मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस०-

नारकियोंका वर्तमान व अतीत कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्यभी नरकमें उत्पन्न होते हैं पर ऐसे जीव पहली पृथिवी तक ही जाते हैं। अतः नारकियोंमें २२ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका वर्तमान और अतीत कालीन स्पर्श भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है।

§ ३६४. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है। लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्वलोकका स्पर्श किया है। छब्बीस विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श ओघके समान है। चौबीस विभक्तिस्थान-वालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्वलोकक्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका स्पर्श सामान्यतिर्यंचोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं।

**विशेषार्थ**–सामान्य तिर्यंचोंके स्पर्शमें शेष पदसे २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका ग्रहण करना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, बादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये।

सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और

पंचिं० तिरिक्खभंगो, विसेसा ( सेसवि० ) खेत्तभंगो ।

§ ३६५. देवेसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसवि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-णव-चोद्दसभागा वा देसूणा । चउवीस-एक्कवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा । बावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो । एवं सोहम्मीसाणदेवाणं । भवण० वाण०जोदिसि० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अद्धुट्ठ-अट्ठ-णव-चोद्दसभागा वा देसूणा । चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अद्धुट्ठ-अट्ठ-चोद्दस० देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारे त्ति बावीस० खेत्तभंगो । सेसपदाणं

छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । संभव शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

**विशेषार्थ**–२८, २७ और २६ विभक्तिस्थानवाले उक्त तीन प्रकारके मनुष्य सर्वत्र उत्पन्न होते हैं तथा उक्त विभक्तिस्थानवाले चारों गतियोंके जीव आकर इनमें उत्पन्न होते हैं अतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान बन जाता है । अब रही शेष विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा स्पर्शकी बात । सो उनमेंसे २४, २२ और २१ विभक्तिस्थानवाले मनुष्य ही अन्य गतिमें जाकर उत्पन्न होते हैं या देव और नरक गतिके २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं । पर ये सम्यग्दृष्टि होते हुए अतिस्वल्प होते हैं अतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इनसे अतिरिक्त शेष विभक्ति स्थानवाले मनुष्योंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होगा यह बात स्पष्ट है ।

§ ३६५. देवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । बाईस विभक्तिस्थानवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके स्पर्शका कथन करना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग

लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। एवमाणद-पाणद-आरणच्चुद०। णवरि छ-चोद्दस० देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं वेउव्वियमिस्स०-[आहार०]-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसाय०-मणपज्जव०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव्वसिद्धि० वत्तव्वं।

§३६६. इंदियाणुवादेण एइंदिय० अट्ठावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। छव्वीसवि० के० खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदियअपज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढ० अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि० पज्ज०-सुहुमपुढ०अपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ०अपज्जत्त-सुहुमआउ०-सुहुमआउ० पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ० अपज्जत्त-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ० पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ० पज्जत्ता-

क्षेत्रका स्पर्श किया है। सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक बाईस विभक्तिस्थानवाले देवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा शेष पदोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग है। इसीप्रकार आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहां कुछ कम आठ बटे चौदह भागके स्थानमें कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श कहना चाहिये। सोलह कल्पोंके ऊपर नौ ग्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है। अपने अपने क्षेत्रके समान ही वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायसंयत, यथाख्यातसंयत और अभव्य जीवोंके कहना चाहिये।

§३६६. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? सर्वलोकका स्पर्श किया है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त,

पज्जत्त-वणप्फदिकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-बादर वणप्फदि ०-पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-सुहुमवणप्फदि० पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-बादरवणप्फदि पत्तेयसरीर अपज्ज०-बादरणिगोदपदिट्ठिद-बादरणिगोदपदिट्ठिद अपज्ज०-णिगोद०-बादरणिगोद तेसिं पज्जत्तापज्जत्त, सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोद पज्जत्तापज्जत्त० वत्तव्वं। बादरवाउपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। छव्वीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० संखे० भागो, सव्वलोगो वा। बादर वणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-बादर-णिगोदपदिट्ठिदपज्ज०-सव्वविगलिंदियाणं तसअपज्जत्तभंगो। पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा, सव्वलोगो वा। सेसप० ओघभंगो। एवं पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति वत्तव्वं।

§ ३६७. ओरालिय० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस० तिरिक्खोघभंगो। सेसपदाणं खेत्तभंगो। ओरालियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग०

वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये। बादरवायुकायिक पर्याप्तकोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके संख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त और सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय जीवोंका स्पर्श लब्ध्यपर्याप्त त्रसोंके समान जानना चाहिये।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवेंभाग, त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग तथा सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श ओघके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार पांचोंमनोयोगी, पांचों वचनयोगी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

§३६७. औदारिककाययोगियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, और चौबीस विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान है। तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्ति स्थानवाले जीवोंने कितने

असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। छव्वीस० सव्वलोगो। सेस० खेत्तभंगो। कम्मइय० अट्ठावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदि भागो, सव्वलोगो वा। छव्वीस० केव० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। चउवीस० लोगस्स असंखे० भागो, छ-चोद्दस०। सेसपदाणं खेत्तभंगो। एवमणाहारि०। वेउव्विय० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो; अट्ठ-तेरह-चोद्दस-भागा वा देसूणा। चउवीस-एक्कवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। इत्थिवेदे पंचिंदियभंगो। णवरि एक्कवीस० खेत्तभंगो। णवुंस० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस० तिरिक्खोघभंगो। सेसपदाणं खेत्तभंगो। मदि-सुद-अण्णाण० अट्ठावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे०-भागो, सव्वलोगो वा। छव्वीस० सव्वलोगो। एवं मिच्छादि०-असण्णि०। विहंग०

क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। छब्बीस विभक्ति स्थानवाले औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है। तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

कार्मणकाययोगियोमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्ति स्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। छब्बीस विभक्तिस्थानवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्व लोकका स्पर्श किया है। चौबीस विभक्तिस्थानवालोने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमें से छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार अनाहारक जीवोंके स्पर्शका कथन करना चाहिये।

वैक्रियिक काययोगियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्ति स्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

स्त्रीवेदियोंमें स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इक्कीस विभक्तिस्थानको प्राप्त हुए स्त्रीवेदियोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। नपुंसकवेदियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्वलोक प्रमाण

अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा, सव्वलोगो वा । आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा । सेसप० खेत्तभंगो । एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठी त्ति वत्तव्वं । संजदासंजद० अट्ठावीस-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, छ-चोद्दस० देसूणा । सेसप० खेत्तभंगो। असंजद० सव्वपदाणमोघभंगो ।

§३६८. किण्ह-णील काउ० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० तिरिक्खोघभंगो । सेस० खेत्तभंगो । णवरि काउलेस्साए वावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो। तेउ० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० सोहम्मभंगो । तेवीस-वावीस० खेत्तभंगो । पम्मलेस्सा० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस०सहस्सारभंगो।

क्षेत्रका स्पर्श किया है । छब्बीस विभक्तिस्थानवाले उक्त जीवोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है । इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंका स्पर्श जानना चाहिये। विभंगज्ञानियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस, चौबीस, और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । उक्त जीवोंके शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टियोंके स्पर्श कहना चाहिये ।

संयतासंयतोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । असंयतोंमें सभी पदोंका स्पर्श ओघके समान है ।

§३६८. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान है । तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

पीतलेश्यामें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श सौधर्मकल्पके देवोंके स्पर्शके समान है । तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवालों का स्पर्श क्षेत्रके समान है । पद्मलेश्यामें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस

तेवीस-बावीस० खेत्तभंगो। सुक्कलेस्सा० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीस-एक्कवीस० आणदभंगो। सेस० खेत्तभंगो।

§ ३६९. वेदग० अट्ठावीस-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, अट्ठचोद्दस० देसूणा। तेवीस-बावीस० खेत्तभंगो। खइयसम्माइट्ठी० एक्कवीस० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। सेस० खेत्तभंगो। उवसम० अट्ठावीस०-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। सासणे अट्ठावीस० के० खेत्तं फोसिदं?, लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-बारह-चोद्दस० देसूणा। सम्मामिच्छाइट्ठी० अट्ठावीस-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा।

एवं फोसणं समत्तं।

§ ३७०. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठा-

विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श सहस्रार स्वर्गके देवोंके स्पर्शके समान है। तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। शुक्ललेश्यामें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श आनत कल्पके देवोंके स्पर्शके समान है। तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

§ ३६९. वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंनेकितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा तेईस और बाईस विभक्तिस्थान वालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागों मेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थान-वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवेंभाग तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

इसप्रकार स्पर्शनानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ३७०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।

वीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। तेवीस-बावीस-तेरस-एक्कारस-चदु-तिण्णि-दोण्णि-एक्क० के० ? जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। बारस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। पंच० के० ? जह० बे आवलियाओ विसमऊणाओ, उक्क० अंतोमु०। एवं पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-सण्णि० आहारि त्ति वत्तव्वं।

§ ३७१. आदेसेण णेरइएसु बावीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है। तेईस, बाईस, तेरह, ग्यारह, चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थानवालोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। बारह विभक्तिस्थानवालोंका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पांच विभक्तिस्थानवालोंका कितना काल है ? जघन्य काल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ–यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका निर्देश किया है। अतः ओघसे २८, २७, २६, २४, और २१ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल सर्वदा बन जाता है, क्योंकि उक्त विभक्तिस्थानवाले जीव लोकमें सर्वदा पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त शेष विभक्तिस्थान सान्तर हैं कभी होते हैं और कभी नहीं होते। जब होते हैं तो कभी उनमें एक जीव और कभी नाना जीव पाये जाते हैं। फिर भी हर हालतमें २३, २२, १३, ११, ४, ३, २ और १ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि लगातार क्रमसे अनेक जीवोंके उक्त विभक्तिस्थानोंको प्राप्त होनेपर भी प्रत्येक विभक्तिस्थानमें लगातार रहनेके कालका योग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता है। जो नपुंसक वेदी एक या अनेक जीव एक साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके बारह विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा जो स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी एक या अनेक जीव एक साथ या क्रमसे क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके बारह विभक्तिस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है। अतः बारह विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। एक जीवकी अपेक्षा पांच विभक्तिस्थानका काल दो समय कम दो आवली प्रमाण है। अब यदि क्रमसे अनेक जीव क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं तो पांच विभक्तिस्थानका काल कई आवलिप्रमाण हो जाता है, अतः पांच विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलि और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है।

§३७१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें बाईस विभक्तिस्थानवालोंका कितना काल है ?

सेसपदाणं सव्वद्धा। एवं पढमाए तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्ख-पंचिं०तिरि० पज्ज०-देवा सोहम्मीसाणादि जाव सव्वट्टे त्ति वत्तव्वं। बिदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वपदाणं सव्वद्धा। एवं पंचिं०तिरि०अपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसि०-पंचि० तिरि० जोणिणी-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय-बादर सुहुम पज्जत्तापज्जत्त-तस-अपज्जत्त-वेउव्विय०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति वत्तव्वं।

§ ३७२. मणुस० ओघभंगो। एवं मणुसपज्ज०। णवरि बावीस० जह० एग समओ, उक्क० अंतोमु०। मणुस्सिणी० ओघभंगो। णवरि बारस० जहण्णुक्क०

जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष पदोंका सर्व काल है। इसीप्रकार पहले नरकमें तथा तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, देव और सौधर्म-ऐशानसे लेकर सर्वार्थ सिद्धि तकके देवोंके कहना चाहिये। दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तकके नारकियोंके सभी संभव पदोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे पांचो स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंग-ज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ–कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके भी २२ विभक्तिस्थान होता है और इनके सम्बन्धमें ऐसा नियम है कि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके कालके चार भाग करे। उनमेंसे यदि पहले भागमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है, दूसरे भागमें यदि मरता है तो देव और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, तीसरे भागमें यदि मरता है तो देव, मनुष्य और तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है तथा चौथे भागमें यदि मरता है तो चारों गतिके जीवोंमें उत्पन्न होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अन्तिम भागमें मरा हुआ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। अतः सामान्य नारकियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिके देवों तक उक्त मार्गणाओंमें २२ विभक्तिस्थान-का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। इसमें शेष २८ २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा है; क्योंकि ये विभक्तिस्थानवाले जीव उक्त मार्गणाओंमें सर्वदा पाये जाते हैं। इसी प्रकार दूसरे नरकसे लेकर असंज्ञी तक जो ऊपर मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी २८, २७, २६ और २४ विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा जानना चाहिये। यहां शेष विभक्तिस्थान सम्भव नहीं हैं।

§ ३७२. मनुष्योंमें ओघके समान काल कहना चाहिये। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्तकोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि बाईस विभक्तिस्थानवाले पर्याप्त मनुष्योंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदी मनुष्योंका काल ओघके समान

अंतोमु० । मणुस्सअपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो।

§ ३७३. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-वावीस-तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-चदु-तिण्णि-दोण्णि-एगविहत्ति० के० ? जह एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं कायजोगी, ओरालि० । ओरालियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० ? सव्वद्धा । चउवीस-एक्कवीस० के० ? जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । वावीस० केवचिरं० ? जह० एगसमओ,

कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बारह विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें अट्ठाईस सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवालोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**–कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर यदि कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रह जाता है, तो उन पर्याप्त मनुष्योंके २२ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है । जो जीव स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं उनके बारह विभक्तिस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं होता है अतः स्त्रीवेदी मनुष्योंके बारह विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानोंके कालमें एक समय शेष रहतेहुए जो नाना जीव एक साथ लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो जाते हैं उनके २८ और २७ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । तथा जिन २८ विभक्तिस्थानवाले नाना जीवोंके मरणमें एक समय शेष रहने पर २७ विभक्तिस्थान आ जाता है उनके २७ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय इस प्रकार भी प्राप्त हो जाता है । तथा २७ विभक्तिस्थानवाले जिन नाना जीवोंके मरणमें एक समय शेष रहनेपर २६ विभक्तिस्थान आ जाता है उनके २६ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा शेष काल सुगम है । अतः उसका खुलासा नहीं किया ।

§ ३७३. **योगमार्गणाके** अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचो वचनयोगी जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्वकाल है । तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थानवालोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार काययोगी और औदारिक काययोगी जीवोंका काल जानना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्वकाल है । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल

**उक्क० अंतोमु० । वेउव्वियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । चउवीस० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । बावीस० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एक्कवीस० जहण्णुक्क० अंतोमु० । आहार० सव्वपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । आहारमिस्स० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । कम्मइय० अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । छव्वीस० के० ? सव्वद्धा । बावीस-एक्कवीस० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया ।**

कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारककाययोगियोंमें संभव सर्व विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगियोंमें संभव सभी स्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । कार्मणकाययोगियोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस विभक्ति स्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । छब्बीस बिभक्ति स्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

**विशेषार्थ**–२८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थान सर्वदा पाये जाते हैं और पांचों मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी जीव भी सर्वदा होते हैं । अतः पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें उक्त विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा कहा । तथा २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ विभक्तिस्थान सर्वदा नहीं होते और इन विभक्तिस्थान वाले जीवोंके योग बदलते रहते हैं । अतः पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें उक्त विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । इसी प्रकार काययोगमें और औदारिक काययोगमें भी घटित कर लेना चाहिये । औदारिक मिश्रकाययोगमें २८, २७, और २६ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका सर्वकाल होता है यह सुगम है । किन्तु २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात ही होते हैं अतः इनका

§ ३७४. वेदाणुवादेण इत्थिवेद० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीस-एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-बावीस-तेरस-बारस० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं णवुंस० ।

जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही होगा । तथा कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके मरकर औदारिकमिश्र काययोगी होनेपर यदि कृतकृत्यवेदकके कालमें एक समय शेष रह जाता है तो उनके २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है। जिसप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण घटित करके लिख आये हैं उसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके घटित कर लेना चाहिये। २४ विभक्तिस्थानवाले जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल तक और लगातार पल्यके असंख्यातवें भाग कालतक वैक्रियिक मिश्रकाययोगी हो सकते हैं, अतः वैक्रियिक-मिश्रकाययोगमें २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें २२ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल औदारिकमिश्रकाययोगके समान घटित कर लेना चाहिये । वैक्रियिक-मिश्रकाययोगमें २१ विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलानेका कारण यह है कि २१ विभक्तिस्थानवाले वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका प्रमाण संख्यात है। अहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सम्भव सब पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । आहा-रकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सम्भव सब पदों-का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। यद्यपि कार्मणकाययोगका काल सर्वदा है तो भी २८, २७ और २४ विभक्तिस्थानवाले जीव मरकर निरन्तर कार्मणकाययोगको नहीं प्राप्त होते हैं अतः इनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। तथा २६ विभक्तिस्थानवाले जीव निरन्तर कार्मणकाययोगको प्राप्त होते रहते हैं अतः उनका काल सर्वदा कहा है। तथा जो २२ और २१ विभक्ति-स्थानवाले जीव एक विग्रहसे अन्य गतिमें उत्पन्न होते हैं या जिनके २२ विभक्तिस्थानके कालमें एक समय शेष रहनेपर कार्मणकाययोग प्राप्त होता है और इसके बाद व्यवधान पड़ जाता है उनके २२ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा जो २२ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव निरन्तर कार्मणकाययोगी होते रहते हैं उनके २२ और २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल संख्यात समय पाया जाता है, क्योंकि ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं।

§ ३७४. वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है। तेईस, बाईस, तेरह

**णवरि० बावीस० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । बारस० के० ? जह० एग-समओ, उक्क० संखेज्जा समया । पुरिस० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्क-वीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-तेरस-बारस-एकारस० जहण्णुक्क० अंतोमु० । बावीस० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचवि० के० ? जह० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया । अवगद० चउवीस-एक्कवीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एकारस-चदु-तिण्णि-दोण्णि-एयविह० के० ? जहण्णुक्क० अंतोमु० । पंचवि० जह० बे आवलियाओ विसमऊणाओ, उक्क० अंतोमु० ।**

और बारह विभक्तिस्थानवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बाईस विभक्तिस्थानवाले नपुंसकवेदी जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा बारह विभक्तिस्थानवाले नपुंसकवेदियोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होता है । पुरुषवेदमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तेईस, तेरह, बारह, और ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पाच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अपगतवेदमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । ग्यारह, चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थानवाले अपगतवेदी जीवोंका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पाच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके मर कर नारकी होनेपर यदि कृतकृत्यवेदकके कालमें एक समय शेष रहता है तो नपुंसकवेदमें २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा नपुंसकवेदी नाना जीवोंके एक साथ १२ विभक्तिस्थानको प्राप्त होनपर यदि अन्तर पड़ जाता है तो १२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है और यदि अन्तर नहीं पड़ता है तो १२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल संख्यात समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदियोंके पाच विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय घटित कर लेना चाहिये । तथा पुरुषवेदियोंके २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय भी नपुंसकवेदियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। किन्तु ऐसे जीवोंको नारकियोंमें नहीं उत्पन्न कराना चाहिये । जो एक समय तक अपगतवेदी रहकर मर जाते हैं उनके २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक

§ ३७५. कसायाणुवादेण कोधक० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-बावीस० के० ? जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-चदु० ओघभंगो । एवं माण०, णवरि तिण्हं विहत्तिया अत्थि । एवं माय०, णवरि दोण्हं विहत्तिया अत्थि । एवं लोभ०, णवरि एय० अत्थि । माण-माया-लोभकसाईसु जहाकमं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं विह० जह० दोआवलि० दु-समऊणाओ । अकसा० चउवीस-एक्कवीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं जहाक्खाद० । सुहुमसांपराइय० एवं चेव । णवरि एयवि० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

समय प्राप्त होता है । तथा जो अपगतवेदी निरन्तर पांच विभक्तिस्थानवाले होते रहते हैं उनके पांच विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । यहां निरन्तर होनेका तात्पर्य यह है कि नाना जीव पांच विभक्तिस्थानको प्राप्त हुए और उनके पांच विभक्तिस्थानके कालके समाप्त होनेके अन्तिम समयमें अन्य नाना जीव पांच विभक्तिस्थानको प्राप्त हो गये । इसी प्रकार तीसरी, चौथी आदि वार भी जानना । किन्तु ऐसे वार अति स्वल्प ही होते हैं अतः उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता। शेष कथन सुगम है।

§ ३७५. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोध कषायमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवालोंका काल कितना है ? सर्व काल है । तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तेरह, बारह, ग्यारह, पांच और चार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल ओघके समान है । इसीप्रकार मान कषायमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मान कषायमें तीन विभक्तिस्थानवाले जीव भी पाये जाते हैं । इसीप्रकार मायाकषायमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि माया कषायमें दो विभक्तिस्थानवाले भी जीव पाये जाते हैं । इसी प्रकार लोभकषायमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहां एक विभक्तिस्थानवाले भी जीव पाये जाते हैं । मान, माया और लोभकषायी जीवोंमें यथाक्रमसे चार, तीन और दो विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल दो समय कम दो आवली है । अकषायी जीवोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार यथाख्यात संयतोंमें जानना चाहिये । तथा इसीप्रकार सूक्ष्मसांपराय संयतोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सूक्ष्म सांपरायिक संयतोंमें एक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है ।

**विशेषार्थ**–क्रोध कषायमें जो २८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा बतलाया सो इसका कारण यह है कि क्रोध कषायवाले जीव और उक्त विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः क्रोध कषायमें उक्त विभक्तिस्थानोंका सर्वदा

§३७६. आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीस० केव० ? सव्वद्धा। सेसप० ओघभंगो। एवं मणपज्जव०-संजद०-सामाइय-छेदोव०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठी त्ति वत्तव्वं। णवरि मणपज्जव० बारस० जह० एगसमओ णत्थि।

पाया जाना असम्भव नहीं है। २३ और २२ विभक्तिस्थानवाले जो नाना जीव एक समय तक क्रोध कषायमें रहे और दूसरे समयमें उनकी कषाय बदल गई उन क्रोध कषायवाले जीवोंके २३ और २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा क्रोध कषायमें २३ और २२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है। इसी प्रकार क्रोध कषायमें १३, १२, ११, ५ और ४ विभक्तिस्थानोंका काल जो ओघके समान बतलाया है सो इसका यह अभिप्राय है कि जो क्रोधके उदयके साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके क्रोध कषायमें उक्त विभक्तिस्थानोंका काल ओघके समान बन जाता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभ कषायमें विभक्तिस्थानोंका काल जानना चाहिये। किन्तु मान कषायमें तीन विभक्तिस्थान, माया कषायमें दो विभक्तिस्थान और लोभ कषायमें एक विभक्तिस्थान भी होता है जिनका उत्कृष्ट काल ओघके समान बन जाता है। किन्तु जो जीव क्रोध कषायके उदयके साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़े हैं, उनके मान कषायमें चार विभक्तिस्थानका, माया कषायमें तीन विभक्तिस्थानका और लोभ कषायमें दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होगा। जो मानके उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़े हैं उनके माया कषायमें तीन विभक्तिस्थानका और लोभ कषायमें दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। तथा जो जीव मायाके उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़े हैं उनके लोभ कषायमें दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल, दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। जो जीव एक समयतक अकषायी होकर दूसरे समयमें मर जाते हैं उनके २१ और २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है। अकषायी जीवोंके समान यथाख्यात संयत और सूक्ष्म साम्पराय संयत जीवोंके जानना। किन्तु सूक्ष्म साम्पराय संयतोंके एक विभक्तिस्थान भी होता है जिसका काल ओघके समान जानना चाहिये।

§३७६. मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है। शेष पदोंका काल ओघके समान है। इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टियोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानियोंमें बारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय नहीं है।

विशेषार्थ–जो जीव नपुंसक वेदके उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके बारह

**परिहार० तेवीस-बावीस० के० ? जहण्णुक्क० अंतोमु० । सेसपदाणं सव्वद्धा । असंजद० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-बावीस० जहण्णुक्क० अंतोमु० । णवरि बावीस० जह० एगसमओ । एवं किण्ह-णील०, णवरि तेवीस-बावीस० णत्थि । काउ० असंजदभंगो । णवरि तेवीसं णत्थि । तेउ-पम्म० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-बावीस० जह० अंतोमु० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सुक्कलेस्सा० मणुसभंगो । णवरि बावीस० जह० एयसमओ ।**

विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय होता है पर मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उदय नहीं पाया जाता। अतः मनः पर्ययज्ञानमें बारह विभक्तिस्थानके जघन्यकाल एक समयका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें तेईस और बाईस विभक्ति स्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष पदोंका सर्वकाल है । असंयतोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान वाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । तथा तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवालोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि बाईस विभक्तिस्थानवालोंका जघन्य काल एक समय है । इसीप्रकार कृष्ण और नील लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन दोनों लेश्यावाले जीवोंके तेईस और बाईस विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं । कापोत लेश्यावाले जीवोंके विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा काल असंयतोंके कालके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके तेईस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है । पीत और पद्म लेश्यावाले जीवोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । तथा तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल क्रमशः अन्तर्मुहूर्त और एक समय है । तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । शुक्ललेश्यावाले जीवोंके मनुष्योंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय है ।

**विशेषार्थ**—बाईस विभक्तिस्थानवाले संयत या संयतासंयत जीवोंके मर कर असंयत होने पर यदि उनके बाईस विभक्तिस्थानका काल एक समय शेष रहता है तो असंयतोंके बाईस विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । शुभलेश्यावाले जीवोंके ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणा होती है । अब यदि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि हो जानेपर लेश्यामें परिवर्तन हो तो कारण विशेषसे कापोत लेश्या तक प्राप्त हो सकती है अतः कृष्ण और नील लेश्यामें २३ और २२ विभक्तिस्थान तथा कापोत लेश्यामें २३ विभक्तिस्थान नहीं

§ ३७७. अभव्वसिद्धि० छव्वीस० के० ? सव्वद्धा । वेदय० अट्ठावीस-चउवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-बावीस० ओघभंगो । खइय० एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । सेसप० ओघभंगो । उवसम० अट्ठावीस० के० ? जह० अंतोमु० उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । चउवीस० के० ? जह० अंतोमु० उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । सासण० अट्ठावीस० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । सम्मामि० अट्ठावीस-चउवीस० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । अणाहारिय० कम्मइयभंगो ।

एवं कालो समत्तो ।

§ ३७८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठा-

होता यह सिद्ध हुआ । शेष कथन सुगम है ।

§ ३७७. अभव्योंमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले वेदक सम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है । क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदोंका काल ओघके समान है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**–उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये तीन सान्तर मार्गणाएं हैं अतः इनमें अपने अपने विभक्तिस्थानोंका यथायोग्य जघन्यकाल प्राप्त हो जाता है । तथा उत्कृष्टकाल जो पल्यके असंख्यावें भाग प्रमाण कहा सो इसका कारण यह है कि उक्त मार्गणास्थानवाले जीव निरन्तर इतने काल तक होते रहते हैं । अतः इनमें सम्भव विभक्तिस्थानोंका काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३७८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ निर्देश और आदेश

वीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतरं । तेवीस-बावीस-तेरस-बारस-एक्कारस-पंच-चत्तारि-तिण्णि-दोण्णि-एगविहत्तिया-णमंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । णवरि पंचवि० वासं सादिरेयं । एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय-पंचि० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काय-जोगि०-ओरालिय०-लोभ०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि त्ति वत्तव्वं । मणुसिणीसु अंतरमेवं चेव । णवरि उक्क० वासपुधत्तं ।

निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और २१ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना अन्तरकाल है ? इनका अन्तरकाल नहीं है । वे अट्ठाईस आदि उपर्युक्त विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं । तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना अन्तर-काल है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह माह है । इतनी विशेषता है कि पांच विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनो-योगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभ कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये । स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । इतनी विशेषता है कि उनमें उत्कृष्ट अन्तर छह माहके स्थानमें वर्ष पृथक्त्व होता है ।

**विशेषार्थ**–२८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः इन विभक्तिस्थानोंका ओघसे अन्तर नहीं प्राप्त होता है । जब नाना जीव २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ विभक्तिस्थानवाले हो जाते हैं और एक समय बाद दूसरे नाना जीव इन विभक्तिस्थानोंको प्राप्त होते हैं तब उक्त विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब छह माह तक कोई जीव न तो दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते हैं और न क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं तब उक्त २३ आदि विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह माह प्राप्त होता है । किन्तु पांच विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है, क्योंकि पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवोंके पांच विभक्तिस्थान होता है और पुरुषवेदके उदयसे किसी जीवके क्षपक श्रेणीपर चढ़नेका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है तथा नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । अतः कभी ऐसा समय आता है जब साधिक एक वर्ष तक किसीके पांच विभक्तिस्थान नहीं होता है । किन्तु तब स्त्रीवेदके उदयसे ही जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । ऊपर और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है । अतः उन मार्गणाओंमें उक्त सब विभ-

§ ३७९. आदेसेण णेरइएसु बावीस० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वास-पुधत्तं। सेसप० णत्थि अंतरं। एवं पढमाए पुढवीए, तिरिक्ख-पंचिं० तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्जत्त-देव-सोहम्मादि जाव सव्वट्ठ-काउलेस्सिया त्ति वत्तव्वं। णवरि सव्वट्ठे बावीस० उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्व-पदाणं णत्थि अंतरं। एवं पंचिं० तिरि० जोणिणी-पंचिं० तिरि० अपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसि०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय०-पंचि० अपज्ज०-पंचकाय०-तस-अपज्ज०-वेउव्विय०-किण्ह० णील० वत्तव्वं। मणुसअपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो।

क्तिस्थानोंका अन्तरकाल ओघके समान कहा है। किन्तु स्त्रीवेदी मनुष्योंके २२, २२, १३, १२, ११, ४, ३, २, और १ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्राप्त होता है, क्योंकि कोई भी स्त्रीवेदी मनुष्य दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीयकी क्षपणा न करे तो अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं करता है ऐसा नियम है।

§ ३७९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। नारकियोंमें शेष विभक्तिस्थानोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार पहली पृथिवीमें नारकियोंके तथा सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीवोंके, सामान्य देवोंके, सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके और कापोत लेश्यावाले जीवोंके अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक सभी पदोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिक-काययोगी, कृष्णलेश्यावाले और नील लेश्यावाले जीवोंके अन्तरकाल कहना चाहिये। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

**विशेषार्थ**—नरकमें जो २२ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर एक समय कहा है इसका यह तात्पर्य है कि नरकमें जो पहले २२ विभक्तिस्थानवाले जीव थे उनके एक समयके पश्चात् २२ विभक्ति स्थानवाले जीव वहां पुनः उत्पन्न होसकते हैं। तथा उत्कृष्ट अन्तर जो वर्षपृथक्त्व कहा है इसका यह तात्पर्य है कि यदि २२ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका नरकमें उत्पन्न होना बन्द हो जाय तो अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक ही ऐसा

§ ३८०. ओरालियमिस्स० चउवीस-एक्कवीस० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० मासपुधत्तं। बावीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। सेस-पदाणं णत्थि अंतरं। वेउव्वियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० बारसमुहुत्ता। चदुवीस-एक्कवीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० मासपुधत्तं। बावीस० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। आहार०-आहारमिस्स० अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीस० जह० एगसमओ, उक्क० वास-पुधत्तं। कम्मइय० छव्वीस० णत्थि अंतरं। अट्ठावीस-सत्तावीस० जह० एगसमओ,

होगा इसके बाद २२ विभक्तिस्थान वाले जीव नियमसे नरकमें उत्पन्न होंगे। किन्तु नरकमें वहां सम्भव शेष विभक्तिस्थानोंका अन्तर काल नहीं पाया जाता है। पहली पृथिवी से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक ऊपर और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये। किन्तु सर्वार्थसिद्धिमें २२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असं-ख्यातवें भागप्रमाण होता है। इसका यह तात्पर्य है कि यदि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न न हो तो असंख्यात वर्ष तक नहीं होता इसके बाद अवश्य उत्पन्न होता है। दूसरी पृथिवीसे लेकर नीललेश्यातक ऊपर और जितनी मार्ग-णाएं गिनाई हैं उनमें अन्तर काल नहीं है। तथा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल है वही उनमें २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका अन्तर काल जानना चाहिये।

§ ३८०. औदारिक मिश्रकाययोगमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल मास पृथक्त्व है। बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। औदारिकमिश्रकाययोगमें शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। तथा चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान-वाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर-काल मासपृथक्त्व है। बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें अट्ठाईस, चौबीस, और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। कार्मणकाययोगमें छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। अट्ठाईस और सत्ताईस विभ-

उक्क० अंतोमुहुत्तं । चउवीस-एक्कवीस० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० मास-पुधत्तं । बावीस०जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ३८१. वेदाणुवादेण इत्थि० तेवीस-तेरस-बारस० जह० एगसमओ, उक्क० वास-पुधत्तं । सेसप० णत्थि अंतरं । एवं णवुंस० वत्तव्वं । पुरिस० तेवीस-बावीस० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । तेरस-बारस-एक्कारस-पंच० जह० एगसमओ, उक्क० वासं सादिरेयं । सेसप० णत्थि अंतरं । अवगद० चउवीस-एक्कवीस० जह० एग-

क्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल मासपृथक्त्व है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ।

**विशेषार्थ**–औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय स्पष्ट ही है । किंतु उत्कृष्ट अन्तर जो मासपृथक्त्व बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका यदि मरण न हो तो एक मासपृथक्त्व तक नहीं होता है । तथा उक्त योगोंमें जो २२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि २२ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका यदि मरण न हो तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं होता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जो २८, २७ और २६ विभक्ति-स्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाया है वह वैक्रियिक मिश्रकाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकी अपेक्षासे जानना चाहिये । इसी प्रकार आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें २८, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकी अपेक्षासे जानना चाहिये । तथा कार्मणकाययोगमें २८ और २७ विभक्तिस्थानोंका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है इसका यह अभिप्राय है कि २८ और २७ विभक्तिस्थानवाले कोई भी जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक कार्मणकाययोगी नहीं होते ।

§ ३८१. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें तेईस, तेरह और बारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । स्त्रीवेदमें शेष पदोंका अन्तर नहीं पाया जाता है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें कथन करना चाहिये । पुरुषवेदमें तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तेरह, बारह, ग्यारह और पांच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

समओ, उक्क० वासपुधत्तं। सेसाणं प० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। णवरि पंचवि० वासं सादिरेयं।

§ ३८२. कसायाणुवादेण कोधक० तेवीस-बावीस० जह० एगसमओ, उक्क० छमासा। तेरसादि जाव चत्तारि विहत्ति त्ति जह० एयसमओ, उक्क० वासं सादिरेयं। सेसप० णत्थि अंतरं। एवं माण०, णवरि तिविह० अत्थि। एवं माय०, णवरि

पुरुषवेदमें शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। अपगतवेदियोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। शेष पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इतनी विशेषता है कि यहां पाच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है।

विशेषार्थ–ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीव यदि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा न करें तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं करते हैं अतः स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें २३, १३ और १२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है। यदि पुरुषवेदी जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणा न करें तो छह माह तक नहीं करते हैं और यदि चारित्रमोहनीयकी क्षपणा न करें तो साधिक एक वर्ष तक नही करते हैं। अतः पुरुषवेदमें २३ और २२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मास प्राप्त होता है तथा १३, १२, ११, और ५ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है। उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है। अतः अपगतवेदमें २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्राप्त होता है। तथा क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः अपगतवेदमें शेष पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बन जाता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि ५ विभक्तिस्थान पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके ही होता है और पुरुषवेदी जीव अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक तथा नपुंसकवेदी जीव वर्षपृथक्त्व काल तक क्षपकश्रेणीपर नहीं चढ़ते हैं अतः अवगतवेदमें ५ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष कहा।

§ ३८२. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायमें तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह महीना है। तथा तेरहसे लेकर चार तकके विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक एक वर्ष है। शेष पदोंका अन्तर काल नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार मानकषायमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मानकषायमें तीन

दोण्हं वि० अत्थि। अकसा० चउवीस-एक्कवीस० अंतरं के० ? जह० एयसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवं जहाक्खाद०। एवं सुहुमसांप०, णवरि एयवि० जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासा। मदि-सुद-विहंगअण्णाण० एइंदियभंगो। एवमभवसिद्धि० मिच्छादि असण्णि त्ति। आभिणि०-सुद० अट्ठावीस-चउवीस-एक्कवीस० णत्थि अंतरं। सेसपदाणं

विभक्तिस्थान भी पाया जाता है। इसीप्रकार मायाकषायमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मायाकषायमें दो विभक्तिस्थान भी पाया जाता है। कषायरहित जीवोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसीप्रकार यथाख्यात संयत और सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंमें कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंमें एक विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह महीना है।

**विशेषार्थ**–क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव यदि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा न करें तो अधिक से अधिक छ महीना काल तक नहीं करते हैं इसके पश्चात् अवश्य करते हैं और इसीलिये इन कषायोंमें २३ और २२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। तथा उक्त कषायवाले जीव यदि क्षपकश्रेणीपर नहीं चढ़ते हैं तो अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक नहीं चढ़ते हैं और इसीलिये क्रोधकषायमें १३, १२, ११, ५ और ४ विभक्तिस्थानोंका, मानकषायमें १३, १२, ११, ५, ४ और ३ विभक्तिस्थानोंका तथा माया कषायमें १३, १२, ११, ५, ४, ३ और २ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष कहा है। इन कषायोंमें शेष विभक्तिस्थानोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व कहा है और इसीलिये अकषायी जीवोंके २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है। तथा अकषायी जीवोंके समान यथाख्यातसंयत और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके जानना। किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायसंयतके एक विभक्तिस्थान भी होता है तथा क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान अधिकसे अधिक छह महीनाके पश्चात् नियमसे होता है, अतः सूक्ष्मसाम्पराय संयतोंके एक विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है।

मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। तथा इसीप्रकार अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–ऊपर जितने मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें, जहां जितने विभक्तिस्थान सम्भव हैं उनका अन्तरकाल नहीं पाया जाता यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

**ओघभंगो । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-संजदासंजद-सम्मादि०-वेदय० वत्तव्वं । णवरि वेदय० एक्कवीस० णत्थि । ओहि-मणपज्ज० एवं चेव, णवरि वासपुधत्तं । एवं परिहार० ओहिदंसण० वत्तव्वं । असंजद०-तेउ०-पम्म०-सुक्क० अप्पणो पदाणं ओघभंगो । खइय० एक्कवीस० णत्थि अंतरं । सेसप० ओघभंगो । उवसम० अट्ठावीस० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीसमहोरत्तो० । एवं चउवीसविह० । सासण० अट्ठावीस० के० ? जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । सम्मामिच्छाइट्ठी० अट्ठावीस-चउवीस० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । अणाहार०**

मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । तथा शेष पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, संयतासंयत, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यक्त्वमें इक्कीस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है । अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व कहना चाहिये । इसीप्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और अवधिदर्शनमें कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—वेदकसम्यक्त्वमें १३ आदि विभक्तिस्थान तो होते ही नहीं । साथ ही २१ विभक्तिस्थान भी नहीं होता । अतः मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंके २३ और २२ तथा १३ आदि स्थानोंका अन्तरकाल जहां ओघके समान होगा वहां वेदकसम्यक्त्वमें २३ और २२ विभक्तिस्थानोंका अन्तरकाल भी ओघके समान होगा । तथा अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक न तो दर्शनमोहनीयकी और न चारित्रमोहनीयकी क्षपणा करते हैं अतः इनके २३, २२ और १३ आदि विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । तथा अवधिज्ञानी जीवोंके समान परिहारविशुद्धिसंयत और अवधिदर्शनी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु परिहारविशुद्धिसंयतमें १३ आदि विभक्तिस्थान नहीं होते ।

असंयतोंमें तथा पीत, पद्म और शुक्लेश्यामें अपने अपने पदोंका अन्तरकाल ओघके समान कहना चाहिये । क्षायिकसम्यक्त्वमें इक्कीस विभक्तिस्थानका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । शेष पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है । उपशमसम्यक्त्वमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टियोंके चौबीस विभक्तिस्थानका अन्तरकाल जानना चाहिये । सासादनमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर-

कम्मइयभंगो ।

एवमंतरं समत्तं ।

§ ३८३. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वपदाणं को भावो ? ओदइओ भावो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति । णवरि अप्पप्पणो पदाणि जाणियव्वाणि ।

एवं भावो समत्तो ।

*** अप्पाबहुअं ।**

§ ३८४. पुव्वं परिमाणादिना अवगयपदाणं थोवबहुत्तं परूवेमो त्ति जइवसहाइरिएण कयपइज्जावयणमेयं । तम्मि जीव-अप्पाबहुए भण्णमाणे पुव्वं ताव पदविसयकालाणमप्पाबहुअं उच्चदे, तेण विणा जीवप्पाबहुअस्स अवगमोवायाभावादो । तं जहा—

काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनाहारकोंका अन्तरकाल कार्मणकाययोगियोंके अन्तरकालके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३८३. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस आदि सभी पदोंका कौनसा भाव है ? औदयिकभाव है । इसीप्रकार अनाहारकों तक कथन करते जाना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अपने अपने पद जानकर कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ-अट्ठाईस आदि सब पद मोहनीयके उदयके रहते हुए होते हैं इस अपेक्षासे यहां अट्ठाईस आदि सबपदोंका औदयिक भाव कहा है । तात्पर्य यह है कि यद्यपि उपशान्तमोही जीवके २४ और २१ विभक्तिस्थान मोहनीयके उदयके अभावमें भी होते हैं तो भी वे स्थान उदयके अनुगामी हैं, क्योंकि ऐसा जीव उपशान्तमोह गुणस्थानसे नियमसे च्युत होकर पुनः मोहनीयके उदयसे संयुक्त हो जाता है, अतः २८ आदि विभक्तिस्थानोंका औदयिक भाव कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है ।

इसप्रकार भावानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

*** अब अल्पबहुत्वानुयोगद्वारका कथन करते है ।**

§ ३८४. पहले संख्या आदिके द्वारा जाने गये पदोंके अल्पबहुत्वका कथन करते हैं, इस बातका ज्ञान करानेके लिये यतिवृषभ आचार्यने यह प्रतिज्ञावचन किया है । उसमें भी जीव विषयक अल्पबहुत्वका कथन करनेसे पहले अट्ठाईस आदि पदोंके कालोंका अल्पबहुत्व कहते हैं, क्योंकि इसके बिना जीवविषयक अल्पबहुत्वके ज्ञान करानेका कोई दूसरा उपाय नहीं है । पदविषयक कालोंका अल्पबहुत्व इसप्रकार है—

§ ३८५. काल-अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वथोवो पंचविहत्तियकालो। लोभसुहुमसंगहकिट्टीवेदयकालो संखेज्ज-गुणो, पंचविहत्तियसमयूण-दोआवलिकालेण संखेज्जावलियमेत्तसुहुमकिट्टीवेदयकालम्मि भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो। लोभविदियबादरकिट्टीवेदयकालो विसेसाहियो। केत्तियमेत्तो विसेसो? संखेज्जावलियमेत्तो। उवरि वि जत्थ विसेसाहियं भणिहिदि तत्थ तत्थ सो विसेसो संखेज्जावलियमेत्तो त्ति घेत्तव्वो। लोभ० पढमसंगह-किट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। मायाए तदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। तिस्से चेव विदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसे०। पढमसंगहकिट्टीवेदय-कालो विसे०। माणतदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसे०। विदियसंगहकिट्टीवेदय-कालो विसे०। पढमसंगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहिओ। कोहतदियसंगहकिट्टीवेदय-कालो विसे०। विदियसंगहकिट्टीवेदयकालो विसे०। पढमसंगहकिट्टीवेदयकालो

**विशेषार्थ**–यहां अल्पबहुत्वके दो भेद कर दिये हैं एक काल अल्पबहुत्व और दूसरा जीव अल्पबहुत्व। काल अल्पबहुत्वके द्वारा विभक्तिस्थान विषयक कालोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है और जीव अल्पबहुत्वके द्वारा एक आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

§ ३८५. काल-अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा पांच विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है इससे लोभकी सूक्ष्म संग्रहकृष्टिका वेदककाल संख्यातगुणा है। पांच विभक्तिस्थानका जो एक समय कम दो आवली काल कहा है उसका लोभके सूक्ष्म संग्रहकृष्टिके संख्यात आवलीप्रमाण वेदककालमें भाग देनेपर संख्यात अंक प्राप्त होते हैं। इससे जाना जाता है कि पांच विभक्तिस्थानके कालसे लोभकी सूक्ष्म संग्रहकृष्टिका वेदक काल संख्यातगुणा है। इससे लोभकी दूसरी बादरकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। यहां विशेषका प्रमाण कितना है? संख्यात आवली है। आगे भी जहां जहां पूर्व स्थानके कालसे उससे आगेके स्थानका काल विशेष अधिक कहा जायगा वहां वह विशेष संख्यात आवली प्रमाण लेना चाहिये। लोभकी दूसरी बादरकृष्टिके कालसे लोभकी पहली संग्रहकृष्टिका वेदक काल विशेष अधिक है। इससे मायाकी तीसरी संग्रहकृष्टिका वेदक काल विशेष अधिक है। इससे मायाकी दूसरी संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। इससे मायाकी पहली संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। इससे मानकी तीसरी संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। इससे मानकी दूसरी संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। इससे मानकी पहली संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। इससे क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है। इससे क्रोधकी दूसरी संग्रहकृष्टिका वेदककाल

विसे० । चदुण्हं संजलणाणं किट्टीकरणद्धा संखेज्जगुणा । अस्सकण्णकरणद्धा विसे० छण्णोकसायखवणद्धा विसे० । इत्थि० खवणद्धा विसे० । णवुंस० खवणद्धा विसे० । तेरसविहत्तियकालो संखेज्जगुणो, बावीसविहत्तियकालो विसे०, तेवीसविहत्तियकालो विसेसाहिओ। सत्तावीसविहत्तियकालो असंखेज्जगुणो। को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखे० भागो । एक्कवीसविहत्तियकालो असंखेज्जगुणो । चउवीसविहत्तियकालो संखेज्जगुणो । अट्ठावीसविहत्तियकालो विसे० । केत्तियमेत्तो विसेसो ? तिण्णि पलिदो० असंखेज्जदिभागमेत्तो । कुदो ? चउवीसविहत्तियउक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तब्भहियवेछावट्ठिसागरोवममेत्तो । तं पेक्खिदूण अट्ठावीसविहत्तियकालस्स तीहि पलिदो० असंखेज्जदिभागेहि अब्भहियवेछावट्ठिसागरोवममेत्तस्स विसेसाहियत्तुवलंभादो । छव्वीसविहत्तियकालो अणंतगुणो । चउण्हं तिण्हं दोण्हमेक्किस्से विहत्तियकालो जहण्णओ वि अत्थि उक्कस्सओ वि । तत्थ परोदएण चडिदस्स जहण्णओ । सोदएण चडिदस्स उक्कस्सो होदि । पंचविहत्तियप्पहुडि जाव तेवीसविहत्तिओ त्ति ताव एदेसिं जहण्णुक्कस्सकालो सरिसो । कुदो

विशेष अधिक है । इससे क्रोधकी पहली संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है । इससे चारों संज्वलनोंके कृष्टिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे अश्वकर्णकरणका काल विशेष अधिक है । इससे छह नोकषायोंके क्षपणका काल विशेष अधिक है । इससे स्त्रीवेदके क्षपणका काल विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदके क्षपणका काल विशेष अधिक है । इससे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है । इससे बाईस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है । इससे तेईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है । गुणकारका प्रमाण क्या है ? यहां गुणकारका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है । इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है । इससे अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । यहां विशेषका प्रमाण कितना है ? पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागमात्र है; क्योंकि चौबीस विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक एकसौ बतीस सागर है । और अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है । अतः इन दोनों कालोंको देखते हुए चौबीस विभक्तिस्थानके कालसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है यह सुनिश्चित होता है । अट्ठाईस विभक्तिस्थानके कालसे छब्बीस विभक्तिस्थानका काल अनन्तगुणा है । चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थानका काल जघन्य भी पाया जाता है और उत्कृष्ट भी । उनमेंसे अन्य कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जघन्य काल पाया जाता है और स्वोदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके उत्कृष्ट काल पाया जाता है । पांच विभक्तिस्थानसे लेकर तेईस विभक्तिस्थान तक ५, ११, १२, १३, २१, २२, २३

णव्वदे ? आइरियपरंपरागयसयलसुत्ताविरुद्धवक्खाणादो। णवरि तेरस-बारसविहत्तियकालो जहण्णो वि अत्थि सो एत्थ ण विवक्खिओ।

एवमोघप्पाबहुअं समत्तं।

§ ३८६. आदेसेण णेरइएसु सव्वथोवो बावीसवि० कालो। सत्तावीसविह० कालो असंखेज्जगुणो, एक्कवीसविह० कालो असंखेज्जगुणो, चउवीसविह० संखेज्जगुणो, छव्वीस-अट्ठावीसविहत्तियकालो विसेसो। पढमाए पुढवीए सव्वत्थोवो बावीसवि० कालो, सत्तावीसविह० असंखेज्जगुणो, एक्कवीसविह० असंखेज्जगुणो, चउवीसविह०

इन सात विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल समान है।

शंका–यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान–आचार्यपरंपरासे सकल सूत्रोंका जो अविरुद्ध व्याख्यान चला आ रहा है, उससे जाना जाता है कि उक्त विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल समान है। यहां इतनी विशेषता है कि तेरह और बारह विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल भी पाया जाता है पर उसकी यहां विवक्षा नहीं की गई है।

विशेषार्थ–क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके चार विभक्तिस्थानका, मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके तीन विभक्तिस्थानका, मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके दो विभक्तिस्थानका और लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके एक विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। तथा इनसे अतिरिक्त कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके चार आदि विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल प्राप्त होता है। किन्तु ऊपर लोभकी सूक्ष्म संग्रह कृष्टिसे लेकर अश्वकर्णकरणके काल तक जो अल्पबहुत्व बतलाया है वह क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवकी प्रधानतासे जानना चाहिये। तथा जो जीव नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके १३ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है और बारह विभक्तिस्थानका जघन्य। तथा जो जीव पुरुषवेद या स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके १३ विभक्तिस्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है और १२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट। किन्तु इस अल्पबहुत्वमें १३ और १२ विभक्तिस्थानके जघन्य कालके कथनकी विवक्षा नहीं की गई है।

इस प्रकार ओघ अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

§ ३८६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है। इससे छब्बीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है।

पहली पृथिवीमें बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे सत्ताईस

विसेसाहिओ। केत्तियमेत्तेण ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण। छव्वीस-अट्ठावीस-विहत्तियाणं काला बे वि सरिसा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तेण। बिदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वत्थोवो सत्तावीसविह० कालो। चउवीसवि० कालो असंखेज्जगुणो। छव्वीस-अट्ठावीसविह० कालो दो वि सरिसा विसेसाहिया। एवं भवण०-वाण०-जोदिसि० वत्तव्वं।

§ ३८७. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु सव्वत्थोवो बावीसविह० कालो। सत्तावीसविह० कालो असंखेज्जगुणो। चउवीसविह० कालो असंखेज्जगुणो। एक्कवीसविह० कालो विसे०। केत्तियमेत्तेण ? मासपुधत्तेण सादिरेएण। अट्ठावीसविह० कालो वि०। के० मेत्तेण ? पलिदो० असंखे० भागेण। छव्वीसविह० कालो अणंतगुणो। एवं दोण्हं पंचिंदियतिरिक्खाणं। णवरि एक्कवीस-विहत्तियकालस्सुवरि अट्ठावीस-छव्वीसविहत्तियकालो विसेसा०। केत्तियमेत्तेण ? पुव्वकोडिपुधत्तेण। एवं जोणिणीणं। णवरि बावीस-

विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है। कितना विशेष अधिक है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण विशेष अधिक है। छब्बीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानोंके काल परस्पर समान होते हुए भी चौबीस विभक्तिस्थानके कालसे विशेष अधिक हैं। कितने विशेष अधिक हैं ? अन्तर्मुहूर्तप्रमाण विशेष अधिक हैं।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। छब्बीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानके काल परस्पर समान होते हुए भी चौबीस विभक्तिस्थानके काल से विशेष अधिक हैं। इसीप्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये।

§ ३८७. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है। कितना विशेष अधिक है ? साधिक मासपृथक्त्व विशेष अधिक है। इक्कीस विभक्तिस्थानके कालसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है। कितना विशेष अधिक है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण विशेष अधिक है। अट्ठाईस विभक्तिस्थानके कालसे छब्बीस विभक्तिस्थानका काल अनन्तगुणा है। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन दोनोंके इक्कीस विभक्तिस्थानके कालसे अट्ठाईस और छब्बीस विभक्तिस्थानोंका काल विशेष अधिक कहना चाहिये। कितना विशेष अधिक कहना चाहिये ? पूर्वकोटि पृथक्त्व विशेष अधिक कहना चाहिये। इसीप्रकार योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कथन कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके

एक्कवीसविहत्तिया णत्थि। पंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्सअपज्जत्तएसु णत्थि कालअप्पाबहुअं। कुदो? अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीसवि० उक्कस्सकालाणं तत्थ सरिसत्तुवलंभादो। अथवा पंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्सअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवो छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीसवि० जहण्णकालो। उक्कस्सओ असंखेज्जगुणो।

§ ३८८. मणुस्सेसु पंचविहत्तिय-कालप्पहुडि जाव तेवीसविहत्तियकालो त्ति ताव मूलोघभंगो। तदो सत्तावीसविह० कालो असंखेज्जगुणो। चउवीसविह० कालो असंखेज्जगुणो। एक्कवीसविहत्तियकालो विसेसाहिओ पुव्वकोडितिभागेण सादिरेएण। छव्वीस-अट्ठावीसविह० कालो विसेसाहिओ पुव्वकोडिपुधत्तेण। एवं मणुसपज्जत्ताणं। मणुसिणीसु लोभसुहुमकिट्टीवेदय-कालप्पहुडि जाव तेवीसविहत्तियकालो त्ति ताव मूलोघभंगो। तदो तेवीस-विहत्तियकालस्सुवरि एक्कवीसविहत्तियकालो संखेज्जगुणो, सत्तावीसविह० कालो असंखेज्जगुणो, चउवीसविहत्तियकालो असंखेज्जगुणो, छव्वीस-अट्ठावीसविह० कालो विसे०।

बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त और मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त जीवोमें कालविषयक अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, क्योंकि इन जीवोंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल समान पाया जाता है। अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त और मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंमें छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल सबसे थोड़ा है और उत्कृष्टकाल असख्यातगुणा है।

§ ३८८. मनुष्योंमें पाँच विभक्तिस्थानके कालसे लेकर तेईस विभक्तिस्थानके काल तकके स्थानोंका कालविषयक अल्पबहुत्व मूलोघके समान है। तदनन्तर तेईस विभक्तिस्थानके कालसे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है। यहां विशेष अधिकका प्रमाण साधिक पूर्वकोटिका त्रिभाग है। इक्कीस विभक्तिस्थानके कालसे छब्बीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है। यहां विशेष अधिकका प्रमाण पूर्वकोटिपृथक्त्व है। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्तकोंके कथन करना चाहिये। स्त्रीवेदी मनुष्योंमें लोभकी सूक्ष्मकृष्टिके वेदककालसे लेकर तेईस विभक्तिस्थान तक काल विषयक अल्पबहुत्व मूलोघके समान जानना चाहिये। तदनन्तर तेईस विभक्तिस्थानके कालसे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है। इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुना है। इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे छब्बीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है।

§ ३८९. देवेसु सव्वत्थोवो बावीसविह० कालो। सत्तावीसविह० असंखेज्जगुणो। छव्वीसविह० असंखेज्जगुणो। एक्कवीस-चदुवीस-अट्ठावीसवि० कालो विसेसाहिओ। सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्ज त्ति ताव सव्वत्थोवो बावीसवि० कालो, सत्तावीसवि० कालो असंखेज्जगुणो, एक्कवीस-चउवीस-छव्वीस-अट्ठावीसवि० काला चत्तारि वि सरिसा असंखेज्जगुणा। अणुद्दिसादि-अणुत्तरविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवो बावीसवि० कालो। एक्कवीस-चउवीस-अट्ठावीविह० काला तिण्णि वि सरिसा असंखेज्जगुणा।

§ ३९०. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सव्वत्थोवो सत्तावीसवि० कालो, अट्ठावीसविह० कालो असंखेज्जगुणो, छव्वीसविह० कालो अणंतगुणो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

एवं काल-अप्पाबहुअं समत्तं।

§ ३९१. संपहि कालमस्सिदूण जीव-अप्पाबहुअं परूवणट्ठं जइवसहाइरियो उत्तरसुत्तं

§ ३८९. देवोंमें बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे छब्बीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे इक्कीस, चौबीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है। सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इक्कीस, चौबीस, छब्बीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानोंके चारों काल परस्परमें समान होते हुए भी सत्ताईस विभक्तिस्थानके कालसे असंख्यातगुणे हैं। अनुदिशसे लेकर अनुत्तर विमान तक रहनेवाले देवोंमें बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इक्कीस, चौबीस और अट्ठाईस विभक्तिस्थानोंके काल परस्परमें समान होते हुए भी बाईस विभक्तिस्थानके कालसे असंख्यातगुणे हैं।

§ ३९०. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है। इससे अट्ठाईस विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है। इससे छब्बीस विभक्तिस्थानका काल अनन्तगुणा है। इसीप्रकार जानकर अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिये।

**विशेषार्थ**–यहां शेषमार्गणाओंमें विभक्तिस्थानोंके काल विषयक अल्पबहुत्वका कथन नहीं किया है किन्तु जानकर कथन कर लेनेकी सूचना की है। सो पहले सब मार्गणाओंमें एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन कर आये हैं। अतः उसके अनुसार यहां अल्पबहुत्वका विचार करलेना चाहिये।

इस प्रकार कालविषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

§ ३९१. अब कालका आश्रय लेकर जीवविषयक अल्पबहुत्वके कथन करनेके लिये यतिवृषभ आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं–

भणदि–

* सव्वथोवा पंचसंतकम्मविहत्तिया ।

§ ३६२. जीवा इदि एत्थ वत्तव्वं ? ण, अत्थावत्तीदो चेव तदवगमादो । कुदो एदेसिं थोवत्तं ? समयूणदोआवलियाहि संचिदत्तादो ।

* एक्कसंतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा ।

§ ३६३. कुदो ? संखेज्जावलियकालब्भंतरे संचिदत्तादो । संखेज्जावलियत्तं कुदो णव्वदे ? उच्चदे, तं जहा–लोभसुहुमकिट्टीवेदयकालं अणियट्टिम्मि विदियबादरलोभ संगहकिट्टिं वेदय-काल (-किट्टिवेदयकालं ) समयूणदोआवलिऊणलोभपढमसंगहकिट्टी-वेदयकालं च घेत्तूण एगविहत्तियकालो होदि । पुणो एदे तिण्णि वि काला पादेक्कं संखे-ज्जावलियमेत्ता अण्णोण्णं पेक्खिय संखेज्जावलियाहि समया (समब्भ) हिया । तेण एक्किस्से

* पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं ।

§३६२.शंका–इस उपर्युक्त सूत्रमें 'जीवा' इस पदको और निक्षिप्त करना चाहिये था ?

समाधान–नहीं, क्योंकि उक्त सूत्रमें 'जीवा' इस पदके नहीं रखने पर भी अर्थापत्तिसे ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

शंका–ये पांच विभक्तिस्थानवाले जीव अन्य सभी विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे थोड़े क्यों हैं ?

समाधान–क्योंकि पांच विभक्तिस्थानका काल एक समय कम दो आवली है, अतः इतने कालमें सबसे थोड़े ही जीव संचित होंगे ।

* पांच विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे एक विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§३६३. शंका–ये एक विभक्तिस्थानवाले जीव पांच विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे संख्यातगुणे क्यों हैं ?

समाधान–क्यों कि एक विभक्तिस्थानका काल संख्यात आवली है जो कि पांच विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा है । अतः पांच विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणे कालके भीतर संचित एक विभक्तिस्थानवाले जीव पांच विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे संख्यातगुणे ही होंगे ।

शंका–एक विभक्तिस्थानका काल संख्यात आवली है यह किससे जाना जाता है ?

समाधान–इस शंकाका समाधान इसप्रकार है–लोभकी सूक्ष्मकृष्टिका वेदककाल तथा अनिवृत्तिकरणमें लोभकी दूसरी बादर संग्रहकृष्टिका वेदककाल और लोभकी पहली संग्रहकृष्टिका एक समयकम दो आवलीसे न्यून वेदककाल इन तीनों कालोंको मिलाकर एक विभक्ति-स्थानका काल होता है, इससे जाना जाता है कि एक विभक्तिस्थानका काल संख्यात आवलीप्रमाण है । तथा ये तीनों ही काल अलग अलग संख्यात आवलीप्रमाण हैं और एक दूसरेसे संख्यात आवली अधिक हैं । इससे जाना जाता है कि एक विभक्तिस्थानका

विहत्तियकालो संखेज्जगुणो। लोभतदियबादरकिट्टीवेदयकालो एक्किस्से विहत्तिए काल-ब्भंतरे किण्ण गहिदो ? ण, तिस्से सगसरूवेण उदयाभावेण वेदयकालाभावादो। अट्ठसमयाहियछम्मासब्भंतरे जेण अट्ठ चेव सिद्धसमया होंति तेण समयूण-दोआव-लियमेत्तकालभंतरे संखेज्जावलियासु च अट्ठसमयसंचओ सव्वो लब्भइ त्ति जीव-अप्पा-बहुअसाहणट्ठं परूविदकाल-अप्पाबहुअं णिरत्थयमिदि ? होदि णिरत्थयं जदि अट्ठसम-याहियछम्मासब्भंतरे चेव अट्ठसिद्धसमया होंति त्ति णियमो, किंतु अंतोमुहुत्त-दिवस-पक्ख-मासब्भंतरे वि अट्ठसिद्धसमया वि होंति, सत्त-छ-पंच-चत्तारि-ति-दु-एक्कसिद्ध-समया वि होंति अणियमेण तेण कालपडिभागेणेव संचओ त्ति काल-अप्पाबहुअं ण

काल पांच विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा है।

**शंका**–लोभकी तीसरी बादरकृष्टिका वेदककाल एक विभक्तिस्थानके कालमें सम्मिलित क्यों नहीं किया गया है ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि लोभकी तीसरी बादरकृष्टिका स्वस्वरूपसे उदय नहीं होता है, अतः उसका वेदककाल नहीं पाया जाता। तात्पर्य यह है कि लोभकी तीसरी बादर कृष्टि सूक्ष्म कृष्टिरूपसे परिणत हो जाती है जिसका उदय सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें होता है। अतः लोभकी तीसरी बादरकृष्टिका अलगसे वेदककाल नहीं बतलाया है।

**शंका**-चूंकि आठ समय और छह महीना कालमें केवल आठ ही सिद्ध समय होते हैं अतः आठ सिद्ध समयोंमें होनेवाला जीवोंका समस्त संचय एक समय कम दो आवलि कालके भीतर तथा संख्यात आवली कालके भीतर प्राप्त हो जाता है, इसलिये जीवविषयक अल्पबहुत्वकी सिद्धिके लिये जो कालविषयक अल्पबहुत्व कहा है वह निरर्थक है। इस शंका का यह तात्पर्य है कि छह माह और आठ समयोंमें जो आठ सिद्ध समय होते हैं वे लगातार होनेके कारण पांच विभक्तिस्थानके एक समय कम दो आवलिप्रमाण कालमें तथा अन्य एक आदि विभक्तिस्थानोंके संख्यात आवलिप्रमाण कालमें भी एक साथ प्राप्त हो जाते हैं। अतः विभक्तिस्थानके कालविषयक अल्पबहुत्वकी अपेक्षा जो जीवोंका अल्प-बहुत्व कहा है वह नहीं बनता है।

**समाधान**–यदि आठ समय अधिक छह महीना कालके भीतर ही लगातार आठ सिद्धसमय होते हैं ऐसा नियम होता तो जीवविषयक अल्पबहुत्वकी सिद्धिके लिये कहा गया काल विषयक अल्पबहुत्व निरर्थक होता, किन्तु एक अन्तर्मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष, और एक महीनाके भीतर भी अनियमसे आठ सिद्ध समय भी प्राप्त होते हैं और सात छह, पांच, चार, तीन, दो और एक सिद्ध समय भी प्राप्त होते हैं। अतः कालके प्रति-भागसे ही जीवोंका संचय होता है ऐसा मानना चाहिये और इसलिये कालविषयक अल्प-बहुत्व निरर्थक नहीं है।

**णिरत्थयं। ण च जीवट्ठाणसुत्तेण अट्ठसमयाहियछम्मासणियमबलेण एगेगगुणट्ठाणम्मि जीवसंचयं सरिसभावेण परूवणेण सह विरोहो, पुधभूद-आइरियाणं मुहविणिग्गयमेत्तेण दोण्हं थप्पभावमुवगयाणं विरोहाणुववत्तीदो।**

यदि कहा जाय कि आठ समय अधिक छह महीनाके नियमके बलसे एक एक गुणस्थानमें जीवोके संचयका समानरूपसे कथन करनेवाले जीवस्थानके सूत्रके साथ इस कथन का विरोध हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्यों कि ये दोनों उपदेश अलग अलग आचार्योंके मुखसे निकले हैं, अतः दोनों स्वतन्त्ररूपसे स्थित होनेके कारण इनमें विरोध नहीं हो सकता।

**विशेषार्थ**–दसवें गुणस्थानमें १ विभक्तिस्थान होता है और नौवें गुणस्थानमें २, ३, ४, ५, ११, १२ और १३ विभक्तिस्थान होते हैं। यद्यपि २१ विभक्तिस्थान भी नौवें गुणस्थानमें होता है किन्तु वह केवल नौवेंमें न होकर अन्यत्र भी होता है और इस विभक्तिस्थानवाले जीवोकी संख्याका निर्देश भी इसी अपेक्षासे किया गया है। अतः इसे छोड़ भी दिया जाय तो भी दसवें गुणस्थानसे नौवें गुणस्थानमें कई गुनी जीवराशि प्राप्त होती है। यह बात उक्त विभक्तिस्थानोके अल्पबहुत्वपर ध्यान देनेसे समझमें आ जाती है। किन्तु जीवट्ठाणके द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वारमें बतलाया है कि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणमोह और अयोगिकेवली गुणस्थानमें जीवोंकी उत्कृष्ट संख्या समान होती है। अतः यतिवृषभ आचार्यके चूर्णिसूत्रोंके उक्त कथनका जीवट्ठाणके कथनके साथ विरोध आता है। किन्तु वीरसेन स्वामीने इसको मान्यताभेद कह कर समाधान किया है। वे लिखते हैं कि कदाचित् छह माह और आठ समयके अन्तमें लगातार आठ सिद्ध समय प्राप्त होसकते हैं और उनमें ६०८ जीव क्षपक श्रेणीपर चढ़ सकते हैं। अतः प्रत्येक गुणस्थानमें ६०८ जीव बन जाते हैं यह जीवट्ठाणके द्रव्यप्रमाणानुयोग द्वारके उक्त सूत्रका अभिप्राय है। किन्तु चूर्णिसूत्रोंका यह अभिप्राय है कि यद्यपि आठ सिद्ध समयोंके प्राप्त होनेका कोई नियम नहीं है कदाचित् ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ सिद्ध समय भी प्राप्त होते हैं, फिर भी वे लगातार न प्राप्त होकर एक अन्तर्मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष आदिके भीतर भी प्राप्त होते हैं। अतः प्रत्येक गुणस्थानमें ६०८ जीव न मान कर कालके प्रतिभागके अनुसार ही जीवोंकी संख्या मानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि कदाचित् इस क्रमसे जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ें जिससे उक्त विभक्तिस्थानोंके कालके अनुसार बटवारा होगया। इसप्रकार यह बात चूर्णिसूत्रोंके अभिप्रायानुसार सम्भव है, किन्तु जीवट्ठाणके अभिप्रायानुसार सम्भव नहीं। तथा जो बात जीवट्ठाणके अभिप्रायानुसार सम्भव है वह चूर्णिसूत्रोंके अभिप्रायानुसार सम्भव नहीं है।

*** दोण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसा० ।**

§ ३९४. कुदो ? लोभतिण्णिकिट्टीवेदयकालसंचिदजीवेहिंतो मायाए तिण्णि-संगहकिट्टीवेदयकालेण लोभतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालादो विसेसाहिएण संचिदजीवाणं पि विसेसाहियत्तदंसणादो । ण च विसेसाहियदंसणमसिद्धं पुव्विल्लकालादो अहिय-संखेज्जावलियासु सिद्धासिद्धसमएहि करंबियासु संचिदजीवोपलंभादो ।

*** तिण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया ।**

§ ३९५. कुदो ? मायातिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालसंचिदजीवेहिंतो माणतिण्णि-संगहाकिट्टीवेदयकालेण मायातिण्णिसंगहाकिट्टीवेदयकालादो विसेसाहिएण संचिद-जीवाणं विसेसाहियत्तुवलंभादो। ण च संचयकाले विसेसाहिए संते जीवसंचओ सरिसो, विरोहादो ।

*** एक विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।**

§ ३९४. **शंका**–एक विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं ?

**समाधान**–जब कि लोभकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालसे मायाकी तीन संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है, तब लोभकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालमें जितने जीवोंका संचय होता है, उससे मायाकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालमें जीवोंका संचय भी विशेष अधिक ही देखा जाता है । और यह विशेष अधिक जीवोंका पाया जाना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि एक विभक्तिस्थानके कालसे दो विभक्तिस्थानका काल संख्यात आवलि प्रमाण होते हुए भी विशेष अधिक है, और उन संख्यात आवलियोंमें, जिनमें कि सिद्ध समय और असिद्ध समय, दोनों पाये जाते हैं, जीव संचित होते हैं । अतः दो विभक्ति-स्थानका काल बहुत होनेसे उसमें संचित होने वाले जीव भी बहुत हैं ।

*** दो विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं।**

§ ३९५. **शंका**–दो विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं ?

**समाधान**–मायाकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालसे मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंका वेदककाल विशेष अधिक है, अतः मायाकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालमें जितने जीवोंका संचय होता है उससे मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालमें साधिक जीवोंका संचय पाया जाता है । यदि कहा जाय कि दो विभक्तिस्थानवाले जीवोंके संचय कालसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंका संचयकाल विशेष अधिक भले ही पाया जाय पर दोनों विभक्ति-स्थानोंमें जीवोंका संचय समान ही होता है सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

* एक्कारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया ।

§ ३६६. कुदो ? माणतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालसंचिदजीवेहिंतो छण्णोकसायक्खवणकालेण माणतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालादो विसेसाहिएण संचिदएक्कारसविहत्तियाण-मद्धाबहुत्तबलेण बहुत्तसिद्धिदो । माणतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालादो कोधतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालो संखेज्जावलियाहि अब्भाईओ । कोधतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालादो किट्टीकरणद्धा संखेज्जावलियाहि अब्भहिया । तत्तो अस्सकण्णकरणद्धा संखेज्जावलियाहि अब्भहिया । तत्तो छण्णोकसायक्खवणद्धा संखेज्जावलियाहि अब्भहिया । एदाओ चत्तारि संखेज्जावलियाओ मिलिदूण तिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालस्स संखेज्जदिभागमेत्ताओ चेव होंति । तेण तिण्हं विहत्तिएहिंतो एक्कारसण्हं विहत्तिया विसेसाहिया त्ति भणिदं । तिण्हं विहत्तियाणमुवरि चउण्णं विहत्तिया किण्ण पादिदा ? ण, तिण्हं विहत्तियकालादो संखेज्जगुणम्मि चउण्हं विहत्तियकालम्मि संचिदजीवाणं संखेज्ज-

* तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ३९६. शंका–तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं ?

समाधान–क्योंकि मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदक कालसे छह नोकषायोंका क्षपणकाल विशेष अधिक है । अतः मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालमें जितने जीवोंका संचय होता है उससे छह नोकषायोंके क्षपणकालमें संचित हुए ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव संचयकालके अधिक होनेसे बहुत सिद्ध होते हैं । मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालसे क्रोधकी तीन संग्रहकृष्टियोंका वेदककाल संख्यात आवली अधिक है । क्रोधकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालसे कृष्टिकरणका काल संख्यात आवली अधिक है । कृष्टिकरणके कालसे अश्वकर्णकरणका काल संख्यात आवली अधिक है । अश्वकर्णकरणके कालसे छह नोकषायोंका क्षपणकाल संख्यात आवली अधिक है । ये चारों ( विशेषाधिकरूप ) संख्यात आवलियां मिलकर तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालके संख्यातवें भागमात्र ही होती हैं, इसलिये तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं यह कहा है।

शंका–तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंके अनन्तर चार विभक्तिस्थानवाले जीव क्यों नहीं कहे ?

समाधान–नहीं, क्योंकि तीन विभक्तिस्थानके कालसे चार विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है, अतः संख्यातगुणे कालमें संचित हुए जीव तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे संख्यातगुणे ही होंगे। इसलिये यहां तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंके कथनके अनन्तर चार

गुणत्तं दट्ठूण तधा अपरूवणादो। ण च तक्कालस्स संखेज्जगुणत्तमसिद्धं, कोध-अस्स-कण्णकरणकालं कोध-किट्टीकरणकालं कोधतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालं च घेत्तूण चउण्हं विहत्तियाणमद्धाए अवट्ठाणादो। णेदमेत्थासंकणिज्जं सोदएण चडिदस्स तिण्हं दोण्ह मेक्किस्से विहत्तियकालो वि एक्कारसविहत्तियकालादो संखेज्जगुणो लब्भइ तदो तेहिम्मि एक्कारसविहत्तिएहिंतो संखेज्जगुणेहि होदव्वमिदि। किं कारणं? कोहोदएण खवगसेढिं चडंताणमेव सव्वत्थ पहाणभावोवलंभादो। तदो ण किंचि विरुज्झदे।

* बारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया।

§३८७. कुदो? छण्णोकसायखवणकालादो इत्थिवेदखवणकालस्स संखेज्जावलि-

विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कथन नहीं किया है।

तीन विभक्तिस्थानके कालसे चार विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है यह बात असिद्ध नहीं है, क्योंकि क्रोधके अश्वकर्णकरणका काल, क्रोधकी कृष्टिकरणका काल और क्रोधकी तीन संग्रहकृष्टियोंका वेदककाल इन तीनोंको मिलाकर चार विभक्तिस्थानका काल होता है।

यहां पर ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिये कि स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके तीन, दो और एक विभक्तिस्थानका काल भी ग्यारह विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा पाया जाता है इसलिये तीन, दो और एक विभक्तिस्थानवाले जीव भी ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे संख्यातगुणे होने चाहिये। इसका कारण यह है कि क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवोंकी ही सर्वत्र प्रधानता देखी जाती है, इसलिये पूर्वोक्त कथनमें कोई विरोध नहीं आता है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि मानके उदयसे चढ़े हुए जीवोंके दो विभक्तिस्थानका काल, मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवोंके तीन विभक्तिस्थानका काल और लोभके उदयसे चढ़े हुए जीवोंके एक विभक्तिस्थानका काल ग्यारह विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा होगा। पर मान, माया और लोभके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव बहुत थोड़े होते हैं। अतः एक, दो और तीन विभक्तिस्थानवाले जीव ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंके संख्यातगुणे न होकर कम ही होते हैं।

* ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं।

§३८७. **शंका**—ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं?

**समाधान**—क्योंकि छह नोकषायोंके क्षपणकालसे स्त्रीवेदका क्षपणाकाल संख्यात आवली अधिक पाया जाता है। अतः ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं।

याहि समहियत्तुवलंभादो। केत्तियमेत्तेण विसेसाहिया ? अहियसंखेज्जावलियासु संचिद-जीवमेत्तेण ।

* चदुण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा ।

§ ३९८. को गुणगारो ? किंचूण तिण्णि रूवाणि । कुदो ? इत्थिवेदक्खवणकालादो चत्तारिविहत्तियकालस्स किंचूणतिगुणत्तुवलंभादो । तं जहा–दुसमयूणदोआवलियूणअस्सकण्णकरणकालो कोधकिट्टीकरणकालो कोधतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालो त्ति, एदे तिण्णि चदुण्हं विहत्तियकाला बारसविहत्तियकालादो पादेक्कं विसेसहीणा। संपहि एदेसु तिसु कालेसु तत्थ एगकालस्स संखेज्जदिभागं घेत्तूण सेसदोकालेसु जहा परिवाडीए दिण्णेसु ते दो वि काला इत्थिवेदक्खवणकालेण सरिसा होदूण तत्तो दुगुणत्तं पावेंति । पुणो संखेज्जदिभागूणो गहिदसेसकालो इत्थिवेदक्खवणकालादो जेण किंचूणो तेण बारसविहत्तियकालादो चदुण्हं विहत्तियकालो किंचूणतिगुणो त्ति सिद्धं । एदम्मि काले संचिदजीवाणं पि एसो चेव गुणगारो; कालाणुसारिजीवसंचयब्भुवगमस्स

शंका–उन विशेष अधिक जीवोंका प्रमाण क्या है ?

समाधान–ग्यारहवें विभक्तिस्थानके कालसे बारहवें विभक्तिस्थानका काल जितनी संख्यात आवलियां अधिक है, उसमें जितने जीवोंका संचय होता है उतना ही विशेषाधिक जीवोंका प्रमाण है ।

* बारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

§ ३९८. शंका–यहां गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान–कुछ कम तीन गुणकारका प्रमाण है।

शंका–गुणकारका प्रमाण इतना क्यों है ?

समाधान–क्योंकि स्त्रीवेदके क्षपणकालसे चार विभक्तिस्थानका काल कुछ कम तिगुना पाया जाता है । उसका खुलासा इसप्रकार है–दो समयकम दो आवलियोंसे न्यून अश्वकर्णकरणका काल, क्रोधकी कृष्टि करणका काल और क्रोधकी तीन संग्रह कृष्टियोंका वेदक काल ये तीनों काल मिलकर चार विभक्तिस्थानका काल होता है । किन्तु इन तीनों कालों में से प्रत्येक काल बारह विभक्तिस्थानके कालसे विशेषहीन है । अब इन तीनों कालोंमेंसे किसी एक कालके संख्यातवें भागको ग्रहण करके और उसके दो भाग करके प्रत्येक भागके ऊपर शेष दो कालोंको क्रमसे देयरूपसे दे देनेपर वे दोनों ही प्रत्येक काल स्त्रीवेदके कालके समान होते हैं और मिलकर स्त्रीवेदके कालसे दूने हो जाते हैं । तथा संख्यातवें भागसे न्यून शेष तीसरा काल चूंकि स्त्रीवेदके क्षपणकालसे कुछ कम होता है, इससे सिद्ध होता है कि बारह विभक्तिस्थानके कालसे चार विभक्तिस्थानका काल कुछ कम तिगुना है। तथा इस कालमें संचित हुए जीवोंका गुणकार भी इतना ही होगा । कालके अनुसार

पमाणाणुकूलत्तदंसणादो ।

* तेरसण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा ।

§ ३९९. कुदो ? चदुण्हं विहत्तियकालादो संखेज्जगुणम्मि तेरसविहत्तियकालम्मि संचिदजीवाणं पि जुत्तीए संखेज्जगुणत्तदंसणादो । तेरसविहत्तियकालस्स संखेज्जगुणत्तं कथं णव्वदे ? जुत्तीदो । तं जहा-थीणगिद्धियादिसोलसकम्माणं खवणकालो मणपज्जवणाणावरणादिबारसण्हं देसघादीबंधकरणकालो अंतरकरणकालो अंतरकरणे कदे णवुंसयवेदक्खवणकालो च एदे चत्तारि वि काला तेरसविहत्तियस्स । अस्सकण्णकरणकालो कोधकिट्टीकरणकालो कोधतिण्णिसंगहकिट्टीवेदयकालो च एदे तिण्णि वि चदुण्हं विहत्तियस्स । एदे तिण्णिवि काले पेक्खिदूण पुव्विल्लकालो संखेज्जगुणो । कालतियं पेक्खिदूण पुव्विल्लकालचउक्कं विसेसाहियं किण्ण होदि ? ण, णवण्हं कालाणं समुदयसमागमेण कालचदुक्कुप्पत्तीदो । के ते णवकाला ?

जीवोंके संचयकी पद्धति प्रमाणानुकूल देखी जाती है ।

* चार विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात गुणे होते हैं ।

§ ३९९. शंका–चार विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे क्यो हैं ?

समाधान–चूंकि चार विभक्तिस्थानके कालसे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है, इसलिये युक्तिसे यही सिद्ध होता है कि चार विभक्तिस्थानके कालमें संचित हुए जीवोंसे तेरह विभक्तिस्थानके कालमें संचित हुए जीव संख्यातगुणे होते हैं ।

शंका–चार विभक्तिस्थानके कालसे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यात गुणा है यह केसे जाना जाता है ?

समाधान–युक्तिसे जाना जाता है । उसका खुलासा इसप्रकार है–स्त्यानगृद्धि आदि सोलह कर्मोंका क्षपणकाल, मनःपर्यय ज्ञानावरण आदि बारह कर्मोंका देशघातिबन्धकरणकाल, अन्तरकरणकाल, और अन्तरकरण करनेके अनन्तर नपुंसकवेदका क्षपणकाल ये चारों मिलाकर तेरह विभक्तिस्थानका काल है । तथा अश्वकर्णकरणकाल, क्रोधकृष्टिकरणकाल और क्रोधकी तीन संग्रहकृष्टियोंका वेदककाल ये तीनों ही चार विभक्तिस्थानके काल हैं । इसप्रकार इन तीनों कालोंको देखते हुए इनकी अपेक्षा पूर्वोक्त तेरह प्रकृति स्थानका काल संख्यातगुणा है ।

शंका–पूर्वोक्त तेरह विभक्तिस्थानसंबन्धी चारों काल चार विभक्तिसंबन्धी तीनों कालोंसे विशेषाधिक क्यों नहीं हैं ?

समाधान–नहीं, क्योंकि नौ कालोंके समुदायके समागमसे चार कालोंकी उत्पत्ति हुई

थीणगिद्धियादि सोलसकम्मक्खवणकालो १, मणपज्जव-दाणंतराइयाणं देसघादीबंधकरणकालो २, ओहिणाण०-ओहिदंस०-लाहंतराइयाणं देसघादिबंधकरणकालो ३, सुदणाण०-अचक्खु०-भोगंतराइयाणं देसघादिबंधकरणकालो ४, चक्खुदंस० देसघादिबंधकरणकालो ५, आभिणि०-परिभोग० देसघादिबंधकरणकालो ६, विरियंतराइयदेसघादिबंधकरणकालो ७, तेरसण्हं कम्माणमंतरकरणकालो ८, णवुंसयवेदक्खवणकालो ९, एदे णव काला। चदुण्हं विहत्तियकाला पुण तिण्णि चेव। तेण एदे पेक्खियूण पुव्विल्लकाला संखेज्जगुणा। किंच सोलसकम्माणि खविय जाव मणपज्जवणाणावरणीयं बंधेण देसघादिं ण करेदि ताव से कालो चेव चउण्हं विहत्तियकालादो संखेज्जगुणो संखेज्जट्ठिदिबंधसहस्सगब्भिणत्तादो। सव्वकालसमूहो पुण संखेज्जगुणो त्ति को संदेहो? पुव्विल्लकालअप्पाबहुगादो वा तेरसविहत्तियकालस्स संखेज्जगुणत्तं णव्वदे।

है अर्थात् इन चार कालोंमें नौ काल सम्मिलित है। अतः वे चार विभक्तिस्थानसंबन्धी तीन कालोंसे विशेषाधिक नहीं हो सकते।

शंका–वे नौ काल कौनसे हैं ?

समाधान–पहला स्त्यानगृद्धि आदि सोलह कर्मोंका क्षपणकाल, दूसरा मनःपर्यय और दानान्तराय इन दो प्रकृतियोंका देशघातिबन्धकरणकाल, तीसरा अवधिज्ञानावरण अवधिदर्शनावरण और लाभान्तराय इन तीन प्रकृतियोंका देशघातीबन्धकरणकाल, चौथा श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, और भोगान्तराय इन तीन प्रकृतियोंका देशघातिबन्धकरणकाल, पांचवा चक्षुदर्शनावरण प्रकृतिका देशघातिबन्धकरणकाल, छठा मतिज्ञानावरण परिभोगान्तराय इन दो प्रकृतियोंका देशघातीबन्धकरणकाल, सातवां वीर्यान्तराय प्रकृतिका देशघातिबन्धकरणकाल, आठवां मोहनीयकी तेरह प्रकृतियोंका अन्तरकरण काल और नौवां नपुंसकवेदका क्षपणकाल इसप्रकार ये नौ काल हैं, पर चार विभक्तिस्थानके काल तीन ही होते हैं। इससे इन दोनों कालोंको देखते हुए ज्ञात होता है कि चार विभक्तिस्थानसंबन्धी कालोंसे तेरह विभक्तिस्थानसंबन्धी काल संख्यातगुणे हैं। दूसरे, स्त्यानगृद्धि आदि सोलह कर्मोंका क्षय करके तेरह विभक्तिस्थानवाला जीव जब तक मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मके बन्धको देशघाति नहीं करता है तब तक जो काल होता है वही चारविभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा होता है, क्योंकि मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मके देशघाति बन्धकरण संबन्धी कालके भीतर संख्यात हजार स्थितिबन्ध गर्भित हैं। अतएव तेरह विभक्तिस्थानका समस्त काल मिलकर चार विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा है इसमें क्या सन्देह है। अथवा, पहले जो कालविषयक अल्पबहुत्व कह आये हैं उससे जाना जाता है कि चार विभक्तिस्थानके कालसे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है।

* बावीससंतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा ।

§४००. कुदो ? चारित्तमोहणीय-अणियट्टीकालादो संखेज्जगुणम्मि दंसणमोहणीय-अणियट्टिकालम्मि संचिदजीवाणं पि संखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावादो । अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मे चेट्ठिदे तदो प्पहुडि जाव सम्मत्तक्खवणद्धाचरिमसमओ त्ति ताव बावीसविहत्तियकालो । एसो चारित्तमोहक्खवग-अणियट्टी-अद्धादो संखेज्जगुणो त्ति कधं णव्वदे ? एवं मा जाणिज्जदु, किंतु तेरसविहत्तियकालादो एसो कालो संखेज्जगुणो त्ति णव्वदे । कत्तो ? पुव्विल्लकाल-अप्पाबहुगादो । चारित्तमोहक्खवणं पट्ठवेंतजीवेहिंतो दंसणमोहक्खवणं पट्ठवेंतजीवा संखेज्जगुणा त्ति ण घेत्तव्वं, उभयत्थ अट्ठुत्तरसदजीवे मोत्तूण एत्तो बहुआणं चडणासंभवादो । ण च पट्ठवणकालस्स थोवबहुत्त-

* तेरह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§४००. शंका–तेरह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे क्यों हैं ?

समाधान–चूंकि चारिमोहनीयके अनिवृत्तिकरणसंबन्धी कालसे दर्शनमोहनीयका अनिवृत्तिकरणकाल संख्यातगुणा है, इसलिये इसमें संचित हुए जीव भी संख्यातगुणे होते हैं इस कथनमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका–स्थितिका पुनः पुनः अपकर्षण करते हुए जब सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति आठ वर्ष प्रमाण रह जाती है उस समयसे लेकर सम्यक्प्रकृतिके क्षपणकालके अन्तिम समय तक बाईस विभक्तिस्थानका काल होता है । यह काल चारित्रमोहनीयके क्षपक जीवके अनिवृत्तिकरणके कालसे संख्यातगुणा है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान–इस प्रकारका ज्ञान भले ही मत होओ किन्तु तेरह विभक्तिस्थानके कालसे बाईस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है यह तो जाना ही जाता है ।

शंका–किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान–पूर्वोक्त कालविषयक अल्पबहुत्वसे जाना जाता है ।

यहां पर चारित्रमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाले जीवोंसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाले जीव संख्यातगुणे होते हैं ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि दोनों जगह एक सौ आठ जीवोंसे अधिक जीव दर्शनमोहनीय या चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके लिये एक साथ आरोहण नहीं करते हैं । यदि कहा जाय कि चारित्रमोहनीयके क्षपणाके प्रारम्भ कालसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भकाल अधिक होगा इसलिये दोनोंके कालमें विशेषता होगी सो बात भी नहीं है, क्योंकि, दोनों प्रस्थापककालोंमें संख्यात समयका नियम देखा जाता है । यदि कहा जाय कि जघन्य अन्तर और उत्कृष्ट

कओ विसेसो अत्थि, उभयत्थ संखेज्जसमयणियमदंसणादो। ण च जहण्णुक्कस्संतर-विसेसो अत्थि एगसमयछम्मासब्भंतरणियमदंसणादो। तदो पुव्विल्लत्थो चेव घेत्तव्वो।

*** तेवीसाए संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया।**

§ ४०१. कुदो? सम्मत्तक्खवणकालादो विसेसाहियम्मि सम्मामिच्छत्तक्खवण-कालम्मि संचिदजीवाणं वि जुत्तीए विसेसाहियत्तदंसणादो। सम्मत्तक्खवणकालादो सम्मामिच्छत्तक्खवणकालो विसेसाहिओ त्ति कुदो णव्वदे? पुव्विल्ल-अद्धप्पाबहुआदो।

*** सत्तावीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेज्जगुणा।**

§ ४०२. को गुणगारो? पलिदो० असंखेभागो। कुदो? पलिदो० असंखे० भाग-मेत्तकालेण संचिदत्तादो सम्मत्तादो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणजीवाणं बहुत्तुवलंभादो च।

---

अन्तरकी अपेक्षा दोनों प्रस्थापककालोंमें विशेषता होगी सो बात भी नहीं है, क्योंकि दोनों प्रस्थापककालोंमें जघन्य अन्तरके एक समय और उत्कृष्ट अन्तरके छह महीना होनेका नियम देखा जाता है। अतः तेरह विभक्तिस्थानके कालसे बाईस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है यह पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये।

*** बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं।**

§ ४०१. **शंका**—बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं?

**समाधान**—क्योंकि सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाकालसे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षपणकाल विशेष अधिक है। अतः उसमें संचित हुए जीव भी विशेष अधिक हैं। यह युक्तिसे सिद्ध होता है।

**शंका**—सम्यक्प्रकृतिके क्षपणकालसे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षपणकाल विशेष अधिक है, यह कैसे जाना जाता है?

**समाधान**—पूर्वोक्त कालविषयक अल्पबहुत्वसे जाना जाता है।

*** तेईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात-गुणे हैं।**

§ ४०२. **शंका**—प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है?

**समाधान**—प्रकृतमें पल्योपमका असंख्यातवांभाग गुणकारका प्रमाण है।

**शंका**—प्रकृतमें पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकारका प्रमाण क्यों है?

**समाधान**—क्योंकि सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका सञ्चय पल्योपमके असंख्या-तवें भाग प्रमाण काल तक होता रहता है और सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वको प्राप्त होने वाले

*** एक्कवीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेज्जगुणा।**

§४०३. को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कुदो? वे सागरोवमकालब्भंतरउवक्कमणकालम्मि संचिदत्तादो। गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति कुदो णव्वदे? आइरियपरंपरागयसुत्ताविरुद्धवक्खाणादो। अहवा गुणगारो तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवमेत्तो, सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालम्मि संचिदजीवे पडुच्च पलिदोवमस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागो चेव भागहारो होदि त्ति णियमकारणाणुवलंभादो। जुत्तीए पुण असंखेज्जावलियाहि भागहारेण होदव्वं, अण्णहा एक्कवीसविहत्तियभागहारादो असंखेज्जगुणत्ताणुववत्तीदो। तं जहा–संखेज्जावलियाओ अंतरिय जदि संखेज्जा उवक्कमणसमया एक्कवीसविहत्तियाणं लब्भंति, तो दोसु सागरेसु किं

जीव बहुत पाये जाते हैं, इन दोनों कारणोंसे जाना जाता है कि यहां गुणकारका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग है।

*** सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।**

§ ४०३. **शंका**–प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है?

**समाधान**–प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है।

**शंका**–प्रकृतमें आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकारका प्रमाण क्यों है?

**समाधान**–क्योंकि प्रकृतमें दो सागरोपमकालके भीतर जितने उपक्रमण काल होते हैं उनमें संचित हुए इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव लिये गये हैं। अतएव प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग कहा है।

**शंका**–फिर भी इससे यह कैसे जाना जाता है कि प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है?

**समाधान**–आचार्य परम्परासे सूत्रके अविरुद्ध जो व्याख्यान चला आ रहा है उससे जाना जाता है कि प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है।

अथवा तत्प्रायोग्य अर्थात् सत्ताईस विभक्तिस्थानमें संचित जीवराशिका इक्कीस विभक्तिस्थानमें संचित जीवराशिमें भाग देनेपर जो असंख्यात प्रमाण लब्ध आता है उतना ही यहां गुणकारका प्रमाण है; क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलन कालमें संचित हुए जीवोंकी अपेक्षा विचार करनेपर पल्योपमका भागहार आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होता है, इस प्रकारके नियमका कोई कारण नहीं पाया जाता। परन्तु युक्तिसे असंख्यात आवली प्रमाण भागहार होना चाहिये, अन्यथा वह भागहार इक्कीस विभक्तिस्थानके भागहारसे असंख्यात गुणा नहीं हो सकता है। आगे इसीका खुलासा करते हैं–संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे यदि इक्कीस

लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदमिच्छामोवट्टिदे संखेज्जावलियाहि पलिदोवमे खंडिदे एगभागो एक्कवीसविहत्तियाणमुवक्कमणकालो होदि । उवरिमवीसकोडाकोडीरूवमेत्त-पलिदोवमगुणगारादो हेट्ठा आवलियाए ट्ठविदगुणगारो संखेज्जगुणो त्ति कुदो णव्वदे ? पलिदोवममेत्तकम्मट्ठिदीए आबाधा संखेज्जावलियमेत्ता होदि त्ति आइरियवयणादो, आबाधाकंडयपरूवयसुत्तादो च णव्वदे । एदम्हादो अवहारकालादो एक्कवीसविहत्तिय-अवहारकालो जदि वि संखेज्जगुणहीणो तो वि संखेज्जावलियमेत्तेण होदव्वं अट्ठुत्तर-सदमेत्तजीवेहिंतो उवरि उवक्कमणाभावादो । अह जइ बहुआ होंति आउअवसेण, तो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण होदव्वं । एदमवहारकालं तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-रूवेहि गुणिदे सत्तावीसविहत्तिय-अवहारकालो जेण होदि तेण सत्तावीसविहत्तियाण-मवहारकालो असंखेज्जावलियमेत्तो त्ति सिद्धं ।

विभक्तिस्थानवाले जीवोंके संख्यात उपक्रमण-समय प्राप्त होते हैं तो दो सागर प्रमाण कालमें कितने उपक्रमण-समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करके फलराशिसे इच्छा-राशिको गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर संख्यात आव-लियोंसे पल्योपमको भाजित करने पर एक भागप्रमाण इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका उपक्रमणकाल आता है ।

शंका–ऊपर अर्थात् 'तो दोसु सागरेसु किं लभामो' यहां पर जो पल्यका गुणकार बीस कोड़ाकोड़ी अंक प्रमाण है, उससे नीचे अर्थात् 'संखेज्जावलियाहि पलिदोवमे खंडिदे' यहां पर आवलिका गुणकार जो संख्यातगुणा स्थापित किया है, सो यह बात किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान–एक पल्य कर्मस्थितिकी आबाधा संख्यात आवलिप्रमाण होती है इस प्रकारके आचार्य वचनसे और आबाधाकाण्डकका कथन करनेवाले सूत्रसे जानी जाती है।

इस अवहारकालसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अवहारकाल यद्यपि संख्यातगुणा हीन होता है तो भी वह संख्यात आवलि प्रमाण होना चाहिये, क्योंकि अधिकसे अधिक एक साथ एक सौ आठ क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपक्रमण करते हैं अधिक नहीं । अथवा आयुकी न्यूनाधिकताके कारण अधिक जीव उपक्रमण करते हैं ऐसा मान लिया जाय तो भी इक्कीस विभक्तिस्थान वाले जीवोंका अवहारकाल आवलिके संख्यातवें भाग प्रमाण होना चाहिये । और इस अवहारकालको सत्ताईस विभक्तिस्थान वाले जीवोंके अवहारकालके योग्य असंख्यात अंकोंसे गुणित कर देनेपर चूंकि सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अवहार काल प्राप्त होता है अतः सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अवहारकाल असंख्यात आवलि प्रमाण सिद्ध होता है ।

* चउवीसाए संतकम्मिया असंखे० गुणा ।

§ ४०४. को गुणगारो ? आवलि० असंखे० भागो । एक्कवीसविहत्तियकालेण चउवीसविहत्तियकालो सरिसो, सोहम्मीसाणकप्पेसु सयल-असंजदसम्मादिट्ठीणिवासेसु चेव चउवीस-एक्कवीसविहत्तियाणं संभवादो। उवरि किण्ण घेप्पदे ? ण, सोहम्मीसाण-सम्माइट्ठीहिंतो असंखेज्जगुणहीणेसु घेप्पमाणे कारणबहुत्ताभावेण असंखेज्जगुणहीणाणं गहणप्पसंगादो । ण च उवक्कमणकालमस्सिदूण गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदि भागो त्ति वोत्तुं सकिज्जदे, सोहम्मीसाण-उवक्कमणकालादो बेछावट्ठिसागरब्भंतरुवक्कमण-कालस्स वि संखेज्जगुणस्सेव उवलंभादो । एवमुवक्कमणकाले सरिसे संते कथमसंखेज्ज-गुणत्तं जुज्जदि त्ति, ण एस दोसो, मणुसेहि समुप्पज्जमाणखइयसम्माइट्ठिसंखेज्जजीवेहिंतो सोहम्मीसाणकप्पेसु अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाण-अट्ठावीससंतकम्मियवेदग-सम्माइट्ठीण-मुवसमसम्माइट्ठीणं च समयं पडि पलिदो० असंखे० भागमेत्ताणमुवलं-

* इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४०४. **शंका**—प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है ?

**समाधान**—प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है ।

**शंका**—चौबीस विभक्तिस्थानका काल इक्कीस विभक्तिस्थानके कालके समान है, क्योंकि समस्त असंयतसम्यग्दृष्टियोंके निवासभूत सौधर्म और ऐशान कल्पमें ही चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव अधिक संभव हैं। शायद कहा जाये कि सौधर्म और ऐशान कल्पके ऊपरके सम्यग्दृष्टि जीव प्रकृतमें क्यों नहीं ग्रहण किये गये हैं ? तो उसका समाधान यह है कि सौधर्म और ऐशान कल्पके सम्यग्दृष्टियोंसे ऊपरके कल्पोंमें असंख्यातगुणे हीन सम्यग्दृष्टि होते हैं,अतः उनके ग्रहण करनेपर बहुत्वका कारण न होनेसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी अपेक्षा चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हीन स्वीकार करना पड़ेंगे । तथा उपक्रमण कालकी अपेक्षा इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका गुणकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्रकृतमें यदि एकसौ बत्तीस सागरके भीतर होनेवाले उपक्रमण कालका भी ग्रहण किया जाय तो वह सौधर्म और ऐशानके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा ही पाया जायेगा। इसप्रकार उपक्रमण कालके समान रहते हुए इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौबीस विभक्तिस्थान-वाले असंख्यातगुणे कैसे बन सकते हैं ?

**समाधान**—यह ठीक नहीं है, क्योंकि सौधर्म और ऐशान कल्पमें मनुष्योंमेंसे उत्पन्न होने वाले संख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करने वाले अट्ठाईस विभक्तिस्थानी वेदक सम्यग्दृष्टि तथा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रति समय पल्योपम

भादो, असंखेज्जदीवेसु भोगभूमिपडिभागेसु कम्मभूमिपडिभागदीवसमुद्देसु च णिवसंत-चउवीससंतकम्मियसम्माइट्ठीणं सोहम्मीसाणेसु असंखेज्जाणमुवक्कमणसमयं पडि उप्पज्जमाणाणमुवलंभादो च। जदि एवं तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणगारेण होदव्वं ? ण, सव्वोवक्कमणसमएसु पलिदो० असंखे० भागमेत्ताणं जीवाणं चउवीससंतकम्मियभावमुवक्कममाणाणमणुवलंभादो। जदि एवं तो कधमुवक्कमंति ? कत्थ वि एक्को, कत्थ वि दोण्णि, एवं गंतूण कत्थवि० संखेज्जा, कत्थ वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता, कत्थ वि आवलियमेत्ता, संखेज्जावलियमेत्ता असंखेज्जावलियमेत्ता वा उवक्कमंति चउवीससंतकम्मियभावं, तेण आवलियाए असंखे० भागेणेव गुणगारेण होदव्वं। चउवीससंतकम्मियभागहारेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण संखेज्जावलियमेत्ते एक्कवीसविहत्तियभागहारे ओवट्टिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागुवलंभादो वा गुणगारो आवलियाए असंखे० भागो। संखेज्जावलियमेत्ते सोह-

के असंख्यातवें भाग पाये जाते हैं, तथा भोगभूमिसम्बन्धी असंख्यात द्वीपोंमें और कर्मभूमिसम्बन्धी द्वीप समुद्रोंमें निवास करने वाले चौबीस विभक्तिस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म और ऐशान कल्पमें प्रत्येक उपक्रमणकालमें असंख्यात उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं। इन हेतुओंसे प्रतीत होता है इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात गुणे होते हैं।

**शंका**–यदि ऐसा है तो प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग न होकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग होना चाहिये ?

**समाधान**–नहीं, क्योंकि सभी उपक्रमण कालोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव चौबीस विभक्तिस्थानको प्राप्त होते हुए नहीं पाये जाते हैं, अतः प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग नहीं कहा।

**शंका**–यदि ऐसा है तो सम्यग्दृष्टि जीव किस क्रमसे चौबीस विभक्तिस्थानको प्राप्त होते हैं ?

**समाधान**–किसी उपक्रमणकालमें एक जीव, किसीमें दो, इसप्रकार उत्तरोत्तर किसीमें संख्यात, किसीमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण, किसीमें आवली प्रमाण, किसीमें संख्यात आवली प्रमाण, किसीमें असंख्यात आवलीप्रमाण जीव चौबीस विभक्तिस्थानको प्राप्त होते हैं, इससे यह निश्चित होता है कि गुणकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होना चाहिये। अथवा आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण चौबीस विभक्तिस्थान संबन्धी भागहारसे संख्यात आवली प्रमाण इक्कीस विभक्तिस्थान संबन्धी भागहारको भाजित कर देनेपर आवलीका असंख्यातवां भागमात्र प्राप्त होता है, इससे भी यही निश्चित होता है कि प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग ही है।

म्मीसाणकप्पेसु एक्कवीसविहत्तिया(-य) जीवभागहारे संते णिरयतिरिक्खेसु असंखेज्जावलियमेत्तेण भागहारेण होदव्वं ? ण च एवं, वासपुधत्तमेत्तुवक्कमणंतरेण उक्कस्सेण सह विरोहादो । ण एस दोसो, णिरयतिरिक्खगईसु एक्कवीसविहत्तियाणमसंखेज्जावलियमेत्तभागहारब्भुवगमादो । ण च वासपुधत्तंतरेण सह विरोहो, तस्स वइपुल्लवाचयत्तावलंबणादो । पयारंतरेण वि एत्थ परिहारो चिंतिय वत्तव्वो ।

* अट्ठावीससंतकम्मिया असंखेज्जगुणा ।

§ ४०५. कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिए सम्मादिट्ठिणो मोत्तूण अण्णत्थ अणंताणु० चउक्कस्स विसंजोयणाभावादो । ण च ते सव्वे विसंजोएंति तेसिमसंखेज्जदिभागमेत्ताणं चेव जीवाणं अणंताणुबंधिविसंजोयणपरिणामाणं संभवादो । एत्थ को गुण-

शंका—जब कि सौधर्म और ऐशान कल्पमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण लानेके लिये भागहार संख्यात आवली प्रमाण है तो नारकी और तिर्यंचोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण लानेके लिये भागहारका प्रमाण असंख्यात आवली होना चाहिये । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर नारकी और तिर्यंचोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंके उत्कृष्ट उपक्रमणकालका अन्तर जो वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा उसके साथ विरोध आता है ?

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि नरकगति और तिर्यंचगतिमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्या लानेके लिये भागहारका प्रमाण असंख्यात आवली स्वीकार किया है। किन्तु ऐसा स्वीकार करनेपर भी इस कथनका वर्षपृथक्त्व प्रमाण अन्तर कालके साथ विरोध नहीं आता है, क्योंकि यहां वर्षपृथक्त्व पद वैपुल्यवाची स्वीकार किया है । अथवा यहां उक्त शंकाका परिहार प्रकारान्तरसे विचार करके कहना चाहिये ।

* चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४०५. शंका—चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे क्यों हैं ?

समाधान—अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंको छोड़ कर अन्यत्र चार अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोंकी विसंयोजना नहीं होती है । पर सभी अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करते हैं, क्योंकि उनके असंख्यातवें भागमात्र ही जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके कारणभूत परिणाम सम्भव हैं । इससे प्रतीत होता है कि चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं ।

गारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। उवक्कमणकालविसेसो एत्थ ण णिहाले-यव्वो, उवक्कममाणजीवाणं पमाणेण अविसेसे संते उवक्कमणकालविसयफलोवलंभादो।

* छव्वीसविहत्तिया अणंतगुणा।

§ ४०६. को गुणगारो ? छव्वीसविहत्तियरासिस्स असंखेज्जदिभागो।

एवं चुण्णिसुत्तोघो उच्चारणोघसमाणो समत्तो।

§ ४०७. संपहि उच्चारणमस्सियूण आदेसप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। कायजोगि-ओरा लिय०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारि त्ति ओघभंगो।

§ ४०८. आदेसेण णिरयगईएणेरईएसु सव्वथोवा वावीसविहत्तिया। सत्तावी-सविह० असंखेज्जगुणा, एक्कवीसविह० असंखेज्जगुणा, चउवीसवि० असंखेज्जगुणा, अट्ठा-वीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसविह० असंखेज्जगुणा। एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-

शंका–चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्यासे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्याके लानेके लिये गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान–गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है।

प्रकृतमें उपक्रमण कालविशेषका विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि उपक्रमण कालोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी संख्या यदि समान हो तो उपक्रमणकालकी अपेक्षा विचार करनेमें सार्थकता है।

* अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं।

§ ४०६. शंका–प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान–प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण छब्बीस विभक्तिस्थानवाली जीवराशिका असंख्यातवां भाग है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रके ओघका कथन समाप्त हुआ। इसके समान ही उच्चारणाका ओघका कथन है।

§ ४०७. अब उच्चारणाका आश्रय लेकर आदेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्वको बतलाते हैं- काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक इनमें अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है।

§ ४०८. आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार पहली पृथिवीके नारकी जीवोंमें, पंचेन्द्रिय

पंचि०तिरि०पज्जत्त-देव-सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति वत्तव्वं। बिदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव वत्तव्वं। णवरि वावीस-एक्कवीसविहत्तिया णत्थि। एवं पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसि० वत्तव्वं। तिरिक्ख० पढमपुढविभंगो। णवरि छव्वीसविहत्तिया अणंतगुणा। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा सत्तावीस-विह०। अट्ठावीसविह० असंखेज्जगुणा। छव्वीसविह० असं० गुणा। एवं मणुस-अपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-चत्तारिकाय बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-तस अपज्ज०-विहंग० वत्तव्वं।

§ ४०६. मणुस्सेसु सव्वत्थोवा पंचविहत्तिया। एगवि० संखेज्जगुणा, दुवि० विसेसाहिया, तिवि० विसेसा०, एक्कारसवि० विसे०, बारसवि० विसे०, चदुवि० संखेज्जगुणा, तेरसवि० संखे०गुणा०, वावीसवि० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसे०, एक्क-

तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीवोंमें तथा सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहां बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव नहीं होते हैं। दूसरी आदि पृथिवियोंमें अल्पबहुत्वका जिसप्रकार कथन किया है उसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें तथा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें कहना चाहिये। सामान्य तिर्यंचोंमें पहली पृथिवीके समान अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहां पर अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थान वाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे पृथिवी आदि चारों स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त और विभंगज्ञानी जीवोंमें कथन करना चाहिये।

§ ४०६. मनुष्योंमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे एक विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे सत्ताईस विभ-

वीसवि० संखेज्जगुणा, चउवीसवि० संखेज्जगुणा, सत्तावीसवि० असंखेज्जगुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० असंखे० गुणा। एवं मणुसपज्ज०, णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं। मणुस्सिणीसु सव्वत्थोवा एगविहत्तिया, दुवि० विसेसा०, तिवि० विसे०, एक्कारसवि० विसे०, बारसवि० विसे०, चदुवि० संखे० गुणा, तेरसवि० संखे० गुणा, बावीसविह० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसेसा०, एक्कवीसवि० संखेज्जगुणा, चउवीसवि० संखेज्जगुणा, सत्तावीसविह० संखे० गुणा, अट्ठावीसवि० संखे० गुणा, छव्वीसवि० संखे० गुणा।

§ ४१०. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति सव्वत्थोवा बावीसवि०, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० असंखे० गुणा, एक्कावीसवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, अट्ठावीसवि० संखे० गुणा। अणुद्दिसादि जाव अवराइदत्ति सव्वत्थोवा बावीसवि०, एक्कवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा,

क्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार पर्याप्त मनुष्योंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सामान्य मनुष्योंमें सत्ताईस, अट्ठाईस और छब्बीस स्थानवाले उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं। पर पर्याप्त मनुष्योमें उक्त स्थानवाले जीवोंको उत्तरोत्तर संख्यातगुणे कहना चाहिये। स्त्रीवेदी मनुष्योंमें एक विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे दो विभक्तिस्थान वाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेईस विभक्तिस्थान वाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थान वाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

§ ४१०. आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव

अट्ठावीसवि० संखे० गुणा। एवं सव्वट्ठे, णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं।

§ ४११. इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर० पज्ज० अपज्ज०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदिय-पज्ज०-सुहुमेइंदिय अपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सत्तावीसविहत्तिया। अट्ठावीसवि० असंखेज्ज-गुणा, छव्वीसवि० अणंतगुणा। एवं सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादिट्ठि असण्णि त्ति वत्तव्वं। णवरि बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्ज० अपज्ज०-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तअपज्जत्ताणं पुढविकाइयभंगो। पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्ज०-तस-तसपज्ज० ओघभंगो। णवरि छव्वीसवि० असंखे० गुणा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-सण्णि-चक्खु त्ति वत्तव्वं।

§ ४१२. ओरालियमिस्स० सव्वत्थोवा बावीसविहत्तिया, एक्कवीसवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे०

असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें भी कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अनुदिशादिकमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे कह आये हैं, पर यहां बाईस विभक्तिस्थानवालोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे होते हैं।

§ ४११. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इसीप्रकार सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, बादरवनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंमें पृथिवी कायिक जीवोंके अल्पबहुत्वके समान अल्पबहुत्व कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें ओघके समान अल्पबहुत्व कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें छब्बीस विभक्तिस्थान-वाले जीव अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अनन्तगुणे न होकर असंख्यातगुणे होते हैं। इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, संज्ञी और चक्षुदर्शनी जीवोंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये।

§ ४१२. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थान-वाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे

गुणा, छव्वीसवि० अणंतगुणा। वेउव्विय० सव्वत्थोवा सत्तावीसवि० एक्कवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० संखे० गुणा। वेउव्वियमिस्स० सव्वत्थोवा बावीसविहत्तिया, एक्कवीसवि० संखे० गुणा, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० असंखे० गुणा। कम्मइय० एवं चेव। णवरि छव्वीसवि० अणंतगुणा। एवमणाहार० वत्तव्वं। आहार०-आहारमिस्स० सव्वट्ठभंगो, णवरि बावीसं णत्थि।

§ ४१३. वेदाणुवादेण इत्थि० सव्वत्थोवा बारसविहत्तिया, तेरसवि० संखे० गुणा, बावीसवि० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसे०, एक्कवीसवि० संखे० गुणा, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि०

अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं। वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंमें भी अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगियोंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे होते हैं। कार्मणकाययोगियोंके समान अनाहारक जीवोंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। आहारक और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन दो योगवाले जीवोंके बाईस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है।

§ ४१३. वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें बारह विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्या-

असंखे० गुणा । पुरिसवेदे सव्वत्थोवा पंचविहत्तिया, एक्कारसवि० संखे० गुणा, बारसवि० विसेसा०, तेरसवि० संखे० गुणा, बावीसवि० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसे०, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, एक्कवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० असंखे० गुणा । णवुंसए सव्वत्थोवा बारसविहत्तिया, तेरसवि० संखे० गुणा, वावीसवि० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसे०, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, एक्कवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० अणंतगुणा । अवगद० सव्वत्थोवा एक्कारसवि०, एक्कवीसवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, पंचवि० संखे० गुणा, एगवि० संखे० गुणा, दुवि० विसेसा०, तिवि० विसेसा०, चदुवि० संखेज्जगुणा ।

§ ४१४. कसायाणुवादेण कोधक० सव्वत्थोवा पंचविहत्तिया, एक्कारसवि० संखे०

तगुणे हैं । पुरुषवेदमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेदमें बारह विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं । अपगतवेदमें ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे पांच विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे एक विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४१४. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे बारह विभक्ति-

गुणा, बारसवि० विसे०, चदुवि० संखे० गुणा। सेसमोघभंगो। माणक० सव्वत्थोवा पंचवि०, चदुण्हं० संखे० गुणा, एक्कारसवि० विसे०, बारसवि० विसे०, तिण्हं संखे० गुणा, तेरसण्हं० संखे० गुणा। सेसमोघभंगो। मायाकसाय० सव्वत्थोवा पंचण्हं विहत्तिया, तिण्हं वि० संखे० गुणा, चदु० विसे०, एक्कारस० विसे०, बारस० विसे०, दोण्हं संखे० गुणा, तेरस० संखे० गुणा। सेसमोघभंगो। लोभक० सव्वत्थोवा पंचण्हं, दोण्हं० संखे० गुणा, तिण्हं० विसे०, चदुण्हं० विसे०, एक्कारस० विसे०, बारस० विसे०, एक्कवीस० संखे० गुणा, तेरसण्हं वि० संखे० गुणा। सेसमोघभंगो। अकसायि० सव्वत्थोवा एक्कवीसविहत्तिया, चउवीस० संखे० गुणा। एवं जहाक्खादाणं वत्तव्वं।

§ ४१५. आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा पंचविहत्तिया, एकवि० संखे०

स्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। शेष कथन ओघके समान है। मानकषायमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। शेष कथन ओघके समान है। मायाकषायमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। शेष कथन ओघके समान है। लोभकषायमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे एक विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। शेष कथन ओघके समान है। अकषायी जीवोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। अकषायी जीवोंमें जिसप्रकार अल्पबहुत्वका कथन किया है उसीप्रकार यथाख्यातसंयतोंके भी अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये।

§ ४१५. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पांच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे एक विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसप्रकार तेईस विभक्ति-

गुणा। एवं जाव तेवीसविहत्तिओ त्ति ओघभंगो। तदो एक्कवीस० असंखे० गुणा, चउवीस० असंखे० गुणा, अट्ठावीस० असंखे० गुणा। एवमोहिदंसण० सम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्वं। मणपज्ज० एवं चेव, णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं। एवं संजद० सामाइयच्छेदो० वत्तव्वं। परिहार० सव्वत्थोवा बावीसविहत्तिया, तेवीसविह० विसे०, एक्कवीसवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, अट्ठावीसवि० संखे० गुणा। एवं संजदासंजदाणं। णवरि चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा। सुहुमसांपरा० सव्वत्थोवा एक्कवि०, चउवीसवि० संखे० गुणा, एक्कवीस० संखे० गुणा। असंजद० सव्वत्थोवा बावीसविह०, तेवीसविह० विसे०, सत्तावीस० असंखे०गुणा, एक्कवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीस० असंखे० गुणा, अट्ठावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० अणंतगुणा। एवं तेउ०-पम्म०। णवरि छव्वीस०

स्थान तक ओघके समान कथन करना चाहिये। तदनन्तर तेईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी कथन करना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मतिज्ञानी आदि जीवोंमें जिन स्थानवाले जीवोंको असंख्यातगुणा कहा है उन्हें यहां संख्यातगुणा कर लेना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके अल्पबहुत्वके समान संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये। परिहारविशुद्धिसंयतोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार संयतासंयतोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें इक्कीस विभक्तिस्थान-वाले जीवोंसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्ति-स्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें एक विभक्तिस्थानवाले जीव-सबसे थोड़े हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं। असंयतोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सत्ताईस विभ-क्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इससे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्ति-स्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इससे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इसीप्रकार तेजोलेश्या और पद्मलेश्यामें कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि

असंखे०गुणा।

§ ४१६. किण्ह०-णील० सव्वत्थोवा एक्कवीसविह०, सत्तावीसविह० असंखे० गुणा, चउवीस० असंखे० गुणा, अट्ठावीस० असंखे० गुणा, छव्वीस० अणंतगुणा। काउ० सव्वत्थोवा बावीस विह०, सत्तावीस० असंखे० गुणा। सेसं ओघभंगो। सुक्कलेस्सि० जाव तेवीसविहत्तिया त्ति ओघभंगो। तदो सत्तावीस० असंखे० गुणा। उवरि आणदभंगो। अभवसिद्धि० सासण० णत्थि अप्पाबहुगं। खइयसम्माइट्ठीसु जाव तेरसविहत्तिओ त्ति ओघभंगो। तदो एक्कवीस० असंखेज्जगुणा। वेदय० सव्वत्थोवा बावीसविह०, तेवीसविह० विसेसा०, चउवीस० असंखे० गुणा, अट्ठावीस० असंखे० गुणा। उवसम० सव्वत्थोवा चउवीसविह०, अट्ठावीस० असंखे० गुणा। एवं सम्मामिच्छत्ते वि।

एवमप्पाबहुगं समत्तं।

इनमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं।

§ ४१६. कृष्ण और नील लेश्यामें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं। कपोतलेश्यामें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष कथन ओघके समान है। शुक्लेश्यावाले जीवोंमें तेईस विभक्तिस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है। तदनन्तर तेईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले असंख्यातगुणे हैं। इनके ऊपर आनतके समान जानना चाहिये। अभव्य और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें तेरह विभक्तिस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है। तेरह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वमें भी कथन करना चाहिये।

इसप्रकार अल्पबहुत्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

* भुजगारो अप्पदरो अवट्ठिदो कायव्वो ।

§ ४१७. एदेण भुजगाराणिओगद्दारं सूचिदं जइवसहाइरिएण । कधं भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदाणं तिण्हं पि भुजगारसण्णा ? ण, तिण्हमण्णोण्णाविणाभावीणमण्णोण्ण-सण्णाविरोहादो, अवयविदुवारेण तिण्हमवयवाणमेयत्तादो वा । भुजगाराणिओगद्दारं किमट्ठं वुच्चदे ? पुव्वुत्तपदाणमवट्ठाणाभावपरूवणट्ठं । तत्थ भुजगारविहत्तीए इमाणि सत्तारस अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा–समुक्कित्तणा सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवविहत्ती अद्धुवविहत्ती एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं, णाणा-जीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि ।

§ ४१८. समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अत्थि भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदविहत्तिया । एवं सत्तसु पुढवीसु । तिरिक्ख-पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पज्ज०-पंचिं० तिरि० जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव

* अब विभक्तिस्थानोंके विषयमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थानोंका कथन करना चाहिये ।

§ ४१७. यतिवृषभ आचार्यने इस उपर्युक्त सूत्रके द्वारा भुजगार अनुयोगद्वारको सूचित किया है।

शंका–भुजगार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंकी भुजगार संज्ञा कैसे हो सकती है ?

समाधान–भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीनों एक दूसरेकी अपेक्षासे होते हैं, इसलिये इन्हें तीनोंमेंसे कोई एक संज्ञाके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है । अथवा अव-यवीकी अपेक्षा ये तीनों अवयव एक हैं, इसलिये भी ये तीनों किसी एक नामसे कहे जा सकते हैं।

शंका–यहां भुजगार अनुयोगद्वारका कथन किसलिये किया है ?

समाधान–पूर्वोक्त विभक्तिस्थान सर्वथा अवस्थित नहीं है, इसका ज्ञान करानेके लिये यहां भुजगार अनुयोगद्वारका कथन किया है ।

भुजगार विभक्तिस्थानमें ये सत्रह अनुयोगद्वार जानने चाहियें । वे इसप्रकार हैं–समुत्कीर्तना, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति और अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर, तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व ।

§ ४१८. उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थान-वाले जीव हैं । इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके नारकियोंमें तथा तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये

उवरिमगेवज्जे त्ति-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काय-जोगि-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारि कसाय-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्स०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति वत्तव्वं । पंचिं० तिरिक्खअपज्ज० अत्थि अप्पदर-अवट्ठिदविहत्तिया । एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० सव्व-एइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं । आहार०-आहार-मिस्स० अत्थि अवट्ठिदविहत्तिया । एवमकसायि०-सुहुमसांपराइय०-जहाक्खाद०-अभवसिद्धि०-सासण०-सम्मामिच्छाइ० ।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता ।

तीनों प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, चारों कषाय-वाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें कथन करना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीनों प्रकारके स्थान पाये जाते हैं ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित ये दो स्थान पाये जाते हैं भुजगार नहीं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रसलब्ध्य-पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधि-दर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें कथन करना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें भुजगारके बिना अल्पतर और अवस्थित ये दो स्थान पाये जाते हैं ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें केवल एक अवस्थित विभक्ति-स्थानवाले ही जीव होते हैं । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यात-संयत, अभव्य, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४१९. सादिय-अणादिय-धुव-अद्धुव-अणिओगद्दाराणि जाणिदूण वत्तव्वाणि।

§ ४२०. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। एवं सत्तमपुढवि०-तिरिक्ख-पंचि०तिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज०-पंचि० तिरि० जोणिणी-मणुस्सतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारि क०-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धिय०-सण्णि०-आहारि त्ति वत्तव्वं। पंचि० तिरि० अपज्ज० अप्पदर० अवट्ठिद० कस्स? अण्णदरस्स। एवं मणुसअपज्ज०, अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचि० अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय - मदि - सुद-अण्णाण-विहंग०-मिच्छाइ०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं।

§ ४२१. आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठिद० कस्स? अण्णदरस्स। एवमकसायि०-

§ ४१९. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुयोगद्वारोंको जानकर कथन करना चाहिये।

§ ४२०. स्वामित्व अनुयोगद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होते हैं? यथासम्भव किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होते हैं। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वीके जीवोंमें तथा तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनीमती, सामान्य पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस-पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाय-योगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होते हैं? किसी भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके होते हैं। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिए।

§ ४२१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्ति-स्थान किसके होता है? किसी भी आहारककाययोगी या आहारकमिश्रकाययोगी जीवके होता है। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-

अहाक्खाद०-सासण०-सम्मामि०वत्तव्वं। अवगद० अप्पदरं कस्स? खवयस्स। अवट्ठिदं कस्स? अण्ण० उवसामयस्स खवयस्स वा। आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज० अप्पदरं कस्स? अण्ण०। अवट्ठिदं कस्स? अण्ण०। एवं संजदासंजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजद-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदय-उवसम० वत्तव्वं। सुहुम-सांपराइय० अवट्ठिदं कस्स? अण्णदर० उवसामयस्स खवयस्स वा। अभवसि० अवट्ठिदं कस्स? अण्णद०। खइयसम्माइट्ठि० अप्पदरं कस्स? खवयस्स। अवट्ठिद० कस्स? अण्ण०।

एवं सामित्तं समत्तं।

* एत्थ एगजीवेण कालो।

§ ४२२. समुक्कित्तणं सामित्तं सेसाणिओगद्दाराणि च अभणिदूण कालाणिओग० चेव भणंतस्स जइवसह-भयवंतस्स को अहिप्पाओ? कालाणिओगद्दारे अवगए संते

दृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये।

अपगतवेदी जीवोंमें अल्पतर विभक्तिस्थान किसके होता है? क्षपक अपगतवेदीके होता है। अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी उपशामक या क्षपक अपगतवेदी जीवके होता है।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें अल्पतर विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके होता है। उक्त चार ज्ञानवाले जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके होता है। इसीप्रकार संयतासंयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिये।

सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी उपशामक या क्षपक सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवके होता है। अभव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी अभव्यके होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी क्षपक क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके होता है। अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होता है? किसी भी क्षायिकसम्यग्दृष्टिके होता है।

इसप्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

* अब एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन करते हैं।

§ ४२२. शंका—यतिवृषभ आचार्यने समुत्कीर्तना, स्वामित्व और शेष अनुयोगद्वारोंका कथन न करके केवल कालानुयोगद्वारका कथन किया, सो इससे उनका क्या अभिप्राय है?

समाधान—कालानुयोगद्वारके ज्ञात हो जानेपर बुद्धिमान शिष्य दूसरे अनुयोगद्वारोंको

सेसाणिओगद्दाराणि बुद्धिमंतेहि सिस्सेहि अवगंतुं सक्किजंति, सेसाणिओगद्दाराणं काल-जोणित्तादो, तेण कालाणुओगद्दारं चेव परूवेमि त्ति एदेण अहिप्पाएण एत्थ एगजीवेण कालो त्ति भणिदं।

*** भुजगार-संतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।**

§ ४२३. कुदो ? छव्वीसविहत्तिएण सत्तावीसविहत्तिएण वा सम्मत्ते गहिदे जहण्णुक्कस्सेण भुजगारस्स एगसमयमेत्तकालुवलंभादो। को भुजगारो णाम ? अप्पदरपयडिसंतादो बहुदरपयडिसंतपडिवज्जणं भुजगारो। चउवीससंतकम्मियसम्मादिट्ठिम्मि मिच्छत्तमुवगदम्मि वि भुजगारस्सेगसमओ लब्भइ, चउवीससंतादो अट्ठावीससंतमुवगयस्स पयडिवड्ढिदंसणादो।

*** अप्पदर-संतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ।**

जान सकते हैं, क्योंकि शेष अनुयोगद्वारोंका काल अनुयोगद्वार योनि है। इसलिये 'मैं ( यतिवृषभ आचार्य ) कालानुयोगद्वारका ही कथन करता हूँ' इस अभिप्रायसे यतिवृषभ आचार्यने यहां 'एगजीवेण कालो' यह सूत्र कहा है।

*** भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।**

§ ४२३. **शंका**—भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कैसे है ?

**समाधान**—जब कोई एक छब्बीस विभक्तिस्थानवाला या सत्ताईस विभक्तिस्थानवाला जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाला होता है तब उसके भुजगारका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है।

**शंका**—भुजगार किसे कहते हैं ?

**समाधान**—थोड़ी प्रकृतियोंकी सत्तासे बहुत प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होना भुजगार कहलाता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होकर जिसके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तब उसके भी भुजगारका एक समय मात्र काल देखा जाता है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तासे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त हुए जीवके प्रकृतियोंमें वृद्धि देखी जाती है, इसलिये यह भुजगार है।

*** अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है।**

§ ४२४. कुदो ? अट्ठावीस-विहत्तिएण अणंताणुबंधिचउक्के विसंजोइदे अप्पदरस्स एगसमयकालुवलंभादो। एवं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तुव्वेल्लिदपढमसमए मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-सम्मत्ताणि खविदपढमसमए खवगसेढीए खविदपयडीणं पढमसमए च अप्पदरस्स एगसमओ जहण्णओ परूवेयव्वो।

* उक्कस्सेण बे समया।

§ ४२५ कुदो ? णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिं चडिदम्मि सवेदयदुचरिमसमए इत्थिवेदे परसरूवेण संकामिदे तेरससंतकम्मादो बारससंतकम्ममुवणमिय से काले णवुंसयवेदे उदयट्ठिदं गालिय बारससंतकम्मादो एक्कारससंतकम्ममुवगयम्मि णिरंतरमप्पदरस्स बेसमयउवलंभादो।

* अवट्ठिदसंतकम्मविहत्तियाणं तिण्णि भंगा।

§ ४२६. तं जहा, केसिं पि अणादिओ अपज्जवसिदो, अभव्वेसु अभव्वसमाणभव्वेसु च णिच्चणिगोदभावमुवगएसु अवट्ठाणं मोत्तूण भुजगारअप्पदराणमभावादो।

§ ४२४. शंका–अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवका जघन्यकाल एक समय कैसे है ?

समाधान–जो अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाला जीव अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना करता है उसके अल्पतरका एक समय मात्र काल देखा जाता है।

इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना कर चुकनेपर पहले समयमें, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षय कर चुकनेपर पहले समयमें तथा क्षपक श्रेणीमें क्षयको प्राप्त हुई प्रकृतियोंके क्षय हो चुकनेपर पहले समयमें अल्पतरके एक समयप्रमाण जघन्य कालका कथन करना चाहिये।

* अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवका उत्कृष्टकाल दो समय है।

§ ४२५. शंका–अल्पतर विभक्तिस्थानवालेका उत्कृष्टकाल दो समय कैसे है ?

समाधान–जब कोई जीव नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़कर और और सवेद भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदको परप्रकृतिरूपसे संक्रान्त करके तेरह प्रकृतियोंकी सत्तासे बारह प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होता है और उसके अनन्तर समयमें ही नपुंसकवेदकी उदयस्थितिको गलाकर बारह प्रकृतियोंकी सत्तासे ग्यारह प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होता है तब उसके अल्पतरका निरन्तर दो समय प्रमाण काल देखा जाता है।

* अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंके अवस्थित विभक्तिस्थानोंके तीन भंग होते हैं।

§ ४२६. वे इसप्रकार हैं–किन्हीं जीवोंके अवस्थित विभक्तिस्थान अनादि-अनन्त होता है, क्योंकि जो अभव्य हैं या अभव्योंके समान नित्यनिगोदको प्राप्त हुए भव्य हैं, उनके अवस्थित स्थानके सिवाय भुजगार और अल्पतर स्थान नहीं पाये जाते हैं। किन्हीं जीवोंके

केसिं पि अणादिओ सपज्जवसिदो, अणादिसरूवेण छब्बीसपयडीसंतम्मि अच्छिय सम्मत्तग्गहणपढमजीवम्मि अवट्ठाणस्स अणादिसणिहणत्तदंसणादो। केसिं पि सादिसपज्जवसिदो।

* तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जह० एगसमओ।

§ ४२७. कुदो? अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिदुचरिमसमयम्मि सम्मत्तमुव्वेलिय अप्पदरं काऊण तदो मिच्छादिट्ठिचरिमसमयम्मि एगसमयमवट्ठाणं काऊण तदियसमए सम्मत्तं पडिवण्णजीवम्मि अप्पदरभुजगाराणं मज्झे अवट्ठिदस्स एगसमयकालुवलंभादो।

* उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

अवस्थित विभक्तिस्थान अनादि-सान्त होता है, क्योंकि जिस जीवके अनादि कालसे छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्ता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर अवस्थित विभक्तिस्थान अनादि-सान्त देखा जाता है। किन्हीं जीवोंके अवस्थित विभक्तिस्थान सादि-सान्त होता है।

* इन तीनोंमेंसे जो अवस्थित विभक्तिस्थानका सादि-सान्त भंग है उसका जघन्यकाल एक समय है।

§ ४२७. शंका–इसका जघन्यकाल एक समय कैसे है?

समाधान–जो जीव अन्तरकरण करनेके अनन्तर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके अट्ठाईस विभक्तिस्थानसे सत्ताईस विभक्तिस्थानको प्राप्त होकर एक समय तक अल्पतर विभक्तिस्थानवाला होता है। अनन्तर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके अन्तिम समयमें सत्ताईस विभक्तिस्थानरूपसे एक समय तक अवस्थित रहकर मिथ्यात्वके उपान्त्य समयसे तीसरे समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाला होता है उसके अल्पतर और भुजगारके मध्यमें अवस्थितका जघन्यकाल एक समय देखा जाता है।

विशेषार्थ–यहां अवस्थित विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय बतलाते समय मिथ्यात्वगुणस्थानके अन्तके दो समय और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए सम्यग्दृष्टिका पहला समय, इसप्रकार ये तीन समय लेना चाहिये। इनमेंसे पहले समयमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना कराके सत्ताईस विभक्तिस्थान प्राप्त करावे, दूसरे समयमें तदवस्थ रहने दे और तीसरे समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कराके अट्ठाईस विभक्तिस्थानको प्राप्त करावे। तब जाकर अल्पतर और भुजगार विभक्तिस्थानके मध्यमें अवस्थितविभक्तिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा भी अवस्थितका एक समय काल प्राप्त किया जा सकता है।

* अवस्थित विभक्तिस्थानका उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्टकाल है।

§ ४२८. ऊणस्स अद्धपोग्गलपरियट्टस्स उवड्ढपोग्गलमिदि सण्णा। उपशब्दस्य हीनार्थवाचिनो ग्रहणात्। तं जहा–एगो अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि वि करणाणि काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो। तत्थ सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए संसारमणंतं सम्मत्तगुणेण छेत्तूण पुणो सो संसारो तेण अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो। सव्व-लहुएण कालेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णुव्वेल्लणद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेलिय अप्पदरं करिय अवट्ठाणमुवगदो। पुणो एदेण पलिदो० असंखे० भागेणूण-मद्धपोग्गलपरियट्टमवट्ठिदेण सह परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं घेत्तूण भुजगारविहत्तिओ जादो। एवमवट्ठिदस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणमद्ध-पोग्गलपरियट्टमुक्कस्सकालो। एवमचक्खु० भवसिद्धि०।

§ ४२९. संपहि जइवसहाइरियपरूविदमोघमुच्चारणसरिसं भणिय बालजणाणुग्ग-हट्ठं परूविदमुच्चारणादेसं वत्तइस्सामो।

§ ४३०. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु भुज० अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ।

§ ४२८. अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालसे कुछ कम कालकी उपार्धपुद्गलपरिवर्तन संज्ञा है, क्योंकि यहांपर 'उप' शब्दका अर्थ हीन लिया है। उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है–कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तथा सम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमें सम्यक्त्वगुणके द्वारा अनन्त संसारका छेदन कर उसने उस संसारको अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र कर दिया। अनन्तर वह अतिलघु कालके द्वारा मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और सबसे जघन्य उद्वेलनकालके द्वारा सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके २८ विभक्तिस्थानसे सत्ताईस और सत्ताईस विभ-क्तिस्थानसे छब्बीस, इसप्रकार अल्पतर करता हुआ छब्बीस विभक्तिस्थानमें अवस्थानको प्राप्त हो गया। यह सब काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। अतः इस कालसे न्यून अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक अवस्थित विभक्तिस्थानके साथ संसारमें परिभ्रमण करके वह जीव संसारमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह जानेपर सम्यक्त्वको ग्रहण करके छब्बीस विभक्तिस्थानसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानको प्राप्त करके भुजगारविभक्तिस्थानवाला हो जाता है। इसप्रकार अवस्थित विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र प्राप्त होता है। इसीप्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये।

§ ४२९. इसप्रकार यतिवृषभाचार्यके द्वारा कहे गये ओघनिर्देशका, जो कि उच्चारणाके समान है, कथन करके अब बाल जनोंके अनुग्रहके लिये कहे गये उच्चारणामें वर्णित आदेशको बतलाते हैं–

§ ४३०. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें भुजगार और अल्पतरका

अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। पढमादि जाव सत्तमित्ति भुज० अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी। एवं तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पज्ज०-पंचिं० तिरि० जोणिणीसु। णवरि अवट्ठिद० उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी। एवं मणुस-मणुसपज्जत्तएसु। णवरि अप्प० जह० एगस० उक्क० बे समया। मणुसणीणमेवं चेव, णवर अप्प० जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। पंचिं० तिरि० अपज्ज० अप्पदर० केव०? जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठिद० के०? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं मणुस अपज्ज० वत्तव्वं।

§ ४३१. देव० भुज० अप्पदर० केव०? जहण्णुक्क एगसमओ। अवट्ठिद० के०? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। भवणादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति भुज० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठिद० के०? जह० एगसमओ, उक्क० सग-

जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। पहली पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसीप्रकार सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें भुजगार आदि तीनोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिये। यहां इतनी विशेषता है कि इन सामान्य तिर्यंच आदिकमें अवस्थितका उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। इसीप्रकार सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त जीवोंमें कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतरका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय कहना चाहिये। स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतरका काल कितना है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितका काल कितना है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके अल्पतर और अवस्थितके जघन्य और उत्कृष्टकालका कथन करना चाहिये।

§ ४३१. देवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल कितना है? इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितका काल कितना है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। भवनवासियोंसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तक प्रत्येक जातिके देवोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अवस्थितका काल कितना है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण

सगुक्कस्सट्ठिदी। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पदर० जहण्णुक० एगसमओ। अव-ट्ठिद० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगसगउक्कस्सट्ठिदी।

§ ४३२. एइंदिय० अप्पदर० जहण्णुक० एकसमओ। अवट्ठिद० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। बादरसुहुम-एइंदियाणमेवं चेव। णवरि अवट्ठिद० उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। बादरेइंदियपज्ज० अप्पदर० के० ? जह-ण्णुक्क० एयसमओ। अवट्ठिद० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-विगलिंदियपज्ज० (अपज्ज०)-पंचिं० अपज्ज०-पंचकायाणं बादर-अपज्ज० तेसिं सुहुम पज्जत्तापज्जत्त-तस अपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं पंचिं० तिरिक्ख अपज्जत्तभंगो। विगलिंदिय-विगलिंदि-यपज्ज०-पंचकायाणं बादरपज्ज० बादरेइंदियपज्जत्तभंगो। पंचिंदिय-पंचिं० पज्ज०-तस-तसपज्जत्ताणं भुज० अप्पदर० ओघभंगो। अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० सगस-गुक्कस्सट्ठिदी।

है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक प्रत्येक स्थानमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

§ ४३२. एकेन्द्रियोंमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अव-स्थितका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके अल्पतर और अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्टकाल इसीप्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितका उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अल्पतरका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, विकलेन्द्रिय अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय बादर अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त, पांचों स्थावर काय सूक्ष्म अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान अल्पतर और अवस्थितका काल जानना चाहिये। विकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय पर्याप्त, पांचों स्थावर काय बादर अपर्याप्त जीवोंके अल्पतर और अवस्थितका काल बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

§ ४३३. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि० भुज० अप्प० ओघभंगो। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। कायजोगि-ओरालिय० भुज० अप्पदर० ओघभंगो। अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। आहार० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० वत्तव्वं। आहारमिस्स० अवट्ठि० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमुवसम०-सम्मामि०। णवरि उवसम० अप्प० जहण्णुक्क० एयसमओ। कम्मइय० अप्पदर० के० ? जहण्णुक्क० एयसमओ। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। वेउव्विय० भुज० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०।

§ ४३४. वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु भुज० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। अवगद० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्ठिद० जह० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्तं। कोध-माण-

§ ४३३. योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी और औदारिक काययोगी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। आहारक काययोगमें अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। इसीप्रकार कषाय रहित जीवोंमें तथा सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कथन करना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगमें अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपशमसम्यक्त्वमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। कार्मणकाययोगियोंमें अल्पतरका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। वैक्रियिककाययोगियोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ४३४. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अपगतवेदमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया और संज्वलन लोभमें भुजगार और

माया-लोभसंजल० भुज० अप्प० ओघभंगो। अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ ४३५. मदि-सुद-अण्णाण० अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्टि० तिण्णि भंगा। जो सो सादि सपज्जवसिदो, तस्स जह० एगसमओ उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। एवं मिच्छादिट्ठीणं वत्तव्वं। विहंग० अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्टिद० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी। आभिणि०-सुद०-ओहि० अप्पद० ओघभंगो। अवट्टिद० जह० दुसमऊण दोआवलियाओ, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। एवमोहिदंस० सम्मादिट्ठी० वत्तव्वं। मणपज्ज० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्टिद० जह० दुसमऊण दोआवलिय०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं परिहार० संजदासंजद०। णवरि, अवट्टिद० जह० अंतोमुहुत्तं। सामाइय-छेदो० अप्पदर० ओघभंगो। अवट्टिद० मणपज्जवभंगो। णवरि जह० एयसमओ। संजद० अप्पदर० अवट्टिद० सामाइयछेदोवट्ठावणभंगो। णवरि अवट्टि० जह० दुसमयूण दो आवलि०।

अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ४३५. मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितके तीन भंग हैं। उनमेंसे सादि-सान्त अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी अल्पतर और अवस्थितके कालका कथन करना चाहिये। विभंगज्ञानियोंमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्य काल दो समय कम दो आवलीप्रमाण और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर प्रमाण है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पतर और अवस्थितका काल कहना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्य काल दो समय कम दो आवलीप्रमाण और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। इसीप्रकार परिहार विशुद्धि संयत और संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके अवस्थितका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोंमें अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा इनके अवस्थितका काल मनःपर्ययज्ञानके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थितका जघन्यकाल एक समय है। संयतोंमें अल्पतर और अवस्थितका काल सामायिक और छेदोपस्थापनाके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि संयतोंमें

असंजद० भुज० अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठिद० मदि-अण्णाणीभंगो।

§४३६. चक्खु० तसपज्जत्तभंगो। पंचलेस्सा० भुज० अप्प० णारयभंगो। अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीस सत्तारस सत्त वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। सुक्कले० भुज० अप्प० ओघभंगो। अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि। एवं खइय०। णवरि० भुज० णत्थि। अवट्ठि० जह० दुसमयूण दोआवलि०। वेदग० आभिणि०भंगो। णवरि अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठि० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि। अभव्व० अवट्ठि० अणादि-अपज्जवसिदं। सासण० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० छआवलियाओ। सण्णि० भुज० अप्पदर० ओघभंगो। अवट्ठि० पुरिसभंगो। असण्णि० एइंदियभंगो। आहारि० भुज० अप्प० ओघभंगो। अवट्ठि० जह एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो।

अवस्थितका जघन्यकाल दो समय कम दो आवलीप्रमाण है। असंयतोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अवस्थितका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

§४३६. चक्षुदर्शनी जीवोंमें भुजगार आदिका काल त्रस पर्याप्त जीवोंके समान है। कृष्ण आदि पांच लेश्याओंमें भुजगार और अल्पतरका काल नारकियोंके समान है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागरप्रमाण है। शुक्ललेश्यामें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरप्रमाण है। इसीप्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भुजगार विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है। तथा अवस्थितका जघन्य काल दो समय कम दो आवलीप्रमाण है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर आदिका काल मतिज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर प्रमाण है। अभव्योंमें अवस्थितका काल अनादि-अनन्त है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलीमात्र है। संज्ञी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका काल पुरुषवेदियोंके समान है। असंज्ञी जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। आहारक जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण

अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमेगजीवेण कालो समत्तो ।

* एवं सव्वाणि अणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि ।

§ ४३७. सुगममेदं । एवं जइवसहाइरियेण सूइदाणं सेसाणिओगद्दाराणं मंद-बुद्धिजणाणुग्गहट्ठं उच्चारणाइरिएण लिहिदुच्चारणमेत्थ वत्तइस्सामो ।

§ ४३८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० विह० अंतरं के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । अप्प-दर० जह० दो आवलियाओ दुसमयूणाओ, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० वेसमया । एवमचक्खु० भवसिद्धि० वत्तव्वं । एवं तिरि-क्खा० णवुंस० असंजद० । णवरि अप्पदरस्स जहण्णंतरं दुसमयूण-दोआवलियमेत्तं णत्थि किंतु अंतोमुहुत्तमेत्तं । कथमवट्ठिदस्स उकस्संतरं दुसमयमेत्तं ? उवदे-पढमसम्मत्ता-हिमुहेण दंसणमोहस्स कयंतरेण अवट्ठिदपदावट्ठिदेण मिच्छत्तपढमट्ठिदिचरिमसमए

है । अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान जानना चाहिये ।

इसप्रकार एक जीवकी अपेक्षा काल समाप्त हुआ ।

* इसीप्रकार शेष अनुयोगद्वारोंका कथन कर लेना चाहिये ।

§ ४३७. चूँकि शेष अनुयोगद्वारोंका कथन सरल है, अतएव यतिवृषभ आचार्यने यहां उनका कथन नहीं किया ।

इसप्रकार यतिवृषभ आचार्यने उपर्युक्तसूत्रके द्वारा जिन शेष अनुयोगद्वारोंकी यहां सूचना की है, उच्चारणाचार्यके द्वारा लिखी गई उन अनुयोगद्वारोंकी उच्चारणाको मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये यहां बतलाते हैं—

§ ४३८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुजगारविभक्तिका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । अवस्थित-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । इसीप्रकार अचक्षु-दर्शनी और भव्य जीवोंके भुजगार आदि विभक्तियोंका अन्तर कहना चाहिये । इसी-प्रकार सामान्य तिर्यंच, नपुंसकवेदी और असंयत जीवोंके कहना चाहिये । यहां इतनी विशेषता है कि इन जीवोंके अल्पतरका जघन्य अन्तर काल दो समय कम दो आवली नहीं है किन्तु अन्तर्मुहूर्त है ।

शंका—अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय कैसे है ?

समाधान—जिसने दर्शनमोहनीयका अन्तरकरण किया है और जो मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तारूपसे अवस्थितपदमें स्थित है ऐसा कोई एक उपशम

सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेकदरमुव्वेलिय अप्पदरेणंतरिय विदियसमए सम्मत्तं घेत्तूण उव्वेल्लिदपयडिसंतमुप्पाइय भुजगारेणंतरिय तदियसमए अवट्ठाणे पदिदस्स उक्कस्सेण बेसमया अवट्ठिदस्स अंतरं ।

§ ४३६. आदेसेण णेरइय० भुज० अप्पद० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० बे-समया । कारणमेत्थ वि उवरिं पि पुव्विल्लमेव वत्तव्वं । पढमादि जाव सत्तमि त्ति भुज० अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ देसूणाओ । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० बेसमया । पंचिंदियतिरिक्खतिगे भुज० अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । अवट्ठि० ओघभंगो । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं । णवरि मणुस-मणुसपज्जत्तएसु अप्प० जह० दोआवलियाओ दु-समयूणाओ । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अप्पदरस्स णत्थि अंतरं । अवट्ठि० जह० उक्क० एगसमओ ।

सम्यक्त्वके सम्मुख हुआ जीव जब सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति इन दोमेंसे किसी एक प्रकृतिकी उद्वेलना करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें अल्पतर पदके द्वारा अवस्थित पदको अन्तरित करता है । तथा दूसरे समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उद्वेलित प्रकृतिकी सत्ताको पुनः उत्पन्न करके भुजगार पदके द्वारा अवस्थित पदको अन्तरित करता है और तीसरे समयमें पुनः अवस्थानपदको प्राप्त करता है तब उसके अवस्थितपदका उत्कृष्टरूपसे दो समय प्रमाण अन्तरकाल देखा जाता है ।

§ ४३६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण है । तथा अवस्थितका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । यहां पर भी अवस्थितके उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय होनेका कारण पहलेके समान कहना चाहिये । पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्ततिर्यंच और पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्यप्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है । इसीप्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और स्त्रीवेदी मनुष्योंके भुजगार आदिका अन्तरकाल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमें अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली प्रमाण है ।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंमें अल्पतरका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है ।

एवं मणुसअपज्ज०। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धी एइंदिय-बादरएइंदिय-तेसिं पज्ज० अपज्ज०-सुहुम०-तेसिं पज्ज० अपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय०-तेसिं बादर०-तेसिं पज्ज० अपज्ज०-सव्वसुहुम०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय-मिस्स०-कम्मइय-मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। णवरि एइंदिय-बादर-सुहुम०-पंचकाय० बादर-सुहुम-मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-मिच्छादि० असण्णीसु अप्पदर० जहण्णुक्क० पलिदो० असंखे० भागो।

§ ४४०. देवेसु भुज० अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० एकत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० ओघभंगो। भवणादि जाव उवरिम-गेवज्ज त्ति भुज० अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदीओ देसूणाओ। अवट्ठि० जहण्णुक्क० ओघभंगो। पंचिंदिय-पंचिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज० भुज० जह० अंतोमुहुत्तं, अप्पदर० जह० दोआवलियाओ दु-समऊणाओ। उक्क० दोण्हं पि सगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० ओघभंगो। पंचमण०-पंचवचि० भुज० णत्थि अंतरं। अप्पद० जहण्णुक्क०

तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों प्रकारके स्थावरकाय, पांचों प्रकारके बादर स्थावरकाय और उनके पर्याप्त अपर्याप्त, सभी प्रकारके सूक्ष्म, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर और सूक्ष्म पांचों स्थावरकाय, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ४४०. देवोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक प्रत्येक स्थानमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान है।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें भुजगारका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली है। तथा भुजगार और अल्पतर इन दोनोंका ही उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है।

बे-आवलियाओ दुसमऊणाओ। अवट्ठि० ओघभंगो। एवमोरालिय० कायजो०। भुज० णत्थि अंतरं। अप्प० जह० दो-आवलियाओ दु-समऊणाओ, उक्क० पलिदो- वमस्स असंखे० भागो। अवट्ठि० ओघभंगो। आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-सासण०-सम्मामि०-अभव्वसि० वत्तव्वं। वेउव्विय० भुज० अप्प० जहण्णुक्क० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० बेसमया।

§४४१. वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिस० भुज० अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० ओघभंगो। अवगद० अप्प० जहण्णुक्क० अंतोमु०, अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगसमओ। चत्तारि कसाय भुज० णत्थि अंतरं। अप्प० जह० दुसम- ऊणदोआवलिय०, उक्क० अंतोमु०। अवट्ठिद० ओघभंगो। आभिणि०-सुद०-ओहि०

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें भुजगारका अन्तर नहीं पाया जाता है। अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय कम दो आवली प्रमाण है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। इसीप्रकार औदारिककाययोगमें जानना चाहिये। यहां भी भुजगारका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाय- योगमें अवस्थितका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यात संयत, सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और अभव्य जीवोंमें कहना चाहिये। वैक्रियिक काययोगमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। तथा अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर- काल दो समय है।

§ ४४१. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। अपगतवेदमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है।

चारों कषायोंमें भुजगारका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समयकम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अव- स्थितका अन्तरकाल ओघके समान है।

मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें अल्पतरका अन्तरकाल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक छयासठ सागर है। तथा अवस्थितका अन्तर-

अप्प० जह० दो आवलियाओ दुसमऊणाओ, उक्क० छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि। अवट्ठिद० ओघभंगो। एवं सम्मादि०-ओहिदंसणी०। मणपज्जव० अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगसमओ। अप्प० जह० दोआवलियाओ दुसमऊणाओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। संजदासंजद-सामाइय छेदो० अप्पदर० अवट्ठि० मणपज्जवभंगो। णवरि संजदासंजद० अप्प० जह० अंतोमु०। सामाइयछेदो० अवट्ठि० उक्क० बेसमया। परिहार० संजदासंजदभंगो। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो।

§ ४४२. पंचलेस्सा० भुज० अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० तेतीस सत्तारस-सत्त-सागरो० देसूणाणि सादि०, बेअट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। अवट्ठि० ओघं। सुक्क० भुज० अप्प० जह० अंतोमु० दुसमऊण-दोआवलिय०, उक्क० एकतीससागरो० देसूणाणि सादि०। अवट्ठि० ओघभंगो। वेदयसम्मादि० अप्पदर० जह० अंतोमु० छावट्ठि० सा० देसूणाणि। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एयसमओ। खइय० अप्प० जह०

काल ओघके समान है। इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि और अवधिदर्शनी जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्यय ज्ञानमें अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तथा अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है। संयतासंयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके अल्पतर और अवस्थितका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानके समान है। इतनी विशेषता है कि संयतासंयतजीवके अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय है। परिहारविशुद्धि-संयत जीवोंके संयतासंयत जीवोंके समान कथन करना चाहिये। चक्षुदर्शनमें त्रसपर्याप्तकोंके समान कथन करना चाहिये।

§ ४४२. कृष्णादि पांचों लेश्याओंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल-अन्तर्मुहूर्त है और भुजगारका उत्कृष्ट अन्तरकाल कृष्ण, नील और कपोल लेश्यामें क्रमसे कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर, कुछ कम सात सागर तथा अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक तेतीस सागर, साधिक सतरह सागर और साधिक सात सागर है। तथा पीत और पद्मलेश्यामें दोनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमशः साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। शुक्ल लेश्यामें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और दो समय कम दो आवली है तथा भुजगारका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर और अल्पतरका अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर है। तथा शुक्लेश्यामें अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छयासठ सागर है। तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

दुसमऊणदोआवलि०, उक्क० अंतोमु० । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० बे-समया । उवसम० अप्प० णत्थि अंतरं । अवट्टि० जहण्णुक्क० एयसमओ । सण्णि० पुरिसभंगो । णवरि अप्प० जह० दुसमऊणदोआवलि० । आहारि० भुज० अप्प० जह० अंतोमु० दुसमऊण-दोआवलि०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो । अवट्टि० ओघभंगो ।

एवमेगजीवेण अंतरं समत्तं ।

§ ४४३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अवट्टिद० णियमा अत्थि, सेसपदाणि भयणिज्जाणि । एवं सत्तसु पुढवीसु, तिरिक्ख०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पज्ज०-पंचिं० तिरि० जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्जं ति-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि त्ति वत्तव्वं ।

समय है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है ।

संज्ञी मार्गणामें पुरुषवेदके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली प्रमाण है । आहारक जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और दो समय कम दो आवली प्रमाण है । उत्कृष्ट अन्तरकाल दोनोंका अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है ।

इसप्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४४३. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं अर्थात् भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कभी रहते भी हैं और कभी नहीं भी रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें तथा सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें, सामान्य देवोंमें और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छह लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें कहना चाहिये । अर्थात् इन मार्गणाओंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले

§ ४४४. पंचिं० तिरि० अपज्ज०· सिया सव्वे जीवा अवट्ठिदविहत्तिया, सिया अवट्ठिदविहत्तिया च अप्पदरविहत्तिओ च, सिया अवट्ठिदविहत्तिया च अप्पदरविहत्तिया च। एवं तिण्णि भंगा ३। एवमणुदिसादि जाव सव्वट्ठ त्ति-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०- ओरालियमिस्स०- कम्मइय०- मदिअण्णाण-सुद-अण्णा०- विहंग०- आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद - सामाइय-छेदो०-परिहार० -संजदासंजद -ओहिदंस०- सम्मादि० -खइय०-वेदय०- मिच्छादि० असण्णि०-अणाहारए त्ति वत्तव्वं। मणुसअपज्जत्त० अट्ठभंगा ८। एवं वेउव्विय-मिस्स०-अवगद०-उवसम० वत्तव्वं।

नाना जीव निरन्तर नियमसे पाये जाते हैं। पर शेष दो स्थानवाले जीव कदाचित् होते भी हैं और कदाचित् नहीं भी होते हैं।

§ ४४४. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें कदाचित् सभी जीव अवस्थितविभक्तिस्थानवाले होते हैं। कदाचित् अनेक जीव अवस्थित विभक्तिस्थानवाले और एक जीव अल्पतर विभक्तिस्थानवाला होता है। कदाचित् नाना जीव अवस्थित विभक्तिस्थानवाले और नाना जीव अल्पतर विभक्तिस्थानवाले होते हैं। इसप्रकार तीन भंग पाये जाते हैं। इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें तथा सभी प्रकारके एकेन्द्रिय, सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों प्रकारके स्थावर काय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें कहना चाहिये। अर्थात् इन मार्गणास्थानोंमें लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान कदाचित् सब जीव अवस्थित विभक्तिस्थानवाले होते हैं। कदाचित् नाना जीव अवस्थित विभक्तिस्थानवाले और एक जीव अल्पतर विभक्तिस्थानवाला होता है। तथा कदाचित् नाना जीव अवस्थित विभक्तिस्थानवाले और नाना जीव अल्पतर विभक्तिस्थानवाले होते हैं।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अवस्थित और अल्पतर विभक्तिस्थानोंमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—ये लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य आदि ऊपरकी चारों मार्गणाएं सान्तरमार्गणाए हैं। इनमें कदाचित् एक जीव और कदाचित् नाना जीव पाये जाते हैं। तथा कदाचित् इन मार्गणाओंमें एक भी जीव नहीं पाया जाता है। अतः इनमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले कदाचित् नाना जीवोंका और कदाचित् एक जीवका तथा अल्पतर विभक्तिस्थानवाले कदा-

§४४५. आहार०-आहारमिस्स० सिया अवट्ठिदविहत्तिओ, सिया अवट्ठिदविहत्तिया, एवं बे भंगा२। एवमकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-सासण०-सम्मामि० वत्तव्वं। अभव्व० अवट्ठि० णियमा अत्थि।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो।

§४४६. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० विहत्तिया केत्तिया? असंखेज्जा। अवट्ठि० केत्तिया? अणंता। एवं तिरिक्ख-कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारि कसाय०-असंजद-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसिद्धि०-आहारि त्ति वत्तव्वं।

§४४७. आदेसेण णेरइएसु भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति०? असंखेज्जा। एवं सत्तसु पुढवीसु, पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-

चित् नाना जीवोंका और कदाचित् एक जीवका पाया जाना संभव है। अतः इनके प्रत्येक और द्विसंयोगी इसप्रकार कुल आठ भंग हो जाते हैं।

§४४५. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कदाचित् अवस्थित विभक्तिस्थानवाला एक जीव तथा कदाचित् अवस्थित विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव इसप्रकार दो भंग होते हैं। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्म सांपरायसंयत, उपशमश्रेणीपर चढ़े हुए यथाख्यातसंयत, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये। ये उपर्युक्त सभी मार्गणाए सान्तरमार्गणाएं हैं और इनमें एक अवस्थित विभक्तिस्थान ही पाया जाता है। इसलिये इनमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो ही भंग होते हैं। अभव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे हैं।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

§४४६. परिमाणाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इसीप्रकार तिर्यंच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीनों लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंमें कथन करना चाहिये। अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थान वाले जीव असंख्यात और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्त हैं।

§४४७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमें, देवोंमें तथा भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी,

पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० -पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०- चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सण्णि० वत्तव्वं । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु अप्पदर० अवट्ठि० के० ? असंखेज्जा । एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव अवराजिद०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय०-तसअपज्ज०-वेउव्वियमिस्स०-विहंग०-आमिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठि-वेदय०-उवसम० वत्तव्वं ।

§ ४४८. मणुस्सेसु भुज० के० ? संखेज्जा । अप्पदर० अवट्ठि० के० ? असंखेज्जा । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज० अप्पदर० अवट्ठि० के० ? संखेज्जा । सव्वट्ठे अप्पदर० अवट्ठि० के० ? संखेज्जा । एवमवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार० वत्तव्वं ।

§ ४४९. एइंदिएसु अप्पदर० के० ? असंखेज्जा । अवट्ठि० के० ? अणंता । एवं

पांचों वचनयोगी, वैक्रयिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्म-लेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले और संज्ञी जीवोंमें कथन करना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें नारकियोंके समान भुजगार आदि तीनों विभक्तिस्थानवाले जीव पृथक् पृथक् असंख्यात असंख्यात हैं ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें, अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें, तथा सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पृथिवी आदि चार प्रकार के स्थावर काय, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान अल्पतर अवस्थित ये दो स्थान होते हैं । तथा प्रत्येक स्थानमें असंख्यात जीव होते हैं ।

§ ४४८. सामान्य मनुष्योंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीव कितने होते हैं ? संख्यात होते हैं । तथा अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार अपगत वेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयतोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

§ ४४९. एकेन्द्रियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय,

बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जतापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्ववणप्फदिकाइय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादिट्ठि-असण्णि० आणाहारि त्ति वत्तव्वं। आहार०आहारमिस्स० अवट्ठि० के० ? संखेज्जा। एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं। अभव्व० अवट्ठि० के० ? अणंता। खइय० अप्पदर० के० ? संखेज्जा। अवट्ठि० के० ? असंखेज्जा। सासण-सम्मामि० अवट्ठि० के० ? असंखेज्जा।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो।

§ ४५०. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अवट्ठिदविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा। भुजगार-अप्पदरविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो। एवं तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-आहारि० वत्तव्वं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी प्रकारके वनस्पतिकायिक, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्या कहना चाहिये।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात संयत जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात कहना चाहिये।

अभव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

इसप्रकार परिमाणानुगम द्वार समाप्त हुआ।

§ ४५०. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ? ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यंच, काययोगी, औदारिक काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंमें अवस्थित आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये।

§ ४५१. आदेसेण णेरईएसु अवट्ठिद० के० भागो? असंखेज्जा भागा। भुज० अप्पद० के० भागो? असंखे० भागो। एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं० तिरि० पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणी-मणुस्स-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज० -तस-तसपज्ज०- पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०- इत्थि०- पुरिस०- चक्खु०-तिण्णिले०-सण्णि त्ति वत्तव्वं। पंचिं०तिरि०अपज्ज० अवट्ठि० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? असंखेज्जा भागा। अप्पदर० असंखे०भागो। एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दि-सादि जाव अवराइद०-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज० -चत्तारिकाय-तसअपज्ज०-वेउ-व्वियमिस्स०-विहंग०-आभिणि०-सुद०- ओहि०-संजदासंजद- ओहिदंसण०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम० वत्तव्वं।

§ ४५२. मणुस्सपज्ज०-मणुसिणी० अवट्ठि० संखेज्जा भागा। भुज० अप्पदर० केव०? संखे० भागो। सव्वट्ठ० अवट्ठि० सव्वजी० के०? संखेज्जा भागा। अप्प०

§ ४५१. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सर्व नारकियोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितनेवें भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनीमती, सामान्य मनुष्य और सामान्य देवोंमें तथा भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले और संज्ञी जीवोंमें कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। तथा अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंमें, अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें तथा सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पृथिवी आदि चार स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा भागाभाग कहना चाहिये।

§ ४५२. मनुष्यपर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितनेवें भागप्रमाण हैं? संख्यातवें भागप्रमाण हैं। सर्वार्थसिद्धिमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सर्वार्थसिद्धिके सभी देवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा

संखे० भागो । एवं अवगद०-मणपज्ज०-संजद-सामाइयछेदो०-परिहार० वत्तव्वं । सव्वएइंदिएसु अवट्ठि० सव्व० के० ? अणंता भागा । अप्पद० सव्व० के० ? अणंतिमभागो । एवं वणप्फदि०-णिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदिअण्णाण-सुद०-मिच्छादि०-असण्णि० अणाहारि० वत्तव्वं । आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठि० भागाभागो णत्थि । एवमकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-अभव०-सासण०-सम्मामि० वत्तव्वं ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

§ ४५३. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अवट्ठिदविहत्तिया केवडि० खेत्ते ? सव्वलोए । भुज०अप्पद० के० खेत्ते ? लोगस्स असंखे० भागे । एवं सव्वासिमणंतरासीणं चत्तारिकाय बादर० अपज्ज० सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं

अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसीप्रकार अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, और परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें अवस्थित और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

सभी प्रकारके एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सभी एकेन्द्रियोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । तथा अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव सभी एकेन्द्रियोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । इसीप्रकार वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अवस्थित और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें एक अवस्थित विभक्तिस्थान ही पाया जाता है, इसलिये वहां भागाभाग नहीं है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यात संयत, अभव्य, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें एक अवस्थित विभक्तिस्थान पाया जाता है इसलिये यहां भी भागाभाग नहीं पाया जाता, ऐसा कहना चाहिये ।

इसप्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४५३. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार जितनी भी अनन्त राशियां हैं उनका तथा पृथिवी आदि चार स्थावरकाय तथा इनके बादर और बादर-अपर्याप्त, सूक्ष्म, सूक्ष्मपर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र कहना चाहिये । इतनी

च वत्तव्वं। णवरि पदविसेसो जाणियव्वो। बादरवाउ०पज्ज० अवट्ठि० केव०? लोगस्स संखे० भागे। अप्प० असंखे० भागे। सेससंखेज्जासंखेज्जसव्वरासीओ केवडि० खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

§ ४५४. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुजगारविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस भागा वा देसूणा। अप्पदरविहत्तिए केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा। अवट्ठि० सव्वलोगो। एवं कायजोगि-चत्तारि कसाय-असंजद०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारि त्ति वत्तव्वं।

§ ४५५. आदेसेण णेरइएसु भुज० खेत्तभंगो। अप्पदर० अवट्ठिदविहत्तिएहि केव० फोसिदं? लोगस्स असंखे० भागो, छ चोद्दस भागा वा देसूणा। पढमपुढवि०

विशेषता है जहां जितने अवस्थित आदि पद हों उन्हें जानकर ही तदनुसार क्षेत्र कहना चाहिये। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। तथा ये ही बादरवायुकायिक अल्पतर विभक्तिस्थानवाले पर्याप्त जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली सर्व जीव राशियां कितने क्षेत्रमें रहती हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं।

इसप्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ४५४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें भुजगार आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन कहना चाहिये।

§ ४५५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगारविभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें भुजगार आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका

खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति भुज० खेत्तभंगो। अप्पदर० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो। एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दस-भागा वा देसूणा।

§ ४५६. तिरिक्खेसु भुज० अवट्ठिदाणं खेत्तभंगो। अप्पद० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। एवमोरालि०-णवुंस०-तिण्णिले० वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि० पज्ज०-पंचिं० तिरि० जोणिणीसु भुजगार० खेत्तभंगो। अप्पद० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो, सव्वलोगो वा। एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं। पंचिं० तिरि० अपज्ज० अप्पद० अवट्ठिदवि० के० खे० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो, सव्वलोगो वा। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०।

स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे दूसरी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम एक राजु, तीसरी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम दो राजु, चौथी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम तीन राजु, पांचवीं पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम चार राजु, छठी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम पांच राजु और सातवीं पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम छह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ ४५६. तिर्यंचोंमें भुजगार और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तिर्यंचोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी और कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा इन्हीं तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके स्पर्शका कथन करना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये।

§ ४५७. देव० भुज० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दस-भागा वा देसूणा । अप्पद० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-णव-चोद्दसभागा वा देसूणा । एवं सोहम्मीसाणेसु । भवण०-वाण०-जोदिसि० एवं चेव, णवरि जम्मि अट्ठ-णव चोद्दसभागा देसूणा त्ति वुत्तं तम्मि अद्धुट्ठ-अट्ठ-णव-चोद्दसभागा देसूणा त्ति वत्तव्वं । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारे त्ति भुज० अप्प० अवट्ठि० केव० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा । आणद-पाणद-आरणच्चुद एवं चेव । णवरि छ चोद्दसभागा देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगदवेद०-अकसा०-मणपज्जव०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-अभविय० वत्तव्वं ।

§ ४५८. एइंदिएसु अप्प० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो

§ ४५७. देवोंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें भुजगार आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें भी इसीप्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामान्य देवोंमें जिन विभक्तिस्थानवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण स्पर्श कहा है, भवनत्रिक देवोंमें त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम साढ़े तीन भाग, कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण स्पर्श कहना चाहिये । सनत्कुमार स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पके देवोंमें भी इसीप्रकार स्पर्श कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहांके भुजगार आदि विभक्तिस्थानवाले देवोंने त्रस-नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इनके ऊपर नौ ग्रैवेयक आदिके देवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, सामा-यिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायसंयत, यथाख्यातसंयत और अभव्य जीवोंमें कहना चाहिये ।

§ ४५८. एकेन्द्रियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया

वा। अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदि० अपज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढवि० अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि० पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ० अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ० पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ० अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ०पज्जत्तापज्जत्ताणं वत्तव्वं। बादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ० पज्ज०-बादरतेउपज्जत्ताणं अप्पदर-अवट्ठिदविहत्तिएहि के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ-अपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवा० पज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स०-असण्णीणमेइंदियभंगो। बादरवाउ०पज्ज० अप्पद० लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं? लोगस्स संखे० भागो, सव्वलोगो वा।

§ ४५६. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज-तस-तसपज्ज० भुज० अप्प० ओघभंगो। अवट्ठि०

---

है? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी और असंज्ञी जीवोंका स्पर्श एकेन्द्रियोंके समान है। बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकक्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा उनमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके संख्यातवें भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ ४५६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। तथा उक्त चारों प्रकारके

के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा, सव्वलोगो वा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस० चक्खु०-सण्णि० वत्तव्वं। वेउव्विय० भुज० अप्प० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ-तेरह चोद्दस-भागा वा देसूणा। णवरि भुज० तेरस० णत्थि। कम्मइय० अप्प० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा। अवट्ठिद० के० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। मदि-अण्णाण-सुद-अण्णाण० अप्प० ओघभंगो, अवट्ठि० ओघं। एवं मिच्छादिट्ठी०। विहंग० अप्प० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। आभिणि०-सुद०-ओहि० अप्प० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो। अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। एव-

जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें भुजगार आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये।

वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिककाययोगियोंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श त्रसनालीके तेरह भाग प्रमाण नहीं पाया जाता है। कार्मणकाययोगियोंमें अल्पतर विभक्ति स्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

मति-अज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका भी स्पर्श ओघके समान है। इसीप्रकार मिथ्यादृष्टियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये। विभङ्गज्ञानियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि

मोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०-उवसम० वत्तव्वं। संजदासंजद० अप्प० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो। अवट्ठि० लोग० असंखे० भागो, छ चोद्दस० देसूणा। तेउ० सोहम्मभंगो। पम्म० सणक्कुमारभंगो। सुक्क० आणदभंगो। खइय० अप्प० खेत्तभंगो। अवट्ठि० लोग० असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दस० देसूणा। सम्मामि० अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। सासण० अवट्ठि० लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-बारह-चोद्दस० देसूणा। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं फोसणाणुगमो समत्तो।

§४६०. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज० अप्प० के०? जह० एगसमओ उक्क० आवलियाए असंखे० भागो। अवट्ठि० के०? सव्वद्धा। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगे-

और उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये। संयतासंयतोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजुमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

तेजोलेश्यामें सौधर्म स्वर्गके समान, पद्मलेश्यामें सानत्कुमार स्वर्गके समान और शुक्ललेश्यामें आनत स्वर्गके समान स्पर्श जानना चाहिये। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान जानना चाहिये।

इसप्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ ४६०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतरविभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है? सर्वकाल है। इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिययोनीमती तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव

वज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारि कसाय०-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-छल्लेस्स०-भव-सिद्धि०--सण्णि०-आहारि० वत्तव्वं । पंचिं० तिरि०अपज्ज० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्टि० सव्वद्धा । एवमणुद्दिसादि जाव अवराइद-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय० -- मदिअण्णाण - सुदअण्णाण - विहंग० - आभिणि० -सुद० - ओहि० - संजदा-संजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदगसम्मा०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं ।

§ ४६१. मणुस० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अप्प० जह०

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें भुजगार आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जब बहुतसे जीव एक समय तक भुजगार और अल्पतर विभक्तिको करते है, किन्तु दूसरे समयमें संसारमें कोई जीव इन विभक्तियोंको नहीं करता तब भुजगार और अल्पतरका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । तथा प्रत्येक समयमें अन्य अन्य नाना जीव भुजगार और अल्पतर विभक्तियोंको निरन्तर करें तो आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक करते हैं। अतः भुजगार और अल्पतरका उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । तथा अवस्थित पदका काल सर्वदा स्पष्ट ही है । ऊपर और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें उक्त व्यवस्था बन जाती है अतः उनमें भुजगार आदिके कालको ओघके समान कहा है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव निरन्तर पाये जाते हैं, इसलिये उनका सर्वकाल है । इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें तथा सभी एके-न्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये ।

§ ४६१. सामान्य मनुष्योंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल

एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो। अवट्टि० सव्वद्धा। मणुसपज्ज०-मणु-सिणीसु भुज० अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अवट्टि० सव्वद्धा। मणुसअपज्ज० अप्पद० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो। अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। एवं वेउव्वियमिस्स०। सव्वट्ठे अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अवट्टि० सव्वद्धा। एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-खइयसम्माइट्ठि त्ति वत्तव्वं। आहार० अवट्टि० जह० एय-समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं। आहारमिस्स० अवट्टि० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं।

§४६२. उवसम० सम्मामि० अवट्टि० जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० पलिदो० असंखे०।

एय समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्व काल है। पर्याप्त मनुष्य और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये इनका सर्व काल है। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल जानना चाहिये।

सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले सर्वार्थसिद्धिके देव सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्वकाल है। इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये।

आहारक काययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात संयतोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये। आहारक-मिश्रकाययोगियोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§४६२. उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

भागो ।

§ ४६३. उवसमसम्मादिट्ठिस्स अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंतस्स अप्पदरं होदि त्ति तत्थ अप्पदरकालपरूवणा कायव्वा त्ति ? ण, उवसमसम्मादिट्ठिम्मि अणंताणुबंधिविसंजोयणाए अभावादो । तदभावो कुदो णव्वदे ? उवसमसम्मादिट्ठिम्मि अवट्ठिदपदं चेव परूवेमाण-उच्चारणाइरियवयणादो णव्वदे । उवसमसम्मादिट्ठिम्मि अणंताणुबंधिचउक्कविसंजोयणं भणंत-आइरियवयणेण विरुज्झमाणमेदं वयणमप्पमाणभावं किंण ढुक्कदि ? सच्चमेदं जदि तं सुत्तं होदि। सुत्तेण वक्खाणं बाहिज्जदि ण वक्खाणेण वक्खाणं । एत्थ पुण दो वि उवएसा परूवेयव्वा दोण्हमेक्कदरस्स सुत्ताणुसारित्तावगमाभावादो । किमट्ठमुवसमसम्मादिट्ठिम्मि अणंताणुबंधिचउक्कविसंजोयणा णत्थि ?

§ ४६३. शंका—जो उपशमसम्यग्दृष्टि चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करता है उसके अल्पतर विभक्तिस्थान पाया जाता है, इसलिए उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानके कालकी प्ररूपणा करनी चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना नहीं पाई जाती है ।

शंका—उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना नहीं होती है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—उपशमसम्यग्दृष्टिके एक अवस्थित पद ही होता है इसप्रकार प्रतिपादन करनेवाले उच्चारणाचार्यके वचनसे जाना जाता है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना नहीं होती ।

शंका—उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना होती है इसप्रकार कथन करनेवाले आचार्य वचनके साथ यह उक्त वचन विरोधको प्राप्त होता है इसलिये यह वचन अप्रमाण क्यों नहीं है ?

समाधान—यदि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजनाका कथन करनेवाला वचन सूत्रवचन होता तो यह कहना सत्य होता, क्योंकि सूत्रके द्वारा व्याख्यान बाधित होजाता है, परन्तु एक व्याख्यानके द्वारा दूसरा व्याख्यान बाधित नहीं होता । इसलिये उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती है यह वचन अप्रमाण नहीं है । फिर भी यहां पर दोनों ही उपदेशोंका प्ररूपण करना चाहिये; क्योंकि दोनोंमेंसे अमुक उपदेश सूत्रानुसारी है इसप्रकारके ज्ञान करनेका कोई साधन नही पाया जाता है ।

शंका—उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना क्यों नही होती है ?

**उवसमसम्मत्तकालं पेक्खिय अणंताणुबंधिचउक्कविसंजोयणाकालस्स बहुत्तादो अणंताणुबंधिविसंजोयणपरिणामाणं तत्थाभावादो वा। एत्थ पुण विसंजोयणापक्खो चेव पहाणभावेणावलंबियव्वो पवाइज्जमाणत्तादो चउवीससंतकम्मियस्स सादिरेयबेछावट्ठिसागरोवममेत्तकालपरूवयसुत्ताणुसारित्तादो च। तदो अप्पदरसंभवो वि सव्वत्थाणुम-**

**समाधान**—उपशम सम्यक्त्वके कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनाका काल अधिक है, अथवा वहां अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके कारणभूत परिणाम नहीं पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबधीकी विसंयोजना नहीं होती है।

फिर भी यहां उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है यह पक्ष ही प्रधानरूपसे स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि, इस प्रकारका उपदेश परंपरासे चला आ रहा है। तथा इस प्रकारका उपदेश 'चौबीस सत्त्वस्थानवाले जीवका काल साधिक एकसौ बत्तीस सागरप्रमाण है' इस प्रकार प्ररूपण करनेवाले सूत्रके अनुसार है। इस लिये सर्वत्र उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानकी सम्भावना भी समझ लेना चाहिये।

**विशेषार्थ**—यहां उपशमसम्यक्त्वमें अल्पतरविभक्तिका कथन नहीं किया है। इसपर शंकाकारका कहना है कि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके २८ विभक्तिस्थानसे २४ विभक्तिस्थानको प्राप्त होता है अतः उसके अल्पतरविभक्तिका कथन करना चाहिये। इस शंकाका समाधान करते हुए बीरसेन स्वामीने बतलाया है कि 'उच्चारणाचार्यने उपशमसम्यग्दृष्टिके एक अवस्थित पदका ही कथन किया है और यहां भुजगारविभक्तिका कथन उन्हींके कथनानुसार किया जा रहा है। अतः उपशमसम्यक्त्वमें अल्पतरविभक्तिका कथन नहीं किया है। यद्यपि उच्चारणाचार्यका यह उपदेश उपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका कथन करनेवाले उपदेशके प्रतिकूल पड़ता है, किन्तु मूल सूत्रग्रन्थोंमें अनुकूल या प्रतिकूल कोई उल्लेख न होनेसे ये दोनों उपदेश परस्पर बाधित नहीं होते, अतः दोनों उपदेशोंका संग्रह करना चाहिये।' उपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती इसकी पुष्टिमें बीरसेन स्वामीने दूसरी यह युक्ति दी है कि उपशमसम्यक्त्वके कालसे अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजनाकाल संख्यातगुणा है। अतः उपशमसम्यक्त्वके कालमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना सम्भव नहीं है। किन्तु बीरसेनस्वामी 'उपशमसम्यक्त्वके कालसे अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजना काल संख्यातगुणा है' यह किस आधारसे लिख रहे हैं इसका हमें अभी स्रोत नहीं मिल सका। मालूम होता है यह मत भी उन्हीं उच्चारणाचार्यका होगा जिनके मतसे यहां उपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका निषेध किया है। हां, यह उल्लेख अवश्य पाया जाता है कि 'अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विसंयोजनाकालसे उपशम-

णियच्चो त्ति। सासण० अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। अभविय० अवट्टि० सव्वद्धा।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

§ ४६४. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज० अप्पदर० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस-अहोरत्ता सादि०। अवट्टि० णत्थि अंतरं। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचिं० तिरि० पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णि-वेद०-चत्तारिकसा०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्स० -भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि

सम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है।' जिसका प्रतिपादन स्वयं वीरसेन स्वामी २४ विभक्ति-स्थानके उत्कृष्टकालका कथन करते समय कर आये हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि उपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना हो सकती है। स्वयं वीरसेन स्वामी इसे प्रवाह्यमान उपदेश बतला रहे हैं। तथा यतिवृषभ आचार्यने जो २४ विभक्ति-स्थानका उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है वह उपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना माने बिना बन नहीं सकता। अतः सिद्ध होता है कि प्रकृत कषायप्राभृतमें उपशमसम्यक्त्वके रहते हुए अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना हो सकती है यह उपदेश मुख्य है। और अन्तमें स्वयं वीरसेन स्वामी इसी उपदेश पर जोर देते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अभव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थान-वाले जीव ही सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्वकाल है।

इसप्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ४६४. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवालोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है। अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। इसी-प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, स्त्रीवेदी मनुष्य, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाय-योगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों

त्ति वत्तव्वं ।

§ ४६५. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अप्पदर० जह० एगसमओ उक० चउवीस अहोरत्ता सादि० । अवट्टि० णत्थि अंतरं । एवमणुद्दिसादि जाव अवराइद त्ति-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-अण्णाण-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं । मणुस-अपज्ज० अप्पदर० अवट्टि० जह० एयसमओ, उक० पलिदो० असंखे० भागो । सव्वट्ठे अप्पद० जह० एगसमओ, उक० पलिदो० असंखे० भागो।

§ ४६६. अणुद्दिसादि अवराइयदंताणं अप्पदरस्स अंतरं एत्थ उच्चारणाए चउवीस अहोरत्तमेत्तमिदि भणिदं । वप्पदेवाइरियलिहिद-उच्चारणाए वासपुधत्तमिदि परूविदं । एदासिं दोण्हमुच्चारणाणमत्थो जाणिय वत्तव्वो । अम्हाणं पुण वासपुधत्तंतरं सोह-

लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ४६५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । अर्थात् अवस्थित विभक्तिस्थानवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीव सर्वदा पाये जाते हैं । इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें तथा सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कहना चाहिये ।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ४६६. अनुदिशसे लेकर अपराजितकल्प तकके देवोंके अल्पतर विभक्तिस्थानका अन्तरकाल यहाँ उच्चारणामें चौबीस दिनरात कहा है, पर वप्पदेवके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें वर्षपृथक्त्व कहा है । अतएव इन दोनों उच्चारणाओंका अर्थ समझकर अन्तर कालका कथन करना चाहिये । पर हमारे ( वीरसेन स्वामीके ) अभिप्रायसे वर्ष पृथक्त्व अन्तरकाल ही ठीक प्रतीत होता है । क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका उत्कृष्ट

णमिदि अहिप्पाओ। कुदो? अणंताणुबंधिविसंजोयणाए उक्कस्सेण वासपुधत्तंतरे संते विसंजोयत्ताणमभावादो। तत्थ चउवीस-अहोरत्ताणि अंतरं होदि जत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुव्वेल्लणादो अप्पदरमिच्छिज्जदि। एत्थ पुण तं णत्थि। तम्हा वास-पुधत्तंतरमणुद्दिसादिसु णिरवज्जमिदि।

§ ४६७. वेउव्वियमिस्स० अप्पदर० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादि०। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० बारस मुहुत्ता। आहार० आहारमिस्स० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवमकसाय० जहाक्खाद० णेदव्वं। अवगद० अप्पदर० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। सुहुमसांपराइय० अवट्ठि० जह० एगसमओ उक्क० छम्मासा। अभव्व० अवट्ठि० णत्थि अंतरं। खइय० अप्प० जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासा। अवट्ठि० णत्थि अंतरं। उवसम०-सासण०-

अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व रहते हुए बीचमें विसंयोजना नहीं बन सकती है। अल्पतर विभक्तिस्थानका चौबीस दिनरात अन्तरकाल तो वहां होता है जहां सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलनासे अल्पतर विभक्तिस्थान स्वीकार किया जाता है। पर अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें इस प्रकारका अल्पतर विभक्तिस्थान ही नहीं पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि अनुदिशादिकमें अल्पतर विभक्तिस्थानका वर्ष-पृथक्त्वप्रमाण अन्तरकालका कथन निर्दोष है।

§ ४६७. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिनरात है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थान-वाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसीप्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कहना चाहिये।

अपगतवेदियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तर-काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर-काल छह महीना है। अभव्योंमें सर्वदा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले ही जीव पाये जाते हैं इसलिये उनमें अन्तरकाल नहीं पाया जाता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्-

सम्मामि० अवट्टि० जह० एगसमओ। उक्क० चउवीसअहोरत्ताणि सादि० उवसमसम्मादिट्ठीणमंतरं। सेसदोण्हं वि पलिदो० असंखे० भागो। उवसम० अप्पदर० अवट्ठिद० भंगो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

§४६८. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइओ भावो।

एवं भावाणुगमो समत्तो।

§४६९. अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया, भुजगारविहत्तिया विसेसाहिया, अवट्ठिदविहत्तिया अणंतगुणा। एवं तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारिकसा०-असंजद०-अचक्खु० किण्ह-णील-काउ०-भवसिद्धि०-आहारि त्ति।

§४७०. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अप्पदर०, भुज० विसेसाहिया, अवट्ठि० असंखेज्जगुणा। एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि-

दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। और उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात है तथा सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानका अन्तर अवस्थितके समान है।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ ४६८. भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदायिक भाव होता है।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ ४६९. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अल्पतर विभक्तिस्थान वाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिस्थान वाले जीव अनन्तगुणे हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यंच, काययोगी, औदारिक काययोगी नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले, भव्य तथा आहारक जीवोंमें अल्पतर आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

§ ४७०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे भुजगारविभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सभी नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यंच, सामान्य पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचो

पुरिस०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सण्णि त्ति । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुस-अपज्ज०-अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय- तसअपज्ज० -वेउव्वियमिस्स० -विहंग० -आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्माइट्ठी-वेदय०-खइयसम्मादिट्ठि त्ति एदेसु सव्वेसु वि सव्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया, अवट्ठिद० असंखे०गुणा । सव्वट्ठे सव्वत्थोवा अप्पदर-विहत्तिया, अवट्ठिदविहत्तिया संखेज्जगुणा । एवमवेद०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार० वत्तव्वं ।

§४७१. मणुस्सेसु सव्वत्थोवा भुज०, अप्पदर० असंखेज्जगुणा, अवट्ठि० असंखेज्ज-गुणा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा भुज०, अप्पदर० संखेज्जगुणा, अवट्ठि० संखेज्जगुणा ।

§४७२. एइंदिएसु सव्वत्थोवा अप्पदर०, अवट्ठि० अणंतगुणा । एवं सव्ववणप्फदि

वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्म-लेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले और संज्ञी जीवोंमें अल्पतर आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक, अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पृथिवी आदि चार स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्तक, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सबसे थोड़े अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिस्थान-वाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतरविभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें अल्पतर आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिये ।

§ ४७१. मनुष्योंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव असं-ख्यातगुणे हैं । मनुष्य पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४७२. एकेन्द्रियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अव-स्थित विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार सभी वनस्पतिकायिक, सभी

सव्वणिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। आहार०-आहारमिस्स०-अकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव्व०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं एगपदत्तादो। अथवा उवसम० सव्वत्थो० अप्पद०, अवट्ठि० असंखे०गुणा।

एवं पयडिभुजगारविहत्ती समत्ता।

---

निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, इनमें एक अवस्थितस्थान ही पाया जाता है। अथवा, उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरविभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।

इसप्रकार प्रकृतिभुजगारविभक्ति समाप्त हुई।

* पदणिक्खेवे वड्ढीए च अणुमग्गिदाए सम्मत्ता पयडिविहत्ती।

§ ४७३. पदणिक्खेवो णाम अहियारो अवरो वड्ढी णाम। एदेसु दोसु अहियारेसु एत्थ परूविदेसु पयडिविहत्ती समप्पदि त्ति जइवसहाइरिएण भणिदं।

§ ४७४. संपहि जइवसहाइरिय-सूइदाणं दोण्हमत्थाहियाराणमुच्चारणाइरियपरूविद-मुच्चारणं वत्तइस्सामो—

§ ४७५. पदणिक्खेवे तिण्णि अणियोगद्दाराणि समुक्त्तिणा, सामित्तमप्पाबहुअं चेदि। को पदणिक्खेवो णाम? जहण्णुक्कस्सपदविसयणिच्छए खिवदि पादेदि त्ति पदणिक्खेवो। तत्थ समुक्त्तिणाणुगमो दुविहो उक्कस्सओ जहण्णओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं।

* यहां पर पदनिक्षेप और वृद्धि इन दो अनुयोगद्वारोंका विचार कर लेनेपर प्रकृतिविभक्तिका कथन समाप्त होता है।

§ ४७३. एक अधिकारका नाम पदनिक्षेप है और दूसरेका नाम वृद्धि। इन दोनों अधिकारोंका यहां कथन कर देनेपर प्रकृतिविभक्तिका कथन समाप्त होता है, यह यतिवृष-भाचार्यका अभिप्राय है।

§ ४७४. अब यतिवृषभाचार्यके द्वारा सूचित किये गये दोनों अर्थाधिकारोंकी उच्चार-णाचार्यके द्वारा कही गई उच्चारणावृत्तिको बतलाते हैं—

§ ४७५. पदनिक्षेपमें तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

शंका—पदनिक्षेप किसे कहते हैं?

समाधान—जो जघन्य और उत्कृष्ट पदविषयक निश्चयमें ले जाता है उसे पदनिक्षेप कहते हैं।

पदनिक्षेपके उन तीनों अनुयोगद्वारोंमेंसे समुत्कीर्तनानुयोगद्वार उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे दो प्रकारका है। उन दोनोंमेंसे उत्कृष्ट समुत्कीर्तना प्रकृत है अर्थात् पहले उत्कृष्ट समुत्कीर्तनाका कथन करते हैं—

विशेषार्थ—पहले २८, २६ आदि विभक्तिस्थान बतला आये हैं। उनमेंसे अमुक स्थान से अमुक स्थानकी प्राप्ति होते समय वह हानिरूप है या वृद्धिरूप इत्यादि बातोंका इसमें विचार किया गया है। यथा—एक जीव अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाला है उसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सत्ताईस विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह जघन्य हानि हुई। तथा एक जीव इक्कीस विभक्तिस्थानवाला है उसने क्षपकश्रेणीपर चढ़कर आठ कषायोंका क्षय करके तेरह विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह उत्कृष्ट हानि है। इसी प्रकार सत्ताईस विभक्ति-स्थानवाले जिस जीवने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अट्ठाईस विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह जघन्य वृद्धि है तथा चौबीस विभक्तिस्थानवाले एक जीवने मिथ्यात्वमें आकर अट्ठाईस

§ ४७६. उक्कस्सपदसमुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अत्थि उक्कस्सवड्ढी-हाणि-अवट्ठाणाणि। एवं सत्तपुढवि०-तिरिक्ख०-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचि-पज्ज०-तस-तसपज्ज० -पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तिण्णिवेद-चत्तारि क०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि त्ति। पंचि० तिरि० अपज्ज० अत्थि उक्कस्सहाणि-अवट्ठाणाणि। एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि

विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह उत्कृष्ट वृद्धि है। यहां इतनी विशेषता है कि हानि सब स्थानोंसे होती है पर वृद्धि २७, २६ और २४ इन तीन विभक्तिस्थानोंसे ही होती है। इस प्रकार इन सब बातोंका विचार इस पदनिक्षेप अनुयोगद्वारमें किया गया है।

§ ४७६. उत्कृष्ट पद समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होते हैं। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच आदि तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य आदि तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघकी अपेक्षा २१ विभक्तिस्थानसे १३ विभक्तिस्थानकी प्राप्तिके समय उत्कृष्टहानि और २४ विभक्तिस्थानसे २८ विभक्तिस्थानकी प्राप्तिके समय उत्कृष्टवृद्धि होती है। तथा उत्कृष्ट हानिके पश्चात् होनेवाले अवस्थानको हानिसम्बन्धी और उत्कृष्ट वृद्धिके पश्चात् होनेवाले अवस्थानको वृद्धिसम्बन्धी उत्कृष्ट अवस्थान कहते हैं। ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उन सबमें उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान संभव हैं अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि उक्त सभी मार्गणाओंमें २१ विभक्तिस्थानसे १३ विभक्तिस्थानकी प्राप्ति होती है। किन्तु यहां ओघके समान कहनेका यह अभिप्राय है कि उक्त मार्गणाओंमें हानि, वृद्धि और अवस्थान तीनों सम्भव हैं अतः उनका कथन ओघके समान कहा गया है। किस मार्गणामें अधिकसे अधिक कितनी प्रकृतियोंकी हानि, वृद्धि और तदनन्तर अवस्थान होता है इसका आगे स्वामित्व अनुयोगद्वारमें खुलासा किया ही है। अतः इस विषयको वहांसे जान लेना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होते हैं। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सर्व एकेन्द्रिय,

जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स ०-वेउव्वियमिस्स ०-कम्मइय ०-अवगदवेद-मदि-सुदअण्णाण-विहंग ०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-सण्णि०-अणाहारि त्ति। आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव्व०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० अत्थि उक्कस्समवट्ठाणं।

एवमुक्कस्सवड्ढी-हाणि-अवट्ठाण-समुक्कित्तणा समत्ता।

§ ४७७. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण

सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि नहीं होती। किन्तु उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानका विचार करते समय जिस जिस मार्गणामें अधिकसे अधिक जितनी प्रकृतियोंकी हानि और तदनन्तर अवस्थान होता है वही यहां उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान लिया गया है। उदाहरणके लिये लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंमें अधिकसे अधिक एक प्रकृतिकी ही हानि होती है तथा मतिज्ञानियोंके अधिकसे अधिक आठ प्रकृतियोंकी हानि होती है। अतः ये अपनी अपनी अपेक्षासे उत्कृष्ट हानियां जानना चाहिये। इसीप्रकार ऊपर जितनी और मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी समझ लेना।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, जीवोंमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

विशेषार्थ—ये आहारककाययोगी आदि मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें स्थानकी हानि वृद्धि तो नहीं होती, परन्तु इनमें अभव्यमार्गणाको छोड़ कर शेष सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और जघन्य अवस्थान सम्भव है। उनमेंसे यहां उत्कृष्ट अवस्थानका ग्रहण किया है। यद्यपि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करते हैं, अतः वहां उत्कृष्ट हानि सम्भव है पर यह कुछ आचार्योंका मत है इसलिये इसकी यहां विवक्षा नहीं की।

इस प्रकार वृद्धि हानि और अवस्थानरूप समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§ ४७७. अब जघन्य वृद्धि आदिकी समुत्कीर्तनाका प्रकरण है। इसकी अपेक्षा निर्देश

अत्थि जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणि । एवं णिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतियं मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज०-पंचिंदिय-पंचिं० पज०-तस-तसपज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि त्ति । पंचिंदियतिरिक्ख-अपज० अत्थि जहण्णहाणि-अवट्ठाणाणि । एवं मणुसअपज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज०-पंचकाय-तसअपज०-ओरालिय-मिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अवगदवेद०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज०-संजद०-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । आहार०-आहारमिस्स०-अकसाइ०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० अत्थि जहण्णमवट्ठाणं ।

दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्यवृद्धि जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच आदि तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य आदि तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जघन्य अवस्थान होता है ।

विशेषार्थ–जघन्य वृद्धि आदिकी समुत्कीर्तनामें जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका ग्रहण किया है, जो स्वामित्व अनुयोगद्वारसे जाना जा सकता है । अभव्योंके एक २६ विभक्तिरूप ही स्थान होता है अतः उसका जघन्य अवस्थानमें निर्देश नहीं किया है ।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता ।

§ ४७८. सामित्तं दुविहं जहण्णुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरो जो चउवीससंतकम्मिओ मिच्छत्तं गदो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जो एक्कवीससंतकम्मिओ अट्ठकसाए खवेदि तस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-तिण्णिवेद०-चत्तारि क०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसिद्धि०-सण्णि-आहारि त्ति ।

§ ४७९. आदेसेण णेरइएसु उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तस्स । हाणी कस्स ? अण्णदरस्स अट्ठावीस-संतकम्मियस्स अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंतस्स उक्कस्सिया हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०-पंचिंतिरि० पज्ज०-पंचिंतिरि०जोणिणी-देव-भवणादि जाव

इसप्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

§ ४७८. जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे स्वामित्व दो प्रकारका है । उनमेंसे उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई जीव आठ कषायोंका क्षय करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा इसी जीवके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी इन तीन प्रकारके मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ४७९. आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके पुनः उससे संयुक्त होता है अर्थात् अनन्तानुबन्धीकी सत्तावाला होता है उस नारकी जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । नारकियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिस नारकीके पहले अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है उसके अनन्तर जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसीप्रकार सभी नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, असंयत और कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले

उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-असंजद०-पंचलेस्साणं वत्तव्वं। पंचिं०तिरि०अपज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स अट्ठावीससंतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स वा सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं वा उव्वेल्लंतस्स उक्कस्सिया हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-मिच्छादि०-असण्णीणं वत्तव्वं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० उक्क०हाणी कस्स ? अण्णद० अट्ठावीससंतकम्मियस्स अणंताणुबंधि-चउक्कविसंजोएंतस्स णिस्संतकम्मियपढमसमए उक्कस्सिया हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। एवं परिहार०-संजदासंजद०-वेदय० सम्मादिट्ठीणं वत्तव्वं। ओरालिय-मिस्स० उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स वावीससंतकम्मियस्स कदकरणि-ज्जस्स पुव्वाउअबंधवसेण तिरिक्खेसुव्वण्णसम्मादिट्ठिस्स अपज्जत्तकाले एक्कावीससंत-कम्मियपढमसमए वट्टमाणस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं।

जीवोंके कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके पहले अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है अनन्तर जिसने सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना की है उसके या जिसके पहले सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ता है अनन्तर जिसने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा इसी उत्कृष्ट हानिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्य-पर्याप्तक जीवके उत्कृष्ट हानिके अनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसीप्रकार लब्ध्य-पर्याप्तक मनुष्य, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावर काय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके पहले अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है अनन्तर जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसं-योजना की है उसके अनन्तानुबन्धी कर्मका अभाव होनेके पहले समयमें उत्कृष्ट हानि होती है। तथा इसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार परिहारविशुद्धि संयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके बाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है, अतएव जो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि है और सम्यग्दर्शन होनेके पहले तिर्यंचायुका बन्ध कर लेनेके कारण तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ऐसे किसी औदारिकमिश्रकाययोगी जीवके अपर्याप्त कालमें बाईस प्रकृतियोंसे इकीस प्रकृतियोंकी सत्ताके प्राप्त होने पर पहले समयमें उत्कृष्ट हानि होती है। तथा इसी जीवके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी

वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय० एवं चेव वत्तव्वं। णवरि देव-णेरइय-अपज्जत्तएसु वेउव्विय-मिस्सकायजोगीसु विग्गहगदीए च वट्टमाणवावीसविहत्तियसम्माइट्ठीसु वत्तव्वं। अणाहारीणं कम्मइयभंगो। आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव्व०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठीणं वड्ढी-हाणी-अवट्ठाणाणि णत्थि। कुदो अवट्ठाणस्स अभावो? वड्ढीहाणीणमभावादो। ण च समुक्कित्तणाए वियहिचारो, तत्थ वड्ढीहाणिणिरवेक्खतत्तियमेत्तावट्ठाणमस्सिऊण तहा परूविदत्तादो। अवगद० उक्क० हाणी कस्स? जो अवगदवेदो एक्कारसविहत्तिओ सत्त णोकसाए खवेदि तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइयसम्माइट्ठीणं उक्कस्सिया हाणी कस्स? अण्णदरस्स अणियट्टियस्स अट्ठकसाए खवेंतस्स उक्कस्सिया हाणी। तस्सेव

जीवके उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान कहते समय देव और नारकियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें कहना चाहिये। तथा कार्मणकाययोगमें कहते समय विग्रहगतिमें विद्यमान बाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टिमें ही कहना चाहिये। अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान कार्मणकाययोगियोंके समान जानना चाहिये।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रकृतियोंकी वृद्धि, हानि और अवस्थान नहीं पाये जाते हैं।

शंका–उक्त जीवोंके प्रकृतियोंके अवस्थानका अभाव कैसे है?

समाधान–यतः उक्त जीवोंके प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है, अतः यहां अवस्थानका भी अभाव कहा है।

यदि कहा जाय कि इस कथनका समुत्कीर्तनासे व्यभिचार हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि समुत्कीर्तनामें वृद्धि और हानिकी अपेक्षा न करके एक समान रूपसे तदवस्थ रहने वाली प्रकृतियोंकी अपेक्षा उसप्रकारका कथन किया है।

अपगतवेदियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? ग्यारह विभक्तिस्थानकी सत्तावाला जो अपगतवेदी जीव सात नोकषायोंका क्षय करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसी जीवके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? कषायोंका क्षय करनेवाले किसी अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

से काले उक्कस्समवट्ठाणं ।

एवमुक्कस्सयं सामित्तं समत्तं ।

§४८०. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जहण्णिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरो जो सत्तावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते गहिदे तस्स जहण्णिया वड्ढी । जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अट्ठावीसंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते उव्वेल्लिदे तस्स जह० हाणी। एगदरत्थ अवट्ठाणं। एवं सत्तपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं० तिरि०जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काय-जोगि० -ओरालि० -वेउव्विय०-तिण्णिवेद० -चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु० छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारीणं वत्तव्वं । पंचिं० तिरि० अपज्जत्तएसु जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अट्ठावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते उव्वेल्लिदे तस्स जह० हाणी। तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं। एवं मणुस-अपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-मिच्छादि०

इसप्रकार उत्कृष्ट स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§४८०. अब जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है। उसका निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तब उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना कर देता है तब उसके जघन्य हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जघन्य हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करता है, तब उसके जघन्य हानि होती है । तथा उसी जीवके तदनन्तर कालमें जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंग-

असण्णीणं वत्तव्वं ।

§ ४८१. अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ त्ति जहण्णिया हाणी कस्स ? जो बावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते खविदे तस्स जह० हाणी। तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं। एवमवगद०-आभिणि०-सुद०-ओहि० -मणपज्ज० -संजद० -सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय० दिट्ठीणं वत्तव्वं। ओरालियमिस्स० जहण्णिया हाणी कस्स ? जो अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णदरो तेण सम्मत्ते उव्वेलिदे जहण्णिया हाणी। तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं । एवं वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारीणं वत्तव्वं । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभवि०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० जहण्णवड्ढी-हाणि-अवट्ठाणाणि णत्थि ।

एवं सामित्तं समत्तं ।

§ ४८२. अप्पाबहुअं दुविहं जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्ढी ४। उक्कस्सिया हाणी

ज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान कहना चाहिये।

§ ४८१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थ सिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? बाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव जब सम्यक्प्रकृतिका क्षय करता है तब उसके जघन्य हानि होती है। तथा उसी देवके तदनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार अपगतवेदी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान कहना चाहिये।

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई एक औदारिकमिश्रकाययोगी जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करता है तब उसके जघन्य हानि होती है और तदनन्तर समयमें उसीके जघन्य अवस्थान होता है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान ये तीनों ही नहीं पाये जाते हैं।

इसप्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ४८२. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है–जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्ट अल्पबहुत्वका प्रकरण प्राप्त है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश।

अवट्ठाणं च दोवि सरिसाणि संखेज्जगुणाणि ८। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-तिण्णिवेद-चत्तारि क०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसि०-सण्णि-आहारीणं वत्तव्वं।

§ ४८३. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु उक्क० वड्ढी-हाणी-अवट्ठाणाणि तिण्णि वि तुल्लाणि ४। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०-तिरि०जोणिणी-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-असंजद-पंचले०वत्तव्वं। पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० उक्कस्सिया हाणी अवट्ठाणं च दोवि सरिसाणि | १ | १ |। एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अव-

उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है, जिसका प्रमाण चार है। उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दोनों समान होते हुए भी उत्कृष्ट वृद्धिकी अपेक्षा संख्यातगुणे हैं। जिनमें प्रत्येकका प्रमाण आठ है। इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—यह ऊपर ही बता आये हैं कि उत्कृष्ट वृद्धि चार प्रकृतियोंकी और उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट हानि संबन्धी अवस्थान आठ प्रकृतियोंका होता है, इसीलिये यहां पर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी और उत्कृष्ट हानि तथा उत्कृष्ट अवस्थान उत्कृष्ट वृद्धिसे संख्यातगुणा बताया है। यहां संख्यातका प्रमाण दो है, क्योंकि चारको दोसे गुणा करनेपर आठ होते हैं।

§ ४८३. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान ये तीनों ही समान हैं, जिनका प्रमाण चार है। इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक-काययोगी, असंयत और कृष्णादि पांचों लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें अधिकसे अधिक चार प्रकृतियोंकी वृद्धि, चार प्रकृतियोंकी हानि और अवस्थान होता है, इसलिये यहां तीनोंको समान बताते हुए उनका प्रमाण चार कहा है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं, जिनमें प्रत्येकका प्रमाण एक है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय, पांचों

गद०-मदि-सुद-अण्णाणि-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०- परिहार०- संजदासंजद०- ओहिदंस०- सम्मादि०- खइय०-वेदय०-मिच्छादि० असण्णि० अणाहारि त्ति वत्तव्वं । आहार०-आहारमिस्स० णत्थि अप्पाबहुअं एग-पदत्तादो । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवमुक्कस्सप्पाबहुअं समत्तं ।

§ ४८४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

---

स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—यहाँ पर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंसे लेकर अनाहारकजीवों तक ऊपर गिनाये गये मार्गणास्थानोंमें उत्कृष्ट हानि और अवस्थानको जो पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट हानि और अवस्थानके समान बताया है, इसका यह अर्थ नहीं कि जिसप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका प्रमाण एक है उसीप्रकार इन सब उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें भी उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका प्रमाण एक एक है । यहां पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहनेका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जिस प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं उसी प्रकार ऊपर कही गई मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट हानि और अवस्थानकी समानता जान लेना चाहिये । किस मार्गणामें उत्कृष्ट हानि और अवस्थान कितना है यह ऊपर स्वामित्वानु-योगद्वारमें बतला ही आये हैं ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि-सम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, क्योंकि इनके जो स्थान होता है आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोगके काल तक वही एक बना रहता है उसमें अन्य प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि नहीं होती । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । अर्थात् आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान इनके भी प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि सम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है ।

इसप्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

४८४, अब जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसका निर्देश दो प्रकारका होता

जहण्णवड्ढीहाणीअवट्ठाणाणि तिण्णि वि तुल्लाणि*। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णि वेद-चत्तारिकसाय-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि-आहारीणं वत्तव्वं। पंचिं०तिरि०अपज्ज० जहण्णहाणिअवट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि। एवं मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ट०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओहिदंसण०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-असण्णि-

है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्यवृद्धि, जघन्यहानि और अवस्थान ये तीनों समान हैं। इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंच, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि एक प्रकृतिकी होती है अतः यहां ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानको समान कहा है। ऊपर और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जघन्य हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं। इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—इन मार्गणास्थानोंमें वृद्धि तो होती ही नहीं, हां हानि और अवस्थान होता है। सो सर्वत्र जघन्य हानिका प्रमाण एक है अतः यहां सबकी जघन्य हानि और अवस्थानको समान कहा है।

अणाहारीणं वत्तव्वं। आहार०-आहारमिस्स० णत्थि अप्पाबहुअं। एवमकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-अभवसि०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० वत्तव्वं।

एवं जहण्णप्पाबहुअं समत्तं।

## एवं पदणिक्खेवो समत्तो।

§ ४८५. वड्ढीविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि समुक्कित्तणा जाव अप्पाबहुए त्ति। समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अत्थि संखेज्जभागवड्ढीहाणीओ संखेज्जगुणहाणी अवट्ठाणं च। एवं मणुस-तिय-पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-पुरिस०-चत्तारिक०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसि०-सण्णि-आहारीणं वत्तव्वं।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि-संबन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें हानि और वृद्धि तो है ही नहीं, केवल अवस्थान है अतः अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता।

इसप्रकार जघन्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

## इसप्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ४८५. वृद्धिविभक्तिका कथन करते हैं। उसके विषयमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थान होते हैं। इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी इन तीन प्रकारके मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, पुरुष-वेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**–एक स्थानसे दूसरे स्थानके प्राप्त होते समय जो हानि और वृद्धि और अवस्थान होता है वह उसके संख्यातवें भाग है या संख्यात गुणा, इसका विचार वृद्धि विभक्तिमें किया गया है। यद्यपि हानिकी अपेक्षा संख्यात भाग हानि, संख्यातगुण हानि और इनके अवस्थान संभव हैं, क्योंकि क्षपक जीवोंके दो प्रकृतिक विभक्तिस्थानसे एक प्रकृतिक विभक्तिस्थानके प्राप्त होते समय या ग्यारह विभक्तिस्थानसे पांच या चार विभक्ति-स्थानके प्राप्त होते समय संख्यात गुणहानि और उसका अवस्थान होता है तथा शेष हानियां और उनके अवस्थान संख्यात भाग हानि रूप ही होते हैं। पर वृद्धिकी अपेक्षा

§४८६. आदेसेण णेरइएसु अत्थि संखेज्जभागवड्ढी-हाणी-अवट्ठाणाणि। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुंस०-असंजद०-पंचलेस्सा० वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अत्थि संखेज्जभागहाणी-अवट्ठाणाणि। एवं मणुस्सअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद अण्णाण-विहंग०-परिहार०-संजदासंजद०-वेदय०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारीणं वत्तव्वं। आहार० आहारमिस्स० णत्थि समुक्कित्तणा, वड्ढी-हाणीहि विणा अवट्ठाणाभावादो। अथवा अत्थि वड्ढी-हाणीणिरवेक्ख

संख्यातभागवृद्धि और उसका अवस्थान ही सम्भव है, क्योंकि २४, २६ और २७ प्रकृतिक विभक्तिस्थानसे २८ प्रकृतिक विभक्तिस्थानके प्राप्त होनेपर संख्यातवें भाग प्रमाण क्रमशः ४, २ और १ प्रकृतिकी ही वृद्धि होती है। ऊपर जितनी भी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है। आगे आदेशकी अपेक्षा भी जहां जो वृद्धि हानि और अवस्थान कहा हो उसे इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिये।

§ ४८६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यात भागवृद्धि, संख्यातभागहानि और इनके अवस्थान होते हैं। इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच और योनिमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, असंयत और प्रारंभके पांच लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यात गुणहानिको छोड़ कर शेष सब पद होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान ये दो स्थान होते हैं। इसीप्रकार मनुष्यलब्ध्यपर्याप्त, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान ही होते हैं, क्योंकि इनमें भुजगार विभक्ति नहीं पाई जाती।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुत्कीर्तना नहीं है, क्योंकि वहां स्थानोंकी वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है और इनके न पाये जानेसे वहां इनका अवस्थान नहीं हो सकता है। अथवा उक्त दोनों योगवाले जीवोंमें वृद्धि और हानिकी

तत्थियमेत्तावट्ठाणस्स विवक्खियत्तादो। एवमकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद० अभव०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० वत्तव्वं। अवगद० अत्थि संखेज्जभागहाणि-संखेज्जगुण-हाणी-अवट्ठाणाणि। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-ओहिदंसण०-सम्मादि०-खइयसम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्वं।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

§ ४८७. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण संखेज्जभागवड्ढी-हाणि-अवट्ठाणाणि कस्स? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। संखेज्जगुणहाणी कस्स? अण्णदरस्स अणियट्टिक्खवयस्स। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-पुरिस०-चत्तारिक०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसिद्धिय०-सण्णि०-आहारीणं वत्तव्वं।

अपेक्षाके बिना तावन्मात्र स्थानोंकी विवक्षासे समुत्कीर्तना है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यात संयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाओंमें जहां जो स्थान है वही रहता है वृद्धि और हानि नहीं होती, अतः यहां वृद्धि, हानि और अवस्थानका निषेध किया है। अब यदि इन मार्गणाओंमें वृद्धि और हानिके बिना अवस्थान स्वीकार किया जाय तो जहां जो स्थान होता है उसकी अपेक्षा अवस्थान स्वीकार किया जा सकता है। तथा उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता इस अपेक्षासे यहां उपशमसम्यग्दृष्टिके हानिका निषेध किया है।

अपगतवेदी जीवोंमें संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थान ये स्थान हैं। इसी प्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§ ४८७. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि संख्यातभाग हानि और अवस्थान किसके होते हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं। संख्यातगुणहानि किसके होती है? किसी भी अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक जीवके होती है। इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके और पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त, त्रस त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, पुरुषवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

**§ ४८८. आदेसेण णेरईएसु संखेज्जभागवड्ढी-हाणी-अवट्ठाणाणि कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख०-पंचिं०तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुंस०-असंजद०-पंचले० वत्तव्वं । पंचि०तिरि० अपज्ज० संखेज्जभागहाणि-अवट्ठाणाणि कस्स ? अण्णद० । एवं मणुस-अपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पांचिंदिय अपज्ज०-पंचकाय-तस अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-परिहार०-संजदासंजद-वेदय०-मिच्छा०-**

**विशेषार्थ**—संख्यातगुणहानि ग्यारह विभक्तिस्थानसे पांच या चार विभक्तिस्थानके प्राप्त होते समय और दो विभक्तिस्थानसे एक विभक्तिस्थानके प्राप्त होते समय ही होती है। और ये विभक्तिस्थान क्षपक अनिवृत्तिकरणमें ही होते हैं। अतः संख्यातगुणहानि क्षपक अनिवृत्तिगुणस्थानवाले जीवके होती है यह कहा है। तथा संख्यातभागहानि और संख्यात भागवृद्धि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीवोंके सम्भव है, क्योंकि छब्बीस या सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके पहले समयमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता देखी जाती है। अतः सम्यग्दृष्टिके संख्यात भागवृद्धि बन जाती है। इसीप्रकार चौबीस विभक्ति-स्थानवाला जो सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता देखी जाती है, अतः मिथ्यादृष्टिके भी संख्यात-भागवृद्धि बन जाती है। तथा मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके संख्यातभागहानिका कथन सरल है। अतः उसका विचार कर खुलासा लेना चाहिये। इसीप्रकार जिस वृद्धि या हानि सम्बन्धी अवस्थान हो उसका भी कथन कर लेना चाहिये। ऊपर जितनी भी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है।

§ ४८८. **आदेशकी** अपेक्षा **नारकियोंमें** संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि नारकीके होते हैं। इसी-प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनीमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासीसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, असंयत और कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है। तथा संख्यातभागवृद्धि संख्यातभागहानि और अवस्थानका खुलासा जिस प्रकार ऊपर किया है उस प्रकार कर लेना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं। इसीप्रकार लब्ध्य पर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावर-

असण्णीणं वत्तव्वं । ओरालियमिस्स० संखेज्जभागहाणी-अवट्ठाणाणि कस्स ? अण्ण० सम्मादि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । एवं वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारीणं । आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठाणं कस्स ? अण्णद० । एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० वत्तव्वं । अवगद० संखेज्जभागहाणीसंखे० गुणहाणीओ अवट्ठाणं च कस्स ? अण्णद० खवयस्स । आभिणि०-सुद०-ओहि० मणपज्ज० संखेज्जभा० हाणी-संखे० गुणहाणीअवट्ठाणाणं ओघभंगो । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय० वत्तव्वं ।

एवं सामित्तं समत्तं ।

काय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानसे सत्ताईस और सत्ताईससे छब्बीस विभक्तिस्थानोंका प्राप्त होना ही सम्भव है । अतः इनमें संख्यातभागहानि और उसका अवस्थान ये पद ही सम्भव हैं ।

औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें २८ से २७, २७ से २६ और २२ से २१ विभक्तिस्थानोंका प्राप्त होना सम्भव है । अतः इनमें भी संख्यातभागहानि और उसका अवस्थान ये पद ही सम्भव हैं ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थान किसके होता है ? किसी भी जीवके होता है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें प्रकृतियोंकी हानि और वृद्धि नहीं होती अतः एक अवस्थान पद ही कहा है । यद्यपि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है, ऐसा भी उपदेश पाया जाता है । अतः इसके संख्यातभागहानि सम्भव है पर उसकी यहां विवक्षा नहीं की है । अपगतवेदी जीवोंमें संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी क्षपकके होते हैं ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनः पर्ययज्ञानी जीवोंमें संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थान ओघके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

इसप्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४८६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण संखेज्जभागवड्ढी संखेज्जगुणहाणीओ केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। संखेज्जभागहाणी० जह० एगसमओ उक्क० बेसमया। अवट्ठाणं तिविहो अणादि-अपज्जवसिदो अणादिसपज्जवसिदो सादिसपज्जवसिदो चेदि। तत्थ जो सो सादिसपज्जवसिदो तस्स जह० एगसमओ, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवमचक्खु० भवसि०। णवरि भवसि० अणादि-अपज्जवसिदं णत्थि।

§ ४८६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका कितना काल है। इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। संख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। अवस्थान तीन प्रकारका है–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमेंसे जो सादि-सान्त अवस्थान है उसका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसीप्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्यजीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके अनादि-अनन्त अवस्थान नहीं होता है।

विशेषार्थ–यहां एक जीवकी अपेक्षा संख्यात भाग वृद्धि आदिका काल बतलाया है। संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिके होनेके पश्चात् दूसरे समयमें पुनः संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानि नहीं होती। अतः इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। जो जीव नपुंसक वेदके उदयके साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़ा है वह पहले समयमें स्त्रीवेदका और दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करके क्रमशः १२ और ११ प्रकृतिक स्थानवाला होता है। अतः संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल दो समय बन जाता है। इसका जघन्य काल एक समय पूर्ववत् जानना। तथा जो जीव सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके एक समय तक मिथ्यात्वमें रहा और दूसरे समयमें प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि हो गया उसके अवस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा जिस जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके पहले समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त किया और अतिलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर जो जीव मिथ्यात्वमें चला गया। पुनः वहां पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला हो गया। और जब अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह गया, तब पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला हो गया उसके आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त और पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक छब्बीस विभक्तिस्थानका अवस्थान देखा जाता है। अतः अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल-

§ ४६०. आदेसेण णेरइएसु संखेज्जभागवड्ढीहाणीणं कालो जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अवट्ठा० केवचिरं०? जह० एगसमओ-उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि। पढमादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि अवट्ठाणस्स जहण्णेण एगसमओ, उक्क० सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ। तिरिक्ख-पंचिंदियतिरि०तिगस्स संखेज्जभागवड्ढीहाणीणं णारयभंगो। अवट्ठाण० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदीओ। पंचिं० तिरि० अपज्ज० संखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवं मणुस्सअपज्ज०-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स० वत्तव्वं।

§ ४६१. मणुस-मणुसपज्ज० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जभागवड्ढी-संखेज्जगुणहाणीण-

---

परिवर्तनप्रमाण कहा है।

§ ४६०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थानका काल कितना है? अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ–नरकमें अवस्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर उसीके प्राप्त होगा जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव नरकमें जाकर या तो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होकर ही रहे या जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव नरकमें जाकर निरन्तर छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होकर ही रहे। शेष कथन सुगम है।

पहली पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रथमादि पृथिवियोंमें अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सामान्य तिर्यंच और पंचेन्द्रिय आदि तीन प्रकारके तिर्यंचोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्टकाल नारकियोंके समान है। तथा अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तात्पर्य यह है कि जिस मार्गणामें निरन्तर रहनेका जितना उत्कृष्ट काल कहा है तत्प्रमाण वहां अवस्थानका उत्कृष्टकाल है शेष कथन सुगम है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें जीवके रहनेका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अतः इनमें अवस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ४६१. सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमें संख्यातभागहानि, संख्यातभाग-

मोघभंगो। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। एवं मणुस्सिणी०। णवरि० संखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ। देवा० णारयभंगो। भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज० संखेज्जभागवड्ढिहाणी० णारयभंगो। अवट्ठाणं के०? जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ० संखेज्जभागहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० संगट्ठिदी।

§४६२. एइंदिय-बादर०-सुहुम० तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्त०-विगलिंदियपज्जत्तापज्जत्त-पंचकाय-बादर-बादरपज्जत्तापज्जत्त-सुहुम-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० संखेज्जभागहाणीए

---

वृद्धि और संख्यातगुणहानि इन तीनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। इसीप्रकार स्त्रीवेदी मनुष्योंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी मनुष्योंके संख्यातभाग हानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—सामान्य और पर्याप्त मनुष्योंमें संख्यात भाग हानिका उत्कृष्ट काल दो समय नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके ही घटित करना चाहिये। किन्तु स्त्रीवेदके उदयवाले मनुष्योंको ही स्त्रीवेदी मनुष्य कहते हैं। अतः इनके संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल दो समय नहीं प्राप्त होता क्योंकि ये जीव नपुंसकवेदका क्षय हो जानेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा ही स्त्रीवेदका क्षय करते हैं। अतः इनके संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल एक समय ही प्राप्त होता है। तथा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंके अवस्थानका उत्कृष्ट काल जो पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य कहा है वह उनके उस पर्यायके साथ निरन्तर रहनेके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है। शेष कथन सुगम है।

सामान्य देवोंमें संख्यातभागवृद्धि आदिका काल नारकियोंके समान कहना चाहिये। भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका काल नारकियोंके समान है। उक्त देवोंमें अवस्थानका काल कितना है? अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण होता है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

§ ४६२. सामान्य एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, विकलत्रय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, तथा इनके बादर और बादरोंके

जह० उक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० संखेज्जभागवड्ढीहाणीसंखेज्जगुणहाणी० ओघभंगो । अवट्ठा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । पंचमण०-पंचवचि०-संखेज्जभागवड्ढीहाणी-संखेज्जगुणहाणि० ओघभंगो । अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ४९३. कायजोगि० संखेज्जभागवड्ढीहाणी-संखेज्जगुणहाणी० ओघभंगो । अवट्ठा० जह० एयसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं । एवमोरालि० । णवरि० अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० बावीसवाससहस्साणि देसूणाणि । वेउव्विय० णारगभंगो । णवरि अवट्ठा० उक्क० अंतोमु० । आहार० अवट्ठा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं । आहारमि०

पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म पाचों स्थावर काय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेदोंमें संख्यात-भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यात-भागहानी और संख्यातगुणहानीका काल ओघके समान है। इन जीवोंमें अवस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानी और संख्यातगुणहानिका काल ओघके समान है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४९३. काययोगी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यात-गुणहानिका काल ओघके समान है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है । काययोगियोंके समान औदारिककाययोगी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि औदारिक काययोगी जीवोंके अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। वैक्रियिककाययोगीजीवोंके संख्यातभाग-वृद्धि आदिका काल जिसप्रकार नारकियोंके कहा है उसप्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारककाययोगी जीवोंके अवस्थानका काल कितना है ? इनके अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके अवस्थानका काल कहना चाहिये । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थानका

अवट्ठा० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम० सम्मामि० । कम्मइय० संखेज्जभाग-हाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

§ ४६४. इत्थि० संखेज्जभागवड्ढी-हाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । एवं णवुंस० वत्तव्वं । पुरिस० संखेज्ज-भागवड्ढीहाणि-संखेज्जगुणहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । अवगद० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्तं । चत्तारिकसाय० मणजोगिभंगो ।

§ ४६५. मदि-सुदअण्णाण० संखे० भागहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० ओघभंगो । एवं मिच्छादिट्ठी० । विहंग० संखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्क० एयसमओ ।

जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टिजीवोंके कहना चाहिये । कार्मणकाययोगी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है ।

**विशेषार्थ**–एक जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें अनन्तकाल तक रह सकता है और वहां एक काययोग ही होता है अतः काययोगमें अवस्थानका उत्कृष्ट काल अनन्त कहा है । तथा औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है । अतः औदारिककाय-योगमें अवस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है ।

§ ४६४. स्त्रीवेदी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसीप्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये । पुरुषवेदी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अपगतवेदियोंमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

चारों कषायवाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल जिसप्रकार मनोयोगियोंके कहा है उसप्रकार जानना चाहिये ।

§ ४६५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका काल ओघके समान है । इसीप्रकार मिथ्या-दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । विभङ्गज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और

अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस-सागरोवमाणि देसूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० संखेज्जभागहाणि-संखे०गुणहाणि० ओघभंगो । अवट्ठा० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठी० । मणपज्ज० संखे० भागहाणि-संखे० गुणहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा ।

§ ४६६. संजद० संखे० भागहाणि संखे० गुणहाणी० ओघभंगो । अवट्ठा० मणपज्जव० भंगो । एवं सामाइयच्छेदो० । णवरि अवट्ठा० जह० एगसमओ । परिहार० संखे० भागहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं संजदासंजद० । असंजद० मदि० भंगो । णवरि संखेज्जभाग-वड्ढी० जहण्णुक्क० एगसमओ । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

§ ४६७. पंचले० संखे० भागवड्ढी-हाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्ठा०

उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुण-हानिका काल ओघके समान है । तथा अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । मन:पर्ययज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है ।

§ ४६६. संयत जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओघके समान है । तथा अवस्थानका काल मनःपर्ययज्ञानियोंके अवस्थानके कालके समान है । इसीप्रकार सामायिकसंयत और छेदोपस्थानसंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थानका जघन्यकाल एक समय है । परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसीप्रकार संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये । असंयत जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल जिसप्रकार मत्यज्ञानी जीवोंके कहा है उसप्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभाग-वृद्धि भी होती है, जिसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । चक्षुदर्शनी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल जिसप्रकार त्रसपर्याप्त जीवोंके कहा है उसप्रकार जानना चाहिये ।

§ ४६७. कृष्ण आदि पांचों लेश्यावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-

जह० एयसमओ उक्क० मयसगुक्कस्सट्ठिदी। सुक्क० संखे० भागवड्ढीहाणी-संखे० गुणहाणि० ओघभंगो। अवट्ठा० जह० एगसमओ उक्क० तेत्तीस सागरो० सादिरेयाणि। अभव० अवट्ठा० के० ? अणादिअपज्ज०। खइय० संखे० भागहाणि-संखे० गुणहाणि० ओघभंगो। अवट्ठा० जह० अंतोमु० उक्क० तेत्तीस-साग० सादिरेयाणि। वेदग० संखे० भागहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठि० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठि सागरो० देसूणाणि। सासण० अवट्ठा० जह० एगसमओ, उक्क० छावलिया०। सण्णि० पुरिसभंगो। णवरि संखेज्जभागहाणि० उक्क० बेसमया। असण्णि० एइंदिय-भंगो। आहारि० संखेज्जभागवड्ढीहाणी-संखेज्जगुणहाणि० ओघभंगो। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

हानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओघके समान है। तथा इनके अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। अभव्य जीवोंके अवस्थानका काल कितना है ? अनादि-अनन्त है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओघके समान है। तथा अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अवस्थितका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है।

संज्ञी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल जिस प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके कहा है उसप्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल दो समय है। असंज्ञी जीवोंके जिसप्रकार एकेन्द्रियोंके संख्यातभागहानि आदिका काल कहा है उसप्रकार जानना चाहिये।

आहारकजीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओघके समान है। तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनाहारक जीवोंके कार्मणकाययोगियोंके समान काल कहना चाहिये।

इसप्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ४९८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण संखेज-भागवड्ढीहाणीणमंतरं केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० वेसमया। संखेज्जगुणहाणि० अंतरं केव० ? जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवमचक्खु० भवसिद्धि०।

§ ४९८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन प्रमाण है। अवस्थितका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—२६ या २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी एक जीवने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त किया और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया। पुनः उपशमसम्यक्त्वका काल पूरा हो जानेपर जो मिथ्यात्वमें चला गया उसके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव मिथ्यात्वमें जाकर २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया पुनः अति लघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वेदक सम्यग्दृष्टि होकर और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके पुनः मिथ्यात्वमें जाकर २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो जाता है उसके भी संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया। पुनः मिथ्यात्वमें जाकर और सम्यग्दृष्टि होकर जिसने अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर अनन्ता-नुबन्धीकी विसंयोजना की उसके संख्यात गुणहानिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। जिस जीवने संसारमें रहनेका काल अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण शेष रहनेपर उसके पहले समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की। तत्पश्चात् पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विसं-योजना करके छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया। पुनः अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर जिसने पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके २८ प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली, उस जीवके संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण होता है। तथा संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल कहते समय अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कालके प्रारम्भमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करावे, अनन्तर संसारमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करावे। इसप्रकार

§ ४९९. आदेसेण णेरईएसु संखेज्ज० भागवड्ढी-हाणी० अंतरं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० ओघं। पढमादि जाव सत्तमि त्ति संखेज्जभागवड्ढी-हाणी० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अवट्ठा० ओघभंगो। तिरिक्ख० संखे० भागवड्ढीहाणी० जह० अंतोमु०। उक्क० अद्धपोग्ग-

संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और पल्यका असंख्यातवाँ भागकम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है। जो संख्यातभागवृद्धि आदिका एक समय जघन्य काल है वही अवस्थितका जघन्य अन्तर जानना चाहिये। तथा संख्यात भागहानिका जो दो समय उत्कृष्टकाल है वही अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिये। या सम्यक्त्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला जो जीव पहले समयमें २७ या २६ विभक्तिस्थानवाला हुआ और दूसरे समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके २८ विभक्तिस्थानवाला हो गया उसके भी अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर दो समय पाया जाता है। तथा चार, तीन और दो विभक्तिस्थानोंका जितना काल है वह संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। जिसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है।

§ ४९९, आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तथा इनके अवस्थितका अन्तर ओघके समान है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थानका अन्तर ओघके समान है।

**विशेषार्थ**—जिस नारकी जीवने भवके आदिमें पर्याप्त होनेके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके संख्यातभागहानि की है। तथा भवके अन्तमें पुनः जिसने अनन्तानुबन्धी विसंयोजना करके संख्यातभागहानि की है। तथा मध्यके कालमें जो २४ और २८ विभक्तिस्थानवाला बना रहा है, उसके प्रारम्भ और अन्तके कालको छोड़कर शेष तेतीस सागर काल संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। तथा २७ या २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस नारकी जीवने पर्याप्त होनेके पश्चात् प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके संख्यातभागवृद्धि की। अनन्तर २४ विभक्तिस्थानको प्राप्त करके भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर जिसने पुनः मिथ्यात्वमें जाकर २८ विभक्तिस्थानको प्राप्त किया उसके प्रारम्भ और अन्तके कालको छोड़कर शेष तेतीस सागर काल संख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। शेष अन्तर कालोंका कथन जिसप्रकार ओघमें कर आये हैं उसी प्रकार यथासम्भव यहां टित कर लेना चाहिये।

तिर्यंचोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। तथा अवस्थानका अन्तर

**लपरियट्टं देसूणं। अवट्ठा० ओघभंगो। पंचिं०तिरिक्खतियस्स संखेज्जभागवड्ढी-हाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडि-पुधत्तेणव्भहियाणि। अवट्ठा० ओघभंगो। एवं मणुसतियस्स। णवरि संखेज्जगुणहाणीए ओघभंगो। पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्ज० संखे०भागहाणी० णत्थि अंतरं। अवट्ठा० जहण्णुक्क० एगसमओ। एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकायाणं बादर-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्त-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय० वत्तव्वं।**

ओघके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। तथा अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है। इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातगुणहानि भी होती है जिसका अन्तरकाल ओघके समान है।

**विशेषार्थ**—तिर्यंच और मनुष्योंमें तथा उनके अवान्तर भेदोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अन्तरकाल नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये पर इनमें जिसका जितना उत्कृष्ट काल कहा है उसको ध्यानमें रखकर घटित करना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके संख्यातभागहानिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। तथा अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय होता है। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकायके बादर पर्याप्त और बादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और कार्मण-काययोगी जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक आदि उपर्युक्त मार्गणाओंमें संख्यातभागहानिका अन्तर नहीं प्राप्त होता, क्योंकि एक जीवकी अपेक्षा उक्त मार्गणाओंका काल थोड़ा है जिससे वहां दो बार संख्यात भागहानि नहीं बनती। यद्यपि नौ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देवोंका काल बहुत अधिक है पर वहां भी दो बार संख्यात भागहानि नहीं प्राप्त होती अतः इन मार्गणाओंमें संख्यात भागहानिका अन्तरकाल नहीं कहा। तथा इन सभी मार्गणाओंमें संख्यातभागहानिका जो एक समय काल है वही यहां अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये।

§ ५००. देव० संखेज्जभागवड्ढी-हाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठा० ओघभंगो। भवणादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति संखेज्जभागवड्ढीहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अवट्ठा० ओघभंगो। एइंदिय० बादर० सुहुम०-पंचकाय० बादर०सुहुम० संखेज्जभागहाणि० जहण्णुक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। कुदो? सम्मत्तुव्वेल्लणाए संखेज्जभागहाणिं करिय पुणो पलिदो० असंखे० भागकालेण सम्मामि० उव्वेलिदूण संखेज्जभागहाणिं कुणंतस्स तदुवलंभादो। अवट्ठा० जहण्णुक्क० एगसमओ। पंचिंदिय-पंचि० पज्ज०-

§ ५००. देवोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है। तथा अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है। भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें और नौग्रैवेयक तकके उनके अवान्तर भेदोंमें अपने अपने कालकी मुख्यतासे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्व प्रक्रियानुसार घटित कर लेना चाहिये। यहां सामान्य देवोंमें जो इकतीस सागरकी अपेक्षा अन्तर काल कहा है उसका कारण यह है कि यहीं तकके देवोंके गुणस्थानोंमें अदल बदल होती है जिसकी अन्तरकालोंको घटित करते समय आवश्यकता पड़ती है। तथा शेष अन्तरकालोंका कथन सुगम है।

एकेन्द्रिय और उनके बादर और सूक्ष्म तथा पांचों स्थावरकाय और उनके बादर और सूक्ष्म जीवोंके संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

शंका—उक्त जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग क्यों है?

समाधान—क्योंकि सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलनाके द्वारा संख्यातभागहानिको करनेके अनन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके द्वारा संख्यातभागहानिको करनेवाले उक्त जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है।

तथा उक्त एकेन्द्रिय आदि जीवोंके अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय होता है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादिके उक्त मार्गणाओंमें संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है इसका खुलासा ऊपर किया ही है।

तस-तसपज्ज० संखेज्जभागवड्ढिहाणि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अवट्ठा० संखेज्जगुणहाणीणमोघभंगो। पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-वेउव्विय० अवट्ठा० ओघभंगो। सेसाणं णत्थि अंतरं।

§५०१. कायजोगि० संखे०भागवड्ढी० संखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं। संखे० भागहाणि० जहण्णुक्क० पलिदो० असंखे० भागो। अवट्ठा० ओघभंगो। आहार०-आहार-मिस्स० अव० णत्थि अंतरं। एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव०-उवसम०-सम्मामि०-सासण०।

§५०२. वेदाणुवादेण इत्थि० संखेज्जभागवड्ढीहाणि० जह० अंतोमु० उक्क०

---

इसका तात्पर्य यह है कि इनमें २८ से २७ और २७ से २६ विभक्तिस्थानकी प्राप्ति होना सम्भव है जिनके प्राप्त होनेमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल लगता है। अब यदि किसी एक जीवने २८ से २७ विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह पहली संख्यात भागहानि हुई। पुनः उसी जीवने पल्यके असंख्यातवें भाग कालके जानेपर २७ से २६ विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह दूसरी संख्यात भागहानि हुई। इस प्रकार पहली संख्यात भागहानिसे दूसरी संख्यातभागहानिके होनेमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हुआ। तथा संख्यातभागहानिका जो एक समय काल है वही यहां अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थान और संख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है। शेष स्थानोंका अन्तर काल नहीं पाया जाता है।

§५०१. काययोगी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है। संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थानका अन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

§५०२. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंके

सगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० ओघभंगो। पुरिस० एवं चेव। णवरि संखेज्ज-गुणहाणी० णत्थि अंतरं। णवुंस० संखे०भागवड्ढीहाणि०-अवट्ठा० ओघभंगो। अवगद० संखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवट्ठा० जहण्णुक्क० एगसमओ। चत्तारिकसाय० संखेज्जभागहाणि० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवट्ठा० ओघभंगो। सेसप० णत्थि अंतरं। णवरि लोभक० संखेज्जगुणहाणि० ओघभंगो।

§५०३. मदि०-सुद०-विहंग०-संखे० भागहाणि० अवट्ठा० एइंदियभंगो। एवं मिच्छा० असण्णीणं। आभिणि०-सुद०-ओहि०-संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० संखेज्जगुणहाणीणं ओघभंगो। एवमोहिदंस० सम्मादि०-वेदय०। णवरि वेदए संखे० गुणहाणी णत्थि। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगसमओ। मणपज्ज० संखेज्जभागहाणि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्व-कोडी देसूणा। अवट्ठा० जहण्णुक्क० एयसमओ। संखेज्जगुणहाणी० ओघभंगो। एवं

स्त्रीवेदी जीवोंके समान अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातगुण-हानि भी पाई जाती है पर उसका अन्तरकाल नहीं होता है। नपुंसकवेदी जीवोंके संख्यात भागवृद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है। अपगतवेदी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अव-स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है।

क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा शेष दो पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीवोंके संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ ५०३. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि और अवस्थानका अन्तरकाल एकेन्द्रियोंके समान है। इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी-जीवोंके कहना चाहिये। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके संख्यातभाग-हानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छयासठ सागर है। तथा अवस्थित और संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संख्यातगुणहानि नहीं होती है। तथा वेदकस-म्यग्दृष्टि जीवोंके अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तथा संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान संयत

संजद०-सामाइयछेदो० । णवरि० अवट्ठा० ओघभंगो । परिहार० संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । अवट्ठा० जहण्णुक्क० एगसमओ । एवं संजदासंजद० । चक्खु०तसपज्जत्तभंगो ।

§५०४. पंचलेस्सा० संखेज्जभागवड्ढीहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा । अवट्ठा० ओघभंगो । सुक्कलेस्सा० संखे० भागवड्ढीहाणी० जह० अंतोमु० उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि सादिरेयाणि । सेसमोघभंगो । खइय० संखेज्जभागहाणि० अंतरं जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं, संखेज्जगुणहाणि-अवट्ठाणं ओघभंगो । सण्णी० पुरिसभंगो । णवरि संखेज्जगुणहाणी० ओघं । आहारि० ओघभंगो । णवरि सगट्ठिदी देसूणा । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है । परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तथा अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसीप्रकार संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये । चक्षुदर्शनी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका अन्तरकाल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान है ।

§ ५०४. कृष्ण आदि पाँच लेश्यावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है । शुक्लेश्यावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और संख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर तथा संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर है । तथा शेष स्थानोंका अन्तरकाल ओघके समान है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा संख्यातगुणहानि और अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है । संज्ञी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंका अन्तरकाल पुरुषवेदके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । आहारकजीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण होता है । अनाहारक जीवोंके अन्तरकाल कार्मणकाययोगी जीवोंके समान होता है ।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ५०५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अवट्ठा० णियमा अत्थि सेसपदा० भयणिज्जा। भंगा सत्तावीस २७। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव भवणादि जाव उवरिम-गेवज्ज०-पंचिं०-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि० वत्तव्वं। णवरि जत्थ संखेज्जगुणहाणी णत्थि तत्थ णव

§ ५०५. नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अवस्थानपदवाले जीव नियमसे हैं तथा शेष पदवाले जीव भजनीय हैं। अतः इनके सत्ताईस भंग होते हैं।

**विशेषार्थ**–संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि इनके एक जीव और नानाजीवोंकी अपेक्षा एक संयोगी द्विसंयोगी और तीन संयोगी कुल भंग छब्बीस होते हैं और इनमें अवस्थान पदकी अपेक्षा एक ध्रुव भंगके मिला देने पर कुल भंगोंका जोड़ सत्ताईस होता है। जितने भजनीय पद हों उतनी बार तीनको रखकर परस्पर गुणा करनेसे ये कुल भंग आ जाते हैं। यहाँ भजनीय पद तीन हैं अतः तीन बार तीनको रखकर परस्पर गुणा करनेसे सत्ताईस उत्पन्न होते हैं यही कुल भंगोंका प्रमाण है। पहले जो अट्ठाईस आदि विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा भंग और उनके उच्चारण करनेकी विधि लिख आये हैं उसीप्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, स्त्रीवेदी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमेंसे जहां पर संख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है वहां पर कुल नौ ही भंग होते हैं।

**विशेषार्थ**–किस मार्गणास्थानमें संख्यातभागवृद्धि आदिमेंसे कितने पद पाये जाते हैं यह स्वामित्वानुयोगद्वारमें बता आये हैं। ऊपर जो मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें कुछ ऐसे स्थान हैं जिनमें संख्यातगुणहानिके बिना शेष तीन और कुछमें चारों पद पाये जाते हैं। जहां चारों पद पाये जाते हैं वहां २७ भंग होंगे, इसका खुलासा ऊपर ही कर आये हैं। पर जहां संख्यात गुणहानिके बिना शेष तीन पद पाये जाते हैं वहां दो भजनीय पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक और द्विसंयोगी आठ भंग होंगे और

चेव भंगा ६ । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अवट्ठा० णियमा अत्थि । संखेज्जभागहाणी भयणिज्जा । भंगा तिण्णि ३ । एवमणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-सभेद पंचकाय-तस अपज्ज०-ओरालियमिस्स ०-कम्मइय मदि-सुद-अण्णा०- विहंग०- परिहार०- संजदासजद०- वेदय०- मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं ।

§ ५०६. मणुसअपज्ज० अवट्ठि० संखेज्जभागहाणीविहत्तीए अट्ठभंगा वत्तव्वा । तं जहा, सिया अवट्ठिदविहत्तीओ । सिया अवट्ठिदविहत्तिया । सिया संखेज्जभागहाणिविहत्तिओ । सिया संखेज्जभागहाणिविहत्तिया । सिया अवट्ठिदविहत्तिओ च संखेज्जभागहाणिविहत्तिओ च । सिया अवट्ठिदविहत्तिओ च संखेज्जभागहाणिविहत्तिया च । सिया अवट्ठिदविहत्तिया च संखे० भागहाणिविहत्तिओ च । सिया अवट्ठिदविहत्तिया च संखे०भागहाणिविहत्तिया च । एवमट्ठ भंगा ८ । एवं वेउव्वियमिस्स० । आहार०

इनमें अवस्थान पदके एक ध्रुव भंगके मिला देनेपर कुल भंग नौ होंगे ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अवस्थान पदवाले जीव नियमसे हैं । तथा संख्यातभाग हानि भजनीय है । अतः यहां कुल भंग तीन होते हैं । इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, सभी पांचों स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ–इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान ये दो ही पद पाये जाते हैं । उनमेंसे अवस्थान पद ध्रुव है और संख्यातभागहानि अध्रुव पद है । अतः संख्यातभागहानिके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग और ध्रुवपदकी अपेक्षा एक भंग ये तीन भग उक्त मार्गणास्थानोंमें पाये जाते हैं ।

§ ५०६. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें अवस्थित और संख्यातभागहानि विभक्तिकी अपेक्षा आठ भंग कहना चाहिये । वे इसप्रकार हैं–कदाचित् अवस्थितविभक्तिस्थानवाला एक जीव है । कदाचित् अवस्थितविभक्तिस्थानवाले अनेक जीव हैं । कदाचित् संख्यात भागहानि विभक्तिस्थानवाला एक जीव है । कदाचित् संख्यातभागहानि विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव हैं । कदाचित् अवस्थितविभक्तिस्थानवाला एक जीव और संख्यातभागहानि-विभक्तिस्थानवाला एक जीव है । कदाचित् अवस्थितविभक्तिस्थानवाला एक जीव और संख्यातभागहानिविभक्तिस्थानवाले अनेक जीव हैं । कदाचित् अवस्थितविभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और संख्यातभागहानि विभक्तिस्थानवाला एक जीव है । कदाचित् अवस्थित विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और संख्यातभागहानिविभक्तिस्थानवाले अनेक जीव हैं ।

**आहारमिस्स-अवट्ठिदस्स वे भंगा २। एवमकसाई०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठीणमवट्ठिदस्स एक-बहुजीवे अवलंबिय बेभंगा वत्तव्वा।**

**§ ५०७. अवगद० सव्वपदा भयणिज्जा। भंगा छव्वीस २६। आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज० अवट्ठा० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। भंगा णव ९। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०दिट्ठीणं वत्तव्वं। अभव० अवट्ठिद० णियमा अत्थि।**

इसप्रकार आठ भंग होते हैं। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके उक्त दो पदोंकी अपेक्षा आठ भंग कहना चाहिये। आहारक काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थितपदके दो भंग होते हैं। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थितपदके एक जीव और बहुत जीवोंका आश्रय लेकर दो भंग कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—उपर्युक्त लब्ध्यपर्याप्तक आदि सान्तर मार्गणाएँ हैं। इनमें कभी जीव नहीं भी पाये जाते हैं। कभी एक और कभी अनेक जीव पाये जाते हैं। अतः लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी इन दो मार्गणाओंमें अवस्थित और संख्यात भागहानि ये दो पद पाये जानेके कारण एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक और द्विसंयोगी कुल आठ भंग हो जाते हैं। तथा शेष सान्तर मार्गणाओंमें एक अवस्थान पद ही पाया जाता है इसलिए वहां एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक भंग दो ही होते हैं।

§ ५०७. अपगतवेदियोंमें सभी पद भजनीय हैं। यहां कुल भंग छब्बीस होते हैं।

**विशेषार्थ**—अपगतवेदियोंके संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थित ये तीन पद पाये जाते हैं जो कि भजनीय हैं। तीन पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी कुल भंग छब्बीस होते हैं। अतः अपगतवेदियोंके छब्बीस भंग कहे। तीन पदोंके छब्बीस भंग कैसे होते हैं इसकी प्रक्रिया ऊपर लिख आये हैं।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें अवस्थित पद वाले जीव नियमसे हैं। शेष संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि इन दो पदवाले जीव भजनीय हैं। यहां भंग नौ होते हैं। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—उपर्युक्त मार्गणाओंमें तीन पद बतलाये हैं उनमें से अवस्थित पद ध्रुव और शेष दो भजनीय हैं। दो भजनीय पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा एक संयोगी और द्विसंयोगी कुल आठ भंग होते हैं। तथा उनमें एक ध्रुव भंगके मिला देने पर कुल भंग नौ होते हैं। उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें यही नौ भंग कहे हैं।

अभव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे हैं।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

§ ५०८. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अवट्ठिदविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागा । सेसपदा अणंतिम-भागो । एवं तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु० तिण्णिलेस्सा-भवसिद्धि०-आहारि० ।

§ ५०९. आदेसेण णेरइएसु अवट्ठि० सव्वजीवा० के० ? असंखेज्जा भागा । सेसप० असंखे०भागो । एवं सव्वपुढवी-पंचिं०तिरिक्खतिय-मणुस-देव-भवणादि जाव णवगेवज्ज०-पंचिं०-(पंचिं०)पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि-पुरिस०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सण्णि त्ति वत्तव्वं । पंचिं० तिरि० अपज्ज० अवट्ठि० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । संखेज्जभागहाणि० असंखे० भागो । एवं मणुसअपज्जत्ताणं । अणुद्दिसादि जाव अवराइद त्ति पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगा । एवं सव्वविगलिंदिय-पंचि०पज्ज० (अपज्ज)-चत्तारि काय-तसअपज्ज०-वेउव्वियमिस्स०-

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ५०८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । तथा शेष संख्यातभागवृद्धि आदि स्थानवाले जीव अनन्तवें भाग हैं । इसीप्रकार तिर्यंच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

§ ५०९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव सर्व नारकी जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । शेष पदवाले असंख्यात एक भाग हैं । इसीप्रकार सभी पृथिवियोंके नारकी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिमती ये तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ल-लेश्यावाले और संज्ञी जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सभी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । तथा संख्यातभाग हानिवाले जीव असंख्यात एक भाग हैं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका भागाभाग कहना चाहिये । अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंका भागाभाग पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्य-पर्याप्तकोंके समान है । इसीप्रकार सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पृथिवी-

विहंग०-संजदासंजद०-वेदय० दिट्ठीणं वत्तव्वं।

§ ५१०. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अवट्ठिद० सव्वजी० के० संखेज्जा भागा। सेसप० संखे० भागो। एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो० वत्तव्वं। सव्वट्ठे अवट्ठि० सव्वजी० के०? संखेज्जा भागा। संखेज्जभागहाणि० संखे० भागो। एवं परिहार०।

§ ५११. एइंदिएसु अवट्ठिद० सव्वजी० के०? अणंता भागा। संखेज्जभागहाणीए अणंतिमभागो। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्ववणप्फदि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारीणं। आहार० आहारमिस्स० भागाभागं णत्थि। एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति वत्तव्वं। आभिणि०-सुद०-ओहि० अवट्ठि० सव्वजीवा० के०? असंखेज्जा भागा।

कायिक आदि चार स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये।

§ ५१०. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव अपनी अपनी सर्व जीवराशिके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं। तथा शेष पदवाले संख्यात एक भाग हैं। इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये।

सर्वार्थसिद्धिमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव सभी सर्वार्थसिद्धिके देवोंके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं। तथा संख्यातभागहानि वाले जीव संख्यात एक भाग हैं। इसीप्रकार परिहारविशुद्धिसंयतोंका भागाभाग कहना चाहिये।

§ ५११. एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सभी एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्त बहुभाग हैं। तथा संख्यातभागहानिवाले जीव अनन्त एक भाग हैं। इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भागाभाग नहीं है, क्योंकि इनके एक अवस्थितपद ही पाया जाता है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यात संयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव अपनी अपनी सर्व जीव राशिके कितने भाग हैं? असंख्यात बहुभाग हैं। तथा शेष

सेसप० असंखे०भागो। एवमोहिदंस०-सम्मादि०-खइयसम्माइ०।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो।

§ ५१२. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण संखेज्जभागवड्ढी-हाणिविहत्तिया केत्तिया ? असंखेज्जा। संखे० गुणहाणि० संखेज्जा। अवट्ठिया केत्तिया ? अणंता। एवं कायजोगि०-ओरालि०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारीणं वत्तव्वं।

§ ५१३. आदेसेण णेरइएसु संखेज्जभागवड्ढीहाणी-अवट्ठाणाणि केत्तिया ? असंखेज्जा। एवं सव्वणिरय०-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-तेउ०-पम्म० वत्तव्वं। तिरिक्ख० ओघभंगो। णवरि संखेज्जगुणहाणी णत्थि। एवं णवुंस०-असंजद०-तिण्णिलेस्साणं। पंचिं० तिरि० अपज्ज० संखेज्जभागहाणि-अवट्ठि० केत्ति० ? असंखेज्जा। एवं मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव अवराइद-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-चत्तारिकाय०-तसअपज्ज०-वेउव्वियमिस्स०-

स्थानवाले जीव असंख्यात एक भाग हैं। इसीप्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये।

इसप्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

§ ५१२. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धिविभक्तिस्थानवाले जीव और संख्यात भागहानि विभक्तिस्थानवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा संख्यातगुणहानिविभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं। अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसीप्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंका द्रव्य प्रमाण कहना चाहिये।

§ ५१३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार सभी नारकी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिमती ये तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये। तिर्यंचोंका द्रव्यप्रमाण ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातगुणहानि नहीं होती है। इसीप्रकार नपुंसकवेदी, असंयत और कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंका द्रव्य प्रमाण कहना चाहिये,

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पृथिवीकायिक

विहंग०-संजदासंजद०-वेदय० वत्तव्वं ।

§ ५१४. मणुस्सेसु संखेज्जभागवड्ढी-संखे०गुणहाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । सेसपदा० असंखे० । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदा संखेज्जा। सव्वट्ठे दो पदा केत्ति० ? संखेज्जा । एवं परिहार० । एइंदिय० अवट्ठि० केत्ति० ? अणंता । संखेज्जभागहाणि० के० ? असंखेज्जा । एवं वणप्फदि०-णिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । पंचिं०-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० ओघभंगो । णवरि अवट्ठि० असंखेज्जा । एवं पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठि० के० ? संखेज्जा । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खादे त्ति । अवगद० सव्वपदा० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं मणपज्ज०-संजद०-

आदि चार स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

§ ५१४. मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा शेष स्थानवाले जीव असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्य नियोंमें सभी स्थानवाले जीव संख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धिमें अवस्थित और संख्यातभाग हानिवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार परिहार विशुद्धिसंयत जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । तथा संख्यातभागहानिवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसीप्रकार वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंका अवस्थित आदि विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण ओघके समान है । इतनी विशेषता है इन मार्गणास्थानोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं । इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंका उक्त स्थानोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंका अवस्थित विभक्तिस्थानकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

अपगतवेदियोंमें संभव सभी पद वाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंका संभव सभी पदोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

सामाइयछेदो० इदि । आभिणि०सुद०-ओहि० पांचिंदियभंगो । णवरि वड्ढी णत्थि । एवमोहिदंस० सम्मादिट्ठित्ति । अभव० अवट्टि० के० ? अणंता । खइय० संखेज्ज-भागहाणि-संखेज्जगुणहाणि० केत्ति० ? संखेज्जा । अवट्टि० केत्ति० ? असंखेज्जा । उवसम०-सासण०-सम्मामि० अवट्टि० के० ? असंखेज्जा ।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

§ ५१५. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अवट्टिदविहत्तिया केवडि० खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसपदा० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो । एवं तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारि-(कसाय)-असंजद० अचक्खु०-भवसि०-तिण्णिले०-आहारि त्ति वत्तव्वं । णवरि पदगयविसेसो णायव्वो ।

§ ५१६. आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० ज्जदिभागो । एवं सव्वणिरय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुस्स

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंका संभव सभी पदोंकी अपेक्षा द्रव्य-प्रमाण पंचेन्द्रियोंके समान है । यहां पंचेन्द्रियोंसे इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात-भागवृद्धि नहीं पाई जाती है । इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंका संभव-पदोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

अभव्योंमें अवस्थित पदवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि पदवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अवस्थित पदवाले जीव कितने हैं असंख्यात हैं । उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

इसप्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ५१५. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है--ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । शेष संख्यातभागवृद्धि आदि पदवाले जीवोंने वर्तमानमें कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार सामान्यतिर्यंच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य: कृष्णादि तीन लेश्यावाले और आहारक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणास्थानोंमें सर्वत्र संख्यातभागवृद्धि आदि सभी पद संभव नहीं हैं इसलिये जहां जो पद हो वह जान लेना चाहिये ।

§ ५१६. आदेशसे नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि आदि संभव सभी पदोंको प्राप्त हुए जीवोंने वर्तमानमें कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असंख्यातवेंभाग क्षेत्रका स्पर्श किया

मणुस-देव०-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु० ओहिदंसण०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सण्णि त्ति।

§ ५१७. इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर०-बादरपज्जत्तापज्जत्त-सुहुम०-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त० अवट्ठि० के० खेत्ते ? सव्वलोगे। संखेज्जभागहाणि० के० खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे। एवं चत्तारि काय-बादरअपज्ज०-सुहुम० पज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादि०-सण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। बादरपुढवि० पज्ज०-बादर-आउ० पज्ज०-बादरतेउ०पज्ज०-बादरवाउपज्ज० पंचिंदिय-अपज्जत्तभंगो। णवरि बादरवाउ० पज्ज० अवट्ठि० लोगस्स संखे०-भागे। सव्ववणप्फदिकाइयाणमेइंदियभंगो। आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठि० के०

है। इसीप्रकार सभी नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, सर्व मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पचेन्द्रिय, सर्व त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंका क्षेत्र संभव पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग है।

§ ५१७. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं। संख्यात भागहानिवाले उक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवे भागक्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर कायिक, तथा इन चारोंके बादर-लब्ध्यपर्याप्त और सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंका अपनेमें सम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके क्षेत्रके समान होता है। इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। समस्त वनस्पतिकायिक जीवोंका संभव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान है।

खेत्ते० ? लोग० असंखे० भागे। एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति। अभव० अवट्ठि० के० खेत्ते ? सव्वलोए।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

§ ५१८. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण संखेज्जभागवड्ढीविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। संखेज्जभागहाणि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दस० देसूणा, सव्वलोगो वा। अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। संखेज्जगुणहाणि० खेत्तभंगो। एवं कायजोगि०-चत्तारिक०-अचक्खु० भवसि० आहारि त्ति।

§ ५१९. आदेसेण णेरइएसु संखेज्जभागवड्ढी० खेत्तभंगो। संखेज्जभागहाणि अवट्ठिद० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो छ चोद्दसभागा वा देसूणा।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। अभव्य अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं।

इसप्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ५१८. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। और अतीत कालकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। संख्यातभागहानि विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असं-ख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। और अतीत कालकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है या सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। संख्यातगुणहानि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। इसीप्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

§ ५१९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागक्षेत्रका स्पर्श किया है और अतीत

पढमाए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति संखेज्जभागवड्ढी० खेत्तभंगो । संखे० भागहाणि-अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ चोद्दसभागा देसूणा ।

§ ५२०. तिरिक्खेसु संखेज्जभागहाणि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । सेसप० खेत्तभंगो । ओरालि०-णवुंस०-तिण्णिले० तिरिक्खभंगो । पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि संखेज्जभागवड्ढी० खेत्तभंगो । संखेज्जभागहाणि-अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । पंचिं० तिरि० अपज्ज० संखेज्जभागहाणि अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज० - बादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ०पज्ज०-बादरतेउ०पज्ज०-बादरवाउपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं । णवरि बादरवाउपज्ज०

कालकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें संख्यातभागवृद्धि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा उक्त द्वितीयादि पृथिवियोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पांच और कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ ५२०. तिर्यंचोंमें संख्यातभागहानि विभक्तिस्थानवाले जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है । औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी और कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीवोंका स्पर्श तिर्यंचोंके स्पर्शके समान है । पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें संख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । संख्यात-भागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त और त्रसलब्ध्यपर्याप्त जीवोंके संख्यातभागहानि और अवस्थित पदकी अपेक्षा स्पर्श कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

अवट्ठि० लोग० संखे० भागो सव्वलोगो वा। मणुसतिय० संखेज्जभागहाणि-अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा। सेसप० के० खेत्तं फो० ? लोग० असंखे० भागो।

§ ५२१. देवेसु संखेज्जभागवड्ढी० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा। संखेज्जभागहाणी-अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ णव चोद्दस० देसूणा। एवं सोहम्मीसाणेसु। भवण०-वाण०-जोइसि० संखेज्जभागवड्ढी० देवोघं। णवरि अद्धुट्ठ-अट्ठ चोद्दस०। संखेज्जभागहाणि-अवट्ठि० अद्धुट्ठ-अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा। सणक्कुमारादि जाव सहस्सारे त्ति सव्वपदा० अट्ठ चोद्दस० देसूणा। आणदपाणदआरणच्चुद० सव्वपदा० छ चोद्दसभागा वा देसूणा। उवरि खेत्तभंगो।

सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा शेष विभक्तिस्थानवाले उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवेंभाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ ५२१. देवोंमें संख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यावेंभाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग और नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंमें उक्त पदोंकी अपेक्षा स्पर्श कहना चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें संख्यातभागवृद्धि पदकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य देवोंके संख्यातभागवृद्धिपदकी अपेक्षा कहे गये स्पर्शके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां पर त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम साढ़े तीन भाग और आठ भाग स्पर्श कहना चाहिये। संख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिस्थानवाले उक्त भवनवासी आदि देवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, आठ और नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें वहां संभव सभी पदवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्गके देवोंमें वहां संभव सभी पदवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसके ऊपर नौग्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है।

§ ५२२. इंदियाणुवादेण एइंदिय० संखेज्जभागहाणि-अवट्टि० तिरिक्खोघं। एवं बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-चत्तारिकाय-बादरअपज्ज०-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-सव्व-वणप्फदि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं। [पंचिं०] पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० संखेज्जभागहाणि-अवट्टि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट चोद्दस० देसूणा, सव्वलोगो वा। सेसप० ओघभंगो। एवं पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति। वेउव्विय० संखेज्जभागवड्ढी० के० खे० फो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ट चो० देसूणा। संखेज्जभागहाणि-अवट्टि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ-तेरह-चोद्दसभागा देसूणा। वेउव्विय-मिस्स०-आहारमिस्स०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार० सुहुम-सांपराय०-जहाक्खाद०-अभव० खेत्तभंगो। इत्थि० पंचिंदियभंगो। णवरि संखेज्ज-

§ ५२२. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंमें उक्त पदोंके आश्रयसे कहे गये स्पर्शके समान है। इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवी कायिक आदि चार स्थावरकाय, बादर पृथिवीकायिक आदि चारोंके अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदि चारोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाय-योगी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके स्पर्श कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त जीवोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है। लोकके असंख्यातवे भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श ओघके समान है। इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके स्पर्श कहना चाहिये।

वैक्रियिककाययोगियोंमें संख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवेंभाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, मन:पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथा-ख्यातसंयत और अभव्य जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

स्त्रीवेदमें स्पर्श पंचेन्द्रियोंके स्पर्शके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी

गुणहाणी णत्थि ।

§ ५२३. मदि-सुदअण्णाण० संखेज्जभागहाणि-अवट्ठि० ओघं । विहंग० संखेज्ज-भागहाणि-अवट्ठि० के० खेत्तं फो० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दस० देसूणा, सव्वलोगो वा । आभिणि०-सुद०-ओहि० संखेज्जादिभागहाणिअवट्ठि० के० खे०फो० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दस० देसूणा । संखेज्जगुणहाणी ओघं । एवमोहि-दंसण-सम्मादिट्ठित्ति । एवं वेदय० । णवरि संखेज्जगुणहाणी णत्थि ।

§ ५२४. संजदासंजद० संखेज्जभागहाणी० खेत्तभंगो । अवट्ठि० छ चोद्दस० देसूणा । असंजद० संखेज्जभागवड्ढी-हाणि-अवट्ठि० ओघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० आणदभंगो । णवरि संखेज्जगुणहाणि० ओघं । खइय० अवट्ठि०

जीवोंके संख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती है ।

§ ५२३. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है । विभंगज्ञानी जीवोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । संख्यातगुण-हानिवाले उक्त मतिज्ञानी आदि जीवोंका स्पर्श ओघके समान है । इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्श होता है । इसीप्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्श होता है । इतनी विशेषता है वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संख्यातगुणहानि नहीं है ।

§ ५२४. संयतासंयत जीवोंमें संख्यातभागहानिकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले संयतासंयत जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंयतोंमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है ।

पीतलेश्यावालोंमें वहां संभव पदोंकी अपेक्षा स्पर्श सौधर्म स्वर्गमें कहे गये स्पर्शके समान है । पद्मलेश्यावालोंमें वहां संभव पदोंकी अपेक्षा स्पर्श सहस्रार स्वर्गमें कहे गये स्पर्शके समान है । शुक्ललेश्यावालोंमें वहां संभव पदोंकी अपेक्षा स्पर्श आनत स्वर्गमें कहे गये स्पर्शके समान है । इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यावालोंमें संख्यातगुणहानिपदवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श

के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ठ चोद्दस० देसूणा। सेस० खेत्तभंगो। उवसम० सम्मामि० अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ-चोद्दस० देसूणा। सासण० अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ-बारह चोद्दस० देसूणा। मिच्छादिट्ठी० मदिअण्णाणिभंगो।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

§ ५२५. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण संखेज्जभागवड्ढी-हाणी केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ, उक्क० आवलियाए असंखे० भागो। संखेज्जगुणहाणी के० कालादो ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा। एवं पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-पुरिस०- चत्तारिक०- चक्खु० -अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि० आहारि त्ति।

किया है ? लोकके असंख्यातवेंभाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। यहां शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। मिथ्यादृष्टियोंमें स्पर्श मत्यज्ञानियोंमें कहे गये स्पर्शके समान जानना चाहिये।

इसप्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ ५२५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघसे नाना जीवोंकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भाग है। संख्यातगुणहानिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। अवस्थित विभक्तिस्थानका काल कितना है ? सर्वकाल है। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, पुरुषवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका जघन्य और उत्कृष्टकाल कहना चाहिये।

विशेषार्थ–जब नाना जीव एक समय तक संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिको करके दूसरे समयमें अवस्थान भावको प्राप्त हो जाते हैं किन्तु दूसरे समयमें अन्य कोई

६ ५२६. आदेसेण णेरईएसु संखेज्जभागवड्ढी-हाणि-अवट्ठाणाणमोघभंगो। एवं सत्तपुढवि-तिरिक्ख०-पंचिं०तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुंस०-असंजद०-पंचलेस्सिया त्ति वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्ख अपज्ज० संखे०-भागहाणि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो। अवट्ठि० सव्वद्धा। एवमणुद्दिसादि जाव अवराइद त्ति, सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०-अपज्ज०-पंचकाय-तस अपज्ज०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय-मदि-सुद अण्णाण-विहंग-

जीव संख्यातभागहानि या संख्यातभागवृद्धिको नहीं करते हैं तब संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। तथा यदि एकके बाद दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे आदि नाना जीव संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि निरन्तर करते हैं तो आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक ही संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि होती हैं इसके पश्चात् अन्तर पड़ जाता है। अतः संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। संख्यातभाग वृद्धिके समान संख्यातगुणहानिका जघन्यकाल एक समय जानना चाहिये। किन्तु जब क्षपकश्रेणीमें नाना जीव प्रति समय ग्यारह विभक्तिस्थानसे पांच विभक्तिस्थानको या दो विभक्तिस्थानसे एक विभक्तिस्थानको प्राप्त होते रहते हैं तब संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट-काल संख्यातसमय प्राप्त होता है, क्योंकि इसप्रकार संख्यातगुणहानि निरन्तर संख्यात समय तक ही हो सकती है। तथा अवस्थित विभक्तिस्थानका सर्वकाल कहनेका कारण यह है कि ऐसे अनन्त जीव हैं जिनके सर्वदा अवस्थित विभक्तिस्थान बना रहता है। ऊपर और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी ओघके समान व्यवस्था बन जाती है।

६ ५२६. आदेशसे नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थानका काल ओघके समान है। इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें और सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, योनीमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उप-रिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, असंयत तथा कृष्णादि पांच लेश्यावाले जीवोंके काल कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका काल जो ओघसे कहा है वह इन मार्गणाओंमें भी बन जाता है। किन्तु इन मार्गणाओंमें संख्यातगुणहानि नहीं होती है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानिका काल कितना है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भाग है। तथा अवस्थित विभक्ति-स्थानका काल सर्वदा है। इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंके तथा सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचो स्थावर काय, त्रस-लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंग-

संजदासंजद-वेदय०-मिच्छाइ०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ५२७. मणुस० संखेज्जभागवड्ढी-संखेज्जगुणहाणी० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । सेस० ओघं । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु संखेज्जभागवड्ढी-हाणि० संखे०गुणहाणि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० सव्वद्धा । मणुसअपज्ज० संखेज्जभागहाणी० के० ? जह० एगसमओ उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ! एवं

ज्ञानी, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके उक्त दोनों स्थानोंका काल कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यातभाग-हानि और अवस्थान ही होते हैं, अतः इनमें संख्यातभागहानि और अवस्थानका उक्त काल बन जाता है ।

§ ५२७. मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्योंमें शेष स्थानोंका काल ओघके समान है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी जीवोंमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यात-भागहानि और संख्यातगुणहानिका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थितका सर्व काल है । लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें संख्यात-भागहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग है । तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यो-पमके असंख्यातवें भाग है । इसीप्रकार वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंके उक्त दोनों पदोंका काल जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानि पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके ही होती हैं और इनका प्रमाण संख्यात ही हैं, अतः मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । सामान्य मनुष्योंमें लब्ध्यपर्याप्तक भी सम्मिलित हैं अतः मनुष्योंमें संख्यात भाग हानिका काल ओघके समान बन जाता है । तथा अवस्थितका काल ओघके समान स्पष्ट ही है । मनुष्य पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय क्यों है इसका कारण ऊपर हमने बतलाया ही है । इनके संख्यातभाग हानिके जघन्य और उत्कृष्ट कालका भी यही कारण जानना चाहिये । तथा इनमें भी अवस्थितका काल ओघके समान बन जाता है । लब्ध्य-पर्याप्तक मनुष्य और वैक्रियिकमिश्र ये मार्गणा सान्तर हैं । यदि इन मार्गणाओंमें नाना जीव निरन्तर होते रहें तो तो पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण काल तक ही होते हैं । अतः इनमें अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग

वेउव्वियमिस्स० । सव्वट्ठे संखे०भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० ओघं । एवं परिहार० वत्तव्वं । आहार० अवट्ठि० जह०एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं । अवगद० संखेज्ज भागहाणी-संखे०गुणहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० अवट्ठि० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

प्रमाण बन जाता है । किन्तु संख्यात भागहानि निरन्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होती है, अतः इनमें भी संख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । इन मार्गणाओंमें शेष हानि और वृद्धि नहीं होतीं ।

सर्वार्थसिद्धिमें संख्यातभागहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थितका काल ओघके समान है । इसीप्रकार परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके उक्त दोनों पदोंका काल कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंका प्रमाण संख्यात है अतः इनमें संख्यातभाग हानिका उक्त प्रमाण काल ही घटित होता है । तथा अवस्थितका काल ओघके समान बननेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि इन मार्गणाओंमें जीव निरन्तर पाये जाते हैं ।

आहारक काययोगी जीवोंके अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके अवस्थित पदका काल कहना चाहिये । सारांश यह है कि इन मार्गणाओंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है और इनमें एक अवस्थित पद ही पाया जाता है अतः इनमें मरणकी अपेक्षा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और अपने अपने कालकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

अपगतवेदी जीवोंमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—यदि अपगतवेदी जीव निरन्तर संख्यातभागहानि और संख्यात गुणहानि करें तो संख्यात समय तक ही करते हैं, अतः इनमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुण-हानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । तथा मोहनीय कर्मके साथ अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है, अतः अपगतवेदमें अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और इसमें

§ ५२८. आभिणि०-सुद०-ओहि० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी-अवट्ठि० ओघं। एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्वं। मणपज्ज० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी-अवट्ठि० मणुसपज्जत्तभंगो। एवं संजद-सामाइयछेदो०। खइए० संखेज्जभागहाणी-संखेज्ज गुणहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा। उवसम०-सम्मामि० अवट्ठि० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सासण० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो।

एक अवस्थित पद ही होता है, अतः इसमें अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ५२८. **मतिज्ञानी** श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थित पदका काल ओघके समान है। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके उक्त तीन पदोंका काल कहना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थित पदका काल पर्याप्त मनुष्योंके कहे गये उक्त तीन पदोंके कालके समान है। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत, और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके उक्त तीन पदोंका काल कहना चाहिये।

**विशेषार्थ**—मतिज्ञानीसे लेकर सम्यग्दृष्टि तक ऊपर जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें संख्यातभागवृद्धिको छोड़कर शेष पदोंका काल ओघके समान इसलिये बन जाता है कि इनका प्रमाण असंख्यात है और इनमें जीव सर्वदा पाये जाते हैं। किन्तु मनःपर्ययज्ञान पर्याप्त मनुष्योंके ही होता है, अतः इसमें सम्भव सब पदोंका काल पर्याप्त मनुष्योंके समान कहा। तथा संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत ये मार्गणाएँ पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके ही होती हैं, अतः इनमें सम्भव सब पदोंका काल भी पर्याप्त मनुष्योंके समान बन जाता है।

**क्षायिकसम्यग्दृष्टि** जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अवस्थित पदका काल कितना है ? सर्वदा है। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अवस्थित पदका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अवस्थितपदका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। अभव्य जीवोंके अवस्थित पदका काल सर्वदा है।

**विशेषार्थ**—जब बहुतसे जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं और दूसरे समयमें कोई भी जीव क्षपकश्रेणीपर नहीं चढ़ते तब क्षायिकसम्यक्त्वमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा जब अनेक समय तक निरन्तर नाना जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते रहते हैं तब संख्यातभागहानि और संख्यात-

अभव्व० अवट्ठि० सव्वद्धा ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ ५२६. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण संखेज्ज-भागवड्ढी-हाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । संखेज्जगुणहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं पंचिं-दिय-पंचिं०पज्ज०- तस- तसपज्ज०- पंचमण०- पंचवचि०- कायजोगि -ओरालि०- पुरिस०-चत्तारिक०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-भवसिद्धि० -सण्णि-आहारि त्ति वत्तव्वं । णवरि पुरिस० संखेज्जगुणहाणि० वासं सादिरेयं ।

गुणहानिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय प्राप्त होता है । क्षायिक सम्यक्त्वमें अवस्थित पदका सर्वदा काल स्पष्ट ही है । तथा उपशमसम्यक्त्व आदिमें अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपने अपने जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

इसप्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ ५२६. **अन्तरानुगमकी** अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघसे नाना जीवोंकी अपेक्षा संख्यात भागवृद्धि और संख्यातभाग-हानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । संख्यात-गुणहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर-काल छह महीना है । तथा सामान्यसे नाना जीवोंकी अपेक्षा अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, पुरुषवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षु-दर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदी जीवके संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

**विशेषार्थ**–सब जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक मोहनीय कर्मकी संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिको नहीं करते हैं, अतः ओघसे इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है । क्षपकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है, क्योंकि संख्यातगुणहानि क्षपकश्रेणीमें ही होती है । तथा अवस्थितपद सर्वदा पाया जाता है अतः अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं कहा है । ऊपर और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है । अतः उनमें सब पदोंका अन्तरकाल ओघके समान कहा है । किन्तु पुरुषवेदी जीव अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक क्षपकश्रेणी

§ ५३०. आदेसेण णेरईएसु संखेज्जभागवड्ढी-संखे० भागहाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। भुजगारम्मि चउवीस अहोरत्तमेत्तंतरं भुजगार-अप्पदराणं परूविदं। एत्थ पुण अंतोमुहुत्तमेत्तं, कधमेदं घडदे ? ण एस दोसो, अंतरस्स दुवे उवएसा-चउवीस अहोरत्तमेत्तमिदि एगो उवएसो, अवरो अंतोमुहुत्तमिदि। तत्थ चउवीसअहोरत्तंतर-उवएसेण भुजगारपरूवणं काऊण संपहि अंतोमुहुत्तंतर-उवएसजाणावणट्टं वड्ढीए अंतोमुहुत्तंतरमिदि भणिदं। तेण एदं घडदे। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं-तिरि० तिय-देव-भवणादि-जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुंस०-असंजद०

पर नहीं चढ़ते हैं अतः पुरुषवेदमें संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा है।

§ ५३०. आदेशसे नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार और अल्पतरका अन्तरकाल चौबीस दिनरात कहा है पर यहां इन दोनोंका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र कहा है, इसलिये यह कैसे बन सकता है ?

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि अन्तरकालके विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं। भुजगार और अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है यह एक उपदेश है और अन्तर्मुहूर्त है यह दूसरा उपदेश है। उनमेंसे चौबीस दिनरात प्रमाण अन्तरकालके उपदेश द्वारा भुजगार अनुयोगद्वारका कथन करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तरकाल रूप उपदेशका ज्ञान करानेके लिये इस वृद्धि नामक अनुयोगद्वारमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है, यह कहा है। इसलिये यह घटित हो जाता है।

जिसप्रकार सामान्य नारकियोंके संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंका अन्तरकाल कहा उसीप्रकार सभी नारकी, तिर्यंच सामान्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, योनिमती तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, असंयत और कृष्णादि पांच लेश्यावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंका अन्तरकाल कहना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरके कहनेके पश्चात् भुजगारविभक्ति अनुयोगद्वारमें कहे गये भुजगार और अल्पतरविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनके साथ यहां संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बतलाये गये उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तका विरोध बतला कर उसका समाधान किया गया है सो यह कथन ओघमें भी घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है, क्योंकि सामान्य नारकियोंसे लेकर पांच लेश्यावाले जीवों तक उक्त मार्गणाओंमें

पंचलेस्सा० वत्तव्वं। पंचिंतिरि०अपज्ज० संखेज० भागहाणी-अवट्टि० ओघं। एव-मणुद्दिसादि जाव अवराइद० सव्वेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं० अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०- ओरालियमिस्स०- कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण -विहंग०-परिहार०-संजदा-संजद०वेदग०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति। एत्थ अणुद्दिसादि अवराइदंताणं वासपुधत्तंतरमिदि केसिं वि पाढो तं जाणिय वत्तव्वं।

§ ५३१. मणुस-मणुसपज्जत्तयाणमोघभंगो। एवं मणुसिणीसु। णवरि संखेज्जगुणहा-णीए वासपुधत्तंतरं। मणुसअपज्जत्ताणं दोण्हं पदाणमंतरं जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। सव्वट्टे संखेज्जभागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क पलिदो० (अ-) संखे० भागो। अवट्टि णत्थि अंतरं। वेउव्वियमिस्स० संखेज्जभागहाणि-अवट्ठिद० जह० एग-

संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट जो अन्तरकाल बतलाया है वह ओघके समान ही है, अतः ओघमें जिसप्रकार घटित कर आये हैं उसीप्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये। विशेष बात यह है कि इन मार्गणाओंमें अवस्थित पदके विषयमें कुछ भी नहीं कहा है। सो इसका यही अभिप्राय है कि यहां भी ओघके समान अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है।

पचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके संख्यातभागहानि और अवस्थित पदका अन्त-रकाल ओघके समान है। इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी एके-न्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहार-विशुद्धिसंयत, संयतासंयत, वेदगसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके संख्यातभागहानि और अवस्थित पदोंका अन्तरकाल होता है। यहां पर अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ऐसा पाठ पाया जाता है सो जानकर कथन करना चाहिये।

§ ५३१. मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तकोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका अन्तरकाल ओघके समान है। इसीप्रकार मनुष्यनियोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी-विशेषता है कि मनुष्यनियोंके संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके संख्यातभागहानि और अवस्थित इन दोनोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग है।

सर्वार्थसिद्धिमें संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर-काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। तथा अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके संख्यातभागहानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी और

समओ, उक्क० वारसमुहुत्ता। आहार०-आहारमिस्स० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवमकसा० जहाक्खाद० वत्तव्वं। अवगद० सव्वपदा० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघं। णवरि संखेज्जभागवड्ढी णत्थि। एवं संजद०-सामाइयछेदो०-सम्मादि०-ओहिदंसण०। णवरि ओहिणाणी-ओहिदंसणीसु संखेज्जगुणहाणीए वासपुधत्तं। एवं मणपज्जव०। सुहुमसांपराय० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। अभव० अवट्टि० णत्थि अंतरं। खइय० संखेज्जभागहाणी संखे०गुणहाणी-अंतरं जह० एगसमओ, उक्क० छमासा। अवट्टि० णत्थि अंतरं। उवसम० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि। सासण०-सम्मामि० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थित पदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। आहारककाययोगियोंके अवस्थित पदके अन्तरकालके समान अकषायी और यथाख्यात संयत जीवोंके अवस्थित पदका अन्तरकाल कहना चाहिये। अपगतवेदी जीवोंके सम्भव सभी पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है।

मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि नहीं होती है। इसीप्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, सम्यग्दृष्टि और अवधिदर्शनी जीवोंके संभव पदोंका अन्तरकाल होता है। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। जिसप्रकार अवधिज्ञानियोंके पदोंका अन्तरकाल कहा उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके संभव पदोंका अन्तरकाल होता है।

सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। अभव्य जीवोंके अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवस्थितपदका अन्तरकाल नहीं है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिनरात है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ ५३२. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वपदाणं सव्वत्थ ओदइओ भावो।

एवं भावाणुगमो समत्तो।

§ ५३३. अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणिविहत्तिया। संखेज्जभागहाणि० असंखेज्जगुणा। संखेज्जभागवड्ढी० विसेसाहिया। अवट्ठिद० अणंतगुणा। एवं कायजोगि०-ओरालि०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसिद्धि० आहारि त्ति।

§ ५३४. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा संखेज्जभागहाणी। संखेज्जभागवड्ढी० विसेसाहिया। अवट्ठि० असंखेज्जगुणा। एवं सव्वणिरय-पंचिंदिय तिरिक्खतिय-देवा भवणादि जाव णव गेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-तेउ०-पम्म० वत्तव्वं।

§ ५३५. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा संखेज्जभागहाणि०, वड्ढी० विसेसा०, अवट्ठि० अणंतगुणा। एवं णवुंस०-असंजद०-तिण्णि लेस्सा त्ति। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०

§ ५३२. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी पदोंमें सर्वत्र औदयिक भाव है।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ ५३३. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातगुणहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इसीप्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

§ ५३४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातभागहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सभी नारकी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके संख्यातभागहानि आदि उपर्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

§ ५३५. तिर्यंचोंमें सबसे थोड़े संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इसीप्रकार नपुंसकवेदी, असंयत और कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंके उपर्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

सव्वत्थोवा संखेज्जभागहाणि० । अवट्ठि० असंखेज्जगुणा । एवं मणुस्सअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव अवराइद०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-चत्तारिकाय-तस-अपज्ज०-वेउव्वियमिस्स०-विहंग०-संजदासंजदाणं वत्तव्वं ।

§ ५३६. मणुस्सेसु सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणि० । संखेज्जभागवड्ढी० संखेज्ज-गुणा । संखेज्जभागहाणि० असंखेज्जगुणा । अवट्ठि० असंखेज्जगुणा । मणुसपज्ज० मणुसिणीसु सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणी० । संखेज्जभागवड्ढी० संखेज्जगुणा । संखेज्ज-भागहाणि० संखे० गुणा । अवट्ठि० संखे० गुणा । सव्वट्ठे सव्वत्थोवा संखेज्जभाग-हाणी० । अवट्ठि० संखे० गुणा ।

§ ५३७. एइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्तएसु सव्वत्थोवा संखेज्जभागहाणी० । अवट्ठि० अणंतगुणा । एवं सव्ववण-प्फदि०-सव्वणिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । णवरि बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरेसु असंखेज्जगुणं कायव्वं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पृथिवी-कायिक आदि चार स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी और संयतासंयत जीवोंके उक्त दोनों पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये ।

§ ५३६. मनुष्योंमें संख्यातगुणहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्या-तभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें संख्यातगुणहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि-विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । सर्वार्थसिद्धिमें संख्यातभाग-हानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ५३७. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंमें संख्यातभाग-हानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुने हैं । इसीप्रकार सभी वनस्पति, सभी निगोद, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्य-ज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके उक्त दो पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादरवनस्पति प्रत्येकशरीर जीवोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीवोंसे अवस्थितपदवाले जीवोंको असंख्यातगुणा कहना चाहिये ।

§ ५३८. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-ओघभंगो । णवरि अवट्ठि० असंखे० गुणा । एवं पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खु०-सुक्क० सण्णि० वत्तव्वं आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठि० णत्थि अप्पाबहुअं। एवमकसा०-सुहुम-सांपराय०-जहाक्खाद०-अभवसिद्धि०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० दिट्ठीणं वत्तव्वं ।

§ ५३९. अवगद० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणी० । संखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणा । अवट्ठि० संखेज्जगुणा । एवं मणपज्जव०-संजद०-सामाइयछेदो० वत्तव्वं । आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणी। संखेज्जभागहाणी असंखेज्जगुणा। अवट्ठि० असंखे०गुणा। एवमोहिदंसण० सम्मादि० त्ति वत्तव्वं। परिहार० सव्वट्ठभंगो। खइय० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणी। संखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणा । अवट्ठि० असंखेज्जगुणा।

§ ५३८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां पर संख्यात-भागवृद्धिवाले जीवोंसे अवस्थित पदवाले जीव अनन्त गुणे न होकर असंख्यातगुणे होते हैं। इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें एक अवस्थित पद ही है, इसलिए अल्पबहुत्व नहीं है। इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके एक अवस्थित पद होनेके कारण अल्पबहुत्व नहीं है यह कहना चाहिये।

§ ५३९. अपगतवेदियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यात-भागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी-प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

परिहारविशुद्धिसंयतोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व सर्वार्थसिद्धिके देवोंके कहे गये अल्पबहुत्वके समान होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संभवपदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व

वेदय० पंचिंदियतिरिक्ख अपज्जत्तभंगो ।

एवमप्पाबहुअं समत्तं ।

एवं पयडिविहत्ती समत्ता ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके कहे गये अल्पबहुत्वके समान है ।

इसप्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इसप्रकार प्रकृतिविभक्ति समाप्त हुई ।

# परिशिष्ट

## १ पयडिविहत्तिगयगाहा-चुण्णिसुत्ताणि

**पगदीए मोहणिज्जा विहत्ति तह ट्ठिदीए अणुभागे।**
**उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ट्ठिदियं वा ॥२२॥**

चु० सु०-संपहि एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चदे। तं जहा, मोहणिज्जपयडीए विहत्तिपरूवणा, मोहणिज्जट्ठिदीए विहत्तिपरूवणा, मोहणिज्जअणुभागे विहत्तिपरूवणा च कायव्वा त्ति एसो गाहाए पढमद्धस्स अत्थो। एदेहि तिहि वि अत्थेहि एक्को चेव अत्थाहियारो। 'उक्कस्समणुक्कस्सं' चेदि उत्ते पदेसविसय-उक्कस्साणुक्कस्साणं गहणं कायव्वं; अण्णेसिमसंभवादो। पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमुक्कस्साणुक्कस्साणं गहणं किण्ण कीरदे ? ण, तेसिं गाहाए पढमत्थे (-द्धे) परूविदत्तादो। एदेण पदेसविहत्ती सूइदा। 'झीणमझीणं' त्ति उत्ते पदेसविसयं चेव झीणाझीणं घेत्तव्वं; अण्णस्स असंभवादो। एदेण झीणाझीणं सूचिदं। 'ट्ठिदियं' त्ति वुत्ते जहण्णुक्कस्सट्ठिदिगयपदेसाणं गहणं। एदेण ट्ठिदियंतिओ सूइदो। एदं तिण्णि वि अत्थे घेत्तूण एक्को चेव अत्थाहियारो; पदेसपरूवणादुवारेण एयत्तुवलंभादो। एसो गुणहरभडारएण णिद्दिट्ठत्थो।

'विहत्तिट्ठिदि अणुभागे च त्ति' अणियोगद्दारे विहत्ती णिक्खिवियव्वा। णाम विहत्ती ट्ठवणविहत्ती दव्वविहत्ती खेत्तविहत्ती कालविहत्ती गणणविहत्ती संठाणविहत्ती भावविहत्ती चेदि।

णोआगमदो दव्वविहत्ती दुविहा, कम्मविहत्ती चेव णोकम्मविहत्ती चेव। कम्म विहत्ती थप्पा। तुल्लपदेसियं दव्वं तुल्लपदेसियस्स अविहत्ती। वेमादपदेसियस्स विहत्ती। तदुभयेण अवत्तव्वं। खेत्तविहत्ती तुल्लपदेसोगाढं तुल्लपदेसोगाढस्स अविहत्ती। कालविहत्ती तुल्लसमयं तुल्लसमयस्स अविहत्ती। गणणविहत्तीए एक्को एक्कस्स अविहत्ती।

संठाणविहत्ती दुविहा संठाणदो च, संठाणवियप्पदो च। संठाणदो वट्टं वट्टस्स अविहत्ती। वट्टं तंसस्स वा चउरंसस्स वा आयदपरिमंडलस्स वा विहत्ती। वियप्पेण वट्टसंठाणाणि असंखेज्जा लोगा। एवं तंस-चउरंस-आयदपरिमंडलाणं। सरिसवट्टं सरिसवट्टस्स अविहत्ती। एवं सव्वत्थ।

[११]जा सा भावविहत्ती सा दुविहा, आगमदो य णोआगमदो य। आगमदो उवजुत्तो पाहुडजाणओ। णोआगमदो भावविहत्ती ओदइओ ओदइयस्स अविहत्ती। [१२]ओदइओ उवसमिएण भावेण विहत्ती। तदुभएण अवत्तव्वं। एवं सेसेसु वि। एवं सव्वत्थ।२।

[१३]जा सा दव्वविहत्तीए कम्मविहत्ती तीए पयदं। तत्थ सुत्तगाहा–

(१) पृ० १। (२) पृ० २। (३) पृ० ४। (४) पृ० ५। (५) पृ० ६। (६) पृ० ७। (७) पृ० ८। (८) पृ० ९। (९) पृ० १०। (१०) पृ० ११। (११) पृ० १२। (१२) पृ० १३। (१३) पृ० १६।

**पयडीए मोहणिज्जा विहत्ती तह ट्ठिदीए अणुभागे।**
**उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीणं च ट्ठिदियं वा ॥२२॥**

पदच्छेदो। तं जहा—'पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति' त्ति एसा पयडिविहत्ती १। 'तह ट्ठिदि' चेदि एसा ट्ठिदिविहत्ती २। 'अणुभागे' त्ति अणुभागविहत्ती ३। 'उक्कस्समणुक्कस्सं' त्ति पदेसविहत्ती ४। 'झीणमझीणं त्ति ५। ट्ठिदियं वा त्ति ६। तत्थ पयडिविहत्तिं वण्णइस्सामो।

पयडिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिविहत्ती च उत्तरपयडिविहत्ती च। मूलपयडिविहत्तीए इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि। तं जहा-सामित्तं कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुगेत्ति। एदेसु अणिओगद्दारेसु परूविदेसु मूलपयडिविहत्ती समत्ता होदि।

तदो उत्तरपयडिविहत्ती दुविहा, एगेग उत्तरपयडिविहत्ती चेव पयडिट्ठाण उत्तरपयडिविहत्ती चेव। तत्थ एगेग उत्तरपयडिविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि। तं जहा, एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो सण्णियासो अप्पाबहुए त्ति। एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु तदो एगेगउत्तरपयडिविहत्ती समत्ता।

पयडिट्ठाणविहत्तीए इमाणि अणियोगद्दाराणि। तं जहा, एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं अप्पाबहुअं भुजगारो पदणिक्खेओ वड्ढि त्ति।

पयडिट्ठाणविहत्तीए पुव्वं गमणिज्जा ट्ठाणसमुक्कित्तणा। अत्थि अट्ठावीसाए सत्तावीसाए छव्वीसाए चउवीसाए तेवीसाए बावीसाए एक्कवीसाए तेरसण्हं बारसण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से च १५। एदे ओघेण।

एक्किस्से विहत्तिओ को होदि? लोहसंजलणो। दोण्हं विहत्तिओ को होदि? लोहो माया च। तिण्हं विहत्ती लोहसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलणाओ। चउण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ। पंचण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ पुरिसवेदो च। एक्कारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव पंच छण्णोकसाया च। बारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव इत्थिवेदो च। तेरसण्हं विहत्ती एदाणि चेव णवुंसयवेदो च। एक्कवीसाए विहत्ती एदे चेव अट्ठकसाया च। सम्मत्तेण बावीसाए विहत्ती। सम्मामिच्छत्तेण तेवीसाए विहत्ती। मिच्छत्तेण चदुवीसाए विहत्ती। अट्ठावीसादो सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु अवणिदेसु छव्वीसाए विहत्ती। तत्थ सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए

(१) पृ० १७। (२) पृ० १८। (३) पृ० २०। (४) पृ० २२। (५) पृ० २३। (६) पृ० ८०। (७) पृ० ८२। (८) पृ० १९९। (९) पृ० २०१। (१०) पृ० २०२। (११) पृ० २०३। (१२) पृ० २०४।

विहत्ती। सव्वाओ पयडीओ अट्ठावीसाए विहत्ती। [1]संपहि एसा २८ २७ २६ २४ २३ २२ २१ १३ १२ ११ ५ ४ ३ २ १। एवं गादियादिसु णेदव्वा।

[2]सामित्तं त्ति जं पदं तस्स विहासा पढमाहियारो।" तं जहा—एक्किस्से विहत्तिओ को होदि ? [3]णियमा मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा खवओ एक्किस्से विहत्तिए सामिओ। [4]एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं विहत्तिओ। एक्कावीसाए विहत्तिओ को होदि ? खीणदंसणमोहणिज्जो। [5]बावीसाए विहत्तिओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे समत्ते सेसे। [6]तेवीसाए विहत्तिओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ते सेसे। [7]चउवीसाए विहत्तिओ को होदि ? अणंताणुबंधिविसंजोइदे सम्माइट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा अण्णयरो। [8]छव्वीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी णियमा। सत्तावीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी। अट्ठावीसाए विहत्तिओ को होदि ? सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी वा।

[9]कालो। [10]एवं दोण्हं तिण्हं चदुण्हं विहत्तियाणं। [11]पंचण्हं विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ। [12]एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। [13]णवरि बारसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ। [14]एक्कावीसाए विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि। [15]बावीसाए तेवीसाए विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कसेणंतोमुहुत्तं। [16]चउवीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण वेछावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि। [17]छव्वीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? अणादि-अपज्जवसिदो। अणादिसपज्जवसिदो। सादिसपज्जवसिदो। [18]तत्थ जो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण उवड्ढं पोग्गलपरियट्टं। [19]सत्तावीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण एगसमओ। [20]उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठावीसविहत्ती केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण बे छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि।

[21]अंतराणुगमेण एक्किस्से विहत्तीए णत्थि अंतरं। [22]एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एक्कारसण्हं बारसण्हं तेरसण्हं एक्कवीसाए बावीसाए तेवीसाए विहत्तियाणं। चउवीसाए विहत्तियस्स केवडियमंतरं ? जह० अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरि-

(१) पृ० २०५। (२) पृ० २१०। (३) पृ० २११। (४) पृ० २१२। (५) पृ० २१३। (६) पृ० २१७। (७) पृ० २१८। (८) पृ० २२१। (९) पृ० २३३। (१०) पृ० २३७। (११) पृ० २४३। (१२) पृ० २४४। (१३) पृ० २४६। (१४) पृ० २४७। (१५) पृ० २४८। (१६) पृ० २४९। (१७) पृ० २५२। (१८) पृ० २५३। (१९) पृ० २५४। (२०) पृ० २५५। (२१) पृ० २८१। (२२) पृ० २८२।

यट्टं देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं । [1]छव्वीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पलिदो० असंखे० भागो । [2]उक्कस्सेण वेछावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पलिदो० असंखे० भागो । उक्कस्सेण उवड्ढ पोग्गलपरियट्टं । [3]अट्ठावीसविहत्तियस्स जहण्णेण एगसमओ । [4]उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

[5]णाणाजीवेहि भंगविचओ । जेसिं मोहणीयपयडीओ अत्थि तेसु पयदं । [6]सव्वे जीवा अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीससंतकम्मविहत्तिया णियमा अत्थि । सेसविहत्तिया भजियव्वा ।

[7]सेसाणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि ।

[8]अप्पाबहुअं ।

[9]सव्वत्थोवा पंचसंतकम्मविहत्तिया । एक्कसंतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा ।

[10]दोण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसा० । तिण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । [11]एक्कारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । [12]बारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । [13]चदुण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा । तेरसण्हं[14] संतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा । [15]बावीससंतकम्मविहत्तिया संखेज्जगुणा । तेवीसाए[16] संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । सत्तावीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेज्जगुणा । [17]एक्कवीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेज्जगुणा । [18]चउवीसाए संतकम्मिया असंखे० गुणा । [19]अट्ठवीस संतकम्मिया असंखेज्जगुणा । [20]छव्वीसविहत्तिया अणंतगुणा ।

[21]भुजगारो अप्पदरो अवट्ठिदो कायव्वो ।

[22]एत्थ एगजीवेण कालो । [23]भुजगारसंतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अप्पदरसंतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ । [24]उक्कस्सेण वे समया । अवट्ठिदसंतकम्मविहत्तियाणं तिण्णि भंगा । [25]तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जह० एगसमओ । उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

[26]एवं सव्वाणि अणिओगद्दाराणि णेदव्वाणि ।

[27]पदणिक्खेवे वड्ढीए च अणुमग्गिदाए समत्ता पयडिविहत्ती ।

(१) पृ० २८३ । (२) पृ० २८४ । (३) पृ० २८५ । (४) पृ० २८६ । (५) पृ० २९२ । (६) पृ० २९३ । (७) पृ० ३१६ । (८) पृ० ३५२ । (९) पृ० ३५९ । (१०) पृ० ३६२ । (११) पृ० ३६३ । (१२) पृ० ३६४ । (१३) पृ० ३६५ । (१४) पृ० ३६६ । (१५) पृ० ३६८ । (१६) पृ० ३६९ । (१७) पृ० ३७० । (१८) पृ० ३७२ । (१९) पृ० ३७४ । (२०) पृ० ३७५ । (२१) पृ० ३८४ । (२२) पृ० ३८७ । (२३) पृ० ३८८ । (२४) पृ० ३८९ । (२५) पृ० ३९० । (२६) पृ० ३९७ । (२७) पृ० ४२५ ।

## २ अवतरण सूची



## ३ ऐतिहासिक नाम सूची



## ४ ग्रन्थनामोल्लेख



## ५ गाथा-चूर्णिसूत्रगत शब्दसूची



(१) सर्वत्र स्थूल संख्याक गाथागत शब्दोके और सूक्ष्म सख्याङ्क चर्णिसूत्र गत शब्दोंके पृष्ठके सूचक हैं। जिस शब्द को काले टाइपमें दिया है उसकी व्युत्पत्ति या परिभाषा चूर्णि सूत्रमें आई है।

## ७ जयधवलागत-विशेषशब्दसूची[1]



---

[1] यहां ऐसे शब्दोका ही सग्रह किया है जिनके विषयमें ग्रंथमें कुछ कहा है या जो संग्रहकी दृष्टिसे आवश्यक समझे गये। चौदह मार्गणाओ या उनके अवान्तर भेदोके नाम अनुयोग द्वारोमें पुनः पुनः आये हैं अतः उनका यहां संग्रह नही किया है। जिस पृष्ठपर जिस शब्दका लक्षण, परिभाषा या व्युत्पत्ति पाई जाती है उस पृष्ठके अंकको बड़े टाईपमें दिया है।